हिंदी साहित्य में नवगीत : स्वरूप, विकास और नवगीतकार

प्रो. डॉ. अनिल काळे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
ग्रामोन्नती मंडळ संचालित कला, वाणिज्य व विज्ञान
महाविद्यालय,नारायणगाँव तह.जुन्नर जि.पुणे

शोध सार:

हिंदी साहित्य में 'नवगीत' एक स्वतंत्र आधुनिक और प्रगतिशील साहित्य धारा के रूप में विकसित हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य जीवन के अनुभवों को गीतात्मक शैली में व्यक्त करना है। नवगीतकारों ने अपनी रचनाओं में जीवन के विभिन्न पहलुओं को उठाया है और उन्हें गीतात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। नवगीत ने आम लोगों को साहित्य के करीब लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सरल भाषा, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, आम विषयों, संगीत, सामाजिक सरोकारों और प्रचार के माध्यम से पहले समसामयिक नए गीत की बात उठ खड़ी हुई, जो नई कविता में से उभर कर आयी। सभी दृष्टियों से नवगीत को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की गौरवपूर्ण उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

बीज शब्द: नवगीत, गीत, नवगीतकार, कविता, समाज।

प्रस्तावना :

गीत एक ऐसी विधा है, जो समय के साथ बदलते हुए भी अपनी मूल भावना और स्वरूप को बनाए रखती है। यह किसी एक समय या युग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हर युग में प्रासंगिक और महत्वपूर्ण रहती है। यह कोई बाहरी या कृत्रिम रूप से बनाई गई विधा नहीं है, बल्कि मानव-मन की सहजात विधा है। मनुष्य एक राग-बोधमय प्राणी है। मनुष्य की भावनाएँ और संगीत के प्रति उसकी संवेदनशीलता उसके जीवन का एक अविभाज्य अंग है, जो कभी नहीं खो सकती। संवेदनशील व्यक्ति गीत का रचनाकार होता है। वह अपने गीतों के माध्यम से अपने अंतर्मन की गहराइयों को व्यक्त करता है। गीत सृजन का प्रारंभ कब हुआ, इसका कोई निश्चित समय नहीं है। गीत की उत्पत्ति मानव सभ्यता के प्रारंभिक दौर में हुई होगी, जब मनुष्य ने अपनी भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए शब्दों और संगीत का उपयोग करना शुरू किया होगा। कोई भी आदमी नया हो या पुराना, हृदय पर हाथ रखकर बताएं कि वह गीत नहीं गाता है और इसीलिए नहीं गाता कि गीत नहीं गाना चाहिए या कि हृदय से कोई गाने की प्रेरणा नहीं फूटती। गीत गाना मनुष्य के स्वभाव में है।

कविता और गीत :

कविता और गीत दोनों ही साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ हैं, लेकिन इनमें कुछ अंतर हैं। कविता में संगीत का प्रयोग नहीं होता है, जबकि गीत में संगीत का प्रयोग होता है। कविता की भाषा अधिक सघन और अर्थपूर्ण होती है, जबकि गीत की भाषा सरल और मधुर होती है। कविता को पढ़ने के लिए लिखा जाता है, जबकि गीत को गाने के लिए लिखा जाता है । कवि और गीतकार दोनों ही साहित्य के सृजनकर्ता होते हैं, जो अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को शब्दों में व्यक्त करते हैं। कवि अधिक साहित्यिक और काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं, जबकि गीतकार अधिक सरल और आम भाषा का प्रयोग करते हैं। गीत वैयक्तिक सुख-दुख, राग - विराग की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। इसीलिए गीत प्राय: व्यक्ति प्रधान होता है। उसमें कोई लंबा कथानक नहीं होता है। उसमें भावों की सघनता और तरलता होती है। इसीलिए गीति परंपरा की लंबी परंपरा मिलती है।

हिंदी साहित्य में गीति परंपरा और नवगीत : हिंदी साहित्य में कालानुरूप कविता की अनेक धाराएँ प्रस्फुटित हुई हैं, उसी प्रकार गीत की भी विभिन्न धाराएँ स्रोतित हुई हैं। गीति परंपरा आदिकाल से लेकर आज-तक युगानुरूप अपने आंतरिक बोध एवं बाह्य रूप को बदलती हुई प्रवाहित होती रही है। 'गीति-परंपरा जन-साधारण के लोक-गीतों से सम्बद्ध है। सिद्ध एवं नाथ पंथियों ने अपनी रहस्यानुभूतियों को जिस माध्यम से अभिव्यक्त किया, वह यही गीति-काव्य है जिसकी लोकप्रियता ने जयदेव, विद्यापति को प्रभावित किया और इन्होंने इसे संगीतमय रूप प्रदान किया। मध्यकालीन संतों-भक्तों ने भी इसे पर्याप्त समृद्ध किया। रीतिकाल में यह परंपरा थोड़ी दबी, किंतु भारतेंदु युग में इसने फिर से अपना अस्तित्व प्रमाणित किया। छायावाद ने इसका भव्य स्वागत किया। छायावादी गीति-परंपरा अनेकधा विभक्त होकर भी स्वातंत्र्योत्तर युग तक अखंड रूप से प्रवाहित होती रही। प्रगतिवादियों ने मुक्तक के साथ-साथ इसे भी अपनाया। अब यह अभिजात्य-सीमा को अतिक्रांत कर लोकजीवन की अभिव्यंजना से संपृक्त हुई। ऐसी स्थिति में यह 'गीति' से 'गीत' के रूप में विकसित हो गई। प्रयोगवादी या नई कविता के कवि भी इसके आकर्षण और प्रयोग से दूर

नहीं रह सके। नई कविता को सम्मान यदि मिला है तो मात्र सरल, सरस गीतों के आधार पर ही। जब नई कविता के उन्नायकों ने काव्य-क्षेत्र से गीति को निकाल देने का अध्यादेश जारी किया तभी गीतिकारों ने 'गीतिकाव्य' को 'नवगीत' के रूप में प्रतिष्ठित करने का आग्रह किया। ऐसा करने के लिए प्रयोगवादियों एवं नयी कविता के प्रतिष्ठाओं द्वारा गृहीत सभी साधन एवं माध्यम गीतकारों द्वारा भी अपनाये गए। छठे दशक के अंत तक नवगीत-परंपरा एक स्वतंत्र धारा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई।'1

नवगीत का स्वरूप : गीत और नवगीत दोनों ही साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएं हैं, लेकिन इनमें भी कुछ अंतर हैं। गीत में अधिक साहित्यिक और काव्यात्मक भाषा का प्रयोग होता है, जबकि नवगीत में अधिक सरल और आम भाषा का प्रयोग होता है। गीत में अधिक संदेश और अर्थ होता है, जबकि नवगीत में अधिक व्यक्तिगत और निजी अनुभव होते हैं। रामदरश मिश्र जी ने नवगीत के स्वरूप को स्पष्ट किया है-"जहाँ मानव-मन किसी सौंदर्य, राग, सत्य के किसी कोण से गहरे छू जाता है वहां गीत की भूमि होती है। यह कथ्य अपेक्षाकृत आत्म-प्रधान होता है, यह विश्लेषणपरक, बुद्धि-बोझिल, लंबा और जटिल नहीं होता। गीत की अनिवार्य विशेषताएँ ये मानी जा सकती हैं : 1.स्वानुभूति की तीव्रता। 2.संक्षिप्त लघु आकार। 3.प्रभाव की समग्रता। स्वानुभूति बड़े महत्व का तत्व है। इसमें कवि के व्यक्तित्व की जीवंतता, दृष्टि की नवीनता समाहित होती है। जीवंत व्यक्तित्व और उन्मुक्त दृष्टि वाला ही नया अनुभव कर पता है। उसकी अनुभूति युग के संदर्भों से नया ताप प्राप्त करती है। युगीन संदर्भों में जीने वाले व्यक्ति का संवेग-स्तर और सौंदर्य-बोध पिछले युग के संवेग-स्तर और सौंदर्य बोध से नया होता है और यही नवीनता उसकी अनुभूति को मौलिकता और ताजगी प्रदान करती है।"2

नवगीत एक आधुनिक और प्रगतिशील साहित्यिक विधा है, जो नए विचारों और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए एक मंच प्रदान करती है। रामदरश मिश्र जी ने नवगीत की विशेषताओं और उसकी नई दिशा के संदर्भ में लिखा है-"इधर जो गीत सामने आ रहे हैं, जिन्हें कुछ लोग मात्र गीत कहते हैं और कुछ लोग उन्हें पिछले गीत से अलग करने के लिए 'नवगीत' की संज्ञा दे रहे हैं उनमें से कुछ निश्चय ही अच्छे और ताजा हैं, उनमें नई गीतात्मक संवेदना को नई कविता के ही समान नए बिंबो के द्वारा व्यंजित किया गया है। किंतु मुझे लगता है कि अधिकांश कवियों ने गीत को एक ऊपरी आकर के रूप में स्वीकार किया है यानी वह गीत को नई कविता की होड़ में खड़ा कर उसमें वे सारी बातें भरना चाहते हैं जो गीततेर नयी कविता में दिखाई पड़ती हैं। उनके लिए गीत का अर्थ हो गया है टेक-अंतरा वाला एक छंद। उस छंद में दुनिया-जहान की सारी बातें ठूसते चले जाते हैं। इससे यह मालूम पड़ता है कि वे यह तो महसूस करते हैं कि उन्हें आज गीतात्मक मन: स्थितियों से इतर सत्य को भी स्वर देना है किंतु गीत-मोह-पाश उन्हें मुक्त नहीं कर पाता।"3 इस प्रकार आज का गीत नवगीत है। युग और परिवेश के यथार्थ की अभिव्यक्ति का गीत है। यह पहले के गीतों से अधिक समाज सापेक्ष है। रवींद्र भ्रमर ने इसे स्पष्ट करते हुए अपना अभीमत इस प्रकार दिया है-"वास्तव में 'अगीत', 'नवगीत','आधुनिक गीत', 'आज का गीत' से तात्पर्य उस गीत से है जो आज के जीवन और जगत से सम्पृक्त है। जगत के यथार्थ से संवेदित और युगबोध को ग्रहण करता है। स्वतंत्रता के पश्चात् के विसंगतिपूर्ण जीवन को, उसकी कुरूपता को, उसमें लगे हुए मानव के संघर्ष को नए गीतकारों ने वाणी दी है। नवगीत अनास्था के कोलाहल में आस्था के बिंदु चुनता है।"4 इस तरह नवगीतकारों ने गीत की सीमाओं का विस्तार किया है। उसके विषयों की परिधि बढ़ाई है और नये विषयों की खोज की है।

नवगीत अपने युग और समाज का स्पष्ट मूल्यांकन करता है। उसमें युगीन परिवेश की प्रतिध्वनि चारों ओर सुनाई पड़ती है। नवगीत में जन-साधारण में प्रचलित सामान्य भाषा तथा ग्रामीण एवं आंचलिक क्षेत्रों की शब्दावली का भी प्रयोग खुलकर किया गया है। बहुत से आलोचक नवगीत के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए छायावादी गीतिकाव्य को नवगीत की आधारभूमि मानते हुए परवर्ती काव्यान्दोलनों अर्थात प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रभाव का भी अवलोकन करते हैं। साहित्य, समाज और जीवन के प्रति नवगीत ने संतुलित दृष्टिकोण का परिचय दिया है। नवगीत की विषय-वस्तु का क्षेत्र प्रकृति, नारी, प्रेम विरह से लेकर दाम्पत्य, पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन तक विस्तृत है। "नवगीत का महत्व न केवल बौद्धिकता एवं रागात्मकता, परंपरा एवं आधुनिकता, ग्रामीण एवं आंचलिक जीवन की संवेदना एवं महानगरी जीवन की संवेदना एवं महानगरीय जीवन का बोध जैसे परस्पर विरोधी समझे जाने वाले तत्वों के समन्वय की दृष्टि से है अपितु व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन की विभिन्न विषमताओं, असंगतियों एवं विद्रूपताओं को उद्घाटित करने, की दृष्टि से भी है।"5 इस प्रकार नवगीत एक महत्वपूर्ण विधा है, जो अपने वैचारिक औदात्य, संवेदनात्मक माधुर्य और कलात्मक समृद्धि के कारण विशिष्ट है। नवगीत में भावात्मक गाम्भीर्य और अभिव्यंजना शिल्प दोनों ही बहुत मजबूत हैं। इसकी भाषा में लाक्षणिकता और व्यंजकता है, जो विशेषण-वक्रता के द्वार संवर्धित की गयी है।

नवगीत का उदय और विकास:

नवगीत का उदय एक ऐतिहासिक घटना है, जो 1950 के दशक में हुई थी। इस समय नवगीत के प्रमुख नवगीतकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवगीत को एक नए काव्य रूप के रूप में प्रस्तुत किया। नवगीत लिखने वाले कवियों ने परंपरा से प्राप्त गीत परंपरा को नवगीत कहा है, नया युगबोध दिया है। यह गीत का ही विकास है। नवगीत के संदर्भ में यह कथन बड़ा ठीक लगता है-"गीत हर युग में उपजा है और फला-फूला है।" नई कविता में नवगीत आंदोलन को चलाने वालों के विषय में यह भावना रही है कि जो नई कविता न लिख सके वे नवगीत लिखने लगे। कुछ आलोचकों का यह मत है कि नई कविता के ही कतिपय रचनाकारों ने नवगीत लिखना प्रारंभ कर दिया था। गीत तो छायावादी युग से ही लिखे जा रहे थे परंतु काव्यान्दोलन के रूप में नवगीत को नई कविता से ही प्रस्फुटित माना जाता है। नई कविता के आरंभ काल में ऐसे गीतों का बोलबाला था। एक ओर नई कविता नये अदांज से चल रही थी दूसरी ओर मंचवादी गीत तान अलापते हुए उमड़ रहे थे। रामदरश मिश्र लिखते हैं- "नई कविता लिखने वाले अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, आदि कवियों ने भी गीत लिखे। इससे यही ज्ञात होता है कि गीत और नई कविता में कोई सैद्धांतिक या मौलिक विरोध नहीं है। इसी परंपरा में ठाकुर प्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह और केदारनाथ आते हैं जिन्होंने वर्तमान चेतना के आलोक में गीतों को सजाया, संवारा। मेरे गीतों का नवीनतम विकास भी इसी स्तर पर देखा जा सकता है। शंभूनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह और मेरे गीतों में जो प्रगतिवादी मोह था वह उतर गया, विशेष प्रकार के जन-जीवन के चित्रण के लिए जो हलका-सा आग्रह था वह टूट गया। यह नयी कविता के आंदोलन का प्रभाव था।"6 रामदरश मिश्र नवगीत को नई कविता का विरोधी न मानकर सहवर्ती मानते हैं। फिर भी नई कविता के कवि नवगीतों का विरोध करते हैं। इस संदर्भ में मिश्र जी दोनों पहलुओं को स्पष्ट करते हैं -"इसलिए कि गीत युग के नए संदर्भों में विकसित संवेगों और चिंतनाओं को व्यंजित न कर सीधे-सादे रोमानी भाव एक पिटी हुई लीक पर अलापते चलते हैं, दूसरे, इनका रूप-पक्ष पूरी तरह पारंपरिक और बनावटी है। कुछ नए कवि तो स्पष्टतः यह घोषित करते हैं कि गीत आज के लिए असमर्थ और अर्थहीन माध्यम है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि वे नये कवि जो कुछ लिखते हैं वह गीत न होने के कारण अपने आप अच्छा और समर्थ काव्य बन जाता है। इस प्रकार की अतिवादी धारणाएं सनक, अपरिपक्व चिंतन और असहिष्णुता का भी परिणाम है। कविता होने के लिए कविता को कुछ मूलभूत विशेषताओं से संयुक्त होकर नए-नए प्रयोगों से स्वयं को प्रक्षालित करते रहना होता है। गीत और नई कविता गीत या नई कविता होने से काव्य नहीं बन जाते। मैं नई कविता की इस अतिवादी धारणा का विरोध करता हूँ - यद्यपि कुछ दूर तक इस धारणा की सत्यता का समर्थक भी हूँ।"7

इस प्रकार नई कविता के कवियों का विरोध होते हुए भी नवगीतकारों ने अपने बलबूते से 'गीतिकाव्य' को 'नवगीत' के रूप में प्रतिष्ठित किया। छठे दशक के अंत तक 'नवगीत' एक स्वतंत्र धारा के रूप में उदित होती हुई दिखाई देती है। यद्यपि 'नई कविता' के समानांतर 'नया गीत', 'आज का गीत', 'आधुनिक गीत' की चर्चा छठे दशक के आरंभ से ही यत्र-तत्र होने लग गई थी, किंतु इसकी सुस्पष्ट रूप में घोषणा सन् 1957 में ही हुई जबकि इलाहाबाद के साहित्य-सम्मेलन की कविता-गोष्ठी में वीरेंद्र मिश्र ने 'नई कविता : नया गीत : मूल्यांकन की समस्याएँ ' शीर्षक निबंध को पढ़ते हुए घोषित किया-हिंदी में नये गीत का जन्म हुआ है।'8 फरवरी1958 ई.में राजेंद्र प्रसाद सिंह ने अपने द्वारा संपादित एवं प्रकाशित रचना 'गीतांगिनी ' में आधुनिक युग के लगभग 70 कवियों की रचनाओं को संकलित रूप में प्रस्तुत करते हुए इसे 'नवगीत -संकलन' की संज्ञा दी। इन्होंने नवगीत के विकास की भावी दिशाओं एवं नवीन मार्ग को भी संकेतित किया। कालांतर में 'नवगीत' का प्रचार-प्रसार विविध पत्रिकाओं एवं गोष्ठियों के माध्यम से शीघ्रगामी हुआ। 'वासंती' पत्रिका में 1962 में 'नये गीत : नये स्वर' लेखमाला का प्रकाशन हुआ तो 'वातायन' ने तीन वर्षों (1964,65,66) तक गीत-विशेषांकों प्रकाशन किया। इनके अतिरिक्त 'धर्मयुग','साप्ताहिक हिंदुस्तान',' माध्यम','उत्कर्ष','गीत','लहर' आदि पत्र- पत्रिकाओं ने भी सन् 1964 से 1967 की अवधि के बीच नवगीत संबंधी अनेक लेख प्रकाशित करके इसको बहुचर्चित बनाये रखा। 'प्रज्ञा'(दिल्ली), 'साहित्यिकी'(कलकत्ता), 'रंगायन'(मुंबई) आदि संस्थाओं ने भी 'नवगीत' पर गोष्ठियों का आयोजन करके बहुचर्चित बनाया। इसके साथ ही विभिन्न गीतिकारों-रवींद्र भ्रमर, वीरेंद्र मिश्र, बालस्वरूप राही गीतिकारों ने भी इसे अपना सशक्त एवं ओजस्वी स्वर प्रदान किया।

इस प्रकार नवगीत का उदय 20वीं शताब्दी के मध्य में हुआ, और उसका विकास तीन चरणों में हुआ है - प्रथम चरण (1950-1960), द्वितीय चरण (नवगीत का विकास)(1960-1970), और तृतीय चरण (नवगीत का विस्तार)((1970-1980))। नवगीत का वर्तमान 1980 के दशक से वर्तमान तक है, जब नवगीत के कवियों ने अपनी रचनाओं में नए विषयों, नए प्रतीकों, और

नए शैलियों का प्रयोग किया। नवगीत के प्रमुख कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवगीत को एक नए स्तर पर पहुंचाया। फलस्वरूप 'नवगीत' एक सशक्त एवं व्यापक विधा के रूप में उभर कर आगे आने में सफल हो गया l

नवगीतकार:

नवगीतकारों की सूची बहुत लंबी है, लेकिन कुछ प्रमुख नवगीतकार इस प्रकार हैं : शंभुनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, महेंद्र शंकर, रामदरश मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र , बालस्वरूप राही, रमानाथ अवस्थी, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, डॉ.रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी 'रामेश्वर,' उमाकांत मालवीय, गोपालदास नीरज, देवेंद्र शर्मा 'इंद्र', श्रीराम सिंह 'शलभ', विद्यासागर वर्मा, जहीर कुरेशी, सोम ठाकुर, चन्द्रसेन विराट, दिनकर सोनवलेकर, महेश्वर तिवारी, रमेश रंजक, मयंक श्रीवास्तव, कुँवर बेचैन, योगेन्द्रदत्त शर्मा, राजेन्द्र गौतम, गुलाब सिंह, हरीश निगम आदि।

नवगीत के एक प्रमुख प्रणेता और प्रगतिशील कवि शंभुनाथ सिंह का नवगीत में विशेष स्थान है। मानव जीवन की आधुनिक विसंगतियों का प्रभावशाली चित्र अंकित करने में वे अनुपम है। नवगीत को हिंदी साहित्य की एक प्रमुख लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित करने में इन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'समय की शिला पर', 'रूप-रश्मि','माता भूमि', 'छायालोक','उदयाचल','दिवालोक', 'जहाँ दर्द निला है' आदि इनके महत्वपूर्ण गीत-संग्रह हैं। इन्होंने नवगीत को प्रतिष्ठित करने के लिए 'नवगीत दशक' -1,2,3 तथा नवगीत अर्द्धशती का संपादन कार्य किया है। इसमें नईम, सोम ठाकुर, देवेंद्र कुमार, देवेन्द्रकुमार, भगवान स्वरूप, उमाकांत मालवीय, शिवबहादुर सिंह भदौरिया, रामचंद्र चंद्रभूषण, ठाकुरप्रसाद सिंह और शंभुनाथ सिंह की कविताएँ संकलित है। इसमें संकलित गीतों की विषय-वस्तु एवं शैली में काफी बदलाव दृष्टिगोचर होता है -जैसे-'रेल के हम हैं डब्बे, खींचता कोई और। छोड़कर यह पटरियाँ, है कहाँ हमको ठौर। बंद सब रास्ते हैं। सारे चक्के जाम हैं।' -'नवगीत दशक' १/१३४ इस प्रकार नवगीत के विकास में डॉ.शंभुनाथ सिंह का बहुत भारी योगदान है।

ठाकुर प्रसाद सिंह तथा मधुसूदन साहा के नवगीतों में आधुनिक जीवन के तथा प्रकृति के विविध रूप-रंगों की अभिव्यक्ति हुई है। ठाकुर प्रसादसिंह का 'वंशी और मादल' बहुत ही महत्वपूर्ण गीत संग्रह है। ओम प्रभाकर घरेलू जीवन के दर्द के गीतकार हैं। यह दर्द प्रेम का है।

केदारनाथ सिंह प्रकृति से ही गीत-कवि हैं। उनकी प्रकृति लोक-जीवन के भीतर फैली हुई है, इसलिए उसके मूल संवेदना स्वर उसमें मुखर हैं। 'केदारनाथ सिंह के गीतो में लोक-जीवन के छंद, ताल, लय, बिंब प्रतीक के सफल प्रयोगों के कारण एक अद्भूत ताजगी, संवेदना की सहजता तथा आंतरिकता आ गई है।'9

डॉ.रामदरश मिश्र का काव्य क्षेत्र में प्रवेश गीतों के माध्यम से हुआ है। उनके प्रारंभिक गीतों में मानवीय सौन्दर्य तथा प्रेममुलक संवेदना मिलेती है। धीरे-धीरे उनके गीतों में रोमानी प्रभाव और रागात्मक उफान कम होता गया और अनुभवों का ठोसपन बढ़ता गया।

डॉ.रवीन्द्र भ्रमर ने नवगीत आंदोलन को सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि प्रदान करने के साथ-साथ व्यावहारिक योगदान भी दिया है। उनके गीत 'रवीन्द्र भ्रमर के गीत' एवं 'सोन मछरी मन बसी' शीर्षक संग्रहों के रूप में प्रकाशित है। इन्होंने अपने गीतों में प्रकृति, प्रेम, युग की विभिन्न स्थितियों एवं अनुभूतियों का चित्रण आकर्षक रूप में किया है। उनमें अनुभूति के साथ-साथ विचारों की भी अभिव्यक्ति हुई है।

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' से हिंदी जगत अच्छी तरह से परिचित है। जन समाज की दृष्टि में वह मानव प्रेम के अन्यतम गायक हैं। उन्होंने अपने गीतों और कविताओं में हमेशा मानवीय संवेदनाओं, प्रेम, और जीवन के सकारात्मक पहलुओं को प्रमुखता से गाया है।

नये गीतकारों में बालस्वरूप 'राही' का अपना अलग स्थान है। राही गीतों के माध्यम से आज के जीवन के विसंगतिमय यथार्थ और व्यक्ति के आहत अनुभवों के वैसे ही चित्र उभरते हैं जैसे नई कविता में उभरे हैं। इस प्रकार वे गीत के वर्ण्य क्षेत्र का विस्तार करने वाले तथा गीत का संवेदना में विचार करने वाले गीतकार हैं।

सभी नवगीतकारों के अपने-अपने व्यक्तित्व हैं, किन्तु इनकी एक सामान्य भूमि है जो इन्हें समग्र-भाव से अलग करती है। इसमें सब कुछ है-अनुभूति की सच्चाई, नवीन सौंदर्य-बोध, आकार लघुता, नवीन बिम्ब प्रतीक -उपमान योजना इनकी सामान्य विशिष्टता है। इन सभी गीतों में लोक- जीवन का रस है। इन्होंने लोक जीवन की वस्तु-चेतना को पकड़ा है उसकी संवेदना को ग्रहण किया है। इन सभी नवगीतकारों के व्यक्तित्व की विविधता के बारे में स्वयं रामदरश मिश्र लिखते है- "अनुभूति, जीवन- दृष्टि और अभिव्यक्ति के स्तर पर एक दूसरे से भिन्न है। यदि उनमें कोई समानता है तो यही कि वे भाव और रूप की प्रचलित लीकों से हटकर स्वयं के

अनुभव और सौंदर्य-बोध के अनुसार जीवन-सत्यों को ईमानदारी से व्यक्त करना चाहते हैं। किसी का भाव-बोध अधिक जटिल है तो किसी का अपेक्षाकृत सरल, किसी की संवेदना अधिक व्यक्तिगत है तो किसी की अधिक सामाजिक, किसी के संस्कार शहरी परिवेश के हैं तो किसी के देहाती।"10

निष्कर्ष :

हिंदी साहित्य में 'नवगीत' एक स्वतंत्र आधुनिक और प्रगतिशील साहित्य धारा के रूप में विकसित हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य जीवन के अनुभवों को गीतात्मक शैली में व्यक्त करना है। नवगीतकारों ने अपनी रचनाओं में जीवन के विभिन्न पहलुओं को उठाया है और उन्हें गीतात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। नवगीत ने आम लोगों को साहित्य के करीब लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सरल भाषा, भावपूर्ण अभिव्यक्ति, आम विषयों, संगीत, सामाजिक सरोकारों और प्रचार के माध्यम से पहले समसामयिक नए गीत की बात उठ खड़ी हुई, जो नई कविता में से उभर कर आयी। सभी दृष्टियों से नवगीत को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता की गौरवपूर्ण उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास: डॉ. सभापति मिश्रा, पृ.294
2. रामदरश मिश्र रचनावली (आलोचना) खण्ड-तेरह: संपा. रामदरश मिश्र, पृ.442
3. वही पृ.125
4. हिंदी साहित्य का आधुनिक काल: डॉ. श्री निवास शर्मा, पृ.276
5. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय खंड-आधुनिक काल सन्1857 से अब तक): डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त पृ.277
6. रामदरश मिश्र रचनावली(आलोचना) खण्ड-तेरह: संपा. रामदरश मिश्र, पृ.131
7. रामदरश मिश्र रचनावली (आलोचना खंड-तेरह): संपा. रामदरश मिश्र, पृ.442
8. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय खंड-आधुनिक काल सन्1857 से अब तक): डॉ. गणपति चंद्र गुप्त,पृ.247
9. रामदरश मिश्र रचनावली(आलोचना) खण्ड-तेरह: संपा. रामदरश मिश्र, पृ.448
10. रामदरश मिश्र रचनावली (आलोचना) खण्ड-तेरह : संपा.रामदरश मिश्र,पृ.445

*****

समाज को आईना दिखाते हिंदी फिल्मी गीत

डॉ. आरिफ शौकत महात
हिंदी विभाग प्रमुख,
विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर (अधिकारप्रदत्त स्वायत्त)
मो. 9860857089
ई. मेल- drmahatas@gmail.com

शोध सार:

फिल्मों में काम करना शुरूआती दौर में सामाजिक मूल्यों के खिलाफ माना जाता था। ऐसे दौर में कुछ कवि, गीतकार आए; जिन्होंने इस दरी को पाटने का काम किया। उन्होंने अपने लेखन एवं गीतों के द्वारा जनमानस तक यह संदेश पहुँचाया की फिल्मों का उसके गीतों का अपना सामाजिक राष्ट्रीय मूल्य है, जो साहित्य के तरह ही जनमानस को प्रभावित करने का काम करता है। साहिर के गीत वेश्या व्यवसाय से जुड़ी औरतों की दाहक वास्तविकता को पूरी सच्चाई के साथ सामने लाती है। साथ ही उनके गीत उन लोगों पर तंज कसते हैं जो समाज और देश का अपने आप को रहनुमा मानते हैं। जो अपने गौरव में खोए हुए हैं। जिन्होंने समाज की सच्चाइयों पर पर्दा डाले रखने की अपनी आदत बना ली है। साथ ही हिंदी फिल्मों में ऐसे बहुत से गीत भी लिखे गए है जहाँ स्त्री अपनी आवाज को बुलंद करती है। अन्याय के खिलाफ खड़ी होती है। अपने सपनों को पंख देकर उड़ान भरती है। हिंदी फिल्मी गीतों में सामाजिक, राजनीति, धार्मिक व्यवस्था से उपजे प्रश्नों को मार्मिकता से चित्रित किया गया है। सामाजिक कुरीति, धार्मिक आडंबर, सांप्रदायिकता, बेरोजगारी आदि पर किया गया फिल्मी गीतों का चित्रण इन परिस्थितियों की वास्तविकता को जीवंतता के साथ उजागर करता है। इसमें जितने भी गीतों की चर्चा की गई है वह ज्यादातर 60 के दशक के हैं। असल में ये आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इन गीतों ने सामाजिक आंदोलन का स्वरूप धारण कर लिया है और यह उतने ही लोगों को प्रभावित करते हैं जितना समाज जीवन को साहित्य प्रभावित करता है। हम तो इससे आगे जाकर यह भी कहेंगे की इन गीतों के माध्यम से समाज की कुरीतियों पर गीतकारों ने सहज एवं सरल ढंग से प्रकाश डाला है। और ऐसी भाषा का चयन किया है जो जन साधारण के समझ में आती है। फिल्मों को देखने वाला हर तपके, हर वर्ग, हर उम्र का समाज है। यह गीत उन पर प्रभाव डालते हैं और सामाजिक प्रबोधन का कार्य करते हैं। इन गीतों की खासियत यह है कि यह संगीत से सजे हुए हैं जो जनमानस के मस्तिष्क में तुरंत प्रभाव डालते हैं और हर एक ही जवाब पर जल्दी चढ़ जाते हैं।

बीज शब्द: समाज, आईना, गीत, स्त्री, युवा, आशावाद, सामाजिक विषमता आदि।

प्रस्तावना:

सिनेमा भारतीय समाज जीवन का अभिन्न अंग रहा है। जब से चलचित्र की शुरुआत हुई है तब से इसके प्रति हर वर्ग के लोगो मे आकर्षण रहा है। सिनेमा भलेही मनोरंजन का माध्यम है और यह काम वह बखूबी कर भी रहा है लेकिन सिनेमा सिर्फ़ समाजजीवन के मनोरंजन करने तक सीमित है ऐसा कहना एकांगी होगा। समाज का प्रतिबिंब सिनेमा मे दिखाई देता है और सिनेमा ने भी बडे प्रेमाने पर समाज के परतों को खोलने का प्रयास किया है। सामाजिक विषमता, विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिकता, अलगाववाद, भूमंडलीकरण, यांत्रिकीकरण, वैश्विकरण, देशभक्ती, अज्ञानता, पारिवारिक जीवन, रिश्ते-नातों की उलझाने आदी में व्याप्त समाज और इससे उत्पन्न समस्याओं को सिनेमा ने बखूबी दिखाने का प्रयास किया है। कहने का तात्पर्य बस इतना है कि सिनेमा भले ही मनोरंजन का साधन है लेकिन समाजीवन के विभिन्न पहलूओं पर वक्त-ब-वक्त इसने प्रकाश डालने का कार्य किया है।

भारतीय सिनेमा में कथानक के साथ गीतों का महत्व भी हमेशा रहा है। कुछ फिल्में तो सिर्फ़ गीत-संगीत के कारण ही लोकप्रिय बन गई है। भारत में 14 मार्च 1931 की पहिली बोलती फिल्म 'आलम आरा' से ही फिल्मों में गीत-संगीत का प्रवेश हो गया। इस फिल्म में सात गीत थे। वैसे मनुष्य जीवन में सदियों से गीतों का महत्व रहा है। हिंदी फिल्मों की पहचान उसके गीतों से ही है। फिल्म का कथानक भले ही लोक भूल जायें लेकिन उसके गीतों को हमेशा याद रखते हैं। वैसे फिल्मों मे गीतों की भूमिका सिर्फ मनोरंजन एवं आकर्षण तक सीमित नहीं है। गीतों के माध्यम से फिल्म की कहानी को आगे बढ़ाने के साथ उसे नई दिशा देने का काम भी किया गया है। फिल्मों में चरित्र उभारने के साथ उनके भावनात्मक पहलूओं को उजागर करने का काम गीतों के माध्यम से बखूबी किया गया।

भारत देश विविधताओं से भरा है। यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक भूमि भिन्न रही है। गीतों ने भारतीयता को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाई है। भारतीय लोक संस्कृति, तीज-त्यौहार, परंपरा, भक्ति, उत्सव, राष्ट्रीयता आदि के साथ सामाजिक मूल्यों को चित्रित करने का काम बड़ी सहजता, सरलता एवं सुंदरता से गीतों ने किया है। अतः कह सकते हैं हिंदी फिल्मी गीतों में 'सत्यम शिवम सुंदरम' का मिश्रण कमोबेश देखने मिलता है।

समाज को आईना दिखाते हिंदी फिल्मी गीत:

भारतीय समाज जीवन में जिस दौर में फिल्मों का आगाज एवं बोलबाला रहा उस दौर में लिखने वाले साहित्यकार कवि छायावाद से जुड़े थे। साथ ही कुछ राष्ट्रीय काव्यधारा से जुड़े थे। इनकी अपनी लोकप्रियता थी। इन्होंने फिल्मों में लेखन को फिर चाहे वो कथानक हो या गीत इसे दोयम समझा। यही हाल उर्दू साहित्य के कवियों का था। फिल्मों में काम करना उस दौर में सामाजिक मूल्यों के खिलाफ माना जाता था। ऐसे दौर में कुछ कवि, गीतकार आए; जिन्होंने इस दरी को पाटने का काम किया। उन्होंने अपने लेखन एवं गीतों के द्वारा जनमानस तक यह संदेश पहुँचाया की फिल्मों का उसके गीतों का अपना सामाजिक राष्ट्रीय मूल्य है, जो साहित्य के तरह ही जनमानस को प्रभावित करने का काम करता है। इसमें कवि प्रदीप, शैलेंद्र, कैफ़ी आज़मी, शकील बदायूंनी, साहिर लुधियानवी, नीरज, गुलजार, जावेद अख्तर जैसे कई गीतकार बने जिन्होंने अपनी फिल्मी गीतों में सामाजिकता को बनाए रखा। इनके लिखे गीत समाज की वास्तविकता को दर्शाते हुए मनोरंजन का साधन बने। यहाँ हम उन चंद फिल्मी गीतों पर प्रकाश डालेंगे जिन्होंने समाज को आईना दिखाने का काम बखूबी किया और उनके गीत सामाजिक आंदोलन का स्वरूप बने।

गोपाल दास सक्सेना नीरज के शब्दों में कहें तो- "गीत का जन्म अनायास ही नहीं हो जाता। कहीं गीत में दर्शन छिपे होते हैं, तो कहीं रोमांस, तो कहीं विद्रोह। गीत का मतलब लय है। नदी लय में बहती है। हवा लय में बहती है। हमारा दिल लय मे धड़कता है। हम जो बोलते हैं वह भी लय में, यह सिलसिला चलता रहेगा। गीत कभी मरने वाला नहीं है क्योंकि गीत जब मर जाएगा, केवल धुआँ रह जाएगा इन सिसकते आँसुओं का कारवा रह जाएगा।"[1]

स्त्री अस्मिता:

साहिर लुधियानवी के लिखे कई गीत महिलाओं के प्रति संवेदनाओं को गहराई के साथ उजागर करते हैं। साहिर अपने गीतों के माध्यम से महिलाओं की समस्याओं को उजागर करने के साथ महिलाओं की आवाज बनते हैं। 'साधना' फिल्म का साहिर का लिखा गीत **"औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने उसे बाज़ार दिया"** पुरुष समाज की दोहरी मानसिकता को उजागर करता है। यह गीत समाज में महिलाओं की स्थिति की वास्तविकता को दर्शाता है। जहाँ मर्द जो चाहे कर सकता है और औरत जिसने उसे दुनिया में लाया उसके हाथ की कठपुतली बनकर रह जाती है।

"मर्दों के लिए हर ज़ुल्म रवां, औरत के लिए रोना भी खता
मर्दों के लिए लाखों सेजें, औरत के लिए बस एक चिता
मर्दों के लिए हर ऐश का हक, औरत के लिए जीना भी सज़ा"[2]

सहिर का यह गीत जो उनकी नज्म औरत से है अक्सर महिला दिवस पर पढ़ी जाती है। यह गीत स्त्री विमर्श के बुनियादी तत्वों को समेटे हुए हैं। पुरुषों के इस संसार में औरत माँ है। देवी के समान है। लेकिन वास्तविकता में उनकी हैसियत दासी से भी गई गुजरी है। इसलिए गीतकार कहता है-

"औरत संसार की इस्मत है, फिर भी तकदीर की हेटी है
अवतार पयम्बर जनती है, फिर भी शैतान की बेटी है
ये वो बदकिस्मत माँ है जो, बेटों की सेज पे लेटी है
औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने उसे बाज़ार दिया
जब जी चाहा मसला कुचला, जब जी चाहा धुत्कार दिया" [3]

इस फिल्म में एक पढ़े-लिखे प्रोफ़ेसर का प्रेम वेश्या से दिखाया गया है। साथ ही यह फिल्म सामाजिक सुधार की बात करती है। इसी गीत में साहिर ने एक लाइन लिखी है जो वास्तविकता में एक सामाजिक मुहावरा बनती है।

संसार की हर इक बेशर्मी, ग़ुरबत की गोद में पलती है
चकलों ही में आ के रूकती है, फाकों से जो राह निकलती है।" [4]

यह पंक्तियाँ औरतों की बेबसी को बयाँ करती है साथ ही एक सामाजिक विधान करती है, जो हमारे समाज में पलता है। जैसा कि अक्सर कहा जाता है कि कोई माँ के पेट से बुरा बनकर नहीं आता हालात उसे बुरा बनाते हैं। यहाँ साहिर इस धारणा को बयान करते हुए कहते हैं गरीब की बस्ती से निकलने वाली औरत अक्सर चकले (व्येश्या घर) तक पहुँचती है।

प्यासा फिल्म में साहिर द्वारा लिखी गई नज़्म **"जिन्हें नाज़ है हिंद पर वह कहां है"** वेश्या व्यवसाय से जुड़ी औरतों की दाहक वास्तविकता को पूरी सच्चाई के साथ सामने लाती है। साथ ही यह गीत उन लोगों पर तंज कसता है जो समाज और देश का अपने आप को रहनुमा मानते हैं। जो अपने गौरव में खोए हुए हैं। जिन्होंने समाज की सच्चाइयों पर पर्दा डाले रखने की अपनी आदत बना ली है। वैसे देखा जाए तो इस गीत का हर एक लफ्ज़ आत्मा को झझकोरता है। वेश्या घर की औरत किसी की माँ, बहन, बेटी, बीवी है। यहाँ अपनी हवस को मिटाने वालों में अपने आप को पीर कहने वाले आते हैं। जवाँ मर्द, बूढ़े, अब्बामियाँ आते हैं, लेकिन किसी को भी इनके शरीर के अलावा कुछ नजर नहीं आता। इनकी बेबसी, परेशानियों से इनका कोई लेना देना नहीं रहता। इसी प्रसंग को दर्शाते हुए गीत के बोल-

"वो उजले दरीचों में पायल की छन-छन
थकी-हारी सांसों पे तबले की धन-धन
ये बेरूह कमरों में खांसी की ठन-ठन"[5]

इन पंक्तियों में वेश्या व्यवसाय से जुड़ी तमाम औरतों की वास्तविक समस्याओं को दर्शाया गया है। जहाँ सात माह पेट की औरत अपने पेट की आग बुझाने के लिए नाचती है और उसे नाचते देख लोग अपना मनोरंजन कर उस पर पैसे उड़ा रहे हैं। यह गीत हमारी मिटती मानवी संवेदना को बखूबी उजागर करता है। यहाँ पर काम करने वाली औरतें चाहती है की कोई उनकी मदद करें। उन्हें इस दलदल से निकाले। लेकिन हर कोई उनकी मदद उनके जिस्म के बदले ही करना चाहता है। इसीलिए फिल्म का नायक जो शायर है कहता है-

"ज़रा मुल्क के रहबरों को बुलाओ
ये कुचे, ये गलियां, ये मंजर दिखाओ
जिन्हें नाज़ है हिन्द पर उनको लाओ
जिन्हें नाज़ है हिन्द पर वो कहां हैं"[6]

यह गीत समाज में व्याप्त अंधकार को दर्शाता है और उस सच्चाई से भी हमें रूबरू कराता है जहाँ देश के रहनुमा दिखावे के लिए इसी अंधकार को उजालों की तरह पेश कर रहे हैं।

प्यासा फिल्म से जुड़े हर दृश्य समाज को आईना दिखाते हैं। फिर चाहे वह दोस्ती, रिश्तेदारी, प्रेम में होता छलावा हो, बेरोजगारी हो, वेश्या व्यवसाय से जुड़ी दाहक वास्तविकता हो। 'जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहाँ है' इस गाने की भी इस फिल्म में आने की रोचक कहानी है। "प्यासा के राइटर अबरार अल्वी स्क्रीनप्ले लिख रहे थे. उन्हें पर्दे पर एक स्ट्रगलर कवि की कहानी दिखानी थी, जो अपने काम के ज़रिए प्रसिद्धि पाना चाहता था। शुरुआती दिनों में अबरार और गुरुदत्त ने ये फ़ैसला किया था कि पूरी फ़िल्म ही कोठे पर बेस्ड होगी। अंत तक आते-आते पूरी फ़िल्म तो नहीं पर कोठे का एक मेजर हिस्सा मूवी में लिया गया। पर मुश्किल ये थी कि गुरुदत्त आज तक कभी कोठे पर गए नहीं थे। अबरार उन्हें कोठे पर ले गए। वहाँ जो नज़ारा उन्होंने देखा, वो देख कर वे दंग रह गए। एक क़रीब सात महीने की प्रेग्नेंट लड़की नाच रही है। लोग हँस रहे हैं। उन्हें पूरा आनंद आ रहा है। ये मंज़र उनसे देखा नहीं गया और वो उठकर चल दिए। उस लड़की के लिए उनके मन में समानुभूति जागी और नोटों की एक गड्डी वहीं उस लड़की के पास छोड़कर चले आए। इन सबको देखने के बाद दत्त ने कहा – "मुझे 'साहिर' के गाने के लिए चकले का सीन मिल गया"[7]

साहिर के लिखे यह दोनों गीत हमें सोचने के लिए मजबूर करते हैं की क्या हमने औरत को बराबरी का दर्जा दिया है। हम कहने के लिए उन्हें देवी, माँ कहते हैं लेकिन असल में क्या हमने उन्हें कभी देवी का मान दिया है। वैसे असल में औरत अपने आप को देवी का मान नहीं चाहती। वह चाहती है उन्हें भी इंसान समझा जाए। साहिर के यह गीत गहरी सोच को दर्शाते हुए समाज को आईना दिखाने से नहीं चूकते।

हिंदी फिल्मों में ऐसे बहुत से गीत भी लिखे गए है जहाँ स्त्री अपनी आवाज को बुलंद करती है। अन्याय के खिलाफ खड़ी होती है। अपने सपनों को पंख देकर उड़ान भरती है। जयदीय साहनी का फिल्म 'चक दे इंडिया' का गीत -

"बादल पे पाँव है, या छूटागाँव है
अब तो भई चल पडी अपनी में नाँव है"[8]

महिलाओं के अपनी ताकत को पहचान कर उड़ने की बात को करता है।

'पिंक' फिल्म में बेबाकी से स्त्री अपनी भावनाओं को उजागर करती है, जिसे इरशाद कामिल जी ने शब्द दिए है-

"मन का है कोना-कोना पिंक,
होना ही था में होना पिंक
मैंने तो आथा-पौना जीना नहीं
मेरी ज़मीन और आसमान
एंड माय वर्ल्ड गोज़ पिंक"[9]

'मर्दाना' फिल्म में स्त्री अपने उपर होते अन्याय का मुँह तोड़ जवाब देती है और एल्गार भरती है। कौसर मुनीर जी के शब्द ललकारते हैं-

"आज से अब से आन मेरी मैं
तुमको ना हुने दूँगी
जान को चाहे छलनी कर दो
मान को ना छूने दूँगी
अब छेड़ के देखो तुम मुझको
मैं तुम को नहीं छोडूँगी।"[10]

कह सकते हैं कि हिंदी फिल्मी गितों में स्त्री के हर पहलुओं को उजागर किया गया है। इसे माता, बहन, प्रेमिका, पत्नी आदि प्रेम भरे रिश्तों को दिखाने के साथ उनकी समस्याओं को, समाज में उनके स्थान को और उनकी आकांक्षाओं को वास्तविक रूप में दर्ज किया गया।

बेरोजगारी:

हिंदी फिल्मी गीतों में सामाजिक, राजनीति, धार्मिक व्यवस्था से उपजे प्रश्नों को मार्मिकता से चित्रित किया गया है। सामाजिक कुरीति, धार्मिक आडंबर, सांप्रदायिकता, बेरोजगारी आदि पर किया गया फिल्मी गीतों का चित्रण इन परिस्थितियों की वास्तविकता को जीवंतता के साथ उजागर करता है। 1954 में बनी 'नौकरी' फिल्म का शैलेंद्र द्वारा लिखा यह गाना उस दौर के नहीं इस दौर के युवाओं की गुहार है ऐसा कहे तो गलत ना होगा।

"एक छोटी-सी नौकरी का तलबगार हूँ मैं
तुमसे कुछ और जो माँगूँ तो गुनहगार हूँ मैं
एक छोटी-सी नौकरी का तलबगार हूँ मैं
एक-सौ-आँठवीं अर्ज़ी मेरे अरमानों की
कर लो मंज़ूर कि बेकारी से बेज़ार हूँ मैं
मैं कलेक्टर न बनूँ और न बनूँगा अफ़सर
अपना बाबू ही बना लो मुझे बेकार हूँ मैं
मैंने कुछ घास नहीं काटी, किया BA पास
हो समझदार, समझ लो कि समझदार हूँ मै
खेल सब खेले हैं, फ़ुटबाल में कप्तान भी था
फिर से मैदान में आने को भी तैय्यार हूँ मैं

प्यारी माँ, छोटी बहन ज़िंदगी है रोग जिन्हें
लोक-परलोक मेरे सर पे हैं, मँझधार हूँ मैं
एक छोटी-सी नौकरी का तलबगार हूँ मैं"[11]

क्या यह गीत आज भी प्रासंगिक नहीं है। आजादी के 75 साल में भी बेरोजगारी की समस्या हल नहीं हुई बल्कि वह और विकराल रूप धारण कर चुकी है।

गीतों में यथार्थ की भूमिका को लेकर गुलजार कहते हैं- "मेरे गीत न गुस्से में हैं न ही कसैले, क्योंकि मैं कड़वाहट से नहीं भरा हूँ। मैं आशा से भरा हूँ और एक कलाकार को ऐसा ही होना चाहिए, सिर्फ अपने भविष्य के लिए नहीं, न ही अपने बच्चों के भविष्य के लिए, बल्कि पूरी दुनिया के लिए।"[12]

गुलजार का लिखा यह गीत अपने समय के युवाओं की समाज की वास्तविकता को बयाँ करने का काम करता है।

"हाल चाल ठीक ठाक है, सब कुछ ठीक ठाक है
B.A.किया है, B.A. किया, लगता है वो भी अयंवयं किया
काम नहीं है वरना यहाँ आप की दुआ इस सब ठीक ठाक है
आब-ओ-हवा देश की बहुत साफ़ है
कायदा है, कानून है, इनसाफ़ है
अल्लाह मियाँ जाने कोई जिये या मरे
आदमी को खून वून सब माफ़ है
और क्या कहूँ, छोटी मोटी चोरी
रिश्वत खोरी देती है अपना गुज़ारा यहाँ
आप की दुआ से बाकी ठीक ठाक है"[13]

वैसे 'मेरे अपने' पूरी फिल्म हक़ीक़त में समाज और राजनीतिक व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा खोल के रख देती है। युवाओं की बढ़ती बेरोजगारी, राजनीतिक कड़वाहट आदि को बड़े ही मार्मिकता से फिल्म में दिखाया गया है। वर्तमान समाज की और युवाओं की वास्तविक तस्वीर गुलजार के ऊपर के लिखे गीत के माध्यम से स्पष्ट हो जाती है।

सामाजिक असमानता:

सामाजिक असमानता के चलते पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ भी गीतकार अपने वाणी को तेज करने से नहीं चुके। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की नज्म

"हम मेहनतकश इस दुनिया से जब अपना हिस्सा मांगेंगे
एक गांव नहीं, एक खेत नहीं हम सारी दुनिया मांगेंगे।"[14]

जो बाद में दिलीप कुमार अभिनीत मजदूर फिल्म में फिल्माई गई है। यहाँ मजदूर उस व्यवस्था को बदलने के बात करता हैं जिसकी नींव शोषण है। यह गीत न्याय की बात करता है। समानता की बात करता है। मेहनत पर सबके बराबर अधिकार की बात करता है। यह गीत साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित है। भारत में यह यह नज्म अक्सर मजदूर दिवस पर गई जाती है।

फिल्मी गीतकारों ने व्यवस्था पर तंज कसने के साथ आशावादी स्वर कभी नहीं छोड़ा। साहिर द्वारा लिखा गया 1959 में बनी 'दीदी' फिल्म का गीत आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय था। इस गीत में एक अध्यापक अपने देश के गौरव से छात्रों को अवगत करा चुका है। लेकिन वास्तविक रूप में जो पढ़ाया गया है उससे विपरीत परिस्थितियाँ हैं। देश में सामाजिक, राजनीतिक, सांप्रदायिक बिगड़े हुए माहौल को देखकर बच्चे अध्यापक से सवाल पूछते हैं। पूछे गए सवालों के जवाब में उन्हें सकारात्मक एवं आशावाद के रास्ते पर ले जाने का कार्य इस गीत के माध्यम से किया गया है। यहाँ बच्चे अध्यापक से कहते हैं-

"हमने सुना था एक है भारत सब मुल्कों से नेक है भारत
लेकिन जब नजदीक से देखा सोच समझ कर ठीक से देखा
हमने नक्शे और ही पाए बदले हुए सब तौर ही पाए

एक से एक की बात जुदा है, धर्म जुदा है जात जुदा है
आप ने जो कुछ हम को पढ़ाया, वो तो कहीं भी नज़र न आया।"[15]

इस पर अध्यापक का सकारात्मक जवाब कि मैं तुम्हें कुछ झूठ नहीं पढ़ाया। भाषा अलग होने का मतलब यह नहीं कि लोगों में फूट है। एक ही डाली पर अगर फूल और पात अलग-अलग हो सकते हैं तो अलग-अलग धर्म क्यों नहीं हो सकते। मनुष्य के लिए इसमें कोई बुराई नहीं है। फिर बच्चों द्वारा धर्म को लेकर फैलने वाले आतंक का जिक्र होता है, तो अध्यापक कहते हैं कि यह विदेशियों की नीति है फूट डालो और राज करो अब देश स्वतंत्र हुआ है। अब परिस्थिति में बदलाव आएगा। फिर बच्चों द्वारा जो सवाल पूछा जाता है। वह सवाल आज भी जैसे की तैसे बना हुआ है-

कुछ इन्सान ब्राह्मण क्यों हैं, कुछ इंसान हरिजन क्यों हैं?
एक की इतनी इज़्ज़त क्यों है, एक की इतनी ज़िल्लत क्यों है?[16]

इस पर अध्यापक कहते हैं कुछ लोगों ने देश को अपनी जागीर समझ रखी है। धन के बदौलत वह मन चाहा व्यवहार करते हैं। जो इंसानों का बंटवारा कर दहशत मचाते हैं वह धर्म के वाहक नहीं ज़ाहिल हैं। नफरत की जो शिक्षा देता है वह धर्म नहीं लानत है।

फिर आगे बच्चों के द्वारा सवाल और अध्यापक द्वारा दिया गया जवाब देश में मौजूद समस्त बुराई, कड़वाहट के बाद आशावाद को दर्शाता है। जो देश को बेहतर रास्ते पर ले जाएगा। बच्चे ही देश का भविष्य है। बच्चों को वास्तविक परिस्थितियों से अवगत कराकर सही मार्ग दिखाने का काम यह गीत बखूबी करता है।

"अब तो देश में आज़ादी है अब क्यों जनता फरियादी है,
कब जाएगा दौर पुराना, कब आएगा नया ज़माना?
सदियों की भूख और बेकारी क्या इक दिन में जाएगी,
इस उजड़े गुलशन पर रंगत आते आते आएगी,
ये जो नये मनसूबे हैं ये जो नई तामीरे हैं
आने वाली दौर की कुछ धुंधली -धुंधली तस्वीरें हैं,
तुम ही रंग भरोगे इनमें तुम ही इन्हें चमकाओगे
नवयुग आप नहीं आएगा नवयुग को तुम लाओगे।"[17]

सांप्रदायिक सद्भाव:

सांप्रदायिकता, धर्मांधता हमारे देश एवं समाज को मिला हुआ अभिशाप है। न जाने इसमें कितनी पीढ़ियां बर्बाद हुई है और हो रही है। इंसान अपना असल धर्म इंसानियत भूल चुका है। साहिर का यह गीत इंसान को इंसानियत का पाठ पढ़ाता है। जहाँ वह कहता है-

"तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा
इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।"[18]

धर्म के खेमों में और जात-पात की खेमों में बटा हुआ इंसान भूल चुका है कि ईश्वर ने उसे इंसान के तौर पर पैदा किया है। कुदरत की बनाई हुई धरती को इसने बाँटा है। इंसान की इसी भूल को बदलने की बात इस गीत में बाप अपने बेटे से करता है।

"नफरत जो सिखाए वो धर्म तेरा नहीं है
इन्सां को जो रौंदे वो कदम तेरा नहीं है'
कुरआन न हो जिसमें वो मंदिर नहीं तेरा
गीता न हो जिसमें वो हरम तेरा नहीं है
तू अम्न का और सुलह का अरमान बनेगा"[19]

साथ ही वह अपने बच्चे को सचेत करता है कि समाज को बांटने वाले इन राजनेताओं से, धर्म के ठेकेदारों से ऊंचे ऊंचे महल वालों से तुम्हें लड़ना है। यह वही लोग हैं जो अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए आम इंसानों को धर्म, जात-पात में उलझाए

रखते। असल में ये अपने आप को धर्म और समाज के ठेकेदार कहने वाले कातिल हैं, समाज के इंसानियत के। इस गीत के माध्यम से यही संदेश गीतकार समाज को देना चाहता है और ऐसे फरेबियों, पाखंडियों से सचेत रहने की बात करता है। यह गीत आज भी प्रासंगिक है। आज भी देश में सांप्रदायिक कट्टरता चरम सीमा पर है और धर्म और राजनीति की ठेकेदार इसे हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर रहे हैं।

इसी बात को जावेद अख्तर और बेहतर रूप से समझाते हैं। कुदरत ने सबको सब पर समान अधिकार दिया। लेकिन इंसान ने धर्म के नाम पर समाज को बाँटा। धरती को बाँट सरहद बना दी। अपने आप को खेमों में बंद करके रखा। ऐसा करके आखिर इंसान ने हासिल क्या किया इस पर गीतकार प्रश्न चिन्ह लगता है।

"पंछी नदिया पवन के झोंके
कोई सरहद ना इन्हें रोके
सरहदें इन्सानों के लिए हैं
सोचो तुमने और मैने क्या पाया इन्सां हो के"[2]

संक्षेप में अगर चर्चा की जाए तो भले ही फिल्में मनोरंजन का साधन है लेकिन यह कहीं से भी समाज में बदलाव लाने में पीछे नहीं है। ऊपर जितने भी गीतों की चर्चा की गई है वह ज्यादातर 60 के दशक के हैं। असल में ये आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इन गीतों ने सामाजिक आंदोलन का स्वरूप धारण कर लिया है और यह उतने ही लोगों को प्रभावित करते हैं जितना समाज जीवन को साहित्य प्रभावित करता है। हम तो इससे आगे जाकर यह भी कहेंगे की इन गीतों के माध्यम से समाज की कुरीतियों पर गीतकारों ने सहज एवं सरल ढंग से प्रकाश डाला है। और ऐसी भाषा का चयन किया है जो जन साधारण के समझ में आती है। फिल्मों को देखने वाला हर तपके, हर वर्ग, हर उम्र का समाज है। यह गीत उन पर प्रभाव डालते हैं और सामाजिक प्रबोधन का कार्य करते हैं। इन गीतों की खासियत यह है कि यह संगीत से सजे हुए हैं जो जनमानस के मस्तिष्क में तुरंत प्रभाव डालते हैं और हर एक ही जवाब पर जल्दी चढ़ जाते हैं।

गुलजार साहब के शब्दों में कहे तो-

"एक मूड, एक कैफियत, गीत का चेहरा होता है। कुछ सही से से लफ़्ज़ जड़ दो, मौजू से धुन की लकीरें खींच दो, तो नग्मा साँस लेने लगता है। ज़िन्दा हो जाता है। बस, इतनी सी जान होती है एक गाने की, एक लम्हे के जितनी...हाँ। कुछ लम्हे बरसों ज़िन्दा रहते हैं। गीत बूढ़े नहीं होते, उनके चेहरों पर झुर्रियाँ नहीं गिरतीं, वो पलते रहते हैं, चलते रहते हैं... सुनने वालों की उमर बदल जाती है, तो कहते हैं-हाँ। वो उस पहाड़ का टीला, जब बादलों से ढक जाता था, तो एक आवाज़ सुनाई दिया करती थी।"[21]

अतः कह सकते हैं यह गीत समाज को आईना दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ते और साथ ही एक नया आशावाद देते हैं, बिगड़े हुए हालात से लड़ने का, उसे सुधारने का। जैसा कि दीदी फिल्म में गीतकार कहता है की बच्चों इस समाज को तुम ही संभालोगे। नवयुग का निर्माण तुम ही करोगे। तुम्हारे ही कंधों पर उज्जवल भविष्य की जिम्मेदारी है और तुम ही नवयुग लाओगे।

"तुम ही रंग भरोगे इनमें तुम ही इन्हें चमकाओगे
नवयुग आप नहीं आएगा नवयुग को तुम लाओगे।"

संदर्भ;

1. मधुमति पत्रिका- गीत विशेषांक जनवरी फरवरी पर पृष्ठ क्रमांक 23
2. 'साधना' फिल्म से उदधृत
3. वही
4. वही
5. प्यासा फिल्म से उदधृत
6. वही
7. गूगल

8. चक दे इंडिया फिल्म से उदधृत
9. पिंक फिल्म से उदधृत
10. मर्दानी फिल्म से उदधृत
11. नौकरी फिल्म से उदधृत
12. 5 नवम्बर, 2017 को प्रकाशित- कौसर मुनीर के एक इंटरव्यू में गुलज़ार ने कही थी
13. मेरे अपने फिल्म से उदधृत
14. मजदूर फिल्म से उदधृत
15. दीदी फिल्म से उदधृत
16. वही
17. वही
18. धूल का फूल फिल्म से उदधृत
19. वही
20. रिफ्फुजी फिल्म से उदधृत
21. मिश्र यतीन्द्र, गुलज़ार साब, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ क्रमांक 57

*****

दलितों के पक्ष में अदम गोंडवी की बुलंद ग़ज़ल

प्रो.डॉ.बलवंत जेऊरकर
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली।

शोध आलेख का सारांश-

हिंदी के क्षेत्र में दुष्यन्त कुमार के बाद अग्रणी शायर के रूप में अदम गोंडवी का नाम लिया जाता है। अदम गोंडवी की ग़ज़ल दुष्यन्त कुमार की धरोहर को निष्ठा से आगे बढ़ाती हुई दिखाई देती है। भ्रष्ट राजनीति पर करारा व्यंग कसनेवाली उनकी ग़ज़ल में भारत के दीन,दलित,वंचित लोगों के अपार पीड़ा को वाणी मिली हैI दलितों दलितों के प्रति उनकी अशेष संवेदना से दलितजन और दलित कविता का विद्रोह तीव्रता से अभिव्यक्त हुआ है।

बीज शब्द-

कोरी, पासी, शम्बूक, वेद, मानवता, विधायक, रामराज, अन्त्यज, भुखमरी, छाया गर्हित, धर्म, षडयंत्र, देवता, विज्ञान।

प्रस्तावना-

'काजू भुने हैं प्लेट में,व्हिस्की गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में'[1]

पहला 'दुष्यन्त अलंकरण' सम्मान प्राप्त करनेवाले शायर अदम गोंडवी का यह शेर है। बेहद नुकीला और भ्रष्टाचार पर सीधा आघात करनेवाला यह शेर अदम गोंडवी की पहचान बन गया है। उनके 'समय से मुठभेड़' और 'धरती की सतह पर' दो संकलन प्रकाशित हैं,जिनमें हिंदी ग़ज़ल का अनिवार्य इतिहास बनी उनकी ग़ज़लें और नज्में हैंI दलितों का बहुआयामी दुखद जीवन ग़ज़लों में अभिव्यक्त हुआ है। यहाँ अदम गोंडवी की ग़ज़लों में अभियक्त दलित चेतना को उदाहरणों से विशद किया गया है।

शोध आलेख का विश्लेषण-

आलोचक विजय बहादुर सिंह के अनुसार उनकी ग़ज़लों से 'हमें इस शायर के निदेशक व्यक्तित्व का अंदाजा होता है। जैसे कोई अपने जमाने को साहित्यिक निर्देश दे रहा है। आत्मविश्वास की दृढ़ता,अभियक्ति की अनौपचारिकताएँ और घरेलूपन जिसमें बरबूरी हो और जो बिना लाग लपेट और भय के अपनी साफगोई और ख़ूबसूरत हो। [2] उपरोक्त शेर में अदम की दोटूक बात और निडरता स्पष्ट दिखाई देती है। यही उनकी ग़ज़लों का स्वभाव हैI यही गुण है और स्थायी भाव भी।

'दुष्यन्त की कविता ठीक आपातकाल के आस-पास ग़ज़ल में ढलकर लोगों के कसकते और मौन चीत्कार करते हुए होतो पर लोकगुहार की पुकार बन गई थी। अदम गोंडवी की शायरी में जनता की गुर्राहट और आक्रामक मुद्रा का सौन्दर्य मिसरे-मिसरे में मौजूद है। [3]

अदम की ग़ज़लों में दलितों की पीड़ा मुखर होने का कारण उनके एक शेर से व्यक्त होता है-

'जिससे बुद्ध के किरदार की महकार आती है
उस जनपद की पीड़ा एक शायर की जबानी है'[4]

विख्यात आलोचक मैनेजर पाण्डेय के अनुसार 'अदम गोंडवी की कविता आज की हिंदी कविता की दुनिया में एक अचरज की तरह है। आज की हिन्दी कविता के रूप,रंग,दिशा,दृष्टि,बनावट,सजावट और पहुँच की इच्छा से एकदम अलग और बेपरवाहI वह कविता गाँव के गरीबों,दलितों,असहाय मजदूरों,किसानों और सताई जानेवाली औरतों की कविता है।'[5] अर्थात् मानवतारहित समय में अदम मानवता की कामना की ग़ज़ल से अपने कालखंड का इतिहास लिखना चाहते हैं-

'मानवता का दर्द लिखेंगे, माटी की बू-बास लिखेंगे
हम अपने इस कालखंड का एक नया इतिहास लिखेंगे'[6]

इसी ग़ज़ल के अगले शेर में वे दलितों के उत्पीडन और उपेक्षा लिखने का निर्णय बताते हैं-

'सदियों से जो रहे उपेक्षित,श्रीमंतों के हरम सजाकर
उन दलितों की करूँ कहानी मुद्रा से रैदास लिखेंगे'[7]

यहाँ मुद्रा से तात्पर्य लेखक मुद्राराक्षस है।

अदम गोंडवी ठेठ किसान थेI उनके एक हाथ में कलम है और एक हाथ में कुदाल वे सच्चे अर्थ में जमीन से जुड़े हुए रचनाकार थेI इसीलिये वे 'माटी की बू-बास' लिखने की बात कहते हैं-

'एक हाथ में कलम है,और एक हाथ में कुदाल
वाबस्ता है जमीन से सपने अदीब के' [8]

अदम अपने समय के लोकप्रिय शायर थे। साधारण लोगों के जीवन गूँज उनकी रचनाओं में होने के कारण उनकी रचनाएं लोगों को कंठस्थ थी और आज भी है।

अदम की ग़ज़लों में दलित चेतना-

अदम के बारे में कहा गया है, 'दलितों,वंचितों और आम जनता का दर्द ही उनके रचनाकर्म की आत्मा है।'[9] सदियों से उत्पीडन का दर्द सहते दलितों के अस्तित्व की शिनाख्त अदम की ग़ज़लों में मिलती है-

'वेद में जिनका हवाला हाशिए पर भी नहीं
वे अभागे आस्था- विश्वास लेकर क्या करें?
लोकरंजन हो जहाँ शम्बूक वध की आड़ में
उस व्यवस्था का घृणित इतिहास लेकर क्या करें?' [10]

एक ही ग़ज़ल के उपरोक्त दो शेरों में अदम का प्रचंड विद्रोही स्वर प्रकट होता है। दलित अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान के लिए प्रश्नाकुल हैं। सदियों से अँधेरे में जिए ,मनुष्यता की सभी श्रेणियों से ख़ारिज दलितों को किसी आस्था-विश्वास से कोई लेना-देना नहीं है। सवर्ण लोग जिन वेदों का हवाला देते हैं वहां मनुष्य होकर भी दलितों का नामोनिशान नहीं है,हाशिए पर भी नहीं। शम्बूक वध जहाँ लोकरंजन माना जाता हो ऐसी असमान, अन्यायी व्यवस्था का घृणित इतिहास दलितों के लिए स्वीकार्य नहीं है। इन शेरों में अदम ने दलितों के अस्तित्व के बुनियादी सवाल उठाए हैं। झूठी आस्था,खोकले विश्वास और घृणा पर आधारित इतिहास को पूरी तरह से नाकारा गया है। ये दो शेर असल में अदम द्वारा की गई कड़ी आलोचना हैI इसके बारे में मैनेजर पाण्डेय का कहना है 'उनकी आलोचनात्मक चेतना हवाई नहीं है,अनुभवजन्य और इतिहाससम्मत है,भारतीय संस्कृति और धर्म के भ्रमों की असलियत सामने लाते हुए वे उत्पीडित जनता की आवाज बनकर (उपरोक्त दो शेर) कहते हैं। [11]

अदम उन सारे उपकरणों को धता बताते हैं,जिनकी सहायता से दलितजन को अमानवीय जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया। अपने गुस्सैल स्वर में वे धर्म और धर्मग्रंथों पर हमला बोल देते हैं-

'क्या किसी सद्ग्रंथ में आया कि शोषण पाप है
इसलिए कहता हूँ की मजहब ढोंग है अभिशाप है।'[12]

धर्म और धर्मग्रंथों का भय दिखलाकर दलितों को बार-बार अज्ञान की खाई में धकेला गया। इस जन्म के लिए पिछले जन्मों के पापों का कारण बताया गया। इसप्रकार षडयंत्र से उन्हें गाँव से ही नहीं वरन् मनुष्य होने के स्तर से ही निष्कासित किया गया। ऐसे धर्मग्रंथों पर आधारित धर्म के बारे में अदम लिखते हैं

'यह तुम्हारा धर्म जन्मांतर की कल्पना
भाग्य का षडयंत्र कल्पित देवता की अर्चना
आज पर्दा उठ रहा ताम तोम से अज्ञान से
वह तुम्हारा ईश भी संत्रास है विज्ञान से'[13]

दलितजनों को जिस धर्म के भुलावे का छद्म किया गया उसे अदम निरी कल्पना मानते हैं। केवल धर्म ही नहीं तो जिसकी अर्चना की जा रही है वह देवता भी कल्पित है। दलितजनों को नरक सामान जीवन जीने के लिए भाग्य का षडयंत्र रचा गया है। आज विज्ञान युग में सत्य को सिद्ध करने के सामने तम तोम ,पाखंड से पर्दा उठ चुका है। अदम की वाणी पूरी गलत व्यवस्था पर तप्त हथौड़े के सामान आघात करती है।

मैनेजर पाण्डेय अदम की ग़ज़लों की महत्ता पर लिखते हैं-'उन्होंने एक ओर भारत के शोषित-पीड़ित जन से तादात्म्य स्थापित किया है तो दूसरी ओर दलित समुदाय का पक्षधर बनकर उनकी भावना और सोच के कविता लिखी है.....इसलिए जब दलितजन के बारे में अदम की कविता की बात करना जरूरी हैI इस देश में गरीब दलित अब भी भारतीय लोकतंत्र के सच्चे और पूरे नागरिक नहीं हैं,न संस्कृति में, न समाज में। आज भी वे रोज-रोज जघन्य ज्यादतियों और अपराधों के शिकार हो रहे हैंI इस स्थिति को ध्यान में रखकर अदम उनकी ओर से सवाल करते हैं-[14]

'अन्त्यज कोरी-पासी हैं हम
क्यूँकर भारतवासी हैं हम

अपने को क्यों वेदों में खोजे
क्या दर्पण विश्वासी हैं हम
छाया भी छूना गर्हित है
ऐसे सत्यानासी हैं हम
धर्म के ठेकेदार बताए
किस ग्रह के अधिवासी हैं हम' [15]

'सत्यानासी हैं हम' शीर्षक की यह पूरी ग़ज़ल है। चार शेरों की इस ग़ज़ल में अदम का विद्रोही स्वाभाव और तीखे तेवर रेखांकित होते हैं। पहले शेर में करारे व्यंग्य शैली में अदम पूछते हैं की अगर हम अछूत हैं और कोरी,पासी दलित जातियों में पैदा हुए हैं तो हम क्यों कर भारतवासी हैं? अर्थात् सवर्ण लोग तो इन्हें मनुष्य ही नहीं मानते तो भारतवासी मानना तो दूर की बात है। आशुतोष कुमार के अनुसार, 'यह सवाल ऊपर से जितना लगता है उससे अधिक बेधक जान पड़ेगा,अगर हम याद करें आजादी की पहली लड़ाई में,1857 में कोरियों-पासियों के बगावत की क्या भूमिका थी,तब समझ में आएगा कि भारतवासी कहलाने का हक 'हम कोरियों पासियों' के पास है'। [16] दूसरे शेर में दलितजन आत्मविश्वास से अपने बलबूते पर खड़े दिखाई देते हैं कि हम दर्पण को सच माननेवाले नहीं हैं तो क्यों अपने आप को वेदों में तलाश करें? तीसरे शेर में वही दुखद असहनीय पीड़ा उठती है कि हमारी छाया से सवर्णों को आक्षेप क्यों हैं? हमें तो सत्यानासी माना गया है। अंतिम शेर में अदम पूछते हैं कि अगर हम भारतवासी नहीं हैं तो धर्म के ठेकेदार बताए कि हम किस ग्रह के नागरिक हैं ?

प्रेमिका से बातें करनेवाली ग़ज़ल के पारंपरिक फॉर्म में दलितों की बात को जलती मशाल की तरह उठाना और वह भी छोटी बहर की चुनौती देनेवाली संरचना के अंतर्गत इतनी बड़ी बात को पूछने का हौसला दिखाना इसमें अदम गोंडवी के साहस और काव्य कौशल की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। कवि मंगलेश डबराल ने माना था कि 'अदम गोंडवी दूसरे दुष्यन्त नहीं बल्कि नागार्जुन की तरह आम-आदमी से सरोकार रखनेवाले रचनाकार थेI '[17]

यही पर अदम की नज़्म 'चमारों की गली' की चर्चा करना लाज़मी होगा। प्रस्तुत लम्बी नज़्म में एक दुखभरी कहानी है। अदम ने नज़्म में किस्सागोई का अद्भुत कमाल दिखाया है। हरखू की बेटी कृष्णा से गाँव का सरपंच बलात्कार करता हैI उसी गाँव में रहनेवाला दलित युवक मंगल प्रतिशोध की बात करता है। इसपर उसको बेरहमी से पीटा जाता हैI कृष्णा रोटी के लिए वेश्या बन जाती है। पूरी नज़्म में अदम दलितों की दुर्दशा का चित्र उकेरते हैं दलितजनों के अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की बात सुनकर सरपंच का गुस्सा इस प्रकार प्रकट होता है-

'कहती है सरकार की आपस में मिलजुल कर रहो
सूअर के बच्चों को अब कोरी नहीं हरिजन कहो '[18]

मंगल पर चोरी का इल्जाम मढ़ा जाता है और उसकी झोंपडी में आग लगाई जाती है। कविता का अंत बहुतही दर्दनाक होता है-

'गाँव जिसमें पांचाली उघारी जा रही
या अहिंसा की जहां पर नथ उतारी जा रही
हैं तरसते कितने ही मंगल लंगोटी के लिए
बेचती है जिस्म कृष्णा आज रोटी के लिए'[19]

स्वतंत्रता के बाद आज भी दलितजनों की यथास्थिति दर्शानेवाली 'दलितोत्पीडन की इससे मारक कविता शायद ही मिले'[20]

मैनेजर पाण्डेय 'चमारों की गली' नज़्म के बारे में कहते हैं- 'दलितों की बेबसी,यातना,उत्पीडन और दमन का साक्षात्कार करनेवाली नज़्म है। दलितों के दमन की जो पूरी प्रक्रिया है उसमे जातिगत वर्चस्व के साथ सत्ता का सहयोग किस प्रकार होता है,यह देखना हो तो इस कविता को पढ़िए,इस कविता को पढ़ते हुए आप महसूस करेंगे कवि के मन में दलितों की यातना के प्रति जो विक्षोभ है और उच्च जातियों के अहंकार के विरुध्द जो घृणा है उनकी एकता से कविता में प्रभावोत्पादकता पैदा हुई है। कथा,चित्रमयता और रवानी के योग से कविता जानदार बनी है और असरदार भी। '[21]

निष्कर्ष –

स्पष्ट है कि अदम गोंडवी की ग़ज़ल और नज़्में धधकते आग की लपटें हैं। वे कबीरी परंपरा के कवि हैं जो सीधी सरल भाषा में सारे पाखंड के मुखौटे तार-तार कर देते हैं। अपार करुणा के कारण ही अदम गोंडवी की ग़ज़लों में दलितों की त्रासदी अभिव्यक्त होती दिखाई देती है। दलितों के दुःख की यह कैफियत हिंदी दलित कविता और हिंदी ग़ज़ल के सरोकारों को अधिक विस्तृत करती हुई दिखाई देती है।

सन्दर्भ –

1. समय से मुठभेड़ -पृ 70
2. वही-पृ 18
3. वही-पृ 8
4. वही-पृ 42
5. जनकवि अदम गोंडवी- संपा. डॉ. जय नारायण पृ 9
6. धरती की सतह पर-पृ-11
7. वही- पृ 11
8. समय से मुठभेड़ -पृ 65
9. वही
10. वही- पृ 45
11. जनकवि अदम गोंडवी- संपा. डॉ. जय नारायण पृI 11
12. समय से मुठभेड़ -पृ 104
13. समय से मुठभेड़ -पृ 106
14. जनकवि अदम गोंडवी- संपाI डॉ. जय नारायण पृ 12-13
15. समय से मुठभेड़ -पृ 39
16. जनकवि अदम गोंडवी- संपाI डॉ. जय नारायण पृ 45
17. धरती की सतह पर-पृ फ्लैप से
18. समय से मुठभेड़ -पृ 100
19. वही-पृ 103
20. धरती की सतह पर-पृ फ्लैप से
21. जनकवि अदम गोंडवी- संपाI डॉI जय नारायण पृ. 13

*****

हिंदी गीत एवं ग़ज़ल में प्रेम, विरह और संवेदना की अभिव्यक्ति

डॉ. प्रविण विलास चौगले
सहायक प्राध्यापक एवं विभाग
प्रमुख, हिंदी विभाग,
कमला कॉलेज, कोल्हापुर (स्वायत्त)
मोबाइल नंबर - 9764470531
ई-मेल chougale.pravin246@gmail.com

सारांश :

हिंदी साहित्य की काव्य-परंपरा में गीत और ग़ज़ल को मानवीय अनुभूतियों की सबसे आत्मीय और प्रभावशाली अभिव्यक्ति का माध्यम माना गया है। प्रेम, विरह और संवेदना इन दोनों विधाओं के मूल भाव हैं, जिनके माध्यम से मानव-मन की गहराइयों को स्वर मिला है। समय, समाज और जीवन-स्थितियों के बदलने के साथ इन भावों की अभिव्यक्ति में परिवर्तन अवश्य आया है किंतु इनकी मानवीय प्रासंगिकता सदैव बनी रही है। प्रस्तुत शोधपत्र में हिंदी गीत एवं ग़ज़ल में प्रेम की अनुभूति, विरह की पीड़ा और संवेदनात्मक चेतना का ऐतिहासिक, सामाजिक तथा तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि गीत अपनी लयात्मकता और भाव-विस्तार के माध्यम से हृदय को स्पर्श करता है जबकि ग़ज़ल संक्षिप्त शब्दों में गहन अनुभूति को व्यंजित करती है। राष्ट्रीय संगोष्ठी के संदर्भ में यह अध्ययन हिंदी साहित्य की भावात्मक समृद्धि और मानवीय मूल्यों की निरंतरता को रेखांकित करता है।

बीज शब्द : हिंदी गीत, ग़ज़ल, प्रेम, विरह, संवेदना, मानवीय मूल्य।

प्रस्तावना :

काव्य यदि मानव-हृदय की अनुभूतियों का सर्जनात्मक रूप है, तो गीत और ग़ज़ल उसकी सबसे संवेदनशील अभिव्यक्तियाँ हैं। प्रेम और विरह ऐसे भाव हैं, जिनसे प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में कभी न कभी अवश्य गुजरता है। इन्हीं अनुभवों को संवेदना गहराई और अर्थ प्रदान करती है। हिंदी साहित्य में गीत और ग़ज़ल ने इन भावों को न केवल स्वर दिया है, उन्हें सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना से भी जोड़ा है। "गीत जहाँ भावनाओं को विस्तार, प्रवाह और लय प्रदान करता है, वहीं ग़ज़ल सीमित शब्दों में गहन अनुभूति को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता रखती है। यही कारण है कि ये दोनों विधाएँ पाठक और श्रोता दोनों के हृदय में स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं।"[1] आज के समय में, जब मानवीय संबंधों में दूरी और संवेदनहीनता बढ़ती जा रही है, गीत और ग़ज़ल भावनात्मक जुड़ाव का कार्य करते हैं। इस दृष्टि से इनका अध्ययन केवल साहित्यिक नहीं, सामाजिक और मानवीय दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

हिंदी गीत की परंपरा और भावभूमि :

हिंदी गीत की परंपरा अत्यंत प्राचीन, समृद्ध और बहुआयामी रही है। वैदिक साहित्य से लेकर अपभ्रंश, भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद और आधुनिक काल तक गीत निरंतर विकसित होता रहा है। भक्तिकाल में सूरदास, मीरा और कबीर के गीतों में प्रेम ईश्वर-भक्ति का रूप ले लेता है और विरह आत्मा की तड़प बन जाता है। यहाँ विरह केवल पीड़ा नहीं, साधना और आस्था का माध्यम है। "रीतिकाल में गीतों का स्वर अधिक लौकिक हो जाता है। नायक-नायिका भेद, श्रृंगार और विरह का चित्रण प्रमुख हो उठता है। छायावादी युग में गीत मानवीय आत्मानुभूति और व्यक्तिगत संवेदना का सशक्त माध्यम बनता है। महादेवी वर्मा के गीतों में विरह मौन, आँसू और करुणा के रूप में व्यक्त होता है। आलोचकों के अनुसार यह विरह केवल व्यक्तिगत नहीं, सार्वभौमिक मानवीय वेदना का रूप है।"[2]

हिंदी गीत में प्रेम की अनुभूति :

हिंदी गीत में प्रेम की अभिव्यक्ति अत्यंत सहज, कोमल और आत्मीय होती है। गीतकार प्रेम को केवल दो व्यक्तियों के संबंध तक सीमित नहीं रखता, उसे प्रकृति, स्मृति और जीवनानुभव से जोड़ देता है। प्रेम यहाँ विश्वास, प्रतीक्षा और समर्पण का रूप ले लेता है।

छायावादी और आधुनिक गीतों में प्रेम का स्वर अधिक आत्मपरक हो जाता है। यह प्रेम कभी आनंद देता है, तो कभी पीड़ा किंतु उसकी मूल संवेदना मानवीय बनी रहती है। गीतों की संगीतमयता प्रेम को और अधिक प्रभावशाली बना देती है। प्रेम हिंदी गीत एवं ग़ज़ल का केंद्रीय भाव है। गीतों में प्रेम कोमल, आत्मीय और समर्पण भाव से युक्त दिखाई देता है। हरिवंश राय

बच्चन के गीतों में प्रेम जीवन-संघर्ष के साथ जुड़ा हुआ है। उनके अनुसार - "प्रेम जीवन का वह संगीत है जिसमें पीड़ा भी मधुर लगने लगती है।"[3]

ग़ज़ल में प्रेम अधिक जटिल और द्वंद्वात्मक रूप में सामने आता है। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में प्रेम केवल व्यक्तिगत अनुभूति नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है। वे लिखते हैं - "इश्क़ का जज़्बा भी क्या चीज़ है, दर्द देता है मगर अच्छा लगता है"। यहाँ प्रेम सुख और पीड़ा दोनों का सम्मिलित रूप बन जाता है।"[4]

हिंदी गीत में विरह की पीड़ा :

विरह हिंदी गीत की आत्मा कही जा सकती है। गीतों में विरह की पीड़ा तीखी चीत्कार के रूप में नहीं, कोमल करुणा के रूप में सामने आती है। यह विरह भीतर ही भीतर गहराता चला जाता है और पाठक के मन को उद्वेलित कर देता है। महादेवी वर्मा और निराला के गीतों में विरह आत्मिक वेदना का रूप ले लेता है। यहाँ विरह केवल प्रिय से बिछड़ने का दुःख नहीं, जीवन की अपूर्णता और असंतोष का प्रतीक बन जाता है। निराला के गीतों में भी विरह एक सशक्त भाव के रूप में उभरता है। वे मानते हैं कि— "वियोग की आग में ही प्रेम का स्वर्ण तपकर निखरता है।"[5] ग़ज़ल में विरह आत्मसंघर्ष और विडंबना के रूप में सामने आता है। ग़ज़लकार अपने व्यक्तिगत दुःख को सार्वभौमिक अनुभूति में परिवर्तित कर देता है।

हिंदी ग़ज़ल : परंपरा और विकास :

हिंदी ग़ज़ल का विकास उर्दू ग़ज़ल की समृद्ध परंपरा से प्रेरित होकर हुआ है। प्रारंभिक हिंदी ग़ज़लों में प्रेम और विरह के पारंपरिक स्वर दिखाई देते हैं किंतु आधुनिक काल में ग़ज़ल सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना की मुखर अभिव्यक्ति बन जाती है। "दुष्यंत कुमार, निदा फ़ाज़ली और अदम गोंडवी जैसे शायरों ने हिंदी ग़ज़ल को नई चेतना प्रदान की। ग़ज़ल की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संक्षिप्तता है, जिसमें भावों की तीव्रता सघन रूप में प्रकट होती है।"[6]

ग़ज़ल में प्रेम और विरह :

ग़ज़ल में प्रेम प्रायः अपूर्ण और अधूरा दिखाई देता है। यही अधूरापन उसे और अधिक मानवीय बनाता है। यहाँ प्रेम मिलन से अधिक स्मृति, तड़प और प्रतीक्षा में व्यक्त होता है।

विरह ग़ज़ल में केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं रहता, सामाजिक विडंबनाओं और जीवन की असफलताओं का प्रतीक बन जाता है। ग़ज़ल की प्रतीकात्मक भाषा और व्यंजना शक्ति पाठक को गहरे स्तर पर प्रभावित करती है।

संवेदना : गीत और ग़ज़ल की आत्मा :

संवेदना गीत और ग़ज़ल दोनों की मूल शक्ति है। गीत में संवेदना करुणा, प्रकृति-प्रेम और आत्मीयता के रूप में व्यक्त होती है। ग़ज़ल में यही संवेदना तीखे व्यंग्य, गहरे दर्द और सामाजिक चेतना से जुड़ जाती है।

आज के यांत्रिक और तनावपूर्ण जीवन में, जब मानवीय संबंधों में संवेदनशीलता कम होती जा रही है, गीत और ग़ज़ल मानवीय मूल्यों को जीवित रखने का कार्य करते हैं। संवेदना हिंदी गीत एवं ग़ज़ल की आत्मा है। रामविलास शर्मा के अनुसार— "कविता की संवेदना ही उसे समाज से जोड़ती है।"[7]

गीत और ग़ज़ल केवल व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक यथार्थ को भी संवेदनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें इसका सशक्त उदाहरण हैं, जहाँ प्रेम और पीड़ा के साथ सामाजिक असमानता और संघर्ष भी दिखाई देता है। नामवर सिंह का कथन है— "जहाँ संवेदना नहीं, वहाँ कविता नहीं यह कथन हिंदी गीत एवं ग़ज़ल की मूल आत्मा को स्पष्ट करता है।"[8]

गीत और ग़ज़ल : तुलनात्मक दृष्टि :

गीत और ग़ज़ल दोनों में प्रेम, विरह और संवेदना समान रूप से विद्यमान हैं, किंतु उनकी अभिव्यक्ति की शैली भिन्न है। गीत का विस्तार पाठक को भावनाओं में डुबो देता है, जबकि ग़ज़ल की संक्षिप्तता एक ही क्षण में गहरी अनुभूति करा देती है।

भाषा, शिल्प और प्रस्तुति की दृष्टि से दोनों विधाएँ एक-दूसरे की पूरक कही जा सकती हैं।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता :

समकालीन हिंदी साहित्य और सांस्कृतिक परिवेश में गीत और ग़ज़ल की प्रासंगिकता बनी हुई है। मंच, संगीत, सोशल मीडिया और साहित्यिक गोष्ठियों के माध्यम से ये विधाएँ नई पीढ़ी तक पहुँच रही हैं। प्रेम, विरह और संवेदना आज भी उतने ही सजीव हैं, जितने अतीत में थे।

निष्कर्ष :

अंततः कहा जा सकता है कि हिंदी गीत एवं ग़ज़ल में प्रेम, विरह और संवेदना की अभिव्यक्ति हिंदी काव्य की मानवीय और भावात्मक समृद्धि का सशक्त प्रमाण है। ये दोनों विधाएँ मानव-हृदय को संवेदनशील बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। राष्ट्रीय संगोष्ठी के संदर्भ में यह विषय साहित्य की मानवीय भूमिका और सामाजिक प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है।

संदर्भ सूचि :

1. वर्मा महादेवी, *नीहार*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद। (पृष्ठ - 32)
2. शर्मा रामविलास, *हिंदी कविता की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। (पृष्ठ -118)
3. बच्चन हरिवंश राय, बच्चन रचनावली खंड 1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006। (पृष्ठ - 54)
4. कुमार दुष्यंत, साये में धूप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010। (पृष्ठ - 45)
5. वर्मा महादेवी, यामा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998। (पृष्ठ - 89)
6. कुमार दुष्यंत, *साये में धूप*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली। (पृष्ठ - 38)
7. शर्मा रामविलास, कविता और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003। (पृष्ठ - 73)
8. सिंह नामवर, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008। (पृष्ठ - 27)

*****

साहिर लुधियानवी की शायरी और गीत

प्रोफेसर(डॉ.) शिवाजी उत्तम चवरे
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
प्रा. संभाजीराव कदम महाविद्यालय, देऊर (सातारा)

शोध सार :

साहिर लुधियानवी उर्दू शायरी और हिंदी फिल्म जगत की दुनिया की जानी मानी हस्ती है।इनका रचना संसार स्वानुभूति पर आधारित है। उन्होंने जो देखा सुना जिया उन तजुर्बे और एहसासों को उन्होंने शायरी और नज़्मों का रूप दिया। उनका बाल्यकाल अत्यंत संघर्षपूर्ण और दुखदाई रहा। पिता से अलग होकर माँ ने अकेले उनका पालन पोषण किया। 20 वी शताब्दी के 20 में दशक में महिला का पुरुष के विरोध में जाकर अकेले रहने का निर्णय कितना चुनौतीपूर्ण रहा होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसे में साहिर लुधियानवी या अब्दुल हई का अत्यंत जज़्बाती होना स्वाभाविक है। इस शायर के जज़्बातों का जादू उनकी समस्त रचनाओं में बिखरा पड़ा मिलता है। उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं की गूंज है,स्त्री-पीड़ा की मूक चीख है, मानवता पर आधारित समाज का ख्वाब देखने वालों को मिली राजनीतिक धोखेबाजी का चित्रण है,उनके स्व-जीवन के पवित्र प्रेम के नग़्मे है जिसके खूबसूरत रंगों ने उन्हें मशहूर शायर बनाया

बीज शब्द : मानवीय संवेदना,धर्मनिरपेक्षता,स्त्री की पीड़ा, राजनीतिक धोखेबाजी, रूमानी प्रेम

साहिर लुधियानवी का जन्म 8 मार्च 1921 को पंजाब के लुधियाना में लाल पुष्पहार हवेली करीमपुरा में एक मुस्लिम जागीरदार घराने में हुआ । उनका वास्तविक नाम अब्दुल हई था।साहिर उनका उपनाम अथवा कलमी नाम था। राजकुमार केसवानी लिखते हैं, "इस बच्चे का जब जन्म हुआ था तो बाप ने नाम रखा था अब्दुल हई। खुद ने होश संभाला तो उसने अब्दुल हई होने की जगह खुद को साहिर बना लिया। साहिर मतलब'जादूगर'लुधियाना का यह साहिर शब्दों का जादूगर था और ऐसा जादूगर कि उसका जादू आज भी ज़माने के सर चढ़कर बोलता है । ऐसे में ही जबान से निकल जाता है वाह! साहिर लुधियानवी वाह!"1

साहिर लुधियानवी के पिता का नाम फज़ल मोहम्मद तथा उनकी माता का नाम सरदार बेगम था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में हुई। उच्च शिक्षा एस सी धवन सरकारी बॉयज कॉलेज लुधियाना और दयाल सिंह कॉलेज लाहौर में हुई। कॉलेज के दिनों में ही अपनी गज़लों नज़्मों के लिए वे चर्चित हो चुके थे।2

1939 में गवर्नमेंट कॉलेज लुधियाना में पढ़ते हुए वे कम्युनिस्ट आंदोलन की तरफ आकर्षित हुए, वह छात्र संघ के अध्यक्ष चुने गए।देश की मौजूदा स्थिति को देखकर उनके अंदर बगावत की आग जलने लगी । भारत- पाकिस्तान विभाजन के बाद वे लाहौर में ही रहे।1943 में साहिर ने 'अदब-ए- लतीफ', 'शाहकार' और 'सवेरा' इन पत्रिकाओं में बतौर संपादक के काम किया। उनकी शायरी का पहला संग्रह 'तल्ख़ियां' 1945 में प्रकाशित हुआ 'सवेरा' में अपनी तल्ख कलम से पाकिस्तान सरकार को इस कदर नाराज कर दिया कि उनके खिलाफ गिरफ्तारी वारंट जारी हो गया।3 गिरफ्तारी से बचने के लिए साहिर भेष बदलकर दिल्ली आ गए। 'तल्ख़ियां' के प्रकाशन के साथ ही साहिर का शुमार मशहूर शायरों में होने लगा था। अपनी किस्मत आज़माने के लिए वे दिल्ली से फिल्मों में गीत लिखने हेतु मुंबई आ गए। गीतकार प्रेम धवन की सहायता से उन्होंने फिल्मों में गीत लिखना आरंभ किया। 1948 में फिल्म आज़ादी की राह पर के लिए उन्होंने 4 गीत लिखें ।1951 में फिल्म नौजवान के सदाबहार गीतों ने उन्हें लोकप्रियता की बुलंदियों पर पहुंचा दिया। बाद में उन्होंने 'बाजी', 'प्यासा', 'फिर सुबह होगी', 'कभी- कभी'जैसी मशहूर फिल्मों के लिए गीत लिखे। साहिर वे पहले संगीतकार थे जिन्हें अपने गानों के लिए रॉयल्टी मिलती थी। उनके प्रयास के बावजूद ही संभव हो पाया कि आकाशवाणी पर गानों के प्रसारण के समय गायक तथा संगीतकार के अतिरिक्त गीतकारों का भी उल्लेख किया जाता था । इससे पहले तक गानों के प्रसारण के साथ सिर्फ गायक तथा संगीतकार का नाम ही उद्घोषित होता था।4

सफलता के साथ ही साथ साहिर लुधियानवी को बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।उन्हें वर्ष 1958 में 'औरत ने जन्म दिया' गीत के लिए सर्वश्रेष्ठ गीतकार के रूप में फिल्म फेयर अवार्ड से सम्मानित किया गया।वर्ष 1964 में 'जो वादा किया' इस गीत के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ गीतकार के रूप में फिल्म फेयर अवार्ड से सम्मानित किया गया।वर्ष 1971 में उन्हें पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वर्ष 1977 में 'कभी-कभी मेरे दिल में' गीत के लिए सर्वश्रेष्ठ पार्श्वगायक फिल्म फेयर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वर्ष 1972 में महाराष्ट्र सरकार ने उन्हें 'जस्टिस ऑफ पीस' अवार्ड दिया। 1973 में 'आओ कि कोई ख्वाब

बुने' की कामयाबी पर उन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार और 'महाराष्ट्र स्टेट लिटरेरी अवॉर्ड'मिला। 1974 में महाराष्ट्र सरकार ने उन्हें 'स्पेशल एग्जीक्यूटिव मैजिस्ट्रेट' नामज़द किया। 8 मार्च 2013 को उनके जन्मदिन के अवसर पर भारतीय डाक विभाग ने एक यादगारी टिकट जारी किया।5

साहिर लुधियानवी अत्यंत जज़्बाती व्यक्तित्व थे। इस जज़्बाती शायर के अमृता प्रीतम और सुधा मल्होत्रा के साथ प्रेम संबंध रहे किंतु यह प्रेम संबंध असफल रहे। 1980 में 59 वर्ष की आयु में दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया।

साहिर लुधियानवी की शायरी और गीतों की विशेषताएँ:

साहिर लुधियानवी को उनके वक्त के शायरों ने 'युवा जोश का शायर' 6 करार दिया था उनका मानना था कि साहिर की शायरी नौजवानों के दिलों को गरमानेवाली है। तरक्की पसंद शायरों को यह बात बिल्कुल भी पसंद नहीं थी। मजरूह सुल्तानपुरी ने साहिर लुधियानवी की बात पर बरह्म करते हुए कहा," याद रखो साहिर! जब तुम मर जाओगे तो उर्दू का कोई तरक्की पसंद अदीब तुम्हारे जनाज़े के साथ नहीं जाएगा।" साहिर ने फिल-फो़र जवाब दिया," मुझे इसका कोई गम नहीं। लेकिन मैं फिर भी हर तरक्की पसंद अदीब के जनाज़े में शरीक हूंगा।7

साहिर लुधियानवी का अंदाज- ए- बयां अपने आप में अलग था। उन्होंने किसी विषय को लेकर गूढ़ रहस्यमई बातें नहीं कहीं,वरन् सरल सहज अंदाज में एहसासों और तजुर्बे को साकार किया। उनकी रचनाओं में समाज में नैतिकता के घटते मूल्य, उपभोक्तावाद का वर्चस्व, युद्ध और राजनीति प्रगतिशीलता का तेवर दिखाई देता है।8 साहिर एक धर्मनिरपेक्ष शायर थे। उन्होंने धर्म को कभी वरीयता नहीं दी। भारत पाकिस्तान विभाजन के बाद उन्होंने धर्मनिरपेक्ष भारत में रहना पसंद किया। उनके लिए मनुष्य और मनुष्यता ही सब कुछ थी। धर्मांधता में डूबे समाज और भारत- पाक विभाजन की त्रासदी से झुलसे लोगों को आपसी भाईचारे और इंसानियत का संदेश वह अपने गीत के माध्यम से देते हुए कहते हैं,

ना हिंदू बनेगा ना मुसलमान बनेगा
इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।9

हिंदू- मुसलमान के भेद की खाई को कम करके पुनः अमन शांति को कायम करने की मंशा रखकर वे आगे लिखते हैं,

कुदरत ने तो बनाई थी एक ही दुनिया
हमने उसे हिंदू और मुसलमान बनाया।
तु सबके लिए अमन का पैगाम बनेगा। 10

ईश्वर और अल्लाह का भेद बता कर इंसान को इंसान से अलग करने वालों की कूट चालों को निस्तनाबूद करने के लिए और लोगों में भाईचारा बढ़ाने के उद्देश्य को सामने रखते हुए वह लिखते हैं,

अल्लाह तेरो नाम ईश्वर तेरो नाम
सबको सन्मति दे भगवान।11

उनके मित्रों के समूह में कई सिख और हिंदू मित्र थे, जो विभाजन के बाद उनसे बिछड़ गए थे। उनसे बिछड़ने की टीम हमेशा उनके मन में रही।12 साहिर लुधियानवी के पिता अत्यंत धनी और ऐयाश किस्म के व्यक्ति थे, इसलिए साहिर के जन्म के बाद उनके माता-पिता में अलगाव हो , साहिर का पालन पोषण उनकी मां सरदार बेगम ने अकेले ही किया । पिता से अलग होने के बाद उनका जीवन बहुत गरीबी में बीता । बचपन की कटु अनुभूतियों की परेशानियां उनके जीवन में हमेशा रही । माता के कष्ट,दुख, पीड़ा को उन्होंने नजदीक से अनुभव किया । केवल मां को ही नहीं बल्कि हजारों- हजारों स्त्रियों की दयनीय स्थिति को भी उन्होंने देखा था । स्त्री पीड़ा का बेबाक चित्रण करते हुए वे लिखते हैं,

औरत ने जनम दिया मर्दों को, मर्दों ने उन्हें बाज़ार दिया
जब जी चाहा मसला कुचला, जब जी चाहा दुत्कार दिया
तुलती है कहीं दीनारों में, बिकती है कहीं बाज़ारों में
नंगी नचवाई जाती है, ऐय्याशों के दरबारों में13

स्त्री को कहीं तो मंदिर की देवी बनाकर पूजनीय बना दिया जाता है, नहीं तो गुलाम बनाकर उसका शोषण किया जाता है। घर की चारदीवारी में उसे कैद कर दिया जाता है । उसे आश्रित बता कर उस पर तरह- तरह के अत्याचार किए जाते हैं । जब कोई स्त्री इन अत्याचारों का विरोध करती है, तो उसे बद्चलन करार कर दिया जाता है । साहिर की माताजी ने भी उनके ऐयाश पिता का विरोध किया और साहिर को लेकर अलग हो गई । यह बात उस समय की है जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था। उस समय जब

समाज के बंधन स्त्रियों को लेकर अत्याधिक कठोर थे। उस माँ की हालत क्या हुई होगी ? जब उसने तथाकथित समाज के विद्रोह का बिगुल बजाया। अकेले अपने बच्चे का पालन पोषण किया । समाज में दुखों को सहती औरतों की तस्वीर को वे इस प्रकार बयां करते हैं,

मर्दों के लिए हर जुल्म रवां, औरत के लिए रोना भी खता
मर्दों के लिए लाखों सेजें, औरत के लिए बस एक चिता
मर्दों के लिए हर ऐश का हक,औरत के लिए जीना भी सजा 14

सहज सरल अंदाज में साहिर ने पुरुष प्रधान समाज के ठेकेदारों का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया। वे स्वयं पुरुष होने के बावजूद भी स्त्रियों के जज़्बातों से भलीभांति परिचित थे । साहिर की शायरी और गीत सुनकर ऐसा लगता है मानो वो स्त्री मन को इस कदर समझते थे कि गीत लिखते हुए वो खुद औरत हुए जाते है ।15 वेश्या व्यवसाय में लिप्त स्त्रियों को समाज से बेदखल कर दिया जाता है समाज उन्हें घृणित नजरों से देखता है । किंतु इनकी पीड़ा को समझने का प्रयास कोई नहीं करता। वहीं साहिर उनकी जज़्बातों के तह तक जाते हैं और उनकी पीड़ा के बारे में लिखते हैं,

संसार की हर एक बेशर्मी,गुरबत की गोद में पलती है
चकलो ही में आकर रूकती है, फाकों से जो राह निकलती है
मर्दों की हवस है जो अक्सर, औरत के पाप में ढलती है
औरत संसार की इस्मत, फिर भी तकदीर कि हेटी है
अवतार पयंबर जनती है,फिर भी शैतान की बेटी है
यह वह बदकिस्मत मां है जो,बेटों की सेज पर लेटी है। 16

समाज में नैतिकता के सारे नियम स्त्रियों के लिए ही बनाए हैं ।समाज के नैतिक पतन की उत्तरदाई वही है,मात्र पुरुष उपभोक्ता है ।उसके लिए उपभोग के सारे दरवाजे खुले हैं । इस असंतुलन का विरोध साहिर ने अपनी शायरी के माध्यम से किया है।

आज़ादी के बाद राजनीतिक धोखेबाजी को देखकर साहिर के भीतर का शायर चीख उठा, भूख, बेरोजगारी,गरीबी से जूझते लोगों की बढ़ती समस्या और संघर्षों से बेखबर राजनीतिक लोगों की चालबाज़ी के खिलाफ साहिर ने अपनी कलम चलाई वे लिखते हैं,

जिनके जुल्म से दुखी है,जनता हर बस्ती हर गांव में
दया धर्म की बात करे, बैठके सजी सभाओं में
दान का चर्चा घर- घर पहुंचे , लूट की दौलत छुपी रहे
नकली चेहरा सामने आए ,असली सूरत छुपी रहे 17

नेताओं की जय जयकार करने वाली जनता की आंखों से पर्दा हटाने के लिए वह नेताओं की असलियत को सामने लाते हुए कहते हैं,

देखें नकली चारों की,कब तक जय जयकार चले
उजले कपड़ों की तह में ,कब तक काला संसार चले
कब तक लोगों की नजरों से,छुपी हकीकत छुपी रहे।18

साहिर एक ऐसे शायर थे,जो व्यक्ति के भीतर तक झांक सकते थे। उसकी अनुभूति को उसी के स्तर पर जाकर, उसकी टीस को महसूस कर सकते थे ।उनकी यह खूबी उनके गीतों में, शायरी में, नज़्मों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इसलिए उन्हें जज्बातों का जादूगर कहना उचित लगता है।

साहिर शायर थे किंतु उनकी शायरी इश्क और हुस्न तक सीमित नहीं रही । समाज के खोखलेपन को अपनी कड़वी शायरी के मार्फत लाने वाले इस विद्रोही शायर ने आगे लिखा है,

ज़िंदगी सिर्फ मोहब्बत ही नहीं कुछ और भी है
भूख और प्याज की मारी इस दुनिया में
इश्क ही एक हकीकत नहीं कुछ और भी है 19

उनके लिए मोहब्बत के अलावा और भी कई बातें थी जिन पर लिखना आवश्यक था वे कहते हैं ,

मोहब्बत कर तो ले लेकिन मोहब्बत रास आए भी

दिलों को बोझ लगते हैं कभी जुल्फों के साए भी।
हजारों गम है इस दुनिया में अपने भी पराए भी
मोहब्बत की का गम तन्हा नहीं हम क्या करें 20

अमृता प्रीतम के साथ उनकी मोहब्बत रूमानी थी। अमृता के परिवार वालों ने जवानी के दिनों में, साहिर की गरीबी और उनके अलग धर्म के होने के कारण उनकी मोहब्बत को ठुकरा दिया था। इस घटना पर साहिर ने लिखा है,

जज़्बात भी हिंदू होते हैं, चाहत भी मुसलमां होती है
दुनिया का इशारा था, लेकिन समझा नहीं इशारा दिल ही तो है 21

अमृता प्रीतम और साहिर का प्रेम दुनिया से अलग था। खतों, नज़्मों, शेरो- शायरी के द्वारा यह प्रेम फला- फूला। किंतु दोनों का विवाह नहीं हो पाया। जवानी के दिनों में पहले तो साहिर जब गरीब थे अमृता के परिवार वालों ने इस रिश्ते को अनुमति नहीं दी। बाद में लेकिन जब साहिर अपनी दुनिया में बहुत कामयाब हुए, साहिर की मां ने इस रिश्ते को इजाज़त नहीं दी। माँ से बेइंतहा प्यार करने वाले साहिर ने माँ की मर्जी के लिए मोहब्बत से किनारा कर लिया। उनके लिए मां की खुशी,उनकी खुशी से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण थी।आज कितने ऐसे बेटे हैं ,जो माँ के लिए अपना प्यार कुर्बान कर देते हैं। साहिर जैसे जज़्बात के जादूगर के लिए यह आसान नहीं था। किंतु जज़्बातों की अहमियत में उन्होंने मां के जज़्बातों को पहला दर्जा दिया। अमृता प्रीतम से उन्होंने बेइंतहा मोहब्बत की,प्यार के एहसास को उन्होंने अपने नग़्मों में इस कुछ इस तरह पेश किया कि लोग झूम उसे।22 'कभी-कभी', 'ताजमहल', 'प्यासा', 'साधना', 'बाजी' आदि फिल्मों के गीत अपने दौर में बहुत लोकप्रिय हुए और आज भी लोग उन्हें सुनना पसंद करते हैं। वे स्वयं के बारे में कहते हैं,

कल और आएंगे नगमों की, खिलती कलियां चुनने वाले
मुझसे बेहतर कहने वाले, तुमसे बेहतर सुनने वाले
कल कोई उनको याद करें, क्यों कोई मुझको याद करे
मसरूफ ज़माना मेरे लिए,क्यों वक्त अपना बर्बाद करें

मैं पल दो पल का शायर हूं
पल दो पल मेरी कहानी है
पल दो पल मेरी हस्ती है
पल दो पल मेरी जवानी है 23

वास्तविकता तो यह है कि साहिर पल दो पल के नहीं बल्कि 'पलपल हरपल 'के शायर है क्योंकि उनके द्वारा लिखे गए गीत आज भी उतने ही सटीक और उतने ही मर्मभेदी है,जितने उस समय थे। आज भी स्थितियां कम ज्यादा वैसे ही है जैसे उस समय विद्यमान थी। किंतु रचनाकार का काम केवल समाज का विद्रूप चेहरा बताने तक सीमित नहीं होता वरन समाज को निराशा में भी आशा का दीपक दिखाना उसका उत्तरदायित्व होता है। इसलिए सदियों से अंधकार में भटकते लोगों को आशा का संदेश देते हुए वे कहते हैं, जिस सुबह

जिस सुबह की खातिर जुग-जुग से हम
सब मर- मर के जीते हैं
जिस सुबह के अमृत की धुन में
हम ज़हर के प्याले पीते हैं
वह सुबह ना आए आज मगर
वह सुबह कभी तो आएगी 24

निष्कर्ष : साहिर लुधियानवी का संपूर्ण जीवन संघर्षशील रहा। किंतु समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व से उन्होंने कभी मुंह नहीं मोड़ा। एक ऐसा शायर जिसकी शायरी हुस्न, इश्क, मोहब्बत और जाम से अलग हटकर दुनियादारी की बात करती है। लोगों के दर्द, एहसास, मजबूरियां, ग़म को जिसने महसूस किया और शायरी,नज़्म, ग़ज़ल में ऐसे पेश किया कि यह रचनाएं अमर हो गई। साहिर केवल जवां दिलों के शायर नहीं है बल्कि हर उस जज़्बाती दिल के शायर है जिसमें दूसरों के दुखों को समझने की क्षमता है इसलिए साहिर जज़्बातों के जादूगर है।

संदर्भ ग्रंथ :

1.तुम्हारे शहर में आए हैं हम साहिर कहां हो तुम(साहिर-1)The Bhopal post (Sahir ludhianvi web.archieve.org.)
2.https://www.rekhta.org-poets-sahir-ludhiyanvi
3.https://hindi. starsunfolded.com.sahir ludhianvi-hindi.
4.https://hi.m. wikipedia.org.
5.https://www.rekhta.org-poets-sahir-ludhiyanvi
6.https://www.rekhta.org-poets-sahir-ludhiyanvi
7.https://www.rekhta.org-poets-sahir-ludhiyanvi
8.https:// www.janasatta.com. मैं हर एक पल का शायर हूं,साहिर लुधियानवी
9. गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
10.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
11.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
12. https://jivanihindi.com- Sahir Ludhianvi- biography.hindi.
13.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
14.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
15.www.bbc.com
16.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
17.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
18.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
19.https://bharatdiscovery. org – india
20.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
21.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
22.https://jivanihindi.com- Sahir Ludhianvi- biography.hindi
23.गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
24. गाता जाए बंजारा-साहिर लुधियानवी epustakalaya. Com
25)मैं साहिर हूं- सबीर दत्त, चंदर वर्मा, डॉ सलमान आबिद

*****

हिन्दी गजल में सामाजिक चेतना: दुष्यंत कुमार तथा अदम गोंडवी के परिप्रेक्ष्य में

प्रो. आभा सिंह
हिन्दी विभाग प्रमुख,
वी एम वी कॉलेज, नागपुर

सारांश –

लेखन वह परंपरा है जिसका निर्वहन तभी संभव है जब व्यक्ति ही नहीं तो समाज,परिवार ही नहीं तो परिवेश और धार्मिक के साथ साथ सामाजिक और राजनीतिक अर्थात समसामयिक विषयों आदि की समझ लेखक में होती है। वह व्यक्ति के समाज,उसकी समस्याओं,समाज में व्याप्त राजनीतिक तथा आर्थिक मुद्दों के प्रति जागरूक होने की ओर संकेत करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसका सामाजिक सरोकार ही उसे समाज के प्रति संवेदनशील बनाता है। सामाजिक चेतना अर्थात वह चेतना जो अन्याय,अत्याचार,शोषण,दमन, भेदभाव आदि के विरोध के प्रति मनुष्य को जागृत करती है। मनुष्य की इस चेतना के केंद्र में होता है समाज। चेतना का हर विमर्श समाज से जुड़ा होता है। मनुष्य समाज से अलग नहीं है यदि वह समाज के प्रेम और सौंदर्य का वर्णन कर सकता है तो समाज में व्याप्त बुराई तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का दायित्व भी उसी का है। एक स्वस्थ समाज की अपेक्षा हर व्यक्ति करता है।

दूसरे शब्दों में कहे तो सामाजिक चेतना से आशय उस संजीदगी से है जिसकी सहायता से मनुष्य समाज के मूल्यों को समझता है। समाज की हकीकत से अवगत होता है। समाज में विद्यमान हर विषय को समझने का प्रयास करता है। मनुष्य की यही चेतना उसे समाज की वास्तविकताओं को समझने और उन पर विचार करने की क्षमता प्रदान करती है। यह वही सामाजिक चेतना है जिसकी सहायता से मनुष्य समाज के उन सारे पहलुओं को जानता है जो उसके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं जैसे कि राजनीति, अर्थव्यवस्था,संस्कृति और पर्यावरण आदि। मनुष्य अपनी सामाजिक चेतना की सहायता से अपने समाज को बेहतर बनाने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने का और लोगों को जागरूक करने का काम करता है।यही सामाजिक चेतना जब शब्दों में अभिव्यक्त होती है तो वह उपयोगी साहित्य के रूप में देखी जाती है। साहित्य मनुष्य की सामाजिक चेतना का बौद्धिक स्वरूप है इसलिए समाज में व्याप्त भावानुभाव साहित्य के माध्यम से व्यक्त किए जाते है। साहित्य बोध ही मनुष्य को प्रेरित करता है कि वह समाज में आवश्यक परिवर्तन कर सके। साहित्य समाज की वास्तविकताओं का अध्ययन करता है और अच्छे के लिए बदलाव लाने की ओर ध्यान केन्द्रित करता है।

बीज शब्द- सामाजिक चेतना,विडम्बना,न्याय, संवेदना,आक्रोश, शोषित, विद्रोह, निडर,स्पष्ट

प्रस्तावना

साहित्य की परंपरागत धरोहर और साहित्यिक विधाओं की यात्रा अद्भुत है। साहित्य ने हर काल की मर्यादा का मूल्यांकन करने के लिए गद्य और पद्य दोनों शैलियों में स्थापित विधाओं में सृजन प्रस्तुत किया है। कविता कहानी गीत नवगीत की ही श्रृंखला में महत्वपूर्ण स्थान है हिन्दी गजल का। हिन्दी गजल का इतिहास रोचक रहा है। गजल ने अरबी फारसी से लेकर उर्दू भाषा तक एक लंबा और महत्वपूर्ण सफर तय किया है। गजल के इस सफर को मानवीय संवेदनाओं की सहयात्रा कहा जा सकता है। गजल ने मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की है। मनुष्य के दुख सुख के भाव को गजल ने अपने शब्द दिए। गजल में भाषाई चमत्कार के साथ साथ सहजता,सरलता एवं प्रभावोत्पादकता विद्यमान होती है। गजल की मुहावरेदार भाषा प्रयोग उसे और अधिक रोचक बनाता है। 'हिन्दी में सर्व प्रथम गजल लिखने का श्रेय अमीर खुसरो को जाता है। उनके गजलों में खड़ी बोली हिन्दी और फारसी का मिला जुला रूप है। प्यारेलाल शोकी ने खुसरो की गजल परंपरा को आगे बढ़ाया। आधुनिक काल में भारतेन्दु तथा प. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' की गजलों में प्रेम,भक्ति,स्वराज्य एवं क्रान्ति के स्वर मुखरित हुए। छायावाद के जयशंकर प्रसाद,निराला आदि कवियों ने प्रेम भावना के साथ गजल को सामाजिकता के साथ जोड़ दिया।1 साहित्य की चेतना और उपयोगिता दोनों ही मनुष्य के कार्य और व्यवहार पर अपना प्रभाव रखती है। साहित्य की प्रत्येक विधा में यह गुण विद्यमान है। प्रत्येक साहित्य अपने समय की सामाजिक,धार्मिक तथा राजनीतिक परिवर्तन का वर्णन संकलित कर अभिव्यक्त करता है। साहित्य की इस अभिव्यक्ति के कई माध्यम है जिनमे से गजल एक महत्वपूर्ण माध्यम है। सन 1960 का समय हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी गजल के नाम से देखा जाता है। यह एक ऐसा दौर था जब देश में राजनीतिक के साथ साथ सामाजिक परिवर्तन बहुत तेजी से हो रहे थे और उतनी ही तेजी से हिन्दी गजल अपनी उत्पत्ति के साथ ही अपने कोमल कलेवर में अलग तेवर के साथ अपनी विशेष

पहचान बना रही थी। उन दिनों देश में फैली राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र की परिवर्तनशील किन्तु विपरीत परिस्थितियों में भी गजल ने यह सिद्ध किया कि कोमल शब्दों में भी कठोर अभिव्यक्ति की जा सकती है।

60 के दशक में जिन साहित्यकारों ने अपनी चेतना से गजल को नए आयाम दिए उनमे महत्वपूर्ण नाम है दुष्यंत कुमार। दुष्यंत कुमार शमशेर बहादुर सिंह की परंपरा के गजलकार है। सामाजिक जनचेतना से जुड़े विषयों को अपनी गजलों से जोड़कर दुष्यंत कुमार ने साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया। दुष्यंत कुमार का 1975 में साएँ में धूप नामक गजल संग्रह आया और समकालीन साहित्यकारों में दुष्यंत कुमार यह नाम एक सनसनी बन गया और लोकप्रियता के नए आयाम स्थापित हुए। निसंदेह इस लोकप्रियता का सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि दुष्यंत कुमार ने गजल को उर्दू फारसी की दर्दे इश्क और दर्दे गम वाली परंपरागत शैली से निकालकर आम जन के समसामयिक मुद्दों से जोड़ दिया। दुष्यंत कुमार ने गजलों मे उस भाषा का प्रयोग किया जो ना तो शुद्ध हिन्दी थी और ना शुद्ध उर्दू ऐसी भाषा आम जनता की जुबान पर आसानी से चढ़ गई।'स्वयं दुष्यंत कुमार कहते है कि, मैंने अपनी तकलीफ को,उस शदीद तकलीफ को जिसमे सीना फटने लगता है,ज्यादा से ज्यादा सच्चाई और समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगो तक पहुँचने के लिए गजल कही है।'2 दुष्यंत कुमार की यही चेतना बताती है कि उन्होने केवल दिल का बोझ उतारने के लिए गजल नहीं लिखी बल्कि इस उद्देश्य से लिखी है कि किसी और की पीड़ा को सहारा मिल सके।
गजल साहित्य अपनी कोमल अभिव्यक्ति में भी इतना सक्षम है कि वह निजी भावनाओं से निकलकर जन जागरण द्वारा सकारात्मक बदलाव लाने का काम करती है। हिन्दी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर दुष्यंत कुमार की गजलों में सामाजिक चेतना प्रमुखता से दिखाई देती है। 'साए में धूप संग्रह में तो यह अभिव्यक्ति पैनी होकर व्यंग्यात्मक रूप ले चुकी है। 'समाज की विभिन्न विभिन्न समस्याओं का चिंतन दुष्यंत की गजलों में दृष्टिगोचर होता है। दुष्यंत की सामाजिक चेतना प्रारंभ से ही बहुत प्रखर रही है। 'साये में धूप' तक वह व्यंग्य की धार बहुत पैनी कर चुका है। उसकी गजलों में शोषण,पराजय,दैन्य उत्पीड़न और दुर्व्यवस्था की निर्भीक अभिव्यक्ति है।'3

साहित्य और समाज का गहरा संबंध होता है। इसी आधार पर दुष्यंत कुमार समाज को देखने के प्रति अपना दृष्टिकोण जागृत करते है। हिन्दी गजल के शिखर पुरुष कहे जाने वाले दुष्यंत कुमार की गजलों में समाज का आम आदमी नायक की तरह दिखाई देता है। इस आदमी की हर पीड़ा दुष्यंत कुमार की गजल का विषय है। आम आदमी का शोषण,उसकी भूख,उसकी अपने आप को स्थापित करने की जद्दोजहद, सीसायत द्वारा उसे छला जाना और हर अवसर पर उसके अभाव को बड़ा करने की समाज की सोच आदि सभी को दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में बांधा है। यह अभिव्यक्ति दुष्यंत की गजलों में इतनी सहज है की उसकी तीक्ष्णता सहज महसूस होती है। दुष्यंत कुमार भूखे व्यक्ति को देखकर लिखते हैं-

भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ
आजकल दिल्ली में जेरे बहस ये मुद्दा
सिर्फ हँगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

दुष्यंत कुमार की ये पंक्तियाँ प्रसिद्ध है जो कई जगहों पर इस्तेमाल की जाती है। इन पंक्तियों में सामाजिक तथा राजनीतिक दोनों ही परिस्थितियों पर कटाक्ष किया है। दुष्यंत कुमार की गजलों की विशेषता ही यही है कि वह समाज सापेक्ष है। दुष्यंत कुमार की ये पंक्तियाँ बड़ी सभ्यता से चीखकर कह देती है कि रोटी का प्रबंध करने से ज्यादा जरूरी हुक्मरानों के लिए सत्ता के मद में डूबे रहना अधिक जरूरी लगता है। गजल की ये पंक्तियाँ राजनीति के सुख के साथ साथ आम इंसान की रोटी के लिए किए जा रहे संघर्ष की कहानी बयान करती है। हिन्दी गजल सदियों से इंसान की सोच में बसी है। दुष्यंत कुमार की गजलों की चेतना उस वाक्य को सिद्ध करती है जो कहता है कि साहित्य का तो काम ही समाज की विसंगतियों को रेखांकित करना है। दुष्यंत की गजलों में आम आदमी के शब्द बोलते है।

दुष्यंत कुमार केवल परिवर्तन का संदेश नहीं देते वरन जब विपरीत हालातों में भी मौन मनुष्य देखते है तो दुखी होते है। उन्हें यह स्वीकार नहीं होता की जनता अमानवीयता को चुपचाप स्वीकार करे। दुष्यंत लिखते हैं-

यहाँ तो सब गूँगे बहरे लोग बसते है
खुदा जाने यहाँ कैसे जलसा हुआ होगा।

वे व्यवस्था को नकेल लगाने के लिए प्रयासरत रहते। दुष्यंत कुमार की गजलों की विशेषता ही यह रही है कि उन्होने कोमल और श्रृंगारिक शब्दों से निकालकर गजल को चुनौती कि भाषा में तैनात किया है ।

दुष्यंत कुमार की इस सामाजिक चेतना को अपनी गजलों के माध्यम से आगे बढ़ाया अदम गोंडवी ने। अदम गोंडवी की गजलों में व्यवस्था को चुनौती तथा आम आदमी का दर्द मुखर हुआ। हिन्दी गजल की सामाजिक भूमिका को देखकर गजल आलोचक अनिरुद्ध सिन्हा कहते हैं,' समकालीन गजल ने पाठकीय प्रवृत्तियों के सुदृढ़ीकरण में जनजीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान में सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के विविध क्षेत्रों में पैदा होने वाले बहुविध द्वंद्वों के समाधान में सहायक बनकर जीवन के विकास पर सार्थक प्रभाव डाला है।'-3-

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित दुष्यंत कुमार सामाजिक न्याय को सबसे ज्यादा जरूरी समझते और सभी का हक बराबर होने की पैरवी करते। सामाजिक न्याय अर्थात सभी का बराबर हक बराबर रोटी और बराबरी का जीवन जीने का अधिकार। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत को जिस आर्थिक संघर्ष का सामना करना पड़ा उसमे सबसे ज्यादा तकलीफ़देह स्थिति रही मजदूर/श्रमिक वर्ग की। मजदूर वर्ग की जीवटता को देखकर वे कहते-

तुझे कसम है खुदी को बहुत हलाक न कर
तू इस मशीन का पुर्जा है,तू मशीन नहीं।4

आम जनता का निराश होना और संकुचित रहना दुष्यंत कुमार को रास नहीं आया। वे चाहते थे की जनता अपनी शक्ति को पहचाने। वे असंतोष के खिलाफ और सामाजिक विद्रोह के पक्षधर थे। अपने विद्रोह को न्यायसंगत कहते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं कि -

रक्त वर्षो से नशे में खौलता है
आप कहते है क्षणिक उत्तेजना है।5

साहित्य हमेशा ही सामाजिक चेतना सम्पन्न व्यक्तियों से समृद्ध हुआ है। दुष्यंत कुमार की सामाजिक चेतना उन्हें आश्वस्त नहीं होने देती कि यदि आपके इर्द गिर्द विडंबना तो है लेकिन विद्रोह नहीं है। दुष्यंत कुमार को पूँजीपतियों की मतांधता मंजूर नहीं। जहां जहां अत्याचार और आडंबर दिखाई देता है वहाँ वहाँ दुष्यंत की कविता सुनाई देती है। कवि का संवेदनशील मन वेदना को स्वीकार नहीं कर पाता। वे पीड़ित होते हैं जब देखते कि शोषण के बाजार में दुख और वेदना के अलावा कुछ और नही नजर आता है। वे लिखते हैं -

दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर
और कुछ हो या ना हो,आकाश सी छाती तो है। 6

निसंदेह आजाद भारता का सपना देखते समय करोड़े के मन में जो एक भाव समान था वह सभी की खुशहाली का था। जब करोड़ो के मन को असमानता असंतुलन और असंतोष से तोला जाता तो कवि की यह चेतना व्याकुल हो जाती है। उन्हें मौन चुभता है। वे सहनशीलता की नदी में आकंठ डूबे समाज को देखकर कहते-

मैं हूँ जीवित या ये भी कोरा भ्रम है
कोई ना बताता ,सभी मौन है
मैं समझ गया दुनिया में मानव की
जो होती जिंदा मौत,इसे कहते है।7

दुष्यंत कुमार की ही तरह विद्रोह को स्वर देने वाला दूसरा नाम है अदम गोंडवी का। अदम गोंडवी ने भी अपनी गजलों में इसी समाजिक चेतना का परिचय दिया है जिसके बीज दुष्यंत कुमार ने अपनी गजलों में बोएँ थे। बीसवी सदी के उत्तरार्ध के महत्वपूर्ण कवि श्री अदम गोंडवी ने अपने समय की सामाजिक विसंगतियों पर गहरी चोट की। वे समाज द्वारा शोषित वर्ग की ना केवल मुखर अपितु प्रखर आवाज बने और कहा-

जिसके हाथों छाले हैं,पैरों में बिवाई है
उसी के दम से रौनक आपके बंगले में आई है।8

अदम गोंडवी की गजलों में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति भावनात्मक होने के साथ-साथ बौद्धिक भी है। उनके ये विचार,दुख और पीड़ा की सघन अनुभूतियों से उपजे है। 'राजनीतिक सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर बुलंद करने वालों की हिन्दी में एक लंबी परंपरा रही है। इस परंपरा में कबीर,निराला,दुष्यंत और धूमिल का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। 1947 में जन्में अदम गोंडवी ने कबीर के तेवर और दुष्यंत की धार को बरकरार रखा। अदम गोंडवी ने समाज से मिले अपने अनुभव से जाना कि आजादी के बाद व्यवस्था में फैली अवस्था को सुचारु करने के लिए राजनीतिक पहल तो बहुत

हो रही है लेकिन दलितों और हाशिए पर आए समाज की हालात में कोई सुधार नहीं है। वे हालात को देखकर व्याकुल हुए और बिना रुके जनतंत्र के पैरोकारों से सवाल किया है कि-

सौ में सत्तर आदमी फिलहाल जब नाशाद है,
दिल पर रखकर हाथ कहिए देश क्या आजाद है'

कितनी स्पष्टता से अदम गोंडवी स्वीकार करते कि जब पूरी जनता इस लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में दुखी है तब सुख और खुशी किस बात की मनाएँ? आजादीके बाद के अधिकांश गजलकारों में सामाजिक मान्यता मार्कस्वाद पर आधारित थी जिसके अनुसार जब तक समाज का अंतिम तबका संघर्षरत रहेगा तब तक आजादी की खुशहाली नहीं मनाई जा सकती। मार्कस्वाद का सिद्धांत है कि आर्थिक ढांचा बदले बिना सामाजिक आधार नहीं बदला जा सकता। मार्क्सवाद का यह सिद्धांत हर उस साहित्यकार ने अपनाया जो दमित शोषित वर्ग की पीड़को देख-समझ रहे थे।

'अदम गोंडवी उपेक्षित जनता के ही कवि है। उन्होने अपने वाक्य बोधसे यह चित्रित किया है कि दलितो को तो प्राचीन काल से ही दबाकर रखा गया है और उपेक्षा की नजर से देखा गया है। समाज की यह अवधारणा मानवता के विकास को अवरुद्ध करने वाली है अतः अदम ने लिखा है-

मानवता का दर्द लिखेंगे माटी की बू बास लिखेंगे
हम अपने इस कालखंड का एक नया इतिहास लिखेंगे
सदियों से जो रहे उपेक्षित श्रीमंतों के हराम सजाकर
उन दलितों की करुण कहानी मुद्रा में रैदास लिखेंगे'-10

अदम गोंडवी की गजलों में प्रधान स्वर विद्रोह का है। उनकी कविता में व्यवस्था के प्रति व्यंग्य भी है और आक्रोश भी जो पाठकों को सोचने के लिए प्रेरित करती है।

विद्रोह एक ऐसी अवधारणा है जो व्यवस्था के प्रति असंतोष और विरोध को दर्शाती है। यह अवधारणा समाज में व्याप्त अन्याय और शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती है। विद्रोह की अवधारणा में स्वतंत्रता और समानता की भावना निहित है, जो समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक है। अदम गोंडवी की गजलों में व्यवस्था के प्रति जो व्यंग्य और आक्रोश व्यक्त किया है वह पाठकों को सोचने के लिए प्रेरित करता है। अदम गोंडवी ने अपनी कविता में गरीबी और शोषण के खिलाफ आवाज उठाई है और समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित किया है। अदम गोंडवी ने अपनी कविता में जातिवाद और भ्रष्टाचार की आलोचना की है और समाज में समानता और न्याय की भावना को बढ़ावा दिया है। वे राजनीति के बजाय सामाजिक मसलों को ज्यादा तवज्जो देते और जानते कि सामाजिक सुरक्षा के लिए कम से कम राजनीति कितनी जरूरी होती है। इसी विचार को जब वे अभिव्यक्त करते तो कहते-

छेड़िए इक जंग मिल जुलकर गरीबी के खिलाफ
दोस्त, मेरे मजहबी नग्मात को मत छेड़िए। 11

अदम गोंडवी ये चेताना चाहते थे की समाज की खुशहाली के लिए आपसी भाईचारा उतना ही आवश्यक है जितना जरूरी गरीबी से मुक्ति दिलाना। अदम गोंडवी अदम्य साहस की मिसाल थे। बेखौफ बयान अदम के गजलों की विशेषता है।

चाहे अदम गोंडवी हो चाहे दुष्यंत कुमार हर व्यक्ति जानता है कि समाज के संचालन के लिए संवेदना अनिवार्य है। 'अदम एकदम खाँटी अंदाज में अपने समय और परिवेश के नग्न यथार्थ को बिना लाग- लपेट के प्रस्तुत करते है। जिंदगी की बेबसी को व्यक्त करते हुए कहते कि-

आप कहते हैं सरापा गुलमोहर है जिंदगी
हम गरीबों की नजर में इक कहर है जिंदगी।'-12

अदम गोंडवी की दो पुस्तकें 'धरती की सतह पर' और 'समय से मुठभेड़' में वे अपनी बात बेधड़क कहते। गरीबी,संवैधानिक अधिकारो की अपूर्ति, बेबसी,लाचारी,छल जैसी सामाजिक प्रतिबद्धताएँ अदम को बेचैन करती और वे कलम चलाते। अदम ने कभी किसी सम्मान की लालसा में अपनी शैली नहीं बदली। उनका बेधड़क स्वर आज भी गुंजायमान है। अदम गोंडवी की वैचारिक परिपक्वता का एक साहसी उदाहरण कुछ इस तरह है कि-

ये अमीरों से हमारी फैसलाकून जंग थी
फिर कहाँ से बीच में मस्जिद व मंदिर आ गए।13 [हिंदवी]

गजल कि कोमलकान्त शब्दावली को त्रासदी और विडम्बना से जोड़कर दोनों गजलकारों ने हिन्दी साहित्य के समाजिक सरोकार और साहस को अभिव्यक्त किया। जैसा की पहले भी लिखा जा चुका है कि इन कवियों के पूर्व गजलों का कलेवर अलग था। किन्तु अंतिम दशक तक आते आते हिन्दी गजल साहित्य के सामाजिक सरोकार को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से काफी सक्षम था। दुष्यंत कुमार तथा अदम गोंडवी की ही तरह अन्य कवियों ने भी इस परंपरा को रुकने नहीं दिया। 'अन्य गजलकारों ने आर्थिक विषमता की भयावहता,सांप्रदायिकता की भीषणता,आम आदमी की लाचारी,विवशता,देहाती और महानगरीय जनजीवन की तमाम समस्याएँ,भूमंडलीकरण का भारतीय संस्कृति पर परिणाम,इसके परिणाम स्वरूप मानवीय मूल्यों में हो रहा पतन,सांप्रदायिक दंगो के कारण निर्माण हो रहा भयग्रस्त वातावरण आदि विषयों को निसंकोच पाठकों के सम्मुख रखा।'-14

निष्कर्ष-

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में सम्पन्न रही गजल परंपरा को देखकर यह कहना आसान ही होगा कि इसकी सफलता और लोकप्रियता में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका साधारनिकरण के सिद्धांत कि रही। हिन्दी गजल परंपरा व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर रही तथा अपनी संवेदनशीलता के कारण लोकप्रियता के नए कीर्तिमान स्थापित किए। आज गजल किसी वर्ग विशेष की साधन संपन्नता की सूचक ना होकर सर्वहारा वर्ग तक की चेतना में विद्यमान है। आधुनिक काल के कई गजलकार ऐसे हैं जो दुष्यंत कुमार की शैली और अदम गोंडवी की धरोहर संभालने वाले कहे जा सकते है। संवेदनाओ की दुनिया में गजल साहित्य की यही किर्ति उसकी उपलब्धि मानी जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ-

1-हिन्दी गजल अंतिम दशक-डॉ जयराम सूर्यवंशी पृ क्र- 20
2-हिन्दी गजल: अंतिम दशक- लेखक-डॉ जयराम सूर्यवंशी-पृ क्र-51
3-हिन्दी गजल के प्रमुख हस्ताक्षर पृ क्र.70 ले.मधु खराटे
4- हिंदवी
5-हिंदवी
6- गद्य कोष
7- हिंदवी
8- apnimaati.com
9- apnimaati.com
10- हिंदवी
11- apnimaati.com
12- apnimaati.com
13-दृष्टि ब्लॉग- अदम गोंडवी- संवेदना का विद्रोही स्वर।
14- हिन्दी गजल:अंतिम दशक-डॉ जयराम सूर्यवंशी-पृ क्र – 142

*****

हिंदी फिल्मों में गीत का महत्त्व

श्रीमती चौगुले अंजना आण्णासाहेब
अधिव्याख्याता, ज्युनिअर विभाग,
जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर।

शोध-सारांश:

हिंदी फिल्म गीत विश्व के जनमानस पर अमीट छाप छोड़ते हैं। गीतों में प्राकृतिक सौंदर्य, देश प्रेम के साथ व्यक्तिगत प्रेम और सौंदर्य, आपसी रिश्तों का महत्त्व तथा जीवन के प्रति सकरात्मक दृष्टिकोन होता है। काव्य में निहित ग्यारह रसों की अनुभूति गीतों में होती है। उसमें श्रृंगार रस के दोनों प्रकार अंतर्भूत होते हैं। साथ ही वीर रस, शांत रस, अद्‌भुत रस, वात्सल्य रस, भक्ति रस, हास्य रस आदि रसों के भी गीत होते हैं। बीभत्स रस, करूण रस, भयानकर रस और रौद्र रस की अनुभूति बहुत ही कम होती है। गीतों के माध्यम से मनुष्य जीवन में प्रेरणा, सकारात्मकता, प्रसन्नता, उम्मीद जाग उठती है। गीत अर्थपूर्ण होने के कारण मनुष्य अपने जीवन की छवि गीतों में देखता है। दूर संचार माध्यम के बढते प्रभाव के कारण गीतों का महत्त्व भी बढता जा रहा है।

बीज शब्द:

दूर संचार माध्यम, गीत, सिनेमा, मनुष्य, जीवन, समाज, सहसंबंध, प्रकृति, प्रेम, देशप्रेम, उम्मीद, अहमियत।

प्रस्तावना :

प्रत्येक कला समाज से ही जन्म लेती है। समाज को ही प्रभावित करती है। गीत और संगीत अंतरात्मा को छेड़कर जीवन का मधुर आनंद देनेवाला एक सशक्त माध्यम है। अंतर केवल उद्देश्य का होता है। हर व्यक्ति का गीत की तरफ देखने का अलग-अलग उद्देश्य होता है। रीतिकाल में गीत और संगीत विलासिता का माध्यम रहा, वहीं गीत भक्तिकाल में ईश्वर तक अपने भाव पहुँचाने ने का सशक्त माध्यम रहा है। गीत और संगीत के माध्यम से अपने युग के जीवन मूल्य अभिव्यक्ति होते हैं। यह बात साहित्य, गीत फिल्म को समान रूप से लागू होती है।

फिल्म यह समाज के हर ईकाई के लिए मनोरंजन का सशक्त माध्यम है। फिल्म यह दृक-श्राव्य माध्यम होने के कारण समाज पर उसका गहरा असर पड़ता है। वह अन्य माध्यम से नहीं पड़ता। फिल्म में कथा, पटकथा, संवाद, गीत, नायक-नायिका इन सभी की भूमिका अहम होती है। उसमें गीत तो फिल्म का प्राणतत्त्व है, जो फिल्म को मशहूर बनाने में बहुत सहायक होता है। गीतों की अनुभूति से दर्शक कुछ पल के लिए अपनी परेशानियाँ, समस्याएं, तकलीफ भूलकर मनको सुकून दिलाने में कामयाब हो जाता है। फिल्म का प्रभाव सभी उम्र, वर्ग तथा वर्ण के लोगों पर पड़ता है। हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार में फिल्म और गीतों का बहुत महत्त्व रहा है। गीत के माध्यम से समाज के हर ईकाई के मन की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। गीतों के माध्यम से मनुष्य जीवन विविध पहलुओं का अंकन होता है। इसलिए हिंदी फिल्म गीत 'वास्तविकता का पुन:सृजन' है। इसे ही (Recreation of Reality) कहा जाता है।

फिल्म (सिनेमा) एक ऐसा माध्यम है जो आम जनता तक पहुँचा है। फिल्म किसी खास वर्ग के लिए नहीं बनायी जाती। हर वर्ग का व्यक्ति चाहे वह अमीर हो या गरीब, शिक्षित हो या अशिक्षित हो सब फिल्में देखते हैं। सच्चाई तो यह है कि सिनेमा देखनेवाले दर्शकों में साधारण समझनेवाले लोगों की संख्या बहुत है। उसमें मजदूर, ठेलेवाले, घरों का काम करनेवाले नौकर, ड्रायव्हर आदि हैं। यह लोग भले ही हिंदी भाषा के व्याकरणिक नियमों को न जानते हो पर हिंदी फिल्में खूब देखते हैं। इतना ही नहीं पढे-लिखे अमीर घर के लोगों का भी मनोरंजन का साधन फिल्म ही है। हिंदी फिल्मों का प्राणतत्त्व संगीत है। संगीत के कारण ही हिंदी फिल्मों में एक तरह की ताजगी होती है। हिंदी फिल्मों के गीतकारों ने हर विषय को स्पर्श किया है। इसमें वात्सल्य, प्रेम, मानवता, प्रकृति, सौंदर्य, राष्ट्रीय एकात्मता आदि हर विषय पर गीत लिखे हैं। आनंद बख्शी, इंदीवर, गुलज़ार, जावेद अख्तर, अंजाम, खय्याम, शकील बदायुनी, हसरत जयपुरी, नीरज आदि गीतकारों ने सदाबहार नगमें लिखे हैं। सभी का अंदाज, अनुभूति और अभिव्यक्ति का अपना-अपना रंग एवं विशेषता है। इन सभी गीतकारों ने अपनी-अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार जनमानस को प्रभावित किया है। पुरानी फिल्म गीत अधिक भावपूर्ण, अर्थपूर्ण और मर्मस्पर्शी हैं। इन गीतों को हमारे देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी पसंद किया है।

विषय प्रवेश:

विश्व के जनमानस पर असर करनेवाला सर्वाधिक प्रभावी संचार माध्यम फिल्म है। फिल्मों में मानवीय जीवन के विविध रूप दृश्यमान होते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का प्रतिबिंब देखता है। मानव जीवन से जुड़े हर पहलुओं को चाहे वह

मानव मन का अंतर्द्वंद्व या बाह्य संघर्ष, सुंदर समाज की कल्पना हो या शांति की खोज इन सबको सिनेमा बड़ी सहजता एवं सफलता से अभिव्यक्त करता है। हिंदी फिल्म के गीत तो मनुष्य के मन को प्रतिबिंबित करता है। गीतकार अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में करता है। प्रेमानुभूति, सौंदर्यानुभूति, सत्यानुभूति, वेदनानुभूति को बड़ी मार्मिकता से प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रेम गीत, प्रकृति गीत, देशप्रेम गीत, भक्ति गीत तथा रिश्तों की अहमियत बतानेवाले गीत होते हैं। गीतों में सभी प्रकार के रसों की अनुभूति होती है- संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। वीर रस, शांत रस, भक्ति रस, वात्सल्य रस, हास्य रस, अद्‌भुत रस आदि रसों की अनुभूति होती है। बीभत्स रस, करूण रस, रौद्र रस, भयानक रसों की अनुभूति हिंदी फिल्म गीतों में न के बराबर है।

हिंदी फिल्म गीतों में विविधता होने के साथ-साथ आशय की गहराई भी होती है। गीतों के माध्यम से प्रकृति प्रेम, प्राकृतिक सौंदर्य, साल के मौसम का तथा प्रेम का संबंध जोड़कर प्यार की अहमियत भी बताई है।

1987 ई. में प्रदर्शित 'सिंदुर' फिल्म का गीत हमारे मन में प्रकृति प्रेम के साथ प्यार का इंतजार करने की अनमोल सीख देता है-

''पतझड़, सावन, बसंत, बहार
एक बरस के मौसम चार, मौसम चार
पाँचवा मौसम प्यार का इंतजार।''[1]

मौसम के बदलाव की तरह मनुष्य के जीवन में भी बदलाव आ सकता है। केवल इंसान को सब्र (इंतजार) करना चाहिए। प्रस्तुत संदेश में प्यार का उदात्त भाव भी पता चलता है।

कभी न खत्म होने वाले प्राकृतिक सौंदर्य, सामग्री का संबंध, कभी न खत्म होने वाले प्यार से जोड़कर प्यार का उदात्त भाव 'कुर्बान' (1991 ई.) फिल्म के इस गीत से स्पष्ट होता है-

''ये धरती, चाँद, सितारे,
यह नदियाँ, पवन घटायें,
मिट जायेगा सारा जहाँ रे
बस प्यार रहेगा यहाँ रे...
तू जब जब मुझको पुकारे
मैं दौड़ी आऊं नदियाँ किनारे...।''[2]

हिंदी फिल्म गीत हमेशा प्रासंगिक होते हैं। पुराने हिंदी फिल्मों में जो देशप्रेम दिखायी देता है, वह गीत आज भी लोगों के मन में देशप्रेम जगाता है। 'उपकार' (1967 ई.) फिल्म का यह गीत आज भी प्रासंगिक है-

''मेरे देश की धरती सोना उगले,
उगले हीरे मोती, मेरे देश की धरती...।''[3]

भारतीय संस्कृति को भ गीत के माध्यम से बरकरार रखा जाता है। एक दुल्हन के श्रृंगार में बिंदिया का जो महत्त्व हैं वहीं महत्त्व पूरी दुनिया में अपने देश का है, यह सहसंबंध बहुत ही मार्मिकता से 'परदेश' (1997 ई.) फिल्म के इस गीत में बताया है-

''ये दुनिया एक दुल्हन, दुल्हन
इसके माथे की बिंदियाँ
ये मेरा इंडिया
आय लव्ह माय इंडिया...।''[4]

श्रृंगार रस से भरे प्रेमगीत और संगीत समाज के हर वर्ग को मंत्रमुग्ध करते हैं। प्यार की ताकत और इतिहास को गवाह मानकर अपने प्यार का अमरत्व सिद्ध करनेवाले गीत हिंदी फिल्मों में बहुत ही ज्यादा है। उन्हीं में से यह गीत 'मुद्दत' (1986 ई.) फिल्म को प्रस्तुत है-

''प्यार हमारा अमर रहेगा,
याद करेगा जहाँ
तू मुमताज है मेरे ख्वाबों की
मैं तेरा शाहजान।''[5]

इसी के साथ हिंदी फिल्म गीत के माध्यम से भारतीय संस्कृति का महत्त्व भी बताया जाता है। विवाह जैसा पवित्र बंधन का महत्त्व तथा जीवनसाथी के साथ एकनिष्ठता का निर्वाह करनेवाले बहुत गीत है। जो 'रामचरितमानस' इस पौराणिक महाकाव्य में प्रभु राम का आदर्श रूप दिखाया है। राम जो एकबाणी, एक पत्नी, एक वचनी थे, वहीं आदर्श हमें आज के गीतों से मिलता है। अपने जीवनसाथी से एकनिष्ठ रहने तथा एक वचनी रहने की प्रेरणा मिलती है, 'वारिस' (1988 ई.) फिल्म के इस गीत से-

''मेरे प्यार की उमर हो इतनी सनम
तेरे नाम से शुरू, तेरे नाम पर खत्म
तेरी खुशी से है खुशी, तेरे गम से हे गम।''[6]

आपसी रिश्ते-नाते, प्यार, अपनापन, आत्मीयता की बुनियाद पर ही बने रहते हैं। परिवार के प्रति अपनापन तथा परिवार की ताकत ही आपसी प्रेम में रहती है। यह 'हम' (1991 ई.) फिल्म के इस गीत के माध्यम से पता चलता है-

''एक दूसरे से करते हैं प्यार हम
एक दूसरे के लिए है बेकरार हम
एक दूसरे के वास्ते मरना पड़े तो
है तैयार हमे...।''[7]

इस गीत के माध्यम से परिवार के सदस्य के प्रति प्यार, त्याग, समर्पण के भाव प्रकट होत हैं। जो परिवार की एकनिष्ठता के लिए आवश्यक है।

हिंदी फिल्म गीत जो श्रृंगार के साथ-साथ वियोग श्रृंगार के गीत भी फिल्मों में पाए जाते हैं। संयोग श्रृंगार गीत में नायक-नायिका का मिलन दिखायी देता है, जिसमें मिलने पर प्यार की कसमें ली जाती है। तो वियोग श्रृंगार में एक-दूसरे से बिछड़ने पर होने वाली पीड़ा, वेदना को व्यक्त किया जाता है। श्रृंगार से भरे संयोग श्रृंगार की भावाभिव्यक्ति निम्नांकित 'मोहरा' (1994 ई.) फिल्म के गीत में दिखाई देती है-

''ना गजरे की धार
ना मोतियों के हार
ना कोई किया श्रृंगार
फिर भी कितनी सुंदर हो
तुम तो मेरे प्रियवर हो।''[8]

किसी कारणवश नायक-नायिका बिछड जाते हैं तो वह एक-दूसरे की याद में तडप उठते हैं। इस भावाभिव्यक्ति में जो गीत होता है, वह वियोग श्रृंगार गीत का उदाहरण होते हैं। हिंदी फिल्म गीतों में ऐसे विरह गीत बहुत सहे है। उनमें से एक 'हम दिल दे चुके सनम' (1999 ई.) का यह गीत दृष्टव्य है-

''तड़प-तड़प के इस दिल से आह निकलती रही,
मुझको सजा दी प्यार की
ऐसा क्या गुनाह किया जो लूट गए...हाँ लूट गये
हम तेरी मुहब्बत में।''[9]

इसके साथ ही हिंदी फिल्मों में कुछ ऐसे गीत भी है, जो हमारे दिल में उम्मीद, उमंग जगाते हैं, कुछ कर दिखाने की चाह मन में जाग उठती है। कुछ करने की प्रेरणा उनसे मिलती है। मनुष्य जीवन को सफल बनाने के लिए, मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिए सकारात्मक सोच भी हमें हिंदी फिल्म गीतों से मिलती है। ऐसे ग त सुनकर मायूस मन में भी आशाएं पल्लवित होती रहती है। फिल्म 'रोजा' (1992 ई.) का यह गीत देखे-

''दिल है छोटा-सा, छोटी-सी आशा
मस्ती भरे मन की, भोली-सी आशा
चाँद-तारों को छूने की आशा
आसमान में उड़ने की आशा...।''[10]

शैलेंद्र जी के गीतों में जिंदगी की परिभाषा, जीने का ढंग और कठिन हालातों में भी लड़ते रहने का जोश नज़र आता है। 'अनाडी' (1959 ई.) फिल्म का उनका गीत है-

''किसी की मुस्कुराहटों पे हो निसार
किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार
किसी के वास्ते तेरे दिल में हो प्यार
जीना इसीका नाम है।''[11]

इसकी बेहतरीन मिसाल है। इस गीत में शैलेंद्र ने बड़ी गहरी बात को बड़े ही सादगी से व्यक्त किया है। इसमें ऐसे कोई भारी-भरकम शब्द नहीं है जिसका अर्थ समझने के लिए शब्दकोश का सहारा लेना पड़े। शैलेंद्र की इसी सादगी के कारण गुलज़ार कहते हैं- ''बिना शक शैलेंद्र को हिंदी सिनेमा का आज तक का सबसे बड़ा लिरिस्टिक कहा जा सकता है। उनके गीतों का खुरच कर देखें तो आपको सतह के नीचे दब गए अर्थ प्राप्त होंगे। उनके एक ही गीत में न जाने कितने गहरे अर्थ छिपे होते हैं।''[12] शैलेंद्र ने अपने बहुत से गीतों में जीवन की कठिनाइयों से न हारकर उससे दो-चार हाथ करने की प्रेरणा दी है।

पहले फिल्म का उद्देश्य सांस्कृतिक मूल्यों से समाज को प्रभावित करना था। आज समय बदल गया। आजकल फिल्म के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों का जतन करने बजाय मुनष्य मनोरंजन में दिलचस्पी ले रहा है। नवें दशक में नई टेक्नोलॉजी का आगमन हुआ। कम्प्यूटर का आगमन बड़ी घटना थी। साथ ही वैश्वीकरण, बाज़ारवाद को बढावा दिया गया है। अब साहित्य, सिनेमा और बाज़ारवाद में घोर युद्ध चल रहा है। जिसमें बाज़ारवाद को सफलता मिली है। सेक्स, हिंसा, अश्लीलता ने सिनेमा की संवेदना पर गहरा प्रहार किया है। जहाँ हिंदी फिल्मों में प्यार करने की बात का इजहार होता था वह अब गंदी बातें करना चाहते हैं। 'आर राजकुमार' (2013 ई.) फिल्म का यह गीत देखिए-

''ए.बी.सी.डी. पढ ली बहुत
ठंडी आहें भर ली बहुत
अच्छी बातें कर ली बहुत
अब करूँगा तेरे साथ
गंदी, गंदी, गंदी, गंदी बात।''[13]

इस तरह के गीतों का समाज पर गलत असर पड़ रहा है। ऐसे गीतों के कारण दर्शकों की रूचि बदल रही है। आज ऐसे लोग सिनेमा के साथ जुड़े हैं जिन्हें कला, साहित्य, संस्कृति की पहचान तक नहीं है। उन्हें तो सिर्फ शीला की जवानी का मजा उठाना है, मुन्नी को बदनाम करना है। बम्बई में बननेवाली फिल्मों ने व्यावसायिक उन्नति अब खूब हासिल की है मगर कलात्मक रूप से सिनेमा गर्त में जाता रहा है।

निष्कर्ष:

आज हिंदी फिल्मों की कथा, गीत, वेशभूषा समाज हित को लेकर नहीं बन रही है। आज हिंदी सिनेमा सार्थक विषयों पर आधारित कथाओं की प्रस्तुति से दूर चला गया है। देश, काल और सामाजिक दायित्व से कोसों दूर होता हुआ सैक्स, कम्प्यूटर तकनीक के तामझाम और सतही कथाओं पर आधारित सिर्फ एक 'टाईमपास मनोरंजन' मात्र रह गया है। ऐसी परिस्थिति में हिंदी सिनेमा में प्रति गंभीर सोच और वैचारिक स्तर पर गहराई से उतरकर अलग दृष्टिकोण से देखने की सार्थक कोशिश होनी चाहिए। निष्कर्ष रूप से कहा जाए तो हिंदी सिनेमा के सौ साल के इतिहास में सिनेमा के गीतों ने समाज को जीने की प्रेरणा दी है, जीवन की ओर देखने की सकारात्मक सोच दी है। इसे हमेशा उम्मीद से भरा रखने के लिए समूचे फिल्म जगत के और देश के हर एक नागरिक का कर्तव्य बनता है कि वह सुसंस्कृति का माहौल पैदा करे जिससे सिनेमा, साहित्य और देश की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे।

संदर्भ-सूची:

आधार ग्रंथ- साहित्य, समाज और सिनेमा - (संपा.) डॉ. सुनील बापू बनसोडे
1. गुगल सर्च इंजिन से -सिंदुर (1987 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
2. कुर्बान (1991 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
3. उपकार (1967 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
4. परदेस (1997 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
5. मुद्दत (1986 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत

6. वारि (1988 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
7. हम (1991 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
8. मोहरा (1994 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
9. हम दिल दे चुके सनम (1999 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
10. रोज (1992 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
11. अनाडी (1959 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत
12. सम्पा. हंस (मासिक पत्रिका) अंक- फरवरी-2013, हिंदी सिनेमा के सौ वर्ष विशेषांक, आम आदमी की पीड़ा का कवि- तेंद्र शर्मा, पृ.सं. 70
13. आर. राजकुमार (2013 ई.) फिल्म के गीत से उद्धृत

*****

लोकगीत साहित्य और संस्कृति

अस्मिता भगवान पाटील (शोधार्थी)
मोबाईल नंबर- 9022995388
डॉ. पतंगराव कदम आर्ट्स अँड कॉमर्स कॉलेज,
पेण, रायगड (शोध केंद्र).
इमेल-patilasmita073@gmail.com

सारांश:

सर्वसाधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्करों और ऋतुओं में गीत गाकर अपना मनोरंजन करती है। इसी मनोरंजन गीतों का लोक साहित्य के अध्ययन करने वाले विद्वानों ने विभिन्न दृष्टि से वर्णन विश्लेषण करने का प्रयास किया है। लोकगीतों को कुल ग्यारह प्रकारों में विभक्त किया है। जिसमें मुख्यतः संस्कार संबंधी गीत,चक्की और चरखे गीत,धर्म गीत,ऋतु संबंधी गीत,खेती संबंधी गीत,भीखमंगी संबंधी गीत,जाति गीत,वीरगाथा गीत,मेले संबंधी गीत,गीत कथा,अनुभव के वचन आदि का समावेश हुआ है। अत: लोकगीत लोक की सहज अनुभूति की सरल वाणीगत अभिव्यक्ति है। लोकगीतों का संबंध लोकजीवन के सुख-दु:ख के भावों से होता है।लोकगीतों में लोक संस्कृति का चित्रण अवश्य दिखाई देता है अर्थात लोकगीतों में लोक संस्कृति समाहित है। लोकगीत जीवन की प्रत्येक अवस्था यानी गर्भावस्था से लेकर मौत तक हर प्रकार से प्रेरणा ग्रहण कर काल के अनुरूप भावनाओं को अभिव्यक्त करता है।

बीज शब्द: लोक साहित्य, लोकगीत संगीत, परंपरा

लोक साहित्य समस्त लोक का प्रतिबिंब है और लोकगीत उसका एक अंग है। लोकगीत मानव मन का सहज उच्छवास है। लोकगीत एवं लोक जीवन में घनिष्ठ संबंध है। चूंकि लोक गीत लोक का,लोक के द्वारा लोक के लिए होता है।भारतीय लोकगीतों की परंपरा अति प्राचीन है। मानव सृष्टि के आरंभ से ही गीतों का अटूट रिश्ता बन गया है। गीत गाना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है,इसी प्रवृत्ति के कारण मौखिक परंपरा से लोक जीवन में प्रचलित लोकगीतों का निर्माण हुआ होगा। इसी लोकगीतों में लोक जीवन की भावनाएं, सुख-दु:ख,रुचि-अरुचि,जीवनानुभव चित्रित होते हैं। लोकगीत साहित्य की आत्मा है। शास्त्रीय नियमों की परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद की तरंग में जो छंदोंबद्ध वाणी मे कहता है,वही लोकगीत है। अर्थात लोकगीत "लोक में प्रचलित लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है।"1 प्राचीन काल से लेकर आज तक मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक लोकगीतों का प्रवास चलता रहा है।। इन लोकगीतों का रूप मौखिक है। अनेक भारतीय भाषाएं,बोलियों एवं उपबोलियां में पर्याप्त लोकगीत प्रचलित है। वेद,ब्राह्मण ग्रंथ पुराण,बौद्ध और जैन साहित्य में लोकगीतों का उल्लेख मिलता है।

लोकगीतों की उत्पत्ति-

लोकगीतों की उत्पत्ति के विषय में निश्चित समय का अंदाज नहीं लगाया जा सकता। परंतु विभिन्न विद्वानों का एकमत है कि यह निरक्षर जनता की संपत्ति रही है,जो कि श्रुति परंपरा पर आधारित है। इस प्रकार लोकगीत की परंपरा श्रुति परंपरा के साथ ही साथ वैदिक युग से आज तक चली आ रही हैं। लोकगीत की उत्पत्ति के संबंध में संगीत और कल्पनाओं को आधार माना गया है। लोकगीतों के उद्भव संबंधी जिज्ञासा को शांत करने के लिए देवेंद्र सत्यार्थी कहते हैं "कहाँ से आते हैं उनके गीत?स्मरण -विस्मरण की आंख मिचौनी से, कुछ अट्टहास से,कुछ उदास हृदय से। जीवन के खेत में यह गीत उगते हैं। कल्पना भी अपना काम करती है,रागवृत्ती भी,भावना भी और नृत्य का हिलोरा भी।"2

लोकगीतों की उत्पत्ति के संबंध में एक विशेषताएं यह रही है कि शुरू के जो भी गीत गाये गए उनमें स्त्रियाँ ही अग्रसर थी। स्त्रियों द्वारा ही लोकगीतों का प्रारंभ हुआ। पुत्र जन्म युज्ञोपवीत,विवाह,धार्मिक पर्व,सांस्कृतिक,सामाजिक,पारिवारिक जीवन में परंपरागत गीत गाने की पारंपरिक पद्धति थी। इस प्रकार लोकगीतों का निर्माण तो प्रय: कुछ ही व्यक्तियों के द्वारा होता है किंतु उसकी अनुभूति की व्यापकता जन-सामान्य के हृदय से मेल खाती है।

लोकगीतों का वर्गीकरण -

लोक-साहित्य जन-जीवन का दर्पण है तथा लोक-साहित्य जनता के हृदय का उद्गागार है। सर्वसाधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्करों और ऋतुओं में गीत गाकर अपना मनोरंजन करती है। इसी मनोरंजन गीतों का लोक साहित्य के अध्ययन करने वाले विद्वानों ने विभिन्न दृष्टि से वर्णन विश्लेषण करने का प्रयास किया है। लोकगीतों के जितने भी वर्गीकरण उपलब्ध है उनमें दो आधार पाए जाते हैं- प्रथम तो विषय वस्तु को आधार मानकर तथा द्वितीय गायन शैली को आधार बनाकर। परंतु वर्गीकरण में वैज्ञानिकता का अभाव दिखाई देता है। डॉ.मोहनलाल बाबुलकर के अनुसार,"लोक गीतों का विभिन्न विद्वानों द्वारा क्षेत्र विशेष के अध्ययन के आधार पर ही वर्गीकरण किया गया है। अध्ययन और स्थान विशेष विश्लेषण के कारण ऐसा कोई भी वर्गीकरण उपलब्ध नहीं होता जिसे पूर्ण वैज्ञानिक कहा जा सके।"3

लोकगीतों के वर्गीकरण प्रस्तुत कर्ताओं में सर्वप्रथम नाम रामनरेश त्रिपाठी का लिया जाता है। जिनमें संकलन के आधार पर लोकगीतों को कुल ग्यारह प्रकारों में विभक्त किया है। जिसमें मुख्यतः संस्कार संबंधी गीत,चक्की और चरखे गीत,धर्म गीत,ऋतु संबंधी गीत,खेती संबंधी गीत,भीखमंगी संबंधी गीत,जाति गीत,वीरगाथा गीत,मेले संबंधी गीत,गीत कथा,अनुभव के वचन आदि का समावेश हुआ है। श्री. त्रिपाठी जी का यह वर्गीकरण ही लोकगीतों के वर्गीकरण की परंपरा में आधारशिला के रूप में माना जाता है। इसके पश्चात डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने विभिन्न विद्वानों के वर्गीकरणों पर आलोचना प्रकट करते हुए वैज्ञानिक ढंग से अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया। जिसमें प्रमुखत: संस्कारों की दृष्टि से,रसानुभूति की प्रणाली से,ऋतुओं और व्रतों के क्रम से,विभिन्न जातियों के प्रकार से,क्रिया-गीत की दृष्टि से वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। राजस्थानी लोकगीतों के विद्वान पं. सूर्यकिरण पारीक ने अपनी पुस्तक में राजस्थानी गीतों का क्षेत्र विस्तार दिखलाते समय गीतों को उनतीस भागों में विभक्त किया है। श्री.भास्कर रामचंद्र भालेराव ने लोक गीतों को चार श्रेणियों में विभक्त किया है।इस प्रकार लोकगीतों के वर्गीकरण को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से शुद्ध रूप बताना कठिन है। क्योंकि सभी विद्वानों नेअपने वर्गीकरण को वैज्ञानिक कहा है और अपने से पूर्व विद्वानों की आलोचना की है।लेकिन सामान्यतः संस्कार संबंधी गीत,ऋतु संबंधी गीत,व्रत संबंधी गीत,जाति संबंधी गीत,देवी-देवताओं के गीत,कृषि संबंधी गीत आदि वर्गीकरण को ही प्रमुखता दी जाती है।

संस्कार तथा ऋतु संबंधी लोकगीतों में संस्कृति-

क) संस्कार संबंधी गीत-

हमारे जीवन के सभी कृत्य धर्म से ओतप्रोत है। मानव जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सोलह संस्कारों से संबंधित गीत संस्कार गीत के रूप में जाने जाते हैं। इसमें मुख्यत: जन्म,मुंडन,यज्ञोपवीत,विवाह,गवना आदि गीत विशेष है। स्त्रियां कोकिल कंठ से इन गीतों को गाकर अपने उल्लास और आनंद को प्रकट करती है।

1.सोहर- पुत्र जन्म के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को 'सोहर'कहते हैं। कहीं-कहीं इन्हें मंगल भी कहा जाता है। यह गीत 'सोहर'छंद में लिखे जाने के कारण इन गीतों का नाम सोहर पड़ा है। जन्मोत्सव के समय परिवार आनंद विभोर हो उठता है । उसी समय स्त्रियों के हृदय में आनंद की अपार लहर उठती है और वह आनंदमय गीत गाने लगती हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामलाल नहछू'की रचना इसी छंद में की है। विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की सोहरें गायी जाती हैं। एक सोहर की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है-

"आज ललन कै जनम भयो,
धरती सुफल भयो।
धनि-धनि भागी हमारी हो।"

2.मुण्डन के गीत- बालक जब बड़ा होने लगता है तब उसका मुण्डन संस्कार किया जाता है। संस्कृत में इसे 'चुडाकर्म'भी कहा जाता है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में मुण्डन संस्कार का उल्लेख किया है। मुण्डन षोडश संस्कारों में एक प्रसिद्ध संस्कार है। किसी पवित्र तीर्थ स्थान में,देवस्थान में अथवा नदी के किनारे यह संस्कार संपादित किया जाता है। बालक के जन्म के पहले,तीसरे,पांचवें या सातवें अर्थात् विषम वर्ष में ही इस कार्य को संपादित किया जाता है। यह अवसर ननद का भावज से हक मांगने का होता है,इसलिए वह भावज से विभिन्न चीजों की मांग के लिए हठ करती हैं। परंतु भावज ननद से किसी-न- किसी तरह से कोई वस्तु देकर उसे प्रसन्न करके अपने प्रिय पुत्र का मुण्डन कराने को कहती है। इसका एक उदाहरण देखिए-

"नाचहूं ए ननदी गावहूं, करहु मुडावन हो,

कालहि हाथ के कंगनवा निकालि,तोहे देइबि हो।"

4.यज्ञोपवीत के गीत- इसे 'जनेऊ' या 'उपनयन' संस्कार भी कहा जाता है। प्राचीन काल में यह संस्कार का बड़ा महत्व था। आज भी उच्च वर्ग ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग इसे बड़े उत्सव के रूप में करते हैं। यज्ञोपवीत संस्कारगत इन उपक्रमों में प्रौढ़ा स्त्रियों भी मन्त्रों के प्रत्येक उपक्रम के अवसर पर अलग-अलग गीत गाती है। यज्ञोपवीत की सामग्री एकत्र करते समय की एक झलक देखिए-

"उठ भैया लछीमन वाराणसी जौला,
वाराणसी जाइ बेर यज्ञ रची ल्यौला।"

5. विवाह के गीत- संस्कारों में सबसे महत्वपूर्ण और लोकप्रिय संस्कार विवाह माना जाता है। संसार की सभी जातियों में यह संस्कार बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। मनुष्य के जीवन में विवाह का जितना महत्व है उतना अन्य संस्कार का नहीं। भारतीय समाज में विवाह हमारे धार्मिक जीवन का आवश्यक अंग है।ऐसी लोक प्रथा है कि लड़की के विवाह (कन्यादान) के पश्चात् माँ बाप कन्या के ऋण से मुक्त हो जाते हैं।विवाह के अवसर पर कन्या के भावी-सुखमय तया दीर्घ जीवन की कामना की जाती है और कन्या के शरीर में नित्य हल्दी लगाने का कार्य होता है-

"कोइरिन कोइरिन तोहि मोरी रानी रे,
कहँवाँ के हरदी ऊपर कहलू आजु रे,
हमरा 'मन्जु देई अति सुकुवारि रे,
सहलो ना जाला हरदिया के झाक रे।"

6. गवना के गीत-विवाह के पश्चात किसी दूसरे निश्चित तिथि को पुत्री को विदा करने की विधि मतलब 'गवना'है।गवना के समय कन्या तथा उसका सम्पूर्ण परिवार दुःख के सागर में डूब जाता है और कन्या जब घर से निकल कर बाहर गाँव के किनारे एक नीम के पेड़ के नीचे पहुँचती है वहाँ पर अपनी डोली रोकने के लिये कहारों से इस प्रकार कहती है-

"निविया के नीचे डोला रोकि दे कँहरवा,
कि देखि लेहूँ गउँवा की ओर।
तनी एक डोला बेलमाई दे कँहरवा,
कि देखि तेहूँ सजना की ओर।"

ख) ऋतु संबंधी गीत- लोक साहित्य के आमतौर पर सभी बोलियां में,अपने जीवन में आवश्यक तथा प्रकृति के तीनों ऋतु के संबंध लोकगीत उपलब्ध है। विशेषतः गर्मी तथा ठंड की तुलना में वर्षा ऋतु के बहुत सारे लोकगीत उपलब्ध है। भारत के प्रत्येक राज्य में विभिन्न ऋतुओं में गीत गायन की परंपरा प्रचलित है।

1.कजली- सावन के मन-भावन महीने में उत्तर प्रदेश में कजली गाने की प्रथा है। इस मास में प्रकृति सर्वत्र हरी दिखाई पड़ती है। भक्त कवि सूरदास जी ने अपनी बंद आंखों द्वारा इस छटा का बड़ा सुंदर वर्णन किया है-

"जहाँ देखो तँह श्याममयी है।
श्याम कुंज,वन,यमुना श्यामा,
श्याम श्याम घन घटा हुई है।"

वर्षा ऋतु में आकाश में काले-काले बादल दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं काले बादलों से अच्छादित आकाश के नीचे खुले मैदान में कजली गायी जाती है।

2.होली- होली हमारा आनंद और मस्ती का त्यौहार है।फागुन मास में होली के सार्वजनिक उत्सव के अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'होली' कहते हैं। फागुन में गाए जाने के कारण भोजपुरी प्रदेश में इन्हें 'फगुआ'कहते हैं।ये फाग नाम से भी प्रसिद्ध है। इन गीतों में कहीं राधा और कृष्ण तो कहीं राम और सीता होली खेलते हुए दिखाई देते हैं-

"अवध माँ होली खेलै रघुबीरा,
सीता हाथ पिचकारी सोहै,
लक्ष्मण हाथ मंजीरा,
अवध माँ होली खेलै रघुबीरा।"

3.बारहमासा- पावस ऋतु में जो गीत गाए जाते हैं उन्हें 'बारहमासा'कहते हैं। इन गीतों में विरोहिणी की वेदना की अभिव्यक्ति पायी जाती है। इन गीतों में पति के वियोग के कारण बारह महीना में जो-जो कष्ट उठाने पड़ते हैं, उनका बड़ा ही मार्मिक वर्णन होता है। अतः इन्हें 'बारहमासा'कहते हैं। सुप्रसिद्ध कवि जायसी ने नागमती के विरह वर्णन में बारहमासा का प्रयोग किया है। इस गीत को दो स्त्रियां मिलकर गाती हैं।

" फाल्गुन मस्त महीनन ए सखि,
सब सखि घोरे ली अबीर।"

4.चैता- चैत्र के महीने में गाए जाने के कारण ही इस गीत का नाम 'चैता'पड़ गया है। चैता प्रेम के गीत है। इनमें वसंत की मस्ती और रंगीन भावनाओं का अनोखा सौंदर्य रहता है। भोजपुरी में चैता गीतों के लेखक बुलाकीदास है। भोजपुरी में इसे 'घाँटो'भी कहते हैं।

" ए रामा चइत अजोधा,
अरे रामा जी जनमले ए रामा।
घरे घरे।
बाजेली अनघ बधइया ए रामा।
घरे घरे।"

निष्कर्ष-

लोकगीत लोक की सहज अनुभूति की सरल वाणीगत अभिव्यक्ति है। लोकगीतों का संबंध लोकजीवन के सुख-दु:ख के भावों से होता है।लोकगीतों में लोक संस्कृति का चित्रण अवश्य दिखाई देता है अर्थात लोकगीतों में लोक संस्कृति समाहित है। लोकगीत जीवन की प्रत्येक अवस्था यानी गर्भावस्था से लेकर मौत तक हर प्रकार से प्रेरणा ग्रहण कर काल के अनुरूप भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। लोकगीतों से लोगों को अनेक लाभ भी होते हैं। जैसे- मन बहलाव,जन जागरण,अत्याचार का विरोध,ज्ञान वृद्धि आदि। प्रत्येक जातीय समाज के अपने गीत होते हैं जो हमें उनके जन जीवन के समस्त पक्षों का दर्शन कराते हैं। यह गीत साल भर विभिन्न प्रसंग,ऋतुओं,उत्सव और पर्वों पर गाए जाने के कारण मानव की सामूहिक भावना को व्यक्त करते हैं। यह जीत गेय होते हैं तथा इन लोकगीतों में लगभग सभी रसों की अभिव्यक्ति भी पायी जाती है। लोकगीतों का कर्ता अनामिक होते हुए भी परंपरा से जीवित रहकर वे आगे बढ़ते है। तो कुछ लोकगीत निर्मित के पश्चात लुप्त भी हो जाते हैं। निष्कर्षत: कहा कहा जा सकता है कि लोकगीत साहित्य और संस्कृति का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है।

संदर्भ ग्रंथ-

1.डॉ. शकुंतला चव्हाण- लोकसाहित्य विमर्श,प्रशांत पब्लिकेशन्स,3,प्रताप नगर, नूतन मराठा महाविद्यालय के पास,जलगांव-425001,प्रथम संस्करण: 2011,पृष्ठ संख्या 33
2.वही पृष्ठ संख्या 35
3.डॉ. बापूराव देसाई- लोक साहित्य समाज और संस्कृति,प्रशांत पब्लिकेशन्स,3, प्रताप नगर,नूतन मराठा महाविद्यालय के पास,जलगांव-425001,प्रथम संस्करण:2019,पृष्ठ संख्या 45
4.वही पृष्ठ संख्या 50
5.डॉ.कृष्णदेव उपाध्याय-लोक साहित्य की भूमिका,साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड,के.पी. कक्कड़ रोड,इलाहाबाद-211003,षष्टम संस्करण:1995,पृष्ठ संख्या 65
6.वही पृष्ठ संख्या 82
7.जगदम्बा प्रसाद पाण्डेय-लोक साहित्य, प्रकाशन केंद्र, सीतापुर रोड, लखनऊ-226050,पृष्ठ संख्या 113
8.वही पृष्ठ संख्या 115
9.वही पृष्ठ संख्या 117
10.वही पृष्ठ संख्या 118
11.वही पृष्ठ संख्या 122

*****

भीम गीत: दलित प्रबोधन

डॉ. सरिता बाबासाहेब बिड़कर
हिंदी विभाग प्रमुख
डॉ. घाळी कॉलेज, गडहिंग्लज
मोबाईल क्र: ९४२३८५८४१०
इमेल: saritabeedkar78@gmail.com

श्री अजय महेंद्र कांबले
(शोधछात्र)
शिवाजी विश्वविद्यालय,कोल्हापुर
मोबाईल क्र: ७०३८०८३०५५
इमेल: ak6424515@gmail.com

शोधसार (Abstract):

भारत में जातिवाद की जड़े आदिमकाल से दिखाई देती है। जाति व्यवस्था के कारण दलित समाज सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से हाशिए पर दिखाई देता है। जातिगत शोषण और सामाजिक संघर्ष के विरुद्ध की लड़ाई के ऐतिहासिक प्रक्रिया में साहित्यिक और सांस्कृतिक साधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हाशिए पर रहे इस समाज को सम - समान न्याय देने का कार्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने संविधान के माध्यम से दिया और दलित समाज को हाशिए से निकालकर मुख्य धारा में लाने का कार्य किया। इसी उनके कार्य, विचार एवं संघर्ष से प्रेरित 'भीम गीत' दलित समुदाय में चेतना, अधिकार बोध, शिक्षा का महत्व, इतिहास की पहचान और सामूहिक पहचान की अस्मिता जगाने वाला सबसे प्रभावशाली सांस्कृतिक और सामाजिक उपकरणों में से एक माध्यम है भीम गीत ।

बीज शब्द (Key Word): भीम गीत, दलित, हाशिए,सामाजिक, संविधान

उद्देश्य:

1) भीम गीतों का महत्व समझना।
2) भीम गीतों के माध्यम से प्रबोधन को पहचानना।
3) दलित प्रबोधन में भीम गीतों के योगदान को जानना।
4) भीम गीतों की सामाजिक भूमिका का विश्लेषण करना।
5) सामाजिक न्याय एवं समानता की दिशा में भीम गीतों का योगदान समझना।

प्रस्तावना:

जातिगत विषमता और सामाजिक दमन भारत में सदियों से चला आ रहा है। हिंदी साहित्य के इतिहास को भी देखते है तो उनमें भी हमें जातिगत भेदभाव आदिकाल से दिखाई देता है। इसी कारण दलित समाज सामाजिक भेदभाव और बहिष्कार का शिकार बनाता आ रहा है। इसीलिए सामाजिक, राजनीतिक , साहित्यिक, आदि के संसाधनों से यह समाज वंचित रहा हुआ दिखाई देता है। दलित समाज में जातिगत भेदभाव जैसी समस्याओं को कबीर से लेकर वर्तमान के दलित साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से उजागर कराने का कार्य किया है। लेकिन उनके साहित्य को जितना स्थान हिंदी साहित्य में मिलना चाहिए वह मिला नहीं बल्कि उनके साहित्य को दबाने प्रयास किया गया। इसी जातिगत भेदभाव और छुआछूत को खत्म करने का कार्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने भारत को संविधान देकर किया। "डॉ. भीमराव आंबेडकर एक सदियों से चली आ रही सामाजिक न्यायविद,लेखक, प्रख्यात असमानता को समाप्त करने के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था, उनका विश्वास था कि यदि समाज में परिवर्तन लाना है तो व्यक्ति के अंतर्मन में साहस होना चाहिए और वह उसके दृढ़ संकल्प, कठोर परिश्रम तथा सतत मेहनत से उत्सर्जित होता है यही कारण था कि वे भारतीय समाज में व्याप्त छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने में सक्षम हुए थे।"[1]

उनके इस कार्य को साहित्यिक एवं सांस्कृतिक माध्यम से लोगों तक पहुंचाने का कार्य किया। वर्तमान युग में जहां पारंपरिक संगीतों के साथ साथ नए सांस्कृतिक माध्यम उभरे है उनमें से ही एक 'भीम गीत' है जो दलित युवाओं के लिए अभिव्यक्ति और प्रतिरोध का साधन बनकर उभरा है। वर्तमान स्थिति में भीम एक प्रतिरोधी सांस्कृतिक परंपरा के रूप में उभर कर आए है। भीम गीतों ने दलित समाज को आवाज दी, उनके संघर्षों को वैचारिक दिशा दी और डॉ.आंबेडकर के विचारों को भीम गीतों के माध्यम से समाज का प्रबोधन करने का कार्य कर रहे है। वर्तमान में भीम गीत केवल मनोरंजन के गीत नहीं तो आंबेडकरवादी आंदोलन बनता हुआ दृष्टिगोचर होता है। भीम गीत दलितों के मौखिक परंपरा और लोक संगीत पर आधारित

सांस्कृतिक रूप है, जो डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के 3 मूल मंत्र शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संघटित रहो इन मूल्यों को भीमगीतों के माध्यम से सरल भाषा में पहुंचाते है।

भीम गीतो की उत्पत्ति और विकास:

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की मातृभूमि महाराष्ट्र होने के कारण उनके आंदोलनों की शुरूआत महाराष्ट्र की भूमि से हुई दिखाई देती है। उस दौर में महाराष्ट्र के लोक कलाओं में जागर, भारुड, और पोवाडा जैसे अनेक मौखिक माध्यम समाज में प्रबोधन का कार्य करते थे। उस दौर में पढ़ने लिखने का अधिकार मात्र एक वर्ग तक सीमित था इसी वजह से अधिकांश लोग अनपढ़ थे। शिक्षित लोगों तक पहुंचने का माध्यम साहित्य था तो अशिक्षित लोगों तक पहुंचने का माध्यम गीत बने। "डॉ. आंबेडकर भारत में एक ऐसे वर्गीहीन समाज की संरचना चाहते थे, जिसमें । जातिवाद, वर्गवाद, संप्रदावाद, तथा ऊंच - नीच का भेद न हो और प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता के अनुसार सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए स्वाभिमान और सम्मान पूर्ण जीवन सके।"[2] इस सब के लिए उन्होंने जो संघर्ष किया उससे प्रेरित होकर अनेक प्रकार के लिखित और मौखिक साहित्य और गीतों का निर्माण किया गया। उन्हीं गीतों को को बाबासाहेब के नाम से पहचाना जाने लगा। इस प्रकार उनके ऊपर लिखे गए गीतों को भीम गीत कहा जाने लगा।

गोपाल गुरु की पुस्तक ' दलित कल्चरल मूवमेंट एंड डाइलेक्ट्रिकल दलित पॉलिटिक्स इन महाराष्ट्र' की भूमिका में वे कहते है - "महाराष्ट्र के दलित सांस्कृतिक आंदोलनों ने दो ऐतिहासिक काम किये। एक तो इन्होंने दलित जनता की सांस्कृतिक जरूरतों तथा आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अपनी कविता, लोकगीत और वाद्य संगीत के यंत्र बनाए, दूसरा इन्होंने डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व तथा उनके बाद चल रही मुक्ति की राजनीति के लिए रैडिकल संदर्भ निर्मित किया।"[3] इन भीम गीतों को अधिक मजबूती के साथ ताकत देने का कार्य विभिन्न प्रकार के आंदोलनों को जाता है। जो मूलतः महाराष्ट्र की भूमि में हुए थे। इन आंदोलनों में दलित पैंथर की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। दलित पैंथर आंदोलन ने भीम गीतों प्रतिरोध और क्रांतिकारिता की भाषा को धार देने का काम किया। इसी वजह से वर्तमान भीम गीतों में शोषक वर्गों की खुली आलोचना, अधिकार-आंदोलनों की माँग, विभिन्न समस्याओं को शब्दों के माध्यम से उजागर करना और प्रतिरोध की चेतना दिखाई देती है। 'वर्तमान में कोई भी आंदोलन छेड़ा गया तो उसे ताकत देने का कार्य भीम गीत करते है'। आज भारत में हिंदी,पंजाबी, तमिल और मराठी जैसे अनेक भाषाओं में भीम गीत बन रहे है। लेकिन सबसे अधिक भीम गीतों का प्रबोधन महाराष्ट्र के मराठी भाषा में होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए जब भी भीम गीतों की बात होंगी तो उनमें प्रमुखता से मराठी गीतों के नाम अपने आप आ जाएंगे। इन गीतों को इस ऊंचाई तक पहुंचाने के कार्य प्रमुख गीतकार वामन दादा कर्डक, प्रल्हाद शिंदे, आनंद शिंदे, नामदेव ढसाळ, आदर्श शिंदे, सागर पवार आदि को जाता है।

शिक्षा के प्रति जागरूकता:

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर अपने बचपन से ही जातिगत भेदभाव और छुआछूत का शिकार हुए थे। उनके दौर में मनुष्य को पशुओं से भी तुच्छ समझा जाता था। शिक्षा का भी अधिकार न के बराबर था। ऐसे स्थिति में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर पाठशाला के बाहर बैठकर पढ़ते थे। इसीलिए इन सभी संघर्षों से वे परिचित थे। उन्होंने अपनी पढाई भारत ही नहीं तो विदेशों के सर्वोच्च विश्विद्यालयों से की तभी वे समझ गए कि अपने समाज को इस जातिगत भेदभाव से मुक्त करने का एक मात्र साधन शिक्षा है। उन्होंने अपनी अथक मेहनत और परिश्रम से भारत जैसे विशाल देश का संविधान लिखा। अपने समाज के लोगों को शिक्षा का महत्व क्या है? हम शिक्षित बनकर इस व्यवस्था के मुख्यधारा में कैसे आ सकते है इसका कीर्तिमान उदाहरण अपने रूप में समाज के सामने रखा। इसके साथ ही दलित समाज के सभी लोगों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अपने अलग अलग सम्मेलनों एवं सभाओं में से शिक्षित बनिए 'शिक्षा यह शेरनी का दूध है, जो भी पियेगा दहाड़ेगा।' ऐसे संदेशों से सभी लोगों को जागरूक करने का काम डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर करते थे। उनके इसी विचार को कई गीतकार अपने गीतों के माध्यम से शिक्षा का प्रचार करते है और शिक्षा लेने के लिए प्रेरित करते है। जैसे मराठी भीम गीत की कुछ पंक्तियां

"तुमच्या पोरांन शाळेत शिकावं
अशा लाचारी ला मुका
असं सभेमधी भाषण व माय भीमाने केलं
कुणी नाय केलं भलं व माय भीमाने केलं।।"[4]

इस गीत के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि, आपके बच्चे पढ़ते है, तो वह कभी कमजोर नहीं बनेंगे। क्योंकि शिक्षा वह शक्तिशाली हथियार है,जो व्यक्ति को अपने अधिकार एवं परिस्थितियों से लड़ने के लिए ताकद प्रदान करती है। शिक्षा हासिल

करने वाला व्यक्ति कभी किसी के सामने नतमस्तक नहीं होता। शिक्षा का अधिकार जो हमें मिला है यह सिर्फ और सिर्फ बाबासाहेब आंबेडकर की देन है। उन्होंने ना सिर्फ हमारे लिए शिक्षा के द्वार खुले किए बल्कि अपने जीवन में मरते दम तक वो लोगों को शिक्षा के महत्व के बारे में संदेश देते रहे। उनके इसी विचार को गीतकार सागर पावर ने अपने गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

महिलाओं के लिए कार्य:

स्वाधीनता से पहले महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उनको सिर्फ घर तक सीमित रखा जाता था। चूल्हा चौकी करना ही महिलाओं का काम है ऐसी धारणा बनी हुई थी। महिलाओं को व्यक्तिगत अधिकार न के बराबर थे। सदियों से चली आ रही रूढ़ी और पपरंपरा से चले आ रहे बंधनों में महिलाएं बंधी हुई थी। इसी वजह से उन्हें व्यक्ति स्वातंत्र्य न के बराबर था। सतीप्रथा, केशवपन, बालविवाह जैसे अनेक प्रथाओं का सामना उन्हें करना पड़ता था। इन प्रथाओं के विरोध में अनेक समाजसुधारकों ने अपने कदम बढ़ाए। उनमें सबसे प्रथम महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, छत्रपति शाहू महाराज, पंडिता रामबाई जैसे विभिन्न समाज सुधारकों ने महिलाओं के व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी। इसी लड़ाई को आगे ले जाने का कार्य डॉ. भीमराव आंबेडकर जी द्वारा किया गया और वह उसमें सफल हुए। उन्होंने संविधान के माध्यम से महिलाओं व्यक्ति स्वातंत्र्यता और समानता दी। महिलाओं के लिए 50% आरक्षण दिया। हिंदु कोड बिल में महिलाओं के लिए अनेक प्रावधान बनाए जब संविधान सभा में हिंदू कोड बिल का विरोध हुआ तो उन्होंने अपने कायदे मंत्री पद से इस्तीफा दिया। अंततः सरकार पर दबाव बना कर हिंदू कोड बिल लागू किया। वर्तमान में महिलाओं को जो भी स्वातंत्र्यता एवं अधिकार प्राप्त है उनमें सबसे अधिक योगदान डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी का है। "समानता, स्वतंत्रता और बंधुआ को विधिवत रूप से भारत में स्थापित करने वाले महान समाज सुधारक डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के कार्यों व प्रयत्नों से आज भी भारतीय शिक्षित नर - नारी पूर्णतः परिचित नहीं है।"[5] इसी लिए उनके इस कार्य को सभी लोगों तक पहुंचाने का कार्य गीतकार सुमेध जाधव अपने गीत के माध्यम से करते है। उनके गीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार।

"बंद झाल्या त्या चाली- रीती
मंद मती ला आली गती
झाले भीमराव घटनापती
मग झाली महिला राष्ट्रपती। "[6]

बाबासाहेब आंबेडकर जी के इस कार्य के कारण जो उन महिलाओं को पहले घर चलाने के अधिकार नहीं था, उन्हें बाबासाहेब के संविधान की वजह से देश के प्रधानमंत्री और राष्ट्रपती बनकर देश चलाने का अधिकार प्राप्त हुआ। आज भारत में महिलाएं सर्वोच्च पद पर विराजमान होती हुई दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो वर्तमान में भारत के सर्वोच्च संवैधानिक राष्ट्रपती पद पर 'द्रौपदी मुर्म ' जी विराजमान हुई दिखाई देती है। इसीलिए "डॉ. आंबेडकर ने सदियों से चले आ रहे नारी उत्पीड़न और शोषण को समाप्त करने तथा नारी को अंधेरे से निकालकर प्रकाश की तरफ बढ़ाने का जो रास्ता दिखाया उसके लिए बाबासाहेब आंबेडकर प्रशंसा के पात्र है।"[7]

जातिगत शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध:

जातिभेद और छुआछूत की प्रथा आदिमकाल से दिखाई देती है। जातिव्यवस्था की मूल जड़े वहां से ही समाज में बड़े पैमाने पर गढ़ी हुई थी। जातिव्यवस्था के कारण लोगों को परंपरागत व्यवसाय ही करना पड़ता था। उन्हें न पढ़ने का अधिकार था, न कोई अन्य व्यवसाय करने का अधिकार था। उस समय पढ़ने का अधिकार एक वर्ग के लोगों तक सीमित था। अगर कोई पढ़ता भी था तो उसे कई समस्याओं का सामना करना पड़ता था। स्वयं डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर इतने उच्चशिक्षित होने के बावजूद उन्हें जातिभेद और छुआछूत जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा।

उन्हें भारत का संविधान लिखने का अधिकार मिला और 1947 में वे मसूदा समिति के अध्यक्ष बने। अस्पृश्यता अपराध विधेयक पर 6 सितम्बर 1954 को राज्यसभा में बोलते हुए बाबासाहेब ने कहा "अस्पृश्यता के प्रति अपराध करने वालों को सजा दिए बिना उन्मूलन नहीं होगा। सामाजिक बहिष्कार करने वालों को सजा देनी चाहिए क्योंकि वे अपनी अच्छी स्थिति के कारण देहातो में अस्पृश्यों का बहिष्कार करते है और अस्पृश्यों को संविधान से प्राप्त अधिकारों के उपयोग में द्वेष भावना कर सकते है।"[8] उसी कारण बाबासाहेब आंबेडकर ने संविधान के माध्यम से सदियों से गढ़ी हुई जातिव्यवस्था और वर्णव्यवस्था की जड़ों को उखाड़ कर फेंकने का कार्य किया। मनुष्य को मनुष्य की तरह जीने का अधिकार दिया। कोई भी व्यवसाय जातिगत चली आ रही

परंपराओं से नहीं, तो अपनी काबिलियत के अनुसार करने का अधिकार देने का कार्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के कठीन परिश्रम के कारण संभव हुआ। उनके इसी कार्य को लोगों तक पहुंचाने का कार्य भीम गीतकार सारंग और उत्तमदादा फूलकर जी ने अपने गीत के माध्यम से किया।

"काखेत लेकरू हातात झाडंन,
डोईवर शेणाची पाटी
कपडा न लत्ता, खरकट भत्ता
फजिती होती माय मोठी,
माझ्या भीमाने, माझ्या बापाने
भीमाने माय सोन्याने भरली ओटी ।" [9]

इस गीत के माध्यम से गीतकार डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के संविधान लिखने के पूर्व स्थिति और संविधान लिखने के बाद उनके जीवन में किस तरह बदलाव हुए है, यह दर्शाते है। वर्तमान भारत में मनुष्य को जो न्याय, समानता और हक्क यह देने का कार्य सिर्फ डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी की वजह से ही मुमकिन हुआ । उन्होंने ही दलित समाज को गांव के बाहर से उठकर गांव के बीच में रहने का अधिकार दिया है। उनके इसी कार्य को भीम गीतों के माध्यम से दलित समाज का प्रबोधन किया जाता है।

राजनीतिक जागरूकता:

राजनीतिक जागरूकता किसी भी समाज के विकास का मूल अधिकार होता है। लेकिन स्वतंत्रता पूर्व दलित समाज ने लंबे समय तक सामाजिक बहिष्कार और राजनीतिक उपेक्षा झेली, जिसके कारण उनमें राजनीतिक चेतना का निर्माण धीमी गती से हुआ। क्योंकि बहुत लंबे समय तक दलित समाज का नेतृत्व भी उच्च वर्ग के लोग करते थे। "जातिव्यवस्था ने दलित समाज का शोषण किया और दलितों पर पीड़ादायक प्रतिबंध लाद दिए। दुर्बलता, दारिद्रता और अज्ञानता के कारण दलित समाज लुटा गया इसीलिए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने कहा कि दलितों में आत्मसम्मान की भावना जागृत होनी चाहिए उन्होंने यह भी कहा कि दलितों को सत्ता के सूत्र और कानून बनाने की ताकत हासिल करनी चाहिए।"[10] इसी राजनीतिक लड़ाई को भीमराव आंबेडकर जी ने आगे बढ़ाया और संविधान लिखते समय उन्होंने इसे न्याय देने का कार्य किया। दलित एवं पिछड़े समाज को शैक्षिक और राजनीतिक आरक्षण देने का कार्य किया। उनका मानना था कि हर समाज के व्यक्ति को सत्ता के केंद्र होना चाहिए और अपने समाज का नेतृत्व उसी समाज के लोगों द्वारा किया जाना चाहिए। उनके इसी कार्य की वजह से आज संसद में हर एक समाज के व्यक्ति को जाने का मौका मिलता है। उनके इसी दिए हुए अधिकार को भीम गीतकार अपने गीतों के माध्यम से राजनीतिक जागरूकता लाने का कार्य करते है।

"एका वकीलाच्या लेखणीने
त्याच्या कायद्याच्या आखणीने
आमच्या हक्काच, आमच्या हक्काच
आमच्या हक्काच लेखन व माय भीमाने केलं
मग कुणी नाय केलं भलं व माय, भीमाने केले
अग, दिल्लीचं दालन खुल ग माय भीमाने केलं ।"[11]

समाज के प्रति त्याग एवं आत्मसम्मान की भावना:

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर स्वयं दलित समाज के होने के कारण उनको सभी समस्याओं से जूझना पड़ा था। इसी लिए उन्होंने पढ़ - लिखकर अपने समाज को मुख्यधारा में लाने के लिए कई प्रकार के आंदोलन किए। दलित समाज के लोगों को कुएं से पानी निकालकर पीने का अधिकार नहीं था। जिस कुएं से पशु पक्षी पानी पी सकते थे लेकिन दलित समाज मनुष्य होकर उन्हें वह अधिकार नहीं था। डॉ. बाबासाहे आंबेडकर ने महाड़ चवदार तालाब का सत्याग्रह किया। और दलित समाज के लिए पानी पीने के अधिकार को प्रदान किया। दलित समाज के लोगों को मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता था उन्होंने 'काळाराम मंदिर सत्याग्रह' किया। और मंदिरों के द्वार खुले किए। उस दौर में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर सबसे पढ़ें लिखे विद्वानों में से एक व्यक्ति थे। वह चाहते तो अपने परिवार के साथ आरामदायक जीवन बिता सकते थे। लेकिन उन्होंने अपने परिवार से पहले अपने समाज को प्राथमिकता दी।

समाज को अंधकार से निकालकर प्रकाशमय जीवन जीने के लिए मिले, इस लिए वे दिन - रात कड़ी मेहनत करते थे। जब उन्हें मौका मिला उन्होंने देश को एक विस्तृत्व संविधान दिया। जिसमें सभी समाज के वर्गों को सम - समान अधिकार दिए। "संविधान द्वारा उन्होंने देश के हर वर्ग, नारी श्रमिक, किसान आदि को कल्याणकारी सुरक्षा विधिवत रूप से प्रदान की"[12] उनके इसी कार्य और त्याग के भावना को भीम गीतों के माध्यम से लोगों तक पहुंचाया जा रहा है।

"नाही कधीच पटणार नाही
ही मनधरणी चतुराई,
बोले ठासून भीम त्या ठायी
राव जमायचं आपलं नाही,
अशा दीड दमडीच्या पायी
माझा समाज विकणार नाही।।"[13]

आंबेडकर जी कहते थे 'अगर मुझे निजी हित और देश के हित में से एक को चुनना पड़े तो मैं देश के हित को चुनूंगा, लेकिन मेरे देश के हित और दलित हित में से एक चुनना है तो मैं अपने दलित हित का चयन करूंगा।' उनके यह विचार अपने समाज के प्रति आत्मसम्मान की भावना को को प्रकट करते है। डॉ. बाबासाहेब ने हमेशा समाज और देश का हित ही देखा है।उपर्युक्त गीत में यही समर्पण की भावना को दर्शाया गया है।

निष्कर्ष:

भीम गीत दलित समाज की सामाजिक चेतना जगाने का सबसे प्रभावी माध्यम रहे हैं। ये गीत सिर्फ गाने नहीं,, बल्कि उनमें समाज को जगाने वाली ताकत, अन्याय के खिलाफ खड़े होने का साहस और जीवन बदलने की प्रेरणा इन गीतों छिपी होती है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों ने समाज को समानता और न्याय की राह दिखाई, लेकिन इन विचारों को लोगों तक पहुँचाने का बड़ा काम भीम गीतों ने किया। इन गीतों के जरिए बाबासाहेब के संदेश आम लोगों तक बहुत सरल, भावनात्मक और सीधे तरीके से पहुँचते गए। इससे वह जागृति पैदा हुई, जो केवल किताबें या भाषण नहीं ला सकते थे।

भीम गीतों ने दलित समाज में आत्मसम्मान की भावना जगाई। जो लोग सदियों से भेदभाव और अपमान झेल रहे थे, उनके मन में इन गीतों ने यह विश्वास पैदा किया कि वे भी सम्मान और अधिकार के योग्य हैं। गीतों ने यह समझाया कि शिक्षा लेकर, एकजुट होकर और संघर्ष करके जीवन बदला जा सकता है। इसी कारण कई परिवारों में शिक्षा का महत्व बढ़ा और नई पीढ़ी आगे बढ़ने लगी।

इन गीतों ने समाज के भीतर एकता और सामूहिक पहचान भी बनाई। जब लोग एक साथ भीम गीत गाते हैं, तो उन्हें महसूस होता है कि वे अकेले नहीं हैं उनकी पीड़ा, उनके सपने और उनका संघर्ष साझा है। यह भावना समाज में ताकत और आत्मबल पैदा करती है।

समय के साथ भीम गीतों ने अपने रूप बदले, लेकिन उनका उद्देश्य वही रहा। आज ये गीत डिजिटल माध्यमों, यूट्यूब और सोशल मीडिया के जरिए लाखों युवाओं तक पहुँच रहे हैं। नई पीढ़ी आधुनिक धुनों और नए अंदाज़ में भीम गीत गाती है, जिससे उनका प्रभाव और भी बढ़ गया है। इस तरह भीम गीत आज भी समाज को जागरूक करने का काम निरंतर करते जा रहे हैं।

कुल मिलाकर, इस शोध से यह बात स्पष्ट होती है कि भीम गीत सामाजिक चेतना जगाने का सिर्फ सांस्कृतिक साधन नहीं, बल्कि दलित समाज के आत्मविश्वास, शिक्षा, संघर्ष और परिवर्तन की यात्रा का आधार हैं। उन्होंने लोगों को यह सिखाया कि अपने अधिकारों के लिए खड़ा होना जरूरी है और समानता पर आधारित समाज संभव है। यही कारण है कि भीम गीत आज भी आंदोलन की आत्मा माने जाते हैं और सामाजिक परिवर्तन की राह में प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं

संदर्भ सूची:

1. Mahar Encyclopedia Britannica (w.w.w. britannica.com) Archived from the original on 30 Nov,2011 Retrieved 12 Jan
2. डॉ. जोशी गोपा, (2006) भारत में स्त्री असमानता, हिंदी माध्यम कार्यकन्वयन निदेशालय वी. वी. नई दिल्ली
3. डॉ. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली. पृष्ठ. क्र 11
4. गीतकार सागर पवार (https://share.google/o5Nn5EIeFUWKzhqRC)

5. मेघवाल कुसुम (2005), भारतीय नारी के उद्धारक डॉ.0भीमराव आंबेडकर, संपर्क प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ क्र 78.
6. गीतकार सुमेध जाधव (https://youtu.be/wCbLDCTIdyI?si=E3xUbWVRvohcfBkL)
7. मेघवाल कुसुम (2005), भारतीय नारी के उद्धारक डॉ.0भीमराव आंबेडकर, संपर्क प्रकाशन नई दिल्ली.
8. धनंजय कीर (1966) डॉ. आंबेडकर जीवचरित्र, पापुलर प्रकाशन, प्रा. लि. नई दिल्ली, पृष्ठ क्र 434)
9. गीतकार सारंग, उत्तम दादा फूलकर (https://marathi.brambedkar.in/sonyan-bharli-oti-song-lyrics/)
10. डॉ. शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली. पृष्ठ. क्र 57
11. गीतकार सागर पवार (https://share.google/o5Nn5EIeFUWKzhqRC)
12. मेघवाल कुसुम (2005), भारतीय नारी के उद्धारक डॉ.भीमराव आंबेडकर, संपर्क प्रकाशन नई दिल्ली.
13. (https://share.google/YVymfOFsUsW11ZGkZ)

*****

हिन्दी ग़ज़ल : सामाजिक परिदृश्य

प्रा.जयसिंग गोवर्धन चवरे
कला व विज्ञान महाविद्यालय
सावर्डे ता.चिपळूण जि.रत्नागिरी
पिन -४१५६०६ (महाराष्ट्र)
संपर्क -९७६६५८४३४६
इमेल- jaysingchavare@gmail.com

सारांश:

हिन्दी ग़ज़ल में सामाजिक विकास की गति और तकनीकी विकास के परिणाम का रूप मिलता है | जिसमें उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण, लोकतांत्रिक सिद्धांत, नारी-विमर्श और नवीन पारिवारिक परिप्रेक्ष्य ने ग़ज़ल के विषयवस्तु को अधिक विस्तृत बनाया है | आज के युग की ग़ज़ल प्रेम और विरह के साथ-साथ व्यक्ति के भीतर के द्वन्द्व, समाज की असंगतियाँ और सांस्कृतिक परिवर्तन का यथार्थ चित्रण करती है | भाषिक परिप्रेक्ष्य से हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप अधिक मौलिक बना हुआ है | जिसमें संस्कृत, फारसी, उर्दू और जनसामान्य की हिन्दी का समन्वय मिलता है | संवाद परक भाषा, संक्षिप्त अभिव्यक्ति, सांकेतिकता और तीक्ष्ण व्यंजना आदि गुण हिन्दी ग़ज़ल को अनन्य साधारण महत्व प्राप्त करते है | इसी वजह से हिन्दी ग़ज़ल आज के युग में अधिक लोकप्रिय बन गई है |

बीज शब्द: ग़ज़ल, समाज, संस्कृति, साहित्य

भूमिका-

आधुनिक भारतीय साहित्य में ग़ज़ल प्रसिद्ध और प्रभावशाली काव्य-विधा मानी जाती है | ग़ज़ल मूलतः अरबी और फारसी साहित्य में मिलती है | ग़ज़ल ने हिन्दी साहित्य में आते ही विविध बदलाव, वृद्धि और संवेदन-बहुलता का स्वीकार किया | प्रारंभिक युग में हिन्दी ग़ज़लो पर उर्दू ग़ज़लों का प्रभाव मिलता है | किन्तु समय के साथ नवीन बदलाओं के आधार पर हिन्दी ग़ज़ल ने अपनी अलग पहचान निर्माण की है | जिसमें हिन्दी ग़ज़ल सिर्फ प्रेम, विरह, श्रृंगार और निजी पीड़ा तक ही सीमित दायरे में नहीं रही, बल्कि इसमें सामाजिक असमानता, राजनीतिक विसंगतियाँ, मानवीय संघर्ष, नैतिक ह्रास, नारी-चेतना, श्रमिक-जीवन,उपभोगवाद, वैश्विक परिवर्तन और जनतांत्रिक मूल्य आदि विविध सामाजिक पहलुओं को प्रधानता दी है |

समाज में समय के साथ नए-नए परिवर्तन होते रहते है और साहित्य में उस परिवर्तन का यथार्थ रूप मिलता है | हिन्दी ग़ज़ल की विशेष प्रवृत्ति यह है कि इसमें कम से कम शब्दों में गहरी व्यंजना,प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति और तीव्र सामाजिक चुनौतियाँ को विवेचित करने की क्षमता होती है | दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, निदा फ़ाज़ली, शहरयार, दाराशिकोह फिरोज़ाबादी, बशीर बद्र आदि साहित्यकारों ने ग़ज़ल को समाजोन्मुख दृष्टि का प्रभावी मंच प्रदान किया है | उसने लोक-जीवन की पीड़ा, व्यवस्था-विरोधी आवाज़, समता एवं न्याय की अभिलाषा और मानवीय संवेदनाओं का संघर्ष आदि प्रधान विषय को स्थान दिया गया है |

अतःप्रस्तुत शोध आलेख द्वारा हिन्दी ग़ज़लों में प्रतिबिम्बित सामाजिक परिवेश का विवेचन किया जाएगा | जिसमें हिन्दी ग़ज़ल की परंपरागत धारा, विषय-बहुलता, प्रमुख ग़ज़लकार और सामाजिक चेतना का विश्लेषण किया जाएगा |

हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा –

भारतीय साहित्य में ग़ज़ल का इतिहास लगभग एक हजार साल पुराना माना जाता है | आरंभिक दौर में ग़ज़ल उर्दू से उन्नत हो गई,किन्तु समान सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना की वजह से हिन्दी कवियों ने इसमें समाहित भावनाओं को स्वीकारा | हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन काव्य–धारा में श्रृंगार वर्णन के माध्यम से ग़ज़ल के स्वर मिलते है, किन्तु आधुनिक युग में हिन्दी ग़ज़ल मुख्यतः१९वीं तथा २० वीं सदी के प्रारंभ में मानी जाती है | हिन्दी ग़ज़ल का इतिहास सिर्फ साहित्यिक घटकों का विकास करना ही नहीं है,बल्कि भारतीय समाज जीवन की परिवर्तित मानसिकता और जीवन की वास्तविकता का सजीव रूप भी है | जिसमें मुक्तिबोध, शिवमंगल सिंह 'सुमन', दुष्यंत कुमार,शेरजंग गर्ग,कुंवर बेचैन, निदा फ़ाज़ली,तालिब खैराबादी, बशीरबद्र, अदम गोंडवी, राहत इन्दौरी आदि कवियों ने हिन्दी ग़ज़ल को नया मुकाम प्राप्त किया है | मुख्यतः दुष्यंत कुमार को हिन्दी ग़ज़ल के सामाजिक संवेदना का प्रवर्तक माना जाता है |उन्होंने अपनी ग़ज़लो के माध्यम से सामाजिक परिदृश्य,राजनीतिक विसंगतियाँ,जन संवेदना और सत्ता-विरोधी आवाज़ उठाने में एतिहा -सिक काम किया है |

हिन्दी ग़ज़ल में सामाजिक विकास की गति और तकनीकी विकास के परिणाम का रूप मिलता है | जिसमें उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण, लोकतांत्रिक सिद्धांत, नारी-विमर्श और नवीन पारिवारिक परिप्रेक्ष्य ने ग़ज़ल के विषयवस्तु को अधिक विस्तृत बनाया है | आज के युग की ग़ज़ल प्रेम और विरह के साथ-साथ व्यक्ति के भीतर के द्वन्द्व, समाज की असंगतियाँ और सांस्कृतिक परिवर्तन का यथार्थ चित्रण करती है | भाषिक परिप्रेक्ष्य से हिन्दी ग़ज़ल का स्वरूप अधिक मौलिक बना हुआ है | जिसमें संस्कृत, फारसी, उर्दू और जनसामान्य की हिन्दी का समन्वय मिलता है | संवाद परक भाषा, संक्षिप्त अभिव्यक्ति, सांकेतिकता और तीक्ष्ण व्यंजना आदि गुण हिन्दी ग़ज़ल को अनन्य साधारण महत्व प्राप्त करते है | इसी वजह से हिन्दी ग़ज़ल आज के युग में अधिक लोकप्रिय बन गई है | अतःकहना होगा कि आज के युग में हिन्दी ग़ज़ल ने सौंदर्य, संवेदना और सामाजिक बोध को प्रस्तुत करते हुए साहित्य जगत में विशेष स्थान प्राप्त किया है |

हिन्दी ग़ज़ल और सामाजिक यथार्थ -

हिन्दी ग़ज़लों में समाज जीवन के विविध पहलुओं का यथार्थ चित्रण मिलता है | वह निम्नतः –

राजनीतिक और सामाजिक असंगतियों का विवरण-

आधुनिक हिन्दी ग़ज़लों में राजनीतिक और सामाजिक असंगतियों का मार्मिक वर्णन मिलता है |जिसमें भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था, सत्ता की लालसा और जनतांत्रिक सिद्धांतों का विनाश आदि को ग़ज़लकरों ने प्रखर व्यंग्य और सूक्ष्म व्यंजना के द्वारा उजागर किया है| राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन मूलतःराष्ट्र प्रेम और राष्ट्र हित के आदर्श विचार धार के आधार पर लढा गया था | आजादी के बाद उन आदर्शों के आधार पर हमारे देश की शासन व्यवस्था की कार्य पद्धति में और समाज जीवन में स्थापित करने की आवश्यकता थी, किन्तु आजादी के पश्चात राजनीतिक प्रतिनिधि द्वारा उसे अपनी सुविधानुसार बदला गया है | इससे समाज जीवन के आदर्श मूल्यों का पतन होता रहा है | इस वर्तमान व्यवस्था के संदर्भ में डॉ.अनिलकुमार शर्मा लिखते है की -" जनतंत्र मानव-कल्याण का वाहक होता है, किंतु ऐसा लगता है कि भारतीय जनतंत्र की समूची ऊर्जा ही आज जैसे स्खलित-सी हो गई है। जैसे- जैसे लोकतंत्र आयु की सीढ़ियों पर चढ़ता जा रहा है, वैसे- वैसे इसकी आंतरिक विकृतियाँ विकराल रूप लेती जा रही हैं । डरावना यथार्थ तो यह है कि जिन लक्ष्यों के लिए और जिन मूल्यों के संबध के साथ इसकी स्थापना की गई थी, वे वर्तमान राजनीति की गतिविधियों के कारण पूरी तरह लुप्त होते जा रहे हैं।"१ साथ ही दुष्यंत कुमार,अदम गोंडवी, अलोक श्रीवास्तव और कुमार विश्वास आदि ग़ज़लकरों ने व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है |

“यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।” २ (दुष्यंत कुमार)

हिन्दी ग़ज़लों में सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता, आर्थिक अभाव, वंचित वर्गों का दुःख और आधुनिक जीवन आदि के प्रति विरोध का यथार्थ विवेचन मिलता है | ग़ज़लकरों ने सामान्य लोगों की पीड़ा और संघर्ष को प्रतीकात्मक भाषा, सांकेतिकता और प्रखर व्यंग्य के द्वारा पाठकों के सामने लाने की कोशिश की है | जिससे ग़ज़ल सिर्फ एक काव्य कृति ही नहीं सामाजिक चेतना का एक साधन बन जाती है |

वर्गीय संघर्ष और आर्थिक असमानता-

हिन्दी गज़लों में समाज के वर्गीय संघर्ष का यथार्थ रूप दिखाई देता है | जिसमें – आमिर-गरीब, उच्च वर्ग–निम्न वर्ग, मजदूर–किसान संघर्ष,बेरोजगारी और श्रमिक वर्ग की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण मिलता है | साथ गरीब वर्ग का दुख और आमिर व्यक्तियों की विलासीता के अंतर का चित्रण मिलता है | जिसमें मुमताज और गुलजार की गजलों में वर्गीय संघर्ष का रूप मिलता है | भूख, गरीबी और बेरोजगारी से आज मनुष्य का जीवन दयनीय होता जा रहा है | उसकी पीड़ा को सुनने के लिए आज किसी के पास वक्त ही नहीं है | अतः हिन्दी गजल में इसका विवेचन निम्नतः दिखाई देता है –

“भूख से एँठी अंतड़ियाँ,प्यास से सूखे अधर ,
कफन का टुकडा तलक ,दूभर हवाये के लिए |”३

स्वततंत्रा के पश्चात आज भी समाज में वर्गभेद की कई घटनाए दिखाई देती है | अपनी राजनीतिक सत्ता बनाए रखने के लिए धर्म, संप्रदाय, जाति, भाषा, क्षेत्र व प्रांत आदि में लोगों को बांटकर एक दूसरे के प्रति द्वेष की भवन फैलाने का प्रयास किया जाता है | जिसमें सामान्य व्यक्ति को उसका नुकसान सहना पड़ता है | इस संदर्भ में राम मेश्राम जी की गजल की पंखी निम्नतः -

“आग भड़की, खून पानी हो गया

ख़ौफ़ में, दिल ब्रह्मज्ञानी हो गया।"४

नारी विमर्श और सामाजिक समता –

स्वतंत्रता के बाद आज भी समाज में नारी के प्रति समानता की भावना का विकास नहीं हुआ है | ग्रामीण इलाकों में अधिकांश माहिलाएं आज भी पारंपरिक रीति रिवाजों की भांति उपेक्षित जीवन बीता रही है | दूसरी ओर शिक्षित माहिलाएं आज वह घर से बाहर निकलकर नौकरी और राजनीति में अपनी पहचान बना रही है ,किन्तु उसकी मानसिकता स्वतंत्र निर्णय लेने की अपेक्षा पुरुषों के अधीन रहने की अधिक मिलती है | आधुनिक हिन्दी गज़लों में नारी के कर्तव्य, अधिकार, संघर्ष, दमन और मानसिक पीड़ा का संवेदनशीलता चित्रित किया है |

"कहीं तलाक, कहीं अग्नि परीक्षाएँ है
आज भी इन्द्र है, गौतम है, अहल्याएँ हैं।"४ (वशिष्ठ अनूप)

हिन्दी गज़लों में निदा फ़ाज़ली और मुनव्वर राना जैसे हिन्दी गजलकारों ने नारी-सम्मान,मातृ-भावना और नारी-संवेदना को नई दिशा दी है | साथ ही कई गज़लों में दहेज की परंपरा, पारिवारिक हिंसा, नारी–शिक्षा और समानता आदि घटकों को प्रभावशाली रूपों में चित्रित किया है |

मानवीय संवेदना और नैतिक मूल्य –

हिन्दी गज़ल आज केवल भावनात्मक अनुभूति का रूप ही नहीं रही है, बल्कि उसमें सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और नैतिक मूल्यों को अर्थ प्रदान करनेवाली एक सशक्त साहित्यिक विधा बन गई है | जिसमें व्यक्ति के दुख, पीड़ा, वेदना, नारी स्वातंत्र्य, मजदूर संघर्ष और टूटते पारिवारिक रिश्ते का सजीव वर्णन मिलता है |

हिन्दी गज़लों में नैतिक मूल्यों का मार्मिक चित्रण मिलता है | जिसमें सत्य, दया, ईमानदारी,अस्तित्व और मानवता पर अधिक बल दिया है | साथ ही समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, सत्ता की दुरव्यवस्था,नैतिकता का ह्रास और सामाजिक विषमता हिंदी ग़ज़लकारों ने तीखा प्रहार किया है | आज के युग में व्यक्ति अपने बूढ़े माता –पिता को मानसिक ही नही, शारीरिक तौर से पीड़ा देता हुआ दिखाई देता है | इस सन्दर्भ में डॉ.गोपाल बाबु शर्मा की ग़ज़ल की पंक्तियाँ निम्नत: दिखाई देती है –

" शराफत हो गई झूठी,
इनायत हो गई झूठी |
लगे माँ –बाप अब पीटने ,
शरारत हो गई झूठी | " ५

अतःकहना होगा की हिन्दी गज़ल समाज की यथार्थ घटनाओं का दर्पन ही नहीं बल्कि समाज परिवर्तन का सशक्त माध्यम है | इसमें भाव-प्रेरणा, स्वरबद्धता और भाषिक अभिव्यंजकता का एसा वर्णन मिलाता है, जो पाठको में जाग्रति निर्माण करते है | दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी जैसे हिंदी ग़ज़लकारो ने ग़ज़ल को सामाजिक और राजनितिक चेतना का माध्यम बनाया है | उन्होंने समाज के सामान्य व्यक्ति की पीड़ा, दुःख तथा संघर्ष को अभिव्यक्त करके जनसामान्य के मन में परिवर्तन की चेतना जगाई है |

निष्कर्ष-

हिंदी गज़लकरों ने समाज की परिवर्तित स्थिति,चुनौतियों और अनुभूति को अपनी संवेदनशील दृष्टी से चित्रित किया है | उन्होंने प्राचीन से आधुनिकता तक का दौर पूरा करते समय विविध बदलावों को स्वीकारते हुए सामाजिक विमर्श को मार्मिक ढंग से विवेचित किया है | आधुनिक हिंदी ग़ज़ल में सिर्फ प्रेम और भाव-संवेदना ही नही,बल्कि समाज परिवर्तन, संघर्ष, प्रतिवर्तन, मानवीय संवेदना का जिवंत दस्तावेज माना जाता है | आज के युग में मनुष्य विविध संकटों और चुनौतियों का सामना कर रहा है | इसी समय हिंदी गज़ले मनुष्य को आत्म-परीक्षण, सचेत और सहानुभूति के प्रति प्रेरित करती है | अतः कहना होगा कि हिंदी गज़लों का सामाजिक परिदृश्य सिर्फ साहित्यिक ही नहीं,बल्कि समाज-परक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व पूर्ण माना जाता है |

संदर्भ सूची –

१. ज़हीर कुरेशी एवं डॉ.मीनाक्षी दुबे (संपादक), सादगी का सौंदर्य: वशिष्ठ अनूप का सृजन, साहित्य भंडार, प्रयागराज, २०२३, पृ.१४२.
२. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पाँचवी आवृत्ति,२०१३, पृ.१५
३. चंद्रसेन विराट : धार के विपरीत ,पृ -११६
४. राम मेश्राम, आग में उड़ान, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, २०२४ पृ.११०
५. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, २००६ पृ.१७
६. डॉ सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.स.-२००१ ,पृ.१५५

*****

जिंदगी का ऑक्सीजन : फिल्मी गीत

डॉ. जयसिंग मारुती कांबळे
अस्थायी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
संपर्क : 9838832252
ईमेल : kjaysing@gmail.com

शोध सार -

मनुष्य की अभिव्यक्ति एवं मनोरंजन का एक साधन फिल्म है। फिल्मी गानों ने जनमानस पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ा है। फिल्म की सफलता में गीतों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। गीत भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा है। इसीलिए कोई भी त्योहार, प्रसंग हो गाने बजाए जाते हैं। गीत फिल्म की पटकथा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण होते हैं। फिल्म निर्माता गीतों के माध्यम से संवाद निर्माण करते हैं। गीत के माध्यम से मनुष्य अपनी भावनाओं को सहज एवं प्रभावी ढंग से व्यक्त करता है। संगीत और गीत दर्शकों में भावनाओं को जगाने और कहानी से जुड़ाव पैदा करने में महत्वपूर्ण निभाते हैं। गीत आनंद को जीतने उत्साह से दिखाते हैं, वहीं मायूसी के वातावरण को उतने ही गहराई से निर्माण कर सकते हैं। गीतों के माध्यम से एकता की भावना निर्माण करना, सांस्कृतिक पक्ष को उजागर करना, सामाजिक समस्याओं को जनमानस के सामने प्रस्तुत करना आसान है। फिल्म के विपणन, व्यवसाय की व्यवस्था गीतों पर निर्भर दिखाई देती है। फिल्मों को लोकप्रिय बनाने में गीतों का स्थान सबसे ऊपर दिखाई देता है। मनुष्य जब भी संकटों से घिरा रहता है तब उसे संभालने का, उसकी और फिल्म की भी जिंदगी में ऑक्सीजन भरने का काम यहीं फिल्मी गीत करते हैं। यहीं वजह हैं कि हर साल भारत में सौ से डेढ़ सौ हिंदी फिल्मों की निर्मिति होती हैं और छः सौ से अधिक फिल्म के लिए गाने लिखें जाते हैं। इससे फिल्मों में होनेवाला गीतों का महत्व स्पष्ट होता है।

उद्देश्य -

1. हिंदी फिल्मी गीतों का परिचय कराना।
2. गीत के महत्व को विश्लेषित करना।
3. हिंदी फिल्मों में होनेवाला गीतों का महत्व स्पष्ट करना।

शोध प्रविधि –

सर्वेक्षण, डाटा संकलन, विश्लेषण।

बीज शब्द –

फिल्म, गीत, संगीत, पटकथा, चेतना, ऑक्सीजन।

विषय विवेचन -

मनुष्य की अभिव्यक्ति एवं मनोरंजन का एक साधन फिल्म है। जिसमें आभासी दुनिया तैयार करके भासमान सृष्टि निर्माण की जाती है। चलत चित्रों की सहायता से इसे सजीव बनाया जाता है। फिल्म देखते समय पर्दे पर घटनेवाली बात सच लगने लगती है। वरिष्ठ फिल्मकार प्रसून सिन्हा का मानना है कि, "फिल्म एक साहित्य है। फिल्म अपने आप में सिमटी हुई एक सम्पूर्ण कला का संसार है।"[i] फिल्म में लेखन, अभिनय, संगीत, गायन जैसी अनेक कलाओं का संगम होता है, इसी वजह से इसे संपूर्ण कला कहा जाता है। साथ ही फिल्में ऐतिहासिक दस्तावेज भी होती हैं। तरुण भटनागर कहते हैं, "मनुष्य का आधुनिक इतिहास फिल्मों में दर्शित, चित्रित और संरक्षित है। किसी समय विशेष का विश्व अगर जानना-समझना हो, तो बस इतना ही करना होगा कि उस समय की फिल्में देख ली जायें।"[ii] सिनेमा एक लोकप्रिय माध्यम है जिसकी बुनियाद जनरंजन है। गीत मन को सहज छूनेवाली, भावों को अभिव्यक्त करनेवाली विधा है। छोटा हो या बड़ा हर कोई गीतों में खो जाना पसंद करता है। गीत मनुष्य को जितनी सहजता से भूतकाल की यादों में मशगूल कराता है उतनी ही सहजता से भविष्य के सपनों की सफर कराता है। आनंद हो या दुख को व्यक्त करने में गीत अपनी भूमिका निभाता है। भारतीय समाज में शादी ब्याह हो या तीज त्योहार गीतों के बिना अधूरे माने जाते हैं। जहाँ गीत आनंद निर्माण करते हैं वहीं दुख के समय में मन को शांति देने का काम भी करते हैं।

कविवर डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने गीत के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है -

"गीत चेतना के सिर कलंगी,
गीत खुशी के मुख पर सेहरा

गीत विजय की कीर्तिपताका,
गीत नींद गफलत पर पहरा"[iii]

जब जिंदगी के हर पलों पर गीतों का प्रभाव रहता है वहीं हिंदी सिनेमा इससे कैसे बच सकता है। सन 1931 में प्रदर्शित 'आलम आरा' फिल्म के बाद हिंदी सिनेमा में गीतों का सैलाब सा आ गया। 1932 में प्रदर्शित 'इंद्रसभा' नामक फिल्म में 72 गाने थे। अगर 2016 से 2025 तक प्रदर्शित फिल्मों और गानों की संख्या पर नजर डाली जाए तो 1193 फिल्में एवं 5965 गीतों की निर्मिती हुई है। जिसका विवरण निम्नांकित है –

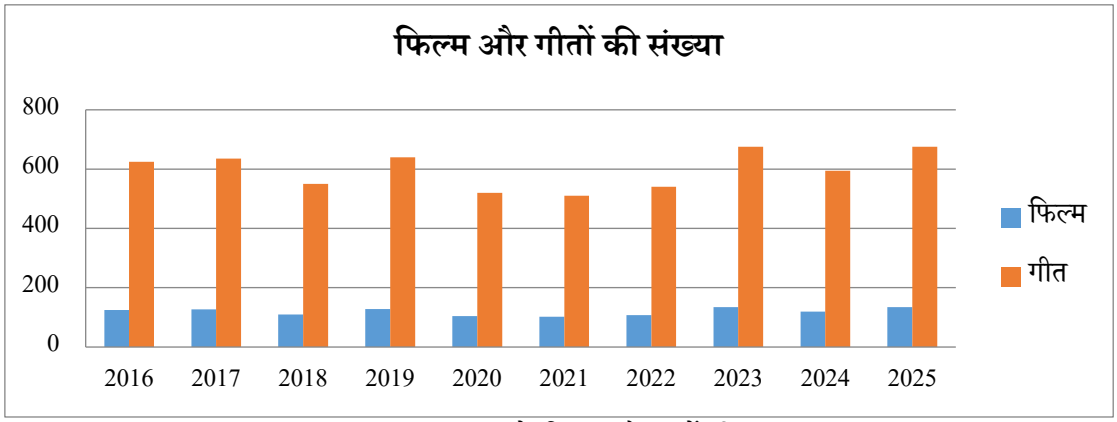

(2016 – 2025 तक के फिल्म और गानों की संख्या)

इस कालखंड में बनें फिल्मी गीतों की विशेषताएं देखी जाए तो प्रेम गीत, नई शैली के गीत, पुराने गानों का रीमिक्स, पार्टी गीत, लोकसंगीत एवं क्षेत्रीय प्रभाव, दर्दभरे, शांत नगमें, देशभक्ति परक गीत ऐसे जीवन के अनेक क्षेत्र से जुड़े गीत निर्माण हुए हैं। निम्नांकित पाई चार्ट से इन गानों की प्रतिशत का पता चलता है।

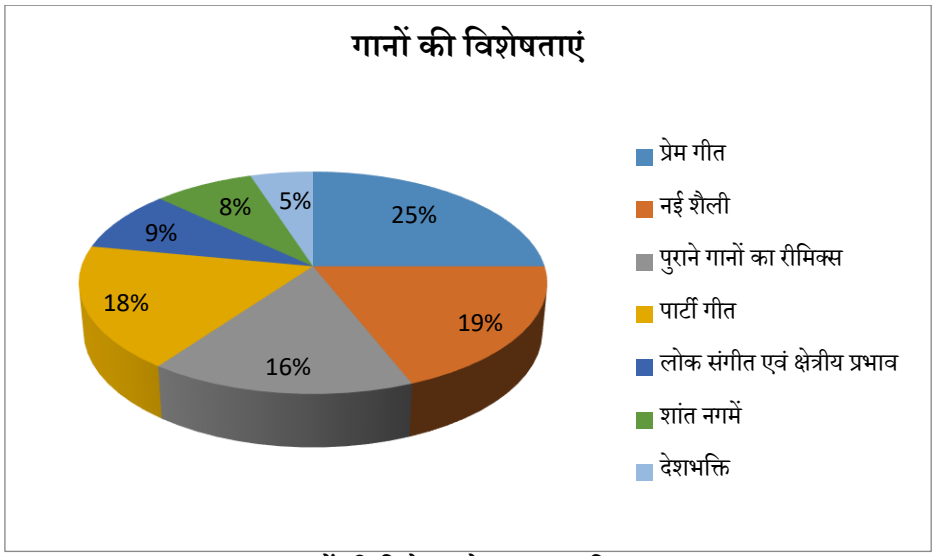

(गानों की विशेषता के अनुसार प्रतिशत)

उपर्युक्त जानकारी फिल्मों में गीतों के महत्वपूर्ण स्थान स्पष्ट करती है। भारतीय फिल्मों में गीतों ने मिल के पत्थर की भूमिका निभाई हैं। कई फिल्में सिर्फ गानों की वजह से यादगार ठहरी हैं। इसलिए फिल्मों में होने वाले गीतों के महत्व को जानना आवश्यक है।

हिंदी फिल्मों में गीतों का महत्व –

फिल्म की पटकथा का हिस्सा :

गीत फिल्म के पटकथा का अभिन्न अंग होते हैं। पटकथा को आकार देने और कम शब्दों में अधिक जानकारी देने का काम गीत करते हैं। दर्शकों पर पटकथा का गहरा प्रभाव डालने में गीतों का स्थान महत्वपूर्ण है। फिल्म की पटकथा आनंद, दुख, विरह, प्रेम अथवा घटित घटनाओं को लेकर लिखी जाती है। अत: इन प्रसंगों को चैतन्यमय बनाने का काम गीत करते हैं। फिल्म

की पटकथा में जान भरने का काम गीत करते हैं। अनेक फिल्मों की पटकथा भारतीय समाज के सामाजिक उच्च-नीचता के भेद पर आधारित उनकी पटकथा को आगे बढ़ाने में फिल्मी गीत सहायक हैं। जैसे 1959 में प्रदर्शित दीदी फिल्म का गाना -

"कुछ इंसान ब्राह्मन क्यों हैं
कुछ इंसान हरिजन क्यों हैं
एक की इतनी इज्जत क्यों है
एक की इतनी जिल्लत क्यों है"[iv]

सटीक संवाद निर्मिति में सहाय्यक : फिल्म की सफलता में उसके संवाद अहम माने जाते हैं। गीत फिल्मी संवादों को सटीक बनाने में सबसे अधिक सहाय्यक होते हैं। गीतों के माध्यम से फिल्म निर्देशक चरित्रों की मनोदशा को संक्षेप में प्रस्तुत करता है। जिसका प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है। जैसे – 'कभी कभी मेरे दिल में खयाल आता है', 'कुछ कुछ होता है' फिल्म का गीत 'कुछ कुछ होता है', 'तिरंगा' फिल्म के गीत। यशवंत फिल्म का गीत 'एक मच्छर आदमी को हिजड़ा बनाता है' नाकाम लोगों पर व्यंग्य कसता है।

भावनात्मक जुड़ाव : संगीत और गीत दर्शकों में भावनाओं को जगाने और कहानी से जुड़ाव पैदा करने में महत्वपूर्ण निभाते हैं, जो केवल दृश्यों से संभव नहीं होता। गीतों की क्षमता को प्रसून जोशी बड़े ही खूबसूरत शब्दों में स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि, "गीत हमारी खुशनुमा दुनिया की जरूरत को पूरा करते हैं। गाने उपचार करने की शक्ति रखते हैं।"[v]

माहौल का निर्माण : गीत फिल्म के लिए एक विशेष माहौल बनाते हैं, चाहे वह खुशी का हो, दुख का हो या किसी उत्सव का। जैसे कि शम्मी कपूर की 'चाइना टाउन' फिल्म का गीत 'बार बार देखो, हजार बार देखो' आज भी उतना ही गुनगुनाया जाता है। शादी-पार्टी में थिरकना होता है तो इसी गीत की डिमांड होती है। 'आदमी सड़क का' फिल्म का गीत 'आज मेरे यार की शादी है' बारात का जरूरी गीत बन गया। 'लेकिन' फिल्म का गीत 'ओ यारा सिली सिली बिरहा के रात का जलना' विरह का वातावरण निर्माण करने में सफल हो गया। वहीं 'शहिद' फिल्म की गझल ' सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में हैं यारों', 'केसरी' फिल्म का गीत 'तेरी मिट्टी में खो जाऊँ' जैसे गाने सुनकर हमारे रगों में खून दौड़ने लगता है, देशभक्ति का जुनून सँवारता है।

एकता की भावना को बढ़ावा देना : फिल्मी गीतों ने मानवी एकता को बढ़ावा देने का काम किया है। एकता कठिन से कठिन काम भी आसान बनाती है। एकता के माध्यम जो काम अकेला आदमी नहीं कर सकता वहीं अगर मिलकर किया जा सके तो उसमें सफलता मिल ही जाती है। नया दौर फिल्म के गाने के माध्यम से यह बात स्पष्ट होती है -

"साथी हाथ बढ़ाना...
एक अकेला थक जाएगा
मिलकर बोझ उठाना
हम मेहनत वालों ने जब भी
मिलकर कदम बढ़ाया
सागर ने रस्ता छोड़ा
परबत ने सीस झुकाया
फौलादी हैं सीने अपने,
फौलादी हैं बाहें
हम चाहे तो पैदा कर दें
चट्टानों में राहें"[vi]

कथात्मक प्रगति : गीत कहानी को आगे बढ़ाते हैं, महत्वपूर्ण क्षणों को रेखांकित करते हैं, और कभी-कभी पात्रों के अतीत को दर्शाते हैं या आने वाले दृश्यों का पूर्वाभास देते हैं। 1954 में प्रदर्शित बूट पॉलिश फिल्म का कथानक सामाजिक स्तरीयता पर आधारित है। ऊपरी स्तर के लोग कम श्रम में भी अधिक धन कमाते हैं और निचले तबके के लोगों को अधिक श्रम के बावजूद पैसों के लिए तरसना पड़ता है। इस भेदभाव को दिखाते हुए फिल्म के गीत में शैलेन्द्र ने लिखा है -

"पंडित जी मंतर पढ़ते हैं
वह गंगा जी नहलाते हैं
हम पेट का मंतर पढ़ते हैं

जूता का मुंह चमकाते हैं
पंडित की पांच चवन्नी है
अपनी तो एक इकन्नी है
भेदभाव ये कैसा है
जब सबका प्यारा पैसा है"[vii]

गीतों के माध्यम से फिल्म की कहानी आगे बढ़ने में सहायत्ता होती है। अनेक बार कहानी के अनुसार गीतों का निर्माण किया जाता है।

सामाजिक प्रश्नों को उजागर करना : फिल्मों के माध्यम से अनेक सामाजिक प्रश्नों को उजागर किया जाता है। वर्तमान समाज में उच्च शिक्षा हासिल करके भी अनेक युवक बेरोजगार हैं। यह स्थिति अनेक सालों से चलती आ रही है। सन 1971 में प्रदर्शित बदनाम फरिस्ते फिल्म का निम्नांकित गीत आज भी प्रासंगिक है।

"बीए एमए पीएचडी,
ये डिप्लोमे ये डिग्री
हो गए जब बेकार
तो हमको करना पड़ा व्यापार...
भूख न देखे चाबी ताला,
फिर भी लेते जाओ लाला"[viii]

सामाजिक प्रश्नों को प्रस्तुत करने में गीतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं। अनेक ऐसे गीत हैं जो सामाजिक समस्याओं के तह तक जाकर उसपर सोच विचार करने को मजबूर करते हैं।

सांस्कृतिक अभिव्यक्ति :

गीत भारतीय फिल्मों को एक विशिष्ट पहचान देते हैं और अक्सर उनमें स्थानीय लोकगीतों और संस्कृति की झलक मिलती है, जिससे वे व्यापक दर्शकों से जुड़ते हैं। अनेक लोकगीत हैं जो फिल्मों के माध्यम से लोकल से ग्लोबल हुए हैं। 1991 में प्रदर्शित लम्हे फिल्म का गाना 'मोरनी बागा मां बोले' 2018 की पद्मावत का 'घूमर' और 199 मे प्रदर्शित हम दिल दे चुके सनम फिल्म का 'नींबूड़ा नींबूड़ा' ये सभी राजस्थानी लोक गीत हैं। बाजीराव मस्तानी में चित्रित प्रियंका और दीपिका की जुगलबंदी 'पिंगा' गाने को लेकर हुई थी। जो महराष्ट्रीयन लोकगीत है। गैंग्स ऑफ वसेपुर फिल्म का गीत 'तार बीजली से पतले' बिहार का लोकगीत है। दिल्ली 6 फिल्म में गाया 'ससुराल गेंदा फूल' छत्तीसगड़ का लोकगीत है। मिशन कश्मीर का गीत 'बुमरो' कश्मीर का लोकगीत है। फिल्मों के सांस्कृतिक प्रभाव को स्पष्ट करते हुए वरिष्ठ समीक्षक अजित कुमार ने एक साक्षात्कार में कहा है, "दुबई में रहनेवाले भारतीय एक ग्रुप चलाते हैं, जिसमें कि आये दिन वे लोग कार्यक्रम आयोजित करते रहते हैं और उस कार्यक्रम में हिंदी फिल्मों के गीत सुनें और गाये जाते हैं। वहाँ मैंने जाना की दुबई का एक पढ़ा लिखा वर्ग फिल्मी गीतों के माध्यम से अपनी संस्कृति बचाए हुए हैं और अपनी आयडेंटिटी को कायम रखे हुए हैं। यहीं बात अमरीका में भी है। रूस, तुर्की में भी यहीं स्थिति है। राजकपूर का 'मेरा जूता है जापानी' गाना उनकी एक विशिष्ट पहचान बना गया है।"[ix]

विपणन और लोकप्रियता :

फिल्मों की सफलता में संगीत की बहुत बड़ी भूमिका होती है; एक यादगार साउंडट्रैक फिल्म को आने वाली पीढ़ियों के लिए भी यादगार बना सकता है। जैसे 'कर्मा' फिल्म का गाना 'दिल दिया हैं जान भी देंगे ऐ वतन तेरे लिए', 'मैंने प्यार किया' फिल्म के सभी गीत, 'कभी खुशी कभी गम' फिल्म का गीत 'कभी खुशी कभी गम', 'मोहबतें' फिल्म का गाना 'चलते चलते कहीं खो जाता हूँ मैं', 'धड़कन' फिल्म का गीत 'तुम दिल की धड़कन हो', 'हम साथ-साथ हैं', 'दिलवाले दुल्हनियाँ ले जाएंगे' फ़िलों के गीत। इसके साथ ही कई फिल्में सिर्फ उनमें सम्मिलित गीतों के कारण लोकप्रिय हुई हैं।

जिंदगी का ऑक्सीजन :

ऑक्सीजन जैसे सजीवों के जीवन में महत्वपूर्ण होता है, ठीक वैसे ही कभी-कभी फिल्मी गाने भी हमारी जिंदगी में प्राणवायु का काम करती है। जिंदगी को मधुर बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। जब कभी हम असफल, निराश, हताश होकर बैठ जाते हैं, जिंदगी और स्थिति के बारे में नकारात्मक सोचते हैं तब यहीं फिल्मी गाने हमें संभालते हैं। अपनी रोजाना भागदौड़ से थोड़ी राहत पाने और दिल को सुकून देने का काम करते हैं। जब भी हम अपनी समस्याओं में उलझे रहते हैं तब आशा की बारीक

किरण लेकर गाने ही हमारी जिंदगी में पधारते हैं। उसे सँवारने का हौसला देते हैं। इम्तेहान फिल्म का गीत 'रुक जाना नहीं तू कहीं हार के' मनुष्य को सतत प्रयासरत रहने की प्रेरणा देता है। बोनी कपूर की फिल्म मिस्टर इंडिया का गाना 'जिंदगी की यहीं रीत हैं हार के बाद ही जीत है...'[x] जिंदगी की ओर सकरात्मकता से देखने का संदेश देता है। दुख कितना भी हो एक ना एक दिन खत्म होने वाला है यह 'हँसते हँसते कट जाए रास्ते जिंदगी यूं ही चलती रहें' इस गाने ने स्पष्ट किया है। इस प्रकार फिल्मी गीत जिंदगी को ऑक्सीजन देने का काम करते हैं।

निष्कर्ष -

फिल्मों में गानों का अपना महत्व होता है। गानों ने जनमानस पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ा है। फिल्म की सफलता में गीतों का स्थान महत्वपूर्ण होता है। गीत भारतीय समाज में कोई भी त्योहार, प्रसंग हो गाने बजाए जाते हैं। गीत फिल्म की पटकथा को आगे बढ़ाते हुए संवाद निर्मिति में सहायक होते हैं। गीत के माध्यम से मनुष्य की भावनाओं को सहजता से उजागर किया जाता है। गीत आनंद को जीतने उत्साह से दिखाते हैं, वहीं मायूसी के वातावरण को उतने ही गहराई से निर्माण कर सकते हैं। गीतों के माध्यम से एकता की भावना निर्माण करना, सांस्कृतिक पक्ष को उजागर करना, सामाजिक समस्याओं को जनमानस के सामने प्रस्तुत करना आसान है। फिल्म के विपणन एवं व्यवसाय की व्यवस्था गीतों पर निर्भर दिखाई देती है। फिल्मों को लोकप्रिय बनाने में गीतों का स्थान सबसे ऊपर दिखाई देता है। मनुष्य जब भी संकटों से घिरा रहता है तब उसे संभालने का, उसकी और फिल्म की भी जिंदगी में ऑक्सीजन भरने का काम यहीं फिल्मी गीत करते हैं।

संदर्भ

[1] सिन्हा, प्रसून, *भारतीय सिनेमा एक अनंत यात्रा*, श्री. नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2006, (भूमिका)
[1] भटनागर, तरुण, *जंगल में दर्पण*, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), प्रथम संस्करण, 2016, पृ. 10
[1] https://www.apnimaati.com/2024/12/blog-post_957.html date10/112/2025 12.34 pm
[1] www.hindigeetmala.net (दीदी, 1959)
[1] अहिवले, अनिल अर्जुन, *हिंदी सिनेमा एक अध्ययन*, पूजा पब्लिकेशन कानपुर, 2024 पृ. 39
[1] www.hindigeetmala.net (नया दौर, 1957)
[1] तिवारी, बृजभूषण, *गीतों का राजकुमार: शैलेंद्र*, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2013 पृ. 21
[1] www.hindigeetmala.net (बदनाम फरिस्ते, 1971)
[1] https://jomanmeinaya.blogspot.com/2016/06/blog-post_21.html?m=1
[1] https://www.apnimaati.com/2024/12/blog-post_957.html

*****

डॉ. राहत इन्दौरी के ग़ज़लों में सामाजिक परिदृश्य

डॉ. जावेद खलील शेख
तुकाराम बाबुराव कदम कला विज्ञान और
वाणिज्य महाविद्यालय भ्ररणे,
ता.खेड जि. रत्नागिरी,
मोबाईल नंबर – ८८८८२९६६७१
E-Mail:- javedpatel211@gmail.com

सारांश (Abstract) : -

ग़ज़ल भावों की अभिव्यक्ति एक सशक्त माध्य्म है। उर्दू और हिन्दी में अनेक ग़ज़लकार हुए जिसमें आम आदमी को अधार बनाकर ग़ज़ल का स`जन किया गया है। राहत इन्दौरी २१ वी सदी के एक प्रमुख ग़ज़लकार रहे हैं उनकी ग़ज़लों में जीवन की समस्या और रूहानियत का बहुत ही सुंदर मिलाप है। उनकी ग़ज़ल की विषयवस्तू केवल प्रेमाभिव्याक्ति नहीं है उसमें आम आदमी के जीवन की व्यथा, पिड़ा का ज्वलंत चित्रण है। उनकी द`ष्टि अत्यंत व्यापक है प्रेम, दया, मानवता, आत्मसम्मान, राष्ट्रभक्ति, राजनीतिक चेतना उनकी ग़ज़ल का विषय है। खुद्रदारी, वफ़ादारीऔर दरीयादिली उनके ग़ज़ल को और रोचक बनाती है वे अपने शायरी के शेर तरन्नुम (संगीत) के साथ नही कहते बल्कि उनका अंदाजे बयाँ अलग है। परिवार को अधार बनाकर भी राहत इन्दौरी जी ने अनेक ग़ज़ल लिखी है। समसामायीक राजनीति पर भी उनकी द`ष्टि बनी रही है। राजनीतिक मूल्यों का विघटन, सत्ता लालसा आदिपर वे तंज कसते हैं। वे राजनेता से सचेत रहने की सलाह देते हैं। राजनेता अपने स्वार्थ के लिए मानव को जाति धर्म और संप्रदाय के नाम पर किस तरह लढ़ाने का कार्य करते हैं इसका वर्णन अपनी शैली में किया है। राहत इन्दौरी का ग़ज़ल साहित्य में समकालीन समाज का प्रतिबिंब है जिसके केंद्र मे आम आदमी है।

मूल शब्द (Keyword): - ग़ज़ल परिचय, प्रसिद~ध ग़ज़लकार, राहत इन्दौरी का ग़ज़ल साहित्य, समकालीन चित्रण, सामाजिक चेतना।

प्रस्तावना :-

भावों कि अभिव्यक्ती के लिए ग़ज़ल एक सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। उसके प्रत्येक शेर मनुष्य के अंतरमन को टटोलने का सिधा प्रयास करता है। ग़ज़ल में शब्द भावों के वाहक होते है। जो पाठकों को विचार करने पर मजबूर करते है। गजल विधा का जन्म मूलत: उर्दू भाषा के कवियों ने प्रेमाभिव्यक्ती के लिए किया है। समय के साथ उसका दायरा बढता गया। वह मानव के मनोभावों को व्यक्त करनेवाला एक सशक्त माध्यम बनकर हमारी सामने आयी है। उसमें केवल आशिक-माशुक का प्रेमालाप नही बल्कि जीवन-संघर्ष तथा मनुष्य के भावों का सजीव चित्रण है।

उर्दू में गजल लिखनेवालों की एक लंबी परंपरा रही है। जिसमें विश्व की सबसे प्रसिदध गजले लिखी गयी। इन ग़ज़लकारों में मिर्जा ग़ालिब, मीर तकी मीर, फ़ैज अहमद फ़ैज, अहमद फ़राज, फ़िराक गोरखपुरी, कैफ़ी आज़मी, साहिर लुधियानवी आदि प्रमुख रूप से है। इन ग़ज़लकारों ने केवल आशिक-माशुक को अपने रचना का आधार नही बनाया बल्कि मनुष्य जीवन से संबंधित उसके हर्ष, उल्लास, राग, लोभ आदि को सादगीपूर्ण ढ़ंग से काव्य में अभिव्यक्ति किया है। मूलत: ग़ज़ल का संबध हदय से होता है। यहाँ पर बुद~धी को हावी होने नही देना चाहिए यही काम इन ग़ज़लकारों ने किया

आज के समय दुनिया में जहाँ कही गजल का जिक्र होता है वहाँ राहत इन्दौरी का नाम पहली सफ़ में लिया जाता है। उनके नाम का जिक्र किए बिना हिंदी उर्दू का ग़ज़ल साहित्य अधूरा रह जाएगा। वे अपनी खुबसूरत शायरी और बेबाक अंदाज के लिए भारत ही नही पूरी दुनिया में मशहूर हैं। उनकी शायरी शायरी की तमीज और तहज़ीब समजने वालों को प्रभावित करती है। वे अपने शायरी के शेर तरन्नुम (संगीत) के साथ नही कहते बल्कि उनका अंदाजे बयाँ अलग है वे शब्दों की अहिमीयत और शब्दों के चढाव और उतार से अपने श्रोताओं पर अच्छा खासा असर ड़ालते है।

राहत इन्दौरी ने अपने जीवन में अनेक गजले लिखी जिसमें संपूर्ण समाज का ज्वलंत चित्रण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है उनकी प्रमुख गजल संग्रह में धूप बहुत है, दो कदम और सही, मेरे बाद, नाराज़, मै ज़िन्दा हूँ, गूंज, मेरी पसंद, चार दिवारी, मुफ़लिस की डायरी आदि प्रमुख गजल संग्रह हैं। राहत सहाब ने अपने जीवनकाल में अनेक फिल्मों के लिए गीत लिखे हैं। उनकी गजलों में समाज का सजीव तीखा रूप में चित्रण मिलता है। उनकी गजले केवल आशिक माशुक के प्रेम या भावनाओं के चित्रण तक

सिमित नही बल्कि समसायीक परिस्थितियों का ज्वलंत दस्तावेज है। उनकी ग़ज़ल मनुष्य का जीवनसंघर्ष, विडंबनाएँ, मजबुरीयाँ, धार्मिक क्लेष, राजनितीक सत्ता पिपासा, व्यक्ति तथा समाज की दोहरी मानसिकता, सामाजिक परिवर्तनशीलता को आधार बनाकर लिखी गयी है। हम कह सकते है राहत इन्दौरी के गजले समसायिक परिवेश का ज्वलंत दस्तावेज है। इनकी ग़ज़लो में समाज के प्रत्येक पहलुओं का ज्वलंत चित्रण देखने को मिलता है।

राहत इन्दौरी की गजलों में मनुष्य जीवनसंघर्ष को बडी सहजता से चित्रित किया है। उनके शेरों में बेरोजगारी गरीबी कठीनाईयों का दर्द झलकता है। रोजगार की तालाश में गाँव को छोडकर शहर जाने की विवशता को स्पष्ट करते हुए वे कहते है -

नौजवां बेटों को शहरों के तलाशे ले उड़े
गाँव की झोली में कुछ मजबुर माँएँ रह गयीं
एक एक करके हुए रूख़सत मिरे कुण्बे के लोग
घर के सन्नाटे से टकराती हवाएँ रह गयीं [१]

मनुष्य से अपना गाँव अपने लोग तथा अपनों को छोडकर शहर आकर बसता है और पैसे कमाता है। फिर भी अपने गाँव तथा अपनों को नही भूलता उसके मन में यह दु:ख रहता हैं कि अपनों के बिना उसकी सुख सुविधाएँ निरर्थक है इसे स्पष्ट करते हुए राहत इन्दौरी कहते है -

अपनी साँसे बेचकर मैंने जिसे आबाद की
वो गली जन्त तो अब भी है मगर शददाद की [२]

व्यक्ति अपने कर्तव्यपथ पर आगे बढने का निरंतर प्रयास करता है। उसकी राह में अनेक समस्याएँ आती है। उसे संघर्ष करना पडता है। ऐसे समय राहत इन्दौरी उसे कर्तव्यशील बनाने के लिए प्रोत्साहन देते हुए कहते है -

आँख में पानी रखो होटों प' चिंगारी रखो
ज़िन्दा रहना है तो तरकीबें बहुत सारी रखो
राह के पत्थर से बढ़कर कुछ नहीं हैं मंज़िलें
रास्ते आवाज़ देते हैं सफ़रे जारी रखो [३]

राहत इन्दौरी एक बेबाक और निडर शायर है अपने समय का सटीक चित्रण उन्होंने गजलों मे किया है। उनके लेखन में इंसानियत की बात की है। वे धर्म से अधिक मानवता को महत्व देते है। आज धर्म जाति पंथ संप्रदाय आदि के नामपर लोगों को बाँटने का कार्य किया जा रहा है। उसपर तंज करते हूए वे कहते है -

लगेगी आग तो आएँगे घर कई ज़द में
यहाँ पे सिर्फ़ हमारा मकान थोड़ी है
मैं जानता हूँ कि दुश्मन भी कम नहीं लेकीन
हमारी तरह हथेली पे जान थोड़ी है
सभी का ख़ून है शामिल यहाँ की मिट~टी में
किसी के बाप का हिंन्दोस्तान थोड़ी है [४]

राहत इन्दौरी की ग़ज़लों में राजनेता और राजनिती को आधार बनाकर अनेक गजले लिखी है। राजनेता आम आदमी को धोके में रखकर सत्ता तथा व्यवस्था का एक माध्यम बन गयी है। इसलिए राजनेता सत्ता की कुर्सी को प्राप्त करने के लिए अनेक तरह से प्रयत्न करते है और जनता को धोका देते है। राजनिती का मकसद आज केवल सत्ता प्राप्त करना है। जनता का विकास राष्ट्रप्रेम जैसी बडी बडी बाते अब केवल राजनेताओं के लिए ओट पाने का एक माध्यम बन गया है। राजनेता विभिन्न तरीके अपना कर जनता के अधिकारों का हनन कर रहे है। वे अपने स्वार्थ पूरा करने के लिए एक ओर लोगों का हमदर्द बनन का ढोंग रचाते है। तो दूसरी ओर लोगों को आपस में लडाने के कार्य करते है। इस विषय में राहत इन्दौरी कहते है -

तूफ़ां तो इस शहर में अक्सर आता है
देखें अबके किसका नम्बर आता है
बोता है वो रोज़ तअफ्फुफ ज़ेहनों मे
जो कपडों पर इत्र लगाकर आता है [५]

राजनीति अब धर्म का सहारा लेकर अपने कार्य को अंजाम तक पहुँचा रही है। लोगों को धर्मांध बनाया जा रहे है। उसके दिल और दिमाग में अपने धर्म को श्रेष्ठ तथा दूसरे धर्म के प्रति हीन भाव जागृत किया जा रहा है। इसके लिए राजनेता धर्म के ठेकेदार पंडीत और मौलवी का सहारा लेकर लोगों को बरगला रहे हैं। लोगों को धर्म तथा जाति के नामपर बाँटने का काम किया जा रहा है। जिससे वे राजनीतिक लाभ उठा सके इस विषय में राहत इन्दौरी कहते है -

सबको रूसवा बारी बारी किया करो
हर मौसम में फ़तवे जारी किया करो
जब जी चाहे मौत बिछा दो बस्ती में
लेकिन बातें प्यारी-प्यारी किया करो [६]

सभी धर्मो का सार मानवता और प्रेम है। इनके बिना धर्म का अस्तित्व ही नही है। मानवता से बडा कोयी धर्म नही है। प्रेम से बडा कोयी जीवन का आधार नहीं। मनुष्य को अपने जीवन में कर्तव्य का निर्वाहन करते समय प्रेम, उम्मीद और सकारात्मक सोच को लेकर आगे बढना चाहिए। इसतरह के आचरण से मनुष्य का जीवन जीना सुलभ हो जाएगा। राहत इन्दौरी ने अपनी कयी ग़ज़लों मे मनुष्य को सकारात्मक सोच से कर्मरत रहने की प्रेरणा दी है। वे मनुष्य की भीतर की शक्ति को जगाने की बात करते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए कहते है-

राह में ख़तरे भी हैं लेकिन ठहरता कौन है
मौत कल आती है आज आ जाए ड़रता कौन है
हैं परिन्दों के लिए शादाब पेड़ों के हुजूम
अब मेरी टूटी हुई छत पर उतरता कौन है
तेरे लष्कर के मुक़ाबिल मैं अकेला हूँ मगर
फ़ैसला मैदान में होंगा कि मरता कौन है [७]

मनुष्य को अपना प्रत्येक कार्य करने की प्रेरणा उसे अपने अंतरात्मा बिना किसीका सहारा लिए मीलती है। जब वह अपने मन से किसी कार्य को पुरा करना चाहता है। तो वह कार्य आवश्य ही पुरा हो जाता है। अपने भीतर के दीपक को जलाकर वह कार्य को अंजाम तक पहुँचा सकता है इसे स्पष्ट करते हुए राहत इन्दौरी जी कहते हैं –

न हमसफर न किसी हमनशीं से निकलेगा
हमारे पाँव का काँटा हमीं से निकलेगा
इसी गली मे वो बूढ़ा फ़कीर रहता था
तलाश कीजे खजाना यहीं से निकलेगा [८]

डॉ. राहत इन्दौरी का दृष्टीकोन समाज के प्रति हमेशा के लिए आशावादी रहा है। वे समाज मे परस्पर प्रेम, आदर और सम्मान की भावना देखना चाहते है। वे किसी भी प्रकार की शत्रूता को अस्वीकार करते है। उनकी दृष्टि में मनुष्य कामियाब तभी है जब वह सबके साथ मिल-जुलकर जीवन निर्वाह करता है। इसी विचार को अपने ग़ज़ल में स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

नफ़रत का बाज़ार न बन
फूल खिला तलवार न बन
रिश्ता-रिश्ता लिख मंजिल
रस्ता बन दीवार न बन [९]

परिवार की जिम्मेदारी का निर्वाह करने के लिए मनुष्य को सदैव संघर्ष करना पड़ता है। डॉ. राहत इन्दौरी की ग़ज़ल परिवार की जरूरतों के लिए पैसे कमाने की प्रेरणा देती है। अपनी एक ग़ज़ल में वे कहते हैं-

उँगलियाँ यूँ न सब पे उठाया करो
खर्च करने से पहले कमाया करो
ज़िन्दगी क्या है खुद ही समझ जाओगे
बारिशों में पतंगे उडाया करो [१०]

इस प्रकार राहत इन्दौरी जी ने अपनी ग़ज़ल के माध्यमसे आम लोगों की पिड़ा, दर्द, आत्मसम्मान आदि को अपने लेखन का विषय बनाया है। उनका ग़ज़ल साहित्य शाश्वत रूप में समाज का दर्पन रहेगा।

संदर्भ

१. चाँद पागल है- राहत इन्दौरी, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली,(चतुर्थ आवृत्ती 2020), पृष्ठ क्र 83
२. चाँद पागल है- राहत इन्दौरी, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली,(चतुर्थ आवृत्ती 2020), पृष्ठ क्र 83
३. चाँद पागल है- राहत इन्दौरी, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली,(चतुर्थ आवृत्ती 2020), पृष्ठ क्र २२
४. मौजूद - राहत इन्दौरी, राधाक्ष्ण पेपरबैक्स दिल्ली चौथा संस्करण 2019 पृष्ठ क्र 67
५. चाँद पागल है- राहत इन्दौरी, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली,(चतुर्थ आवृत्ती 2020), पृष्ठ क्र ६३
६. धूप बहुत है- राहत इन्दौरी, की लोकप्रिय गजले संपा डॉ प्रवीण शूक्ल्ा डायमंड पॉकेट बूक्स नई दिल्ली पृष्ठ क्र 52)
७. चाँद पागल है- राहत इन्दौरी, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली,(चतुर्थ आवृत्ती 2020), पृष्ठ क्र ११६
८. चाँद पागल है- राहत इन्दौरी, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली,(चतुर्थ आवृत्ती 2020), पृष्ठ क्र ९९
९. चाँद पागल है- राहत इन्दौरी, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली,(चतुर्थ आवृत्ती 2020), पृष्ठ क्र २१
१०. मौजूद - राहत इन्दौरी, राधाक्ष्ण पेपरबैक्स दिल्ली चौथा संस्करण 2019 पृष्ठ क्र २९

*****

हिन्दी गीत और गजल में प्रतिरोधी स्वर

प्रा. डॉ. इम्रान शेख
सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
दलित मित्र कदम गुरुजी विज्ञान महाविद्यालय,
मंगळवेढा

सारांश:

गीत एवं गजल यह दोनों हिन्दी साहित्य में काव्य विधा के अंतर्गत समावेशित हैं। इसमें गीत विधा जिसमें लोकगीत तथा जनगीत आदि का समावेश होता है में सीधी सरल भाषा एवं धुन (राग) के माध्यम से जन आन्दोलन, शोषण, असमानता एवं पहचान के संघर्षों को स्वर (आवाज) प्रदान करती है। विधा अर्थात् 'गीत' सदैव लोकसंस्कृति से ही जुड़कर प्रतिरोध की अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट एवं सीधा स्पष्ट करती है। इसके ठीक विपरीत गजल अपनी बंदिशों (काफिया, रदीफ एवं बहर) के प्रतिबन्ध में ही रहकर अभिव्यक्ति की सामाजिकता, अन्याय, रूढ़ियों एवं सत्ता के विरुद्ध कटु एवं तीखी आलोचना को व्यक्त करती है।

गीत काव्य अपनी निर्धारित वृत्ति के प्रतिफलन स्वरूप होता है। इसमें व्यक्ति की कुण्ठा, बेचैनी, अतृप्ति वितृष्णा एवं अनेक संत्रास उभरते हैं। इसके साथ ही साथ प्रेम, करुणा तथा श्रृंगार की संवेदनाएं भी मुखरित होती है। गीत में गेयता का प्रमुख स्थान होता है। गेयता हृदय की मौलिकता के साथ छन्दात्मक भाषा में अभिव्यक्त होती है।

गजल हिन्दी साहित्य की एक सशक्त तथा लोकप्रिय विधा है। कहीं-कहीं पर शेर को गजल की संज्ञा प्रदान की गयी है। अरबी भाषा के कवि राजाओं की प्रशंसा कसीदों के माध्यम से किया करते थे। इन कसींदों का आरम्भिक भाग प्रेम एवं श्रृंगार के भावों से ओत-प्रोत रहता था। कसीदे का यही स्वरूप हिन्दी साहित्य में गजल के रूप में स्वीकार किया गया है।

बीज शब्द: गीत, गजल, साहित्य, विधा, लोकगीत, आंचलिक, नगरीय, भाषा, संस्कृति, अभिव्यक्ति, अन्याय, आन्दोलन, शोषण, प्रेम, कसीदा, बंदिशें, छन्द, राग, भाषा, स्वरूप, रूप, संवेदना, श्रृंगार, प्रेयसी, आलोचना, प्रतिरोध तथा असमानता आदि।

प्रस्तावना:

साहित्यिक विद्वानों ने हिन्दी साहित्य को अनेक विधाओं में विभक्त किया है। यथा गद्य विधा उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि काव्य (पद्य) विधा- कविता, गीत, गजल, दोहा, सवैया, छन्द, सोरठा तथा पद्यात्मक राग आदि निबन्ध विधा संस्मरण, पत्र, शैली तथा अन्य आदि।

गीत प्रकृति तथा मानव की संवेदना के रूपांकन एवं विश्लेषण का एक माध्यम है। इसने प्रकृति सौन्दर्य चेतना के अनेक रंग बिखेरने का भी कार्य किया है। गीत प्रेम सौन्दर्य एवं संघर्ष का पाठ पढ़ाता है। सृजनशीलता की समस्त शर्तों डूबा गीत किसी को भी निराश नहीं करता है।

गजलों के माध्यम से समाज व्यवस्था, राजनीति, आर्थिक स्थिति आदि के साथ ही साथ देशप्रेम, निराशा, वेदना तथा मानवीय भावनाएं आदि को अत्यन्त सटीकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

विश्लेषण: संगीत की मधुरता से परिपूर्ण आत्मपरक काव्य को गीतकाव्य की संज्ञा प्रदान की जाती है। गीत में हृदय के अन्दर छिपे हुए भावों को संगीत, लय (मधुरलय) एवं धुन (तान) के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। गीत अनुभूतिजन्य होता है। गीत में कोमल कल्पना, ललित भावना तथा मधुर काल की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। यह आत्मपरक होने के कारण आत्माभिव्यक्ति से भी परिपूर्ण होता है।

गीत का अर्थ है- ''कहा हुआ, गाया हुआ गीति संज्ञा है कहे हुए या गाए हुए पदार्थ की। कालान्तर में गीत संगीत प्रधान तथा गीति आत्मानुभूति प्रधान गीत्यात्मक रचना के लिए रूढ़ हो गये। गीति गति का नव्यतम विकास है। गति शाश्वत है। इसलिए गीति सृष्टि भी शाश्वत है। गीति काव्य के विकास का आदिचरण लोक ही जीवन है।'[1]

जब से मनुष्य को अपनी मनुष्यता का बोध (ज्ञान) हुआ तब से उसने अपनी गहन अनुभूति को छन्दबद्ध भाषा में व्यक्त करने का कार्य भी किया गीत के माध्यम से। कविता में मार्मिकता को स्थान देने के लिए छन्दावरण की आवश्यकता होती है। गिल का कथन है कि छन्दबद्ध कविता ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व साहित्य अपने भावनात्मक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को गीतात्मकता के माध्यम से ही सुरक्षित रख सकता है। जब भी प्रकृति की गोद में नदियों, पहाड़ों, झरनों, हरे-भरे जंगल तथा खेतों में किलकने-विचरने देने की अपेक्षा प्रयोग के दमघोंटू कृत्रिम रूप में वैयक्तिक यथार्थवाद के नाम पर कविता का बलात् प्रयोग

असम्भव है। इस स्थिति में तो कविता व्यक्तिवादी कुण्ठा, निराशा, घुटन तथा संत्रास की त्रासदी से विक्षिप्त होकर जंगल में फंसकर अपनी पहचान खो बैठेगी।

हडसन ने कहा है कि- ''गीतिकाव्य की परिधि में विशाल मानव समाज और व्यक्तिमात्र से सम्बन्ध रखने वाली सभी अभिव्यक्तियाँ समाहित हो जाती हैं। प्रेम, आशा-आकांक्षा, निराशा, वेदना, उल्लास तथा देशभक्ति आदि समस्त गीतिकाव्य के विषय बन सकते हैं। व्यक्तिगत की अपेक्षा गीतिकाव्य में सामाजिक अथवा मानवीय भावनाओं का आधिक्य होना चाहिए।'[2]

डा श्याम सुन्दरदास ने गीतिकाव्य को इस प्रकार परिभाषित किया है- ''आत्माभिव्यंजना सम्बन्धी कविता, गीतिकाव्य में ही अधिक लिखी जाती है। छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न, आत्म निवेदन स्वाभाविक भी जान पड़ता है। ऐसे पदों में शब्द की साधना के साथ स्वर की साधना भी उत्कृष्ट हो सकती है। इससे कर्कशता बहिष्कृत कर दी जाती है।''[3]

गीतिकाव्य का यथार्थ स्वरूप इस प्रकार है- ''मुक्तक रचनाओं में स्वर-लय, भाव-लय, वातावरण - लय, कोमल मधुर एवं चित्रात्मक भाषा, सौन्दर्य चेतना, मानवीकरण, चिन्तनात्मकता, लोकजीवन की वैयक्तिक अनुभूतियाँ, दृष्टिकोण की नवीनतम, सूक्ष्म की अनुभूति तथा भावुकता आदि का समन्वित रूप ही गीतिकाव्य है।''[4]

गीत परम्परा अत्यंत प्राचीन है। अनंतकाल से ही समाज का प्रत्येक प्राणी संवेदनशील एवं राग की अनुभूतियों से प्रेरित रहा है। कवि के मन में जब-जब उथल-पुथल मची, तब-तब उसने लेखनी के माध्यम से अभिव्यंजनाओं का स्वरूप खड़ा किया है। अपभ्रंश काल के पश्चात् हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक काल 1050-1375 ई. आता है। गीति काव्य के पद चिन्ह हमें सर्वप्रथम अमीर खुसरों के पदों में प्राप्त होते हैं। यह कालखण्ड 1255-1324 ई. का है। इन्होंने जनता के मनोरंजन के लिए पहेलियाँ एवं मुकरियाँ लिखी थीं। गीतिकाव्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

मैं न बुलाने गया कभी गीतों को इनके द्वार,
ये ही पता पूछते सबसे, आये मेरे पास।

मुझे पता क्या मन के हाहाकार का,
गीत नहीं है कर्ज किसी के प्यार का।

भावनाओं का मधुर आधार सांसों से विनिर्मित,
गीत कवि उर का नहीं, उपहार उसकी विकलता है।

गजल के प्रवेश का मार्ग अरबी से फारसी, फारसी से उर्दू तथा उर्दू से अन्य भाषाओं के साथ पुनः हिन्दी भाषा में आगमन होता है। गजल का शाब्दिक अर्थ है- प्रेमिका से मीठी-मीठी रसभरी बातें करना अर्थात् प्रेमालाप। ''गजल फारसी तथा उर्दू भाषा में श्रृंगार रस की कविता है।''[5]

''गजल में प्रेम भावनाओं का चित्रण होता है इसका तात्पर्य यह है कि नारियों से प्रेम की बातें करना।''[6]

गजल काव्य का एक ऐसा प्रकार है जिसका मुख्य विषय प्रेम है। अनेकानेक विद्वानों के मतों का मंथन करने के उपरांत निष्कर्ष यह निकलता है कि गजल अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ प्रेमी तथ प्रेमिका से बातचीत के सम्बन्ध में लिया जाता है। अतः स्पष्ट होता है कि प्रेमी अथवा प्रेमिका की बातचीत को काव्यात्मक ढंग से विशेष प्रभाव के साथ व्यक्त करने की कला को गजल का नाम दिया जा सकता है। गजल का इतिहास भी अत्यंत प्राचीन है। यह काव्य की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं रंजक विधा है। गजल कम से कम शब्दों में अनुभूति की व्यापकता को समेटकर अभिव्यक्त करने में यह आज तक सफल रही है। इसमें अनायास रूप से सम्मिलित होने वाली लय एवं संगीतात्मकता ने इसे अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधिक प्रभावी बना दिया है।

''गजल में लगभग 5 से लेकर 11 शेर होते हैं। समस्त शेर एक ही रदीफ एवं काफिए में होते हैं परन्तु प्रत्येक शेर का मजमून पृथक होता है। गजल में प्रथम शेर मल्ला कहलाता है जिसके दोनों मिस्त्रें सानुप्रस होते हैं तथा अन्तिम शेर मक्ता होता है। मक्ता में ही शेर का रचयिता शायर अपना उपनाम भी जोड़ देता है।''[7] गजल के क्षेत्र में फिराक गोरखपुरी का नाम शायरों के मध्य सर्वाधिक प्रसिद्ध है। गजल के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

जख्म सीने में छुपाकर मुस्कराना है गजल।
सहते-सहते दर्दे दिल, गुदगुदाना है गजल।।

गले मुझको लगा लो ऐ मेरे दिलदार होली में।
बुझे दिल की लगी मेरी भी, तो ऐ यार होली में।।

मेले में भटे होते तो कोई घर पहुंचा जाता।
हम घर में भटके हैं, कैसे ठौर-ठिकाने आएंगे।

निष्कर्ष

गीत छंदयुक्त अथवा छंदमुक्त दोनों हो सकता है परन्तु इसमें लय का होना अति आवश्यक होता है। गीत में राग वांछित हो सकता है। प्रत्येक गीत को गजल नहीं बनाया जा सकता है जबकि गजल को बतौर गीत के रूप में गाया जा सकता है।

गीत तथा गजल इन दोनों काव्य विधाओं में प्रतिरोध के स्वर विद्यमान रहते हैं। अन्तर केवल इतना है कि गीत अधिकतर सीधे भावनात्मक एवं लोकधुन पर आश्रित होकर सामाजिक अन्याय एवं रूढ़ि-परम्पराओं के विरुद्ध आवाज उठाता है जैसे किसान आन्दोलन के गीत, कारखानों के आन्दोलनरत मजदूर या किसी सरकारी अर्द्धसरकारी कार्यालयों के मध्य स्वर के स्वहित में आवाज उठाते कर्मचारी आदि।

गजल इसके विपरीत अपनी संरचना यथा- काफिया, रदीफ, बहर में बंधकर ही सदैव व्यंग्य, विडम्बना अथवा प्रतीकात्मकता के माध्यम से व्यवस्था एवं सामाजिक विसंगतियों पर कटाक्ष करती है। एक विशेष तथ्य यह है कि गजल विधा में प्रत्येक शेर स्वयं में स्वतंत्र होता है। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि गीत तथा गजल इन दोनों में प्रतिरोध के स्वर विद्यमान होते हैं।

संदर्भ

1. हिन्दी गीतिकाव्य, डा. रा.प्र. द्विवेदी, पृ. 43 (शोध प्रबन्ध)
2. हिन्दी गीतपरिवेश: एक समाकलन, डा. विनय सिंह, पृ. 13, संस्करण 2019, वान्या पब्लिकेशन्स, कानपुर
3. साहित्यालोचन, बाबू श्याम सुन्दर दास, पृ.95, संस्मरण 1998, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. हिन्दी गीत परिवेश: एक समाकलन, डा. विनय सिंह, पृ. 17
5. साठोत्तरी हिन्दी गजल, डा. मधु खराटे, पृ. 10, संस्करण 2015, विद्या प्रकाशन कानपुर
6. हिन्दी गजल उद्भव एवं विकास, डा. रोहिताश्व अस्थाना, पृ. 70, संस्करण 2010, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली
7. गजलकार दुष्यंत कुमार, डा. अविनाश वी. कासांडे, पृ. 169, संस्करण 2010, समता प्रकाशन, कानपुर

*****

हिंदी गीत और ग़ज़ल में किसान जीवन : संघर्ष और संवेदना

डॉ. वाघमारे खंडूजी हानवतराव,
हिंदी विभाग,
कालिकादेवी महाविद्यालय, शिरूर(कासार)
जि. बीड.(महाराष्ट्र)
ई-मेल : basmath2014@gmail.com

सारांश (Abstract) :

हिंदी साहित्य की दो प्रमुख काव्य-विधाओं गीत और ग़ज़ल में किसान जीवन की अभिव्यक्ति का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। भारतीय समाज की रीढ़ माने जाने वाले किसान का जीवन संघर्ष, श्रम, आशा, पीड़ा और संवेदना से निर्मित है। किसान महज एक शब्द नहीं है। यह भारतीय सभ्यता की ऐसी जमात है जो पूरे देश क भरण पोषण करती है। हमारे देश की आधे से ज्यादा आबादी कृषि पर ही निर्भर है। किसान खून पसीना एक कर तपती हुई धूप, मूसलाधार बारिश तथा जाड़ो की कड़कड़ाती ठंड क परवाह किए बिना जी तोड़ महनत करते है। वह अपनी इस मेहनत से न सिर्फ जीविकोपार्जन करते हैं अपितु संपूर्ण देश के लिए अन्न उपजाते है इस सबके बावजूद हमारे देश में सबसे ज्यादा खराब स्थिति किसानें की है। पूरे देश को अन्न प्रदान करने वाला आज स्वयं से भूख से तड़प रहा है। हिंदी गीत और ग़ज़ल ने समय-समय पर किसान के आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संघर्षों को स्वर प्रदान किया है। प्रारंभिक हिंदी गीतों में किसान प्रकृति से जुड़ा, श्रमशील और जीवनधर्मी दिखाई देता है, वहीं आधुनिक और समकालीन ग़ज़लों में किसान शोषण, विस्थापन, कर्ज़, सूखा, फसल-नुकसान और व्यवस्था की असंवेदनशीलता का शिकार बनकर उभरता है। इस शोध में भक्ति काल से लेकर समकालीन दौर तक की चयनित गीतात्मक और ग़ज़ल रचनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि किसान जीवन की संवेदना किस प्रकार भावात्मक अभिव्यक्ति से सामाजिक प्रतिरोध तक की यात्रा तय करती है। शोध का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि हिंदी गीत और ग़ज़ल किसान जीवन के यथार्थ को केवल करुणा के स्तर पर नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और परिवर्तन की आकांक्षा के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

बीज शब्द (Keywords) :

हिंदी गीत, हिंदी ग़ज़ल, किसान जीवन, संघर्ष, दृढता, संवेदना, सामाजिक यथार्थ, अन्नदाता, दयनीय दशा, दुर्दशा, परिश्रम आदि

शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study) :

प्रस्तुत शोध-आलेख के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. हिंदी गीत और ग़ज़ल में किसान जीवन के चित्रण का अध्ययन करना।
2. किसान के सामाजिक-आर्थिक संघर्षो की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का विश्लेषण करना।
3. गीत और ग़ज़ल में निहित मानवीय संवेदना और करूणा को रेखांकित करना।
4. किसान जीवन के संदर्भ में गीत और ग़ज़ल की सामाजिक भूमिका को स्पष्ट करना।
5. ग्रामीण यथार्थ और साहित्यिक चेतना के अंतरर्संबंध को समझना।

शोध-पद्धति (Research Methodology) :

यह शोध गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन हेतु प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्त्रोंतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्त्रोतों में प्रमुख हिंदी गीतकारों और ग़झलकारों की रचनाएँ सम्मिलित हैं, जबकि द्वितीयक स्त्रोतों में आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध-पत्र, पत्र-पत्रिकाएँ एवं साहित्यिक इतिहास संबंधी पुस्तके ली गई हैं। वर्णनात्मक तथा तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से किसान जीवन के संघर्ष और संवेदना का साहित्यिक विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना (Introduction) :

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का मूल आधार कृषि और किसान रहा है। अन्नदाता किसान सदियों से समाज का पोषण करता आया है, किंतु विडंबना यह है कि उसका स्वयं का जीवन अभाव, संघर्ष और अनिश्चितता से घिरा रहा है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, अतः किसान जीवन की पीड़ा, श्रम और संवेदना हिंदी साहित्य में स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त हुई है। समाज का यर्थार्थ सच्चे अर्थों में साहित्य में ही देखने को मिलता है क्योंकि कोई भी साहित्यकार अपने समाज के यथार्थ को अनदेखा कर साहित्य का सृजन नहीं करता है। भारतीय किसानों की जो दयनीय दशा है उसका भी अत्यंत मार्मिक, सजीव यथार्थ चित्रण हिंदी

साहित्य में उपलब्ध है। हिंदी कविता में जब हम किसान जीवन के यथार्थ की छानबीन करते हैं तब हम पाते है कि किसानों की दुर्दशा का चित्रण आधुनिक कविताओं से बहुत पहले ही मध्यकालीन कविता में हो चुका है। मध्यकाल में किसानों की हालत अत्यंत दयनीय थी। भारी भूमि कर ने उन्हें पीस डाला था। राजस्व अधिकारी कर निर्धारण में बहुत हेरफेर करते थे साथ ही गांव के मुखिया से मिलकर उनसे सांठगांठ कर किसानों को पीड़ित करते थे। विशेष रूप से हिंदी गीत और ग़ज़ल जैसी काव्य-विधाओं ने किसान के जीवनानुभव को भावात्मक और वैचारिक दोनों स्तरों पर प्रस्तुत किया है।

हिंदी गीत की परंपरा लोकजीवन और प्रकृति से गहरे रूप में जुड़ी रही है। खेत, फसल, ऋतु, वर्षा और श्रम गीतों के केंद्रीय बिंब बने हैं। दूसरी ओर ग़ज़ल, जो अपेक्षाकृत शहरी और दरबारी विधा मानी जाती थी, आधुनिक काल में ग्रामीण और किसान जीवन की समस्याओं को भी अपने दायरे में ले आई। इस प्रकार हिंदी गीत और ग़ज़ल दोनों ने किसान जीवन के संघर्ष और संवेदना को अपने-अपने शिल्प और भाषा में अभिव्यक्त किया है। हिंदी गीत और ग़ज़ल में किसान जीवन की अभिव्यक्ति का विश्लेषण करना तथा यह समझना है कि इन विधाओं में किसान केवल करुणा का पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा एक चेतन पात्र भी है। किसान कवि घाघ अपनी अनेक किसान कविताओं में खेतों में श्रम करनेवाले किसान को ही वास्तविक किनान मानते हैं- "बांधे कुदारी खुरपी हाथ। लाठी हंसुआ राखे साथ, काटे घास ओ खेत निरावे सो पूरा किसान कहाबे" इस किसान कविताओं की अंतर्वस्तु से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में वाणिज्य तथा सेवकाई से ज्यादा समृद्ध पेशा खेती था। कवि लिखते है कि " उत्तम खेती मध्यम बान, निषिद चाकरी भीख निदान" ग्रह, नक्षत्र वं मौसम संबंधी ज्ञान इन कविताओं की बुनियादी विशेषताएं हैं।

आधुनिक हिंदी कविता में किसानों के दु:ख दर्द का वर्णन भारतेंदु युग की कविताओं से ही शुरू हो जाता है। जब राजनीतिक अधिकार होते ही अंग्रेजों के दु:ख दर्द का वर्णन भारतेन्दु युग की कविताओं से ही शूरू हो जाता है। भारतेंदु ने पहली बार सामान्य मनुष्य का साहित्य रचा। अग्रेंजो की नीति का भारतेंदु पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे आर्थिक शोषण की चक्की में पिस रहे किसानों की दुर्दशा से अच्छी तरह परिचित थ। मंहगाई अकाल, टैक्स, दरिद्रता आदि समस्याओं की सफल अभिव्यक्ति उनकी कविता में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। "मरी बुलाऊँ देश उझाडू महंगा करके अन्न, सबके ऊपर टिकस लगांऊ धन है मुझको धन्न" किसानों की दीन-दशा का आभास देने वाली कविता भारतेंदु के साथ-साथ अन्य कवियों की मिलती है। किसानों की दीन दशा का चित्रण भारतेन्दु युग में बद्रीनारायण चोधरी 'प्रेमघन' जी ने भी किया है। उनके काव्य में किसानों के अभिशप्त जीवन की करूण झांकी देखने को मिलती है-दीन कृषक मजदूरों की पीड़ा को व्यक्त करते है- "बोझ धरत खैंचत लढ़ा बीतत दिन चहुंयाम, मानुष है करनों परे हमें बैल को काम" इस तरह से अपनी कविता में किसानों का संघर्ष और संवेदना को व्यक्त किया है। प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्रेडला स्वागत' कविता में अकाल, भुखमरी और घास फूस की झोपड़ी में जिंदगी जीने को मजबूर कृषक समाज की त्रासदी का विस्तृत चित्रण किया है- "सागपात संग रूखो सूखो अन्न खाहिं नित, जिनकी पूजी केवल हर पुर खुरपा खारा, घास फूस के धरन महीं जे करहिं गुजारा।" इस तरह का वर्णन दिखाई देता है।

कवि बालमुकुंद गुप्त ने वर्षा, वसंतबंधु, मेघमनावनि, वसंतोत्सव जेसी कविताओं मे जहां किसान जीवन और प्रकृति के संबंधों का चित्रण किया है वहीं अनेक कविताओं में किसानों की स्थिति पर दु:ख प्रकट कर किसानों के प्रति अपनी सचेत दृष्टि का परिचय देते है। जो किसान दिन-रात हर मौसम में कड़ी मेहनत करके अन्न उपजाते हैं उन्हें ही दो वक्त का भरपेट भोजन नसीब नहीं होता है। गुप्त जी ने इस स्थित का जिम्मेदार प्राकृतिक आपदा को न मानकर शासन नीति को मानते हैं। गुप्त जी ने 'सर सैयद अहमद का बुढ़ापा' कविता में अंग्रेजी राज की क्रूरता और दमन का सुक्ष्मता व समग्रता से वर्णन करते हुए कहते है-"अहा ! बेचारे दु:ख के मारे निश-दिन पच-पच मरें किसान, जब अनाज उत्पन्न होय तब सब उठ वा ले जाय लगान।" इस तरह से कवि ने किसानों की दुर्दशा का वर्णन किया है। रामधारी सिंह दिनकर ने भी साम्राज्यवादी शोषण को भारतीय किसानों की दुर्दशा का मुख्य कारण माना है। उन्होंने किसानों की पीड़ा को व्यक्त किया है वे अपनी कविता की पुकार में कहते हैं-"ऋण शोधन के लिए दूध घी बेच-बेच धन जोडेंगें, बूंद-बूंद बेचेंगे एपने लिए नहीं कुछ भी छोडेंगे" इस तरह दिनकर जीने अपनी कविताओं में कृषक के साथ-साथ उसके परिवार की दीन-हीन दशा का चित्रण किया है।

हिंदी गीत में किसान जीवन : परंपरा और संवेदना :

हिंदी गीत में किसान जीवन की उपस्थिति अत्यंत प्राचीन है। लोकगीतों में किसान का श्रम, उसकी आशाएँ और प्रकृति से उसका गहरा संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। खेतों में काम करते हुए गाए जाने वाले गीत किसान की सामूहिक चेतना और जीवन-उत्साह को प्रकट करते हैं। इन गीतों में किसान प्रकृति का सहचर है, जो वर्षा, धूप और मिट्टी के साथ अपना जीवन जोड़कर

देखता है। भक्ति कालीन काव्य में भी किसान जीवन की झलक मिलती है। यद्यपि भक्ति काव्य का केंद्रीय विषय ईश्वर-भक्ति था, फिर भी कृषक समाज के जीवन-यथार्थ को उपमाओं और प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। छायावाद के बाद हिंदी गीतों में किसान जीवन अधिक स्पष्ट और यथार्थपरक रूप में उभरता है। निराला जैसे कवियों ने श्रमिक और किसान की पीड़ा को अपने गीतों में स्वर दिया। स्वतंत्रता के बाद के हिंदी गीतों में किसान जीवन सामाजिक और आर्थिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत हुआ। भूमि-सुधार, अकाल, सूखा, हरित क्रांति और बदलती कृषि-व्यवस्था गीतों के विषय बने। इन गीतों में किसान की आशा, टूटन और संघर्ष एक साथ दिखाई देते हैं। गीतों की लयात्मकता और भावनात्मकता किसान जीवन की संवेदना को और अधिक मार्मिक बना देती है।

आधुनिक हिंदी गीत में किसान संघर्ष :

आधुनिक हिंदी गीतों में किसान जीवन की अभिव्यक्ति अधिक मुखर और प्रश्नाकुल हो गई है। अब गीतों में किसान केवल प्रकृति का सहचर नहीं, बल्कि व्यवस्था से जूझता हुआ व्यक्ति है। कर्ज़, महँगाई, फसल का उचित मूल्य न मिलना और प्राकृतिक आपदाएँ किसान जीवन की स्थायी समस्याएँ बन गई हैं। इन गीतों में किसान की पीड़ा के साथ-साथ उसकी जिजीविषा भी दिखाई देती है। वह निराश होकर भी संघर्ष करता है और बेहतर भविष्य की आशा बनाए रखता है। आधुनिक गीतों में किसान की आत्महत्या जैसे गंभीर विषय भी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं, जो सामाजिक व्यवस्था की विफलता की ओर संकेत करते हैं।

हिंदी ग़ज़ल में किसान जीवन : संघर्ष का स्वर :

हिंदी ग़ज़ल में किसान जीवन की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत आधुनिक काल की देन है। प्रारंभिक ग़ज़लें प्रेम और व्यक्तिगत अनुभूति तक सीमित थीं, किंतु दुष्यंत कुमार के बाद हिंदी ग़ज़ल ने सामाजिक यथार्थ को केंद्र में रखा। किसान जीवन की पीड़ा, शोषण और संघर्ष ग़ज़लों का महत्वपूर्ण विषय बना।

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में किसान व्यवस्था की विडंबनाओं का प्रतीक बनकर उभरता है। खेत, हल, पसीना और सूखा जैसे बिंब ग़ज़लों में तीव्र सामाजिक अर्थ ग्रहण करते हैं। अदम गोंडवी की ग़ज़लों में किसान शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर स्पष्ट है। उनकी ग़ज़लें सत्ता और व्यवस्था पर सीधा प्रहार करती हैं।

समकालीन हिंदी ग़ज़ल में किसान जीवन और अधिक यथार्थवादी रूप में सामने आता है। यहाँ किसान केवल पीड़ित नहीं, बल्कि सवाल पूछने वाला और बदलाव की आकांक्षा रखने वाला पात्र है। ग़ज़ल की संक्षिप्तता और प्रतीकात्मकता किसान जीवन के संघर्ष को तीव्र प्रभाव प्रदान करती है।

गीत और ग़ज़ल में किसान संवेदना : तुलनात्मक दृष्टि :

गीत और ग़ज़ल दोनों में किसान जीवन की अभिव्यक्ति अलग-अलग शिल्प और संवेदनात्मक स्तरों पर होती है। गीत में किसान जीवन की संवेदना विस्तार, लय और भावात्मकता के माध्यम से सामने आती है। इसमें किसान की पीड़ा अधिक आत्मीय और करुणामय रूप में व्यक्त होती है। इसके विपरीत ग़ज़ल में किसान जीवन की अभिव्यक्ति अधिक तीखी और व्यंग्यात्मक हो सकती है। सीमित शब्दों में गहरी बात कहने की क्षमता ग़ज़ल को किसान संघर्ष का प्रभावी माध्यम बनाती है। दोनों विधाएँ मिलकर किसान जीवन का एक समग्र और संतुलित चित्र प्रस्तुत करती हैं।

समकालीन संदर्भ और किसान जीवन :

वर्तमान समय में किसान जीवन अनेक नई चुनौतियों से घिरा हुआ है। वैश्वीकरण, बाज़ारवाद, जलवायु परिवर्तन और कृषि नीति में बदलावों ने किसान की स्थिति को और जटिल बना दिया है। समकालीन हिंदी गीत और ग़ज़ल इन समस्याओं को संवेदनशीलता और वैचारिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत कर रही हैं। इन रचनाओं में किसान आंदोलन, न्यूनतम समर्थन मूल्य, भूमि अधिग्रहण और विस्थापन जैसे मुद्दे उभरकर सामने आते हैं। इस प्रकार गीत और ग़ज़ल केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं रह जाते, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप का माध्यम बन जाते हैं।

निष्कर्ष :

आधुनिक साहित्य में किसानों के प्रति गहरी संवेदनशीलता दिखाई देती है। यह साहित्य किसान जीवन की त्रासदी को सामने लाता है, यह साहित्य किसान जीवन की त्रासदी को सामने लाता है, जहां 'अन्नदाता' होने के बावजूद किसान को खाली पेट सोना पड़ता है। कृषि में आधुनिकीकरण के बावजूद, समस्याओं के समाधान न होने के कारण ग्रामीण युवाओं और किसानों

का शहरों की ओर पलायन एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। साहित्य में कर्ज और गरीबी से त्रस्त होकर किसानों द्वारा आत्महत्या करने जैसे गंभीर मुद्दों को उठाया गया है। यह दर्शाता है कि संघर्ष अक्सर एक दु:ख अंत की ओर ले जाता है।

इस तरह से यदि किसानों की समस्याओं पर ध्यान नहीं दिया गया, तो ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति खतरे में पड़ जाएगी। हिंदी गीत और ग़ज़ल में किसान जीवन की अभिव्यक्ति समय के साथ विकसित और परिवर्तित हुई है। प्रारंभिक भावात्मक और प्रकृति-केन्द्रित दृष्टि से आगे बढ़ते हुए यह सामाजिक संघर्ष और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति तक पहुँची है। हिंदी गीत और ग़ज़ल दोनों ही किसान जीवन के संघर्ष और संवेदना को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती हैं। ये विधाएँ न केवल किसान की पीड़ा को उजागर करती हैं, बल्कि सामाजिक चेतना को जाग्रत करने का कार्य भी करती हैं। अतः किसान जीवन के अध्ययन के लिए हिंदी गीत और ग़ज़ल अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यिक माध्यम सिद्ध होती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अनामिका - सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004
2. भारत-भारती, मैथिलीशरण गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2021
3. परिमल - सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2008
4. हुंकार, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2009
5. धूप और धूंआ- रामधारी सिंह दिनकर, श्री अजंता प्रेस लिमिटेड, संस्करण 1957
6. किसान, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, संस्करण 2001
7. राग बिराग, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 1998
8. *भूमण्डलीकृत भारत का किसान और संजीव का कथा साहित्य*
9. https://www.apnimaati.com/2017/11/blog-post_87.html
10. *हिंदी उपन्यास परम्परा में किसान जीवन का चित्रण: यथार्थ, संघर्ष और संवेदना", Sahitya Samhita, Vol.11, Issue-8, 2025.*
11. International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR), "भारतीय किसान की लोमहर्षक त्रासदी– गोदान", 2024

*****

"समकालीन हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक चेतना के स्वर "

डॉ. निलेश सखाराम डामसे
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मालती वसंतदादा पाटील
कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर
संपर्क- 9404216807
मेल – profnilesh.damse07@gmail.com

सारांश :

हिंदी ग़ज़ल अब केवल प्रेम, विरह या व्यक्तिगत अनुभूतियों की कविता न रहकर समकालीन समाज की वास्तविकता, उसकी समस्याओं और चुनौतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन चुकी है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में दुष्यंत कुमार के नेतृत्व में हिंदी ग़ज़ल सामाजिक-राजनीतिक चेतना के उपकरण के रूप में उभरी है; इसी क्रम में युवा ग़ज़लकारों की चेतना इस विधा को लगातार विस्तार दे रही है। हिंदी ग़ज़ल आज भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, गरीबी, बेरोजगारी, पर्यावरणीय संकट, आर्थिक विषमता, स्त्री, दलित, किसान, मजदूर, बालश्रम और मूल्यों के पतन जैसी ज्वलंत सामाजिक समस्याओं को रेखांकित कर उनकी आलोचना व समाधानपरक चेतना जाग्रत करती है।

बीज शब्द: समकालीन हिंदी ग़ज़ल, समाज, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, आतंकवाद, सांप्रदायिकता, पर्यावरण, वंचित समाज, स्त्री, दलित, किसान, मजदूर।

प्रस्तावना:

हिंदी ग़ज़ल का उद्भव तेरहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो से माना जाता है, जहाँ इसकी प्रारंभिक अभिव्यक्ति प्रेम और श्रृंगार के साथ हुई। समय के साथ यह विधा आम आदमी के सरोकारों और सामाजिक बोध से जुड़ती गई। कबीर ने अपने शब्दों में जीवन और समाज की वैषम्यपूर्ण सच्चाइयों को जिस निर्भीकता से उद्घाटित किया, उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए दुष्यंत कुमार ने आधुनिक हिंदी ग़ज़ल को समाज और राजनीति से प्रत्यक्ष जोड़ा। डॉ. सरदार मुजावर इस परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं— "हिंदी ग़ज़ल में ईश्के मज़ाजी अथवा ईश्के हकीकी की अपेक्षा ईश्के इंसानियत पर अधिक बल दिया गया है कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी गजल में प्रेम एवं वासना जैसे परंपरागत गजल के तत्वों को नकारते हुए समाज, राजनीति, धर्म, शासन एवं सर्वहारा वर्ग की समस्याओं, विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का यथार्थ स्वरूप प्रतीकों एवं बिंबों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।"[1] । यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि हिंदी ग़ज़ल ने अपने परंपरागत प्रेम-श्रृंगार केंद्र से हटकर मानवीय सरोकार और सामाजिक यथार्थ को केंद्र बनाया है। वर्तमान समय में ग़ज़ल "महबूबा से नहीं, बल्कि आम आदमी की जिंदगी से बातचीत करती है।"[2] इस तरह हिंदी ग़ज़ल जनमानस की संवेदना, पीड़ा और असंतोष का दर्पण बन चुकी है।

हिंदी ग़ज़ल में सामाजिक सरोकार

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार और धर्म के नाम पर विभाजन जैसी समस्याएँ बढ़ती रहीं। इस स्थिति पर मुजावर सरदार टिप्पणी करते हैं— "आज भी हिंदुस्तान की सामाजिक हालत बिगड़ी हुई नजर आती है आज भी देश में गरीबी, बेकारी, महंगाई, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, बेईमानी, धर्म के नाम पर दंगे, पूँजीवाद, सर्वहारा वर्ग का शोषण, उसकी समस्याएं आम आदमी की पीड़ा एवं उसकी समस्याएं आदि कई तरह की समस्याएं देखने को मिलती हैं।"[3] दुष्यंत कुमार से प्रारंभ हुआ सामाजिक यथार्थ का यह स्वर आज भी हिंदी ग़ज़ल की रीढ़ बना हुआ है। राजेश रेड्डी का यह शेर —

"बस इक लफ़्ज़ दहशत है काफी बहुत
मेरे दौर की दास्ताँ के लिए।"[4]

समकालीन समाज के भय, असुरक्षा और अस्थिरता का सजीव बिंब प्रस्तुत करता है**, तो** कुँवर बेचैन का यह कथन ग़ज़लकार की सामाजिक जिम्मेदारी को रेखांकित करता है—

"जो वक्त की आँधी से खबरदार नहीं हैं
कुछ और ही होंगे वो कलमकार नहीं हैं।"[5]

यह पंक्तियाँ साहित्यकार को समाज का सजग प्रहरी मानती हैं, जो समय की विसंगतियों पर आलोचनात्मक दृष्टि रखता है।

राजनीतिक और प्रशासनिक समस्याएँ

आजादी के बाद लोकतंत्र ने अपेक्षित स्वरूप ग्रहण नहीं किया। सत्ता की मंशा और जनता की अपेक्षाओं के बीच गहरी खाई बनी रही। आजादी के बाद जो सपना देखकर हमने लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को स्वीकारा था वह सपना ही रह गया। राजनीति में ऐसे लोग घुस गए हैं जिन्होंने अपने भ्रष्ट आचरण से देश का शोषण किया है, साथ ही देश की राजनीतिक हालात भी बिगाड़ दिए है। राजेश रेड्डी कहते हैं—

"खिजाओं के हाथों बिके बागबाँ
दुआ कीजिए गुलसिताँ के लिए।"[6]

यहाँ "खिजाँ के हाथों बिके बागबाँ" रूपक के माध्यम से राजनीति में प्रवेश कर चुके स्वार्थी तत्वों की निंदा की गई है, जिन्होंने जनहित की जगह निजी लाभ को प्राथमिकता दी। आज की लोकतांत्रिक स्थिति पर डॉ. अनिलकुमार शर्मा का मत है— "जनतंत्र मानव-कल्याण का वाहक होता है, किंतु ऐसा लगता है कि भारतीय जनतंत्र की समूची ऊर्जा ही आज जैसे स्खलित-सी हो गई है। जैसे-जैसे लोकतंत्र आयु की सीढ़ियों पर चढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे इसकी आंतरिक विकृतियाँ विकराल रूप लेती जा रही हैं। डरावना यथार्थ तो यह है कि जिन लक्ष्यों के लिए और जिन मूल्यों के संबल के साथ इसकी स्थापना की गई थी, वे वर्तमान राजनीति की गतिविधियों के कारण पूरी तरह लुप्त होते जा रहे हैं।"[7] इस भ्रष्ट सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का चित्रण हिंदी गजल में दिखाई देता है।

आजादी के बाद राजनैतिक मूल्यों का ह्रास, भ्रष्टाचार, न्यायपालिका एवं मीडिया के दुरुपयोग जैसे कई मुद्दे ग़ज़लकारों की दृष्टि में प्रमुख हैं। ग़ज़लों में भ्रष्टाचार की समस्या का प्रतिरोधी ज्वाला और निदान प्रस्तुत होता है। देश के विकास के लिए शासन की तरफ से पंचवार्षिक योजनाओं के रूप में विकास की नदियाँ देश में बहने लगी किंतु ये नदियाँ भ्रष्टाचार के कारण बीच में ही सुख जाती हैं। दुष्यंत कुमार की पंक्ति—

"यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।"[8]

भारतीय प्रशासनिक तंत्र की निष्क्रियता और योजनावादी दृष्टिकोण के विफल यथार्थ की ओर संकेत करती है। डी. एम. मिश्र का यह शेर—

"बड़े आराम से वो क़त्ल करके घूमता है
उसे मालूम है जज भी तो पैसा सूँघता है।"[9]

न्यायपालिका में पनप चुके भ्रष्टाचार की तीखी आलोचना है। इसी श्रृंखला में विनय मिश्र का कथन—

"विलंबित औ' बिकाऊ फैसलों पर
ये कैसी न्याय पाने की सनक है।"[10]

न्याय व्यवस्था से जनता के टूटते विश्वास का प्रतीक है।

सामाजिक और आर्थिक विषमता

गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, अमीरी-गरीबी की खाई, मजदूर-किसान पीड़ा, वंचित समुदायों की समस्याएँ भी हिंदी गजल में बार-बार उठती हैं। हिंदी ग़ज़ल इन विषमताओं पर न केवल विमर्श करती है, बल्कि एक बेहतर और मानवीय समाज की दिशा भी सुझाती है। राजेश रेड्डी जी गरीबी, बेरोजगारी की बात करते हुए राजेश रेड्डी कहते हैं—

"शाम को जिस वक्त खाली हाथ घर जाता हूँ मैं,
मुस्कुरा देते हैं बच्चे और मर जाता हूँ मैं।"[11]

यह शेर भारतीय श्रमिक वर्ग की अर्थिक असुरक्षा और भावनात्मक पीड़ा का अति संवेदनशील चित्रण है।

सांप्रदायिकता, आतंकवाद और पर्यावरण संकट

धर्म और राजनीति के गठजोड़ से उपजी सांप्रदायिकता आज सबसे बड़ी चुनौती बन चुकी है। सांप्रदायिकता को नेताओं और धर्मगुरुओं की साजिश कहकर कठोर आलोचना की गई है। आतंकवाद तथा पर्यावरणीय संकट के भयावह चित्र ग़ज़ल में मिलते हैं, जो पाठक को सचेत करता है। सांप्रदायिक एकता की बात करते हुए राजेश रेड्डी का यह शेर—

"गीता हूँ कुरान हूँ मैं
मुझको पढ़ इंसान हूँ मैं..."[12]

मानवता की मूल भावना को धर्म से ऊपर रखता है।

इसी क्रम में आतंकवाद की भयावहता वशिष्ठ अनूप और देवेंद्र आर्य की ग़ज़लों में स्पष्ट झलकती है— "जहाँ केसर महकता था, वहाँ बारूद उग आई।"[13]

"ये ज़ाफ़रान के खेतों से पूछना होगा
कि झील किस तरह बारूद से मिल जाती।"[14]

पर्यावरणीय संकट भी समकालीन ग़ज़लों का महत्वपूर्ण विषय है। हरेराम नेमा 'समीप' लिखते हैं—

"इस कदर फैला हवाओं में ज़हर है
धुंध में डूबा हुआ सारा शहर है।"[15]

यह पंक्तियाँ प्रदूषण और शहरी संकट की भयावह स्थिति को सीधे उजागर करती हैं।

वंचित समुदाय, स्त्री और दलित विमर्श

समकालीन ग़ज़लों में हाशिए पर पड़े वर्गों के प्रति गहरी संवेदना दिखाई देती है। स्त्री, दलित, आदिवासी, बाल मजदूर, वृद्ध जैसे उपेक्षित-वंचित समुदायों के सवालों पर संवेदनशील शेर पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं अदम गोंडवी का शेर—

"तबके की किस्मत में ही ज़हर लिखा है,
दलित डरता है, आदमी मरता है।"[16]

दलित समाज की दशा का सटीक प्रतीक है।

अदम गोंडवी आगे कहते हैं—

"वेद में जिनका हवाला हाशिए पर भी नहीं,
वे अभागे आस्था-विश्वास लेकर क्या करें।"[17]

यहाँ ग़ज़ल शोषित समुदाय के आत्मसम्मान और अस्मिता की वकालत करती है, जो पारंपरिक ढांचे में दम घुटने से त्रस्त है।

ऐसे ही आदिवासी समाज का चित्रण वशिष्ठ अनूप की पंक्तियों में मिलता है—

"जंगलों, नदियों, पहाड़ों के निधन का प्रश्न है ही,
अपने घर में पिट रहे बनवासियों का प्रश्न है।"[18]

यह शेर पर्यावरण और आदिवासी जीवन के पारस्परिक संबंध की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

किसान और मजदूर का यथार्थ

स्वतंत्र भारत में सबसे अधिक उपेक्षित वर्ग किसान और मजदूर ही रहे हैं। एक ग़ज़ल में अभिव्यक्त हुआ है—

"व्यवस्था से टकराकर जो टूट जाते हैं,
वही खेत-खलिहान में फसल काटते हैं।"

यह पंक्तियाँ बताती हैं कि अन्नदाता अपनी मेहनत के बावजूद शोषण का शिकार रहता है। इसी प्रकार—

"अन्नदाता भूखा है अपने खेत में,
शहर की ओर पलायन किसान का मेहतन है।"[19]

भारतीय ग्रामीण जीवन की त्रासदी को रेखांकित करता है, जहाँ मेहनतकश किसान अपनी ही भूमि पर बेगाना हो गया है।

पर्यावरणीय चेतना

समकालीन ग़ज़लें पारिस्थितिक संकट के प्रति चेतावनी स्वर में भी मुखर हैं। 'समीप' की पंक्ति—

"वो दिन आएगा जब बच्चे कहेंगे
सुना है बहती थी भारत में गंगा।"[20]

हास्य और गंभीरता दोनों स्तरों पर नदी-प्रदूषण की भयावहता का संकेत देती है। यह पंक्तियाँ न केवल पर्यावरणीय चेतावनी हैं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान के रक्षण की ओर भी संकेत करती हैं।

निष्कर्ष:

समकालीन हिंदी ग़ज़ल स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज का जीवंत दस्तावेज बन चुकी है। इसमें आमजन के दुख-दर्द, संघर्ष, असंतोष और आकांक्षा का स्वर अभिव्यक्त होता है। आज की ग़ज़ल केवल अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि प्रतिरोध और जागरण

का माध्यम है। यह प्रेम और श्रृंगार से आगे बढ़कर मानवता, समानता और संवेदना की कविता बन चुकी है। अपने सामाजिक सरोकारों, जनमानस से गहरे जुड़ाव और यथार्थबोध के कारण हिंदी ग़ज़ल ने आधुनिक साहित्य में एक सक्रिय प्रजातंत्र की भूमिका निभाई है। इस विधा में निहित जन पक्षधरता और प्रतिरोध की चेतना इसे आज के समय की सबसे अधिक प्रासंगिक काव्य विधा बनाती है।

संदर्भ :

1. हिंदी गजल के विविध आयाम, राजकमल प्रकाशन, डॉ. मुजावर सरदार, पृ. 40
2. वही, पृ. 41
3. वही, पृ. 101
4. रेड्डी राजेश, 'उड़ान', वाणी प्रकाशन पृ. 52
5. बेचैन कुँवर, आँधियों धीरे चलो, वाणी प्रकाशन, पृ. 69
6. रेड्डी राजेश, उड़ान, वाणी प्रकाश पृ. 51
7. कुरेशी ज़हीर एवं डॉ. दुबे मीनाक्षी, सादगी का सौंदर्य, पृ. 142
8. कुमार दुष्यंत साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 15
9. मिश्र डी. एम., आईना-दर-आईना, नमन प्रकाशन दिल्ली, 2016, पृ. 111
10. मिश्र विनय, सच और है, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, 2020, पृ. 42
11. रेड्डी राजेश, 'उड़ान', वाणी प्रकाशन पृ 45
12. रेड्डी राजेश, 'उड़ान', वाणी प्रकाशन पृ.45
13. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली 2006, पृ. 10
14. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली 2006, पृ. 10
15. नेमा हरेराम' समीप', समकालीन हिंदी गजलकर एक अध्ययन, भावना प्रकाशन पृ. 191
16. गोंडवी अदम, समय से मुठभेड़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पांँचवा संस्करण 2022, पृ. 51
17. www.hindwi.org
18. वशिष्ठ अनूप, रोशनी खतरे में है, उद्भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2006 पृ. 17
19. विवेक ज्ञान प्रकाश , गुफ़्तगू अवाम से है, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2008, पृ. 48
20 नेमा हरेराम 'समीप', हिन्दी ग़ज़ल की पहचान एनीबुक 2017, पृ. 282

*****

समकालीन हिंदी ग़ज़ल का सिंहावलोकन

प्रो. पंढरीनाथ पाटील "शिवांश"
गंगामाई महाविद्यालय, नगाँव, धुले

सारांश:

हिंदी ग़ज़ल की परंपरा का इतिहास एक सृजनात्मक प्रक्रिया की परिणति है जो साहित्यिक अनुशासन, भाषिक प्रयोग, सांस्कृतिक अंतःप्रवाह और सामाजिक सरोकारों से निरंतर प्रभावित होता रहा है। यद्यपि ग़ज़ल मूलतः अरबी-फारसी साहित्य से होते हुए उर्दू में विकसित हुई और वहीं से हिंदी में प्रवेश करती है, पर हिंदी ने इसे केवल अनुकरण के स्तर पर ग्रहण नहीं किया, बल्कि उसे अपनी भाषायी संवेदना, सामाजिक यथार्थ और काव्य परंपरा के अनुरूप पुनर्रचना दी। प्रारंभिक काल में हिंदी ग़ज़ल के स्वरूप और अभिव्यक्ति में उर्दू प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है, किंतु जैसे-जैसे हिंदी साहित्य में आधुनिक चेतना और यथार्थबोध की सघन उपस्थिति हुई, वैसे-वैसे ग़ज़ल एक गंभीर काव्य-रूप के रूप में विकसित हुई। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों ने हिंदी ग़ज़ल को पारंपरिक रूमानियत की संकीर्ण परिधि से निकालकर सामाजिक यथार्थ और जनवादी दृष्टिकोण की ओर मोड़ा। उनकेबाद अदम गोंडवी, अनवर जलालपुरी और अन्य अनेक रचनाकारों ने गज़ल को समकालीन विमर्शों, जैसे दलित चेतना, स्त्री प्रश्न, सांप्रदायिकता, राजनीति, बेरोज़गारी, शहरी-ग्रामीण अंतर आदि से जोड़ते हुए व्यापक जन-संबद्धता प्रदान की।

बीज शब्द: समकाल, हिंदी, ग़ज़ल, सांप्रदायिकता

समकालीन अर्थात् जो समकाल में है या इस काल में है। 'समकालीन' शब्द-

अंग्रेजी के 'कांटेम्परेरी' के पर्याय के रूप में प्रचलित है जिसका कोशीय अर्थ एक ही समय का, अपने समय का या समवयस्क होता है। समकाल शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खंड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है। इसे उलटकर कहें तो मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित-चित्रित करके ही हम समकालीनता की अवधारणा को समझ सकते हैं। समकालीनता का विस्तार इस अर्थ में होता है कि जो सृजन समकालीन युग में किया जा रहा है, यदि समकालीन प्रवृत्तियों एवं सामाजिक परिदृश्य को प्रतिबिंबित नहीं करता तो उसे समकालीन मानने में संदेह है। इसी प्रकार जो साहित्य इस युग के पहले लिखा गया है, यदि वह समय का अतिक्रमण करता है तो पहले लिखा जाकर भी वह समकालीन है। समकालीन एक व्यापक और बहुआयामी शब्द है और आधुनिकता का आधार तत्त्व है। जो समकालीन है वह आधुनिक भी हो यह आवश्यक नहीं, किंतु जो आधुनिक चेतना से संबंधित दृष्टि है वह निश्चित रूप से समकालीन भी होती है। इसी संदर्भ में समकालीनता के अर्थ एवं तात्पर्य को थोड़ा व्यापक करके ही ग्रहण करना चाहिए।

समकालीन समाज एक वैज्ञानिक समाज है। यह समाज ज्ञान की प्राप्ति अथवा किसी समस्या के उपयुक्त समाधान के लिए संबंधित घटनाओं एवं परिस्थितियों का विश्लेषण बौद्धिक एव तार्किक रूप से करता है। समाज के विकास के साथ ही मनुष्य का यह दृष्टिकोण विकसित हुआ है कि वह वैज्ञानिक आधारों पर अपने समाज की अन्य क्रियाओं को समझने का प्रयास करें। समकालीन समाज वैश्वीकरण, उदारीकरण, आधुनिकीकरण और उत्तर-आधुनिकीकरण से जुड़ा है जिसने क्षेत्रीयता की भावना को सुदृढ़ किया है। अब आंचलिक क्षेत्र अपनी स्वायत्तता की माँग कर रहे हैं। शिक्षा ने युक्तायुक्त विचारधारा को बढ़ावा दिया है। यह नहीं है कि आधुनिकीकरण को भारतीय समाज ने पूरी तरह स्वीकार कर लिया है बल्कि परंपरा और सामाजिक संरचना ने आधुनिकीकरण के प्रति अपनी चुनौती भी रखी है।"1

हिंदी में ग़ज़ल विधा के विकास और प्रवृत्तियों की बात की जाए तो समकालीन प्रमुख ग़ज़लकारों में दुष्यंत कुमार, कुँअर बैचेन, गोपालदास 'नीरज', सूर्यभानु गुप्त, चंद्रसेन विराट, भवानी शंकर, जहीर कुरेशी, हनुमन्त नायडू, डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, रामकुमार कृषक, डॉ. उर्मिलेश, अदम गोंडवी, ज्ञानप्रकाश विवेक, शिव ओम अंबर, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, अवधनारायण मुद्गल, शेरजंग गर्ग, नंदलाल पाठक, रोहिताश्व अस्थाना, राजेश रेड्डी, सादिका नवाब 'सहर', राम प्रसाद शर्मा महर्षि, शलभ श्री रामसिंह, विनोद तिवारी, विज्ञान व्रत, महेश अग्रवाल, हस्तीमल हस्ती, डॉ. किशन तिवारी, माधव कौशिक, देवेंद्र आर्य, सुल्तान अहमद, कमलेश भट्ट 'कमल', राजेंद्र तिवारी, विनय मिश्र आदि का अनुपम योगदान है।

दुष्यंत कुमार को समकालीन हिंदी ग़ज़ल का अगुआ माना जाता है। दुष्यंत कुमार का जन्म 1 सितंबर, 1933 ई. को राजपुर नवादा, जिला बिजनौर, उत्तर प्रदेश में एक जमींदार परिवार में हुआ था तथा केवल 42 साल की उम्र में 30 दिसंबर 1975 ई. को भोपाल में उनका देहांत हो गया। दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों में गमे जानां या वैयक्तिक पीड़ा से गमे दौरां या सार्वजनिक पीड़ा में समाने के बजाय सार्वजनिक पीड़ा में अपनी वैयक्तिक पीड़ा को लीन कर दिया है। प्रिय से गिले-शिकवे, विरह और मिलन

की अनुभूतियाँ अर्थात् जाति-रिश्तों का दर्द या जाति अनुभवों की पीड़ा उनकी ग़ज़लों में बहुत ही कम है। इनका दर्द कुछ और नहीं, समाज की विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ और शोषण है। वे अपने मन में समाजवाद की इच्छा रखते थे और उनकी सारी लड़ाई हक या अधिकार की लड़ाई थी।

"जिन आँसुओं का सीधा ताल्लुक था पेट से
उन आँसुओं के साथ तेरा नाम जुड़ गया।"2

दुष्यंत कुमार महानगर के प्रदूषित वातावरण और घर की समस्याओं को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

"ये धुएँ का एक घेरा कि मैं जिसमें रह रहा हूँ।
मुझे किस कदर नया है, मैं जो दर्द सह रहा हूँ।"3

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की भी कमी नहीं है। आधुनिक युग में पनपने वाले भय, क्रोध, घुटन और असफल इच्छाओं को दुष्यंत कुमार ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर महसूस किया है।

"मैं बेपनाह अँधेरों को सुबह कैसे कहूँ,
मैं इन नज़ारों का अंधा तमाशबीन नहीं।"4

दुष्यंत कुमार के अनुसार राजनीति के दाँव-पेंच को जनता काफी हद तक समझती है। उनका मूल स्वर राजनीति और समाज से जुड़ा हुआ है, दुष्यंत कुमार के अनुसार राजनेताओं के हाथों में आज आदमी खिलौना बनकर रह गया है-

"जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,
हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।"5

दुष्यंत कुमार की भाषा हिंदुस्तानी भाषा है, जहाँ उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं के बीच की सीमा टूट जाती है और दूरी मिट जाती है। हिंदुस्तानी भाषा और हिंदुस्तानी हृदय के साथ दुष्यंत कुमार ने गज़ल के ऐसे संसार का निर्माण किया है जिसमें आने वाले ग़ज़लकारों के लिए प्रेरणा ही प्रेरणा थी।

डॉ. कुँअर बेचैन समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। आपका नाम हिंदी गजलकारों में अत्यन्त आदर एवं स्नेह के साथ लिया जाता है। डॉ. कुँअर बेचैन अपनी गज़लों के माध्यम से समाज को रोगमुक्त करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य समाज को जीवनदान देने का सशक्त माध्यम है और इसी संकल्प को लेकर वे अपनी ग़ज़लों के माध्यम से प्रहार भी करते हैं, परंतु यह प्रहार वे मारने के लिए न करके जीवनदान देने के लिए करते हैं। उनका कहना है "अब ग़ज़ल के सामने पूरा समाज एक ऐसी इकाई बनकर सामने आता है जिसमें सर्वहारा की प्रताड़ना छिपी रहती है। आज की गजल समाज की इसी इकाई के दुःख-निवारण की तीर्थ यात्रा भी है।" आज मनुष्य-मनुष्य के बीच इतनी दूरियाँ पैदा हो गई हैं कि आपसी एकात्म भाव के संबंध ही जैसे समाप्त हो गए हैं। प्रत्येक मनुष्य अपना स्वार्थ सिद्ध करने में ही जुटा हुआ है तथा आत्मकेंद्रित हो गया है।

"मेरी नजरों से नजारों की तरह टूटे हैं
वो जो टूटे तो, सहारों की तरह टूटे हैं
जिस को चाहा था, उसी प्यार को पाने के लिए
हम भी दुनिया में हजारों की तरह टूटे हैं।"6

गोपालदास 'नीरज' को काव्य-लेखन की प्रेरणा हरिवंशराय बच्चन के 'निशा निमंत्रण' से प्राप्त हुई। मूलतः नीरज एक गीतकार हैं किंतु उन्होंने कुछ ग़ज़लों का सृजन भी किया है। वे अपनी गज़लों को 'गीतिकाएँ' कहते रहे। उनकी गीतिकाओं को कई लोग गीत और ग़ज़ल का मिला-जुला रूप मानते हैं। नीरज की कुछ ऐसी ग़ज़लें हैं जो गीत के विधान के अधिक निकट हैं। ये शुद्ध रूप से न तो गीत ही हैं न ग़ज़ल ही बल्कि दोनों का मिला-जुला रूप हैं।"7 उन्होंने कुछ ऐसी ग़ज़लें लिखी हैं, जो उर्दू ग़ज़ल के छंद-विधान पर आधारित हैं। 'नीरज की गीतिकाएँ', 'नीरज की पाती' तथा 'कारवाँ गुजर गया' इन संकलनों में जो ग़ज़लें संकलित हैं, उन्हीं गज़लों को विवेचन हेतु आधार बनाया गया है। नीरज मानवीय संवेदना को लेकर लिखते हैं-

"जिसमें इंसान के दिल की न हो धड़कन 'नीरज'
शायरी तो है वह अखबार की कतरन की तरह।"8

नीरज के मतानुसार भारतवर्ष को यदि संपन्न एवं खुशहाल बनाना है तो देश में एक ऐसे मजहब को चलाना आवश्यक है जिसमें इंसानियत ही सबसे महत्त्वपूर्ण हो।

सांप्रदायिकता के कारण धर्म और मजहब के मध्य जो दीवार निर्मित हो गई है, वह बेमानी है। इस दीवार को गिराना आवश्यक है। इसके लिए इंसानी धर्म का निर्माण करने की आवश्यकता है। नीरज की मान्यता है कि लोगों के दिलों में बढ़ती हुई नफरत को केवल प्यार मुहब्बत से ही मिटाया जा सकता है। वे लिखते हैं- "अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाए जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए। जिसकी खुशबू से महक जाए पड़ोसी का भी घर फूल इस किस्म का हर सिम्त खिलाया जाए। मेरे दुःख दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा, मै रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए।"9

नीरज जी मानते हैं कि रचना सप्रयास न होकर स्वतःस्फूर्त होती है- "तुम्हें यह जानकर शायद विश्वास न आए कि मैंने अपनी एक भी कविता आज तक स्वयं नहीं लिखी। मैनें स्वयं नहीं लिखी का अर्थ यह नहीं कि किसी और ने लिखी और छप गई मेरे नाम से। ..... मतलब यह कि मैंने सप्रयास नहीं लिखी। अभिव्यक्ति की हूक स्वतः ही शब्द पाकर मेरी लेखनी की नोक पर अनायास उतर आती है और मुझे पता ही नहीं चलता कि कब और कैसे वह कविता बन जाती है।"

सूर्यभानु गुप्त का जन्म 22 सितंबर, 1940 में उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के नाथूखेड़ा गाँव में हुआ था। उन्होंने 12 वर्ष की उम्र से कविता लेखन प्रारंभ कर दिया था। वे युवावस्था में अर्थात् 1961 में ही फिल्मों के लेखन कार्य के लिए मुंबई आ गए थे। यहाँ उन्होंने अनेक नौकरियाँ कीं लेकिन सन् 1993 से नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन में संलग्न हो गए। उनका एकमात्र कविता-संग्रह 'एक हाथ की ताली' सन् 1997 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसमें उनकी 22 ग़ज़लें ही शामिल हैं। सूर्यभानु गुप्त की ग़ज़लों में आज की पूँजीवादी सभ्यता और महानगरीय जीवन में व्याप्त समस्याओं- हर तरफ भाग-दौड़, मार-काट, लूट-खसोट, छल-प्रपंच, ईर्ष्या-द्वेष, झूठ-फरेब, धोखा-मक्कारी आदि का बहुत विश्वसनीय चित्रण हुआ है-

"रात दिन यूँ चला सिलसिला झूठ का, बन गया दोस्तो ! एक किला झूठ का।
सच तो मुरझा गए राजदरबार में,
कोई चेहरा खिला तो खिला झूठ का।
"शहरे-जम्हूरियत मर्हबा-मर्हबा,
रहगुजर-रहगुजर काफिला झूठ का। "10

सूर्यभानु गुप्त ने अपनी ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा को बहुत ही मार्मिकता से उकेरा है। इस पीड़ा का कभी वे सीधा बयान करते हैं तो कभी प्रतीकों, बिंबों और उपमानों के माध्यम से। उदाहरण दृष्टव्य है-

"चाँद, दरिया, हवा चश्मे तर जिंदगी, खूबसूरत गमों का सफर ज़िंदगी। जिंदा होने का अहसास तक भी नहीं, ये कहाँ पर गई है ठहर जिंदगी। सौ-जगह पे रफू की गई शर्ट है, क्या करे लेके कोई बशर जिंदगी।"11

श्री चंद्रसेन डोके 'विराट' महाराष्ट्रियन मूल के हिंदी कवि हैं। उनका जन्म 3 दिसंबर, 1936 को जिला इंदौर, मध्यप्रदेश के एक गाँव 'बलवाडा' में हुआ था। उनका बचपन का नाम बालू था। उनकी माता का नाम वेणुताई डोके तथा पिता का नाम यादवराव डोके था, जो मध्यप्रदेश शासन में शिक्षा विभाग के वरिष्ठ अधिकारी के पद पर आसीन थे। चंद्रसेन विराट के 12 गज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। यात्रा के बारह पड़ावों के रूप में आए गज़ल संग्रह इस प्रकार हैं- निर्वसना चाँदनी, आस्था के अमलतास, कचनार की टहनी, धार के विपरीत, परिवर्तन की आहट, लड़ाई लंबी है, न्याय कर मेरे समय, फागुन माँगे भुजपाश, इस समय का आदमी, हमने कठिन समय देखा है, खुले तीसरी आँख, बोल मेरी जिंदगी। इनकी ग़ज़लों में प्रेम की सुंदर और कोमल अनुभूतियाँ दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि प्रेम सरस जीवन का मूल आधार है, परंतु जीवन की संपूर्णता प्रेम में ही सन्निहित नहीं है। जब पेट में भूख की ज्वाला जल रही हो, तब प्रेम की भावनाएँ सर्वथा निरर्थक लगती हैं। विराट की गज़लों में हिंसा, बर्बरता, पशुता के प्रति विद्रोह का भी स्पष्ट स्वर दिखाई पड़ता है-

"ये घटा है या प्रलय अभियान का संकेत है,
इन हवाओं में किसी तूफान का संकेत है।
अनसुनी कर दी गई है चीख फिर से सत्य की,
यह किसी सुकरात के विषपान का संकेत है। "12

विराट जी का हिंदी ग़ज़ल के प्रति भावात्मक लगाव है। उन्होंने समकालीन तथा परवर्ती रचनाकारों को अपने कथ्य की सार्थकता बनाए रखने की प्रेरणा भी दी है-

"भले ही कम लिखें लेकिन बराबर यह रहे कोशिश,
लिखा जब जाए तो अच्छे से भी अच्छा लिखा जाए।"13

भवानी शंकर का जन्म 20 जून 1945 को जबलपुर में हुआ। वे युग प्रवर्तक गजलकार दुष्यंत कुमार के समकालीन थे। उनके दो ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

पहला 'भवानी शंकर की ग़ज़लें' 1974 में प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी 32 गज़लें हैं तथा दूसरा 'चौखटों के पार 1976 में आया, जिसमें 30 ग़ज़लें प्रकाशित हुई थीं।

'भवानी शंकर की ग़ज़लें' पुस्तक की भूमिका में श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने लिखा है कि- "प्रस्तुत संग्रह में 32 कविताएँ हैं। मेरे विचार में ये बत्तीस कविताएँ नहीं हैं बल्कि वर्तमान समाज के चेहरे पर बत्तीस तमाचे हैं। उष्ण रक्त वाले एक ईमानदार कवि के मजबूत हाथ की करारी चोट।"14 भवानी शंकर एक प्रगतिशील और जनपक्षधर मूल्यों के समर्थक रचनाकार है। डॉ. वशिष्ठ अनूप कहते हैं कि "उनकी गज़लें दबे कुचले, शोषित वर्ग के दुःख-दर्द का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। मजदूरों-किसानों और सामान्य नौकरीपेशा इंसान के जीवन की तकलीफों, अभावों और त्रासदियों को ये ग़ज़लें बड़ी जीवंतता के साथ प्रस्तुत करती हैं।"15 यथा-

“हाड़ सूखे, खेत बंजर और ये जलता मकान, देखना है चुप रहेगा और कब तक आसमान। कोख धरती की हरी होगी वहाँ पर दोस्तों, आदमी हल में जुता होगा जहाँ लहूलुहान।" 16

भवानी शंकर की ग़ज़लों में एक तरफ आज की विभिन्न स्थितियों और विकृतियों पर चोट की गई है, वहीं पारंपरिक बंधनों व रूढ़ियों से मुक्ति की कोशिश तथा एक बेहतर समाज के निर्माण की कोशिश व आकांक्षा भी दिखाई पड़ती है-

अपनी अलग जमीन बनाए हुए तो है,
इक शख्स शहर भर को हिलाए हुए तो है।”17

भवानी शंकर राजनीतिक व सामाजिक समझ के ग़ज़लकार हैं। उन्होंने वर्तमान समाज के खुरदुरे यथार्थ को न केवल चित्रित किया, अपितु जनसामान्य को इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का साहस भी प्रदान किया। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी इनकी ग़ज़लों के शेर सरल और बोधगम्य हैं।

हिंदी समकालीन गजल साहित्य के विकास में जिन महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकारों का विशेष योगदान हैं, उनमें जहीर कुरेशी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जहीर कुरेशी का जन्म 5 अगस्त, 1950 को चंदेरी, जिला अम्बिकापुर, मध्यप्रदेश में हुआ था। काव्य सृजन की लगन और प्रेरणा उन्हें अपने उर्दू शायर पिता शेख मुहम्मद नजीर साहब से मिली थी। जहीर कुरेशी के दो गज़ल संग्रह हैं- एक टुकड़ा धूप (1979), (उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत) और 'चाँदनी का दुख' (1986)। वे उन कुछ एक गजलकारों में से एक है, जिनकी ग़ज़लें हिंदी में सोची और विशुद्ध हिंदी भाषा में रची गई हैं। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में राजनीतिक बोध, मध्यम और निम्नवर्ग की दुर्दशा, उनके दैनिक जीवन की कठिनाइयों कभी व्यक्तिगत रूप से तो कभी सामूहिक रूप से प्रदर्शित होती हैं। वे लिखते हैं-

"दो रोटी के अलावा चार की बातें नहीं करते,
करोड़ों लोग कोठी कार की बातें नहीं करते।
जिन्हें बिकना है, जीवन में हजारों बार बिकना है,
वे अपने मूल्य या बाज़ार की बातें नहीं करते।'"18

जहीर कुरेशी ने राजनीति के घिनौने चेहरे पर भी जमकर प्रहार किया है। लोकतांत्रिक मूल्यों के हनन एवं राजनेताओं की अवसरवादिता इत्यादि पर उन्होंने बड़ा कठोर व्यंग्य किया है-

"वे तो अभिनेता हैं, उसके भाव पढ़ना है कठिन,
उसके चेहरे से न लग पाएगा अंतर का पता।
कल महोत्सव वोट गिरने का है शायद इसलिए,
आज 'पर्वत' पूछने आया है 'कंकर' का पता !" 19

जहीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में स्त्री के दुःख-दर्द को बड़े ही गंभीरता से उकेरा है। डॉ. सायमा बानो कहती हैं- "नारी जीवन के यथार्थ के निकट हिंदी गज़लों को ले जाने में ज़हीर की अहम भूमिका रही है। स्त्री जीवन की कटुताओं और विसंगतियों को इन ग़ज़लों ने प्रभावी स्वर दिया है, स्त्री के विविध रूपों में अपनी संवेदनाओं के साथ जहीर यहाँ उपस्थित हैं। पत्नी, पुत्री, प्रेयसी, माँ यहाँ तक कि गणिका का चरित्र भी इसमें बिंबित है और इन सबसे बढ़कर नारी का वह रूप जिसकी युगों से अवहेलना होती रही है- उसका मनुष्य रूप।"20

जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में नारी विमर्श के सर्वाधिक शेर मिलते हैं। दुष्यंत कुमार सहित हिंदुस्तान के किसी भी शायर ने शायद ही नारी जीवन के इतने विभिन्न रूपों और आयामों पर फोकस किया हो। "जहीर कुरेशी की गज़लों की स्त्री एकदम हिंदुस्तानी औरत है जिसकी मनःस्थिति एवं मानसिकता को जहीर ने बारीकी से उकेरने की प्रामाणिक कोशिश की है। "21

जहीर कुरेशी की ग़ज़लें वस्तु, भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से हिंदी की मानक ग़ज़लों में शुमार हैं। ये ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल की समृद्धि के नए कीर्तिमान भी निर्मित कर रही हैं। दुष्यंत कुमार के बाद हिंदी ग़ज़ल को जो मान्यता मिली है तथा इसका जो विकास हुआ है उसमें ग़ज़लकार जहीर कुरेशी के योगदान को कभी नहीं नकारा जा सकता। अतः समकालीन हिंदी ग़ज़ल की चर्चा जहीर कुरेशी की ग़ज़लों के बिना आधी-अधूरी होगी।

इस प्रकार कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल की परंपरा का इतिहास एक सृजनात्मक प्रक्रिया की परिणति है जो साहित्यिक अनुशासन, भाषिक प्रयोग, सांस्कृतिक अंतःप्रवाह और सामाजिक सरोकारों से निरंतर प्रभावित होता रहा है। यद्यपि ग़ज़ल मूलतः अरबी-फारसी साहित्य से होते हुए उर्दू में विकसित हुई और वहीं से हिंदी में प्रवेश करती है, पर हिंदी ने इसे केवल अनुकरण के स्तर पर ग्रहण नहीं किया, बल्कि उसे अपनी भाषायी संवेदना, सामाजिक यथार्थ और काव्य परंपरा के अनुरूप पुनर्रचना दी। प्रारंभिक काल में हिंदी ग़ज़ल के स्वरूप और अभिव्यक्ति में उर्दू प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है, किंतु जैसे-जैसे हिंदी साहित्य में आधुनिक चेतना और यथार्थबोध की सघन उपस्थिति हुई, वैसे-वैसे ग़ज़ल एक गंभीर काव्य-रूप के रूप में विकसित हुई। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों ने हिंदी ग़ज़ल को पारंपरिक रूमानियत की संकीर्ण परिधि से निकालकर सामाजिक यथार्थ और जनवादी दृष्टिकोण की ओर मोड़ा। उनकेबाद अदम गोंडवी, अनवर जलालपुरी और अन्य अनेक रचनाकारों ने गज़ल को समकालीन विमर्शों, जैसे दलित चेतना, स्त्री प्रश्न, सांप्रदायिकता, राजनीति, बेरोज़गारी, शहरी-ग्रामीण अंतर आदि से जोड़ते हुए व्यापक जन-संबद्धता प्रदान की।

यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी ग़ज़ल की भाषा शुद्ध खड़ीबोली हिंदी तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें देशज शब्दों, लोक-रूपकों, बोलियों तथा आमजन की भाषिक अभिव्यक्ति को भी आत्मसात् किया गया। यही कारण है कि हिंदी गज़ल ने एक ओर साहित्यिक उत्कृष्टता को साधा तो दूसरी ओर संप्रेषणीयता और लोकप्रियता को भी अर्जित किया। मंचीय काव्य-परंपरा और मीडिया के प्रसार ने भी हिंदी गजल को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। व्यंग्यात्मक, हास्यप्रधान और वैचारिक गज़लों ने न केवल साहित्यिक पाठकों को बल्कि सामान्य श्रोताओं को भी आकृष्ट किया। आज की हिंदी ग़ज़ल जहाँ एक ओर पारंपरिक बहर और छंद संरचना को बनाए रखने का प्रयास करती है, वहीं दूसरी ओर मुक्त अभिव्यक्ति और लयात्मकता के नए प्रयोगों की ओर भी अग्रसर है। यह द्वैध प्रवृत्ति हिंदी ग़ज़ल को न केवल साहित्यिक रूप से जीवंत बनाए हुए है, बल्कि इसकी भविष्यगत संभावनाओं को भी पुष्ट करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल की परंपरा कोई रेखीय या स्थिर यात्रा नहीं रही, बल्कि यह सतत परिवर्तनशील, संवादशील और जन-सरोकारों से संपृक्त प्रक्रिया रही है। यह परंपरा अपने विविध कालखंडों में भाषिक अनुशासन, सामाजिक प्रतिबद्धता और सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा समन्वय प्रस्तुत करती है जो हिंदी साहित्य की समकालीन संवेदना को न केवल समृद्ध करता है, बल्कि भविष्य की साहित्यिक दिशाओं को भी इंगित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एस.एल. दोषी, पी.सी. जैन, भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृ. 10.
2. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 38
3. वही, पृ. 53.
4. वही पृ. 64.
5. वही पृ. 43.
6. कुँअर बेचैन, पत्थर की बाँसुरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010. पृ. 87
7. कुँअर बेचैन, रस्सियाँ पानी की, प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ.91.
8. नित्यानन्द तुषार, (सं.), कुँअर बेचैन की चुनी हुई ग़ज़लें, पृ. 13.
9. मधु खराटे, हिंदी गजल और ग़ज़लकार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृ.181.
10. नीरज, कारवाँ गुजर गया, पृ. 116.
11. नीरज, ग़ज़लें ही ग़ज़लें, पृ. 82.

12. डॉ. वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2006, पृ. 42.
13. सूर्यभानु गुप्तः धर्मयुग 28 सितंबर 1975, पृ. 17.
14. हरेराम नेमा समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 86
15. चंद्रसेन विराट, निर्वसना चाँदनी, लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर, 1985, पृ. 88
16. हरेराम नेमा समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 219.
17. गोपाल कृष्ण कौल, ग़ज़ल सप्तक, पृ. 68.
18. हरेराम नेमा समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकारः एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 223.
19. मधु खराटे, हिंदी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृ. 167
20. जहीर कुरेशी, महत्व और मूल्यांकन, सायना बानो के लेख से, (सं.) डॉ. विनय मिश्र, पृ. 230.
21. डॉ. मधु खराटे, हिंदी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृ. 175.

*****

गुलज़ार : हिंदी सिनेमा के रूमानी गीतकार

डॉ. अशोक मोहन मरळे
सहयोगी प्राध्यापक एवं शोध-निर्देशक
हिंदी विभाग, मालती वसंतदादा पाटील
कन्या महाविद्यालय, इस्लामपुर
दूरभाष – 9623527601
ई मेल – drashokmarale@gmail.com

शोध सार :

महान कवि, गीतकार और फिल्म निर्देशक गुलज़ार भारतीय सिनेमा के सबसे प्रतिष्ठित नामों में से एक हैं, जिन्हें अक्सर 'हिंदी सिनेमा के रूमानी गीतकार' के रूप में जाना जाता है। वे भारतीय साहित्य और सिनेमा के एक ऐसे शिखर पुरुष हैं जिनकी लेखनी ने अनगिनत दिलों को छुआ है। वे केवल एक कवि या गीतकार नहीं, बल्कि भावनाओं के कुशल शिल्पी हैं जो अपने शब्दों से हर एहसास को जीवंत कर देते हैं। उनके गीतों में प्रेम, विरह और मानवीय रिश्तों की अद्भुत गहराई मिलती है। गुलज़ार की सर्जना का एक–एक शब्द जीवन के विविध रंगों को गहराई के साथ प्रस्तुत करता है। अपने गीतों के माध्यम से उन्होने भारतीय संस्कृति को निरंतर समृद्ध किया है। प्रस्तुत शोध पत्र गुलज़ार की रूमानियत के विविध रंगों को आकाश दे रहा है।

बीज शब्द : जीवन अभिव्यक्ति, रूमानी, संवेदनशील मन, यात्रा मर्म, संग–साथ, कलाकृति, इंद्रधनुषी रंग, सम्यक संवाद आदि।

प्रस्तावना

गुलज़ार शब्दों के जादूगर हैं। उनकी अपनी अनगिनत नज़्मों, कविताओं, ग़ज़लों और फिल्मी गीतों की समृद्ध दुनिया है। उनका हर गीत अपना सूफ़ियाना रंग लिये हुए अलग प्रकार का जीवन-दर्शन व्यक्त करता है। गुलजार इसलिए भी गुलजार हैं कि वे सांचे तोड़ते हैं। अपने साठ वर्ष से अधिक कार्यकाल में दो सौ से ज़्यादा फ़िल्मों के लिए लिखे गए उनके गीतों को लगभग चालीस से अधिक संगीतकारों ने स्वरबद्ध किया है। उनके हर गीत का अपना एक अलग रंग और अलग खुशबू होती है। उनके गीत अपनी सादगी, गहराई और मानवीय भावनाओं को अलग अंदाज में छूने के लिए जाने जाते हैं, जिसमें प्रेम, जीवन, प्रकृति और दर्शन का अद्भुत मिश्रण होता है।

गीत, ग़ज़ल, कविता और शायरी को एक नई पहचान देने वाले महान शायर संपूरन सिंह कालरा 'गुलज़ार' का जन्म 18 अगस्त 1934 को झेलम नदी के तट पर स्थित दीना, पंजाब (अब पाकिस्तान) में हुआ है। बंटवारे के बाद जहा उनका परिवार अमृतसर आकर बस गया, वहीं गुलज़ार मुंबई आ गए। वहाँ उन्होने एक गराज में मैकेनिक के रूप में अपना जीवन सफर शुरू किया। जीविका हेतु पैसों की व्यवस्था होने के बाद सुकून के समय में शायरी, कविता पढ़ते हुए अपना मार्ग तलाशते रहे। अपने संघर्ष के दिनों में एक मोटर गैराज में काम करने से लेकर हिंदी सिनेमा के दिग्गज निर्देशकों के साथ काम करने तक के सफ़र में गुलज़ार साहब ने जिंदगी को करीब से देखा है।

गुलजार की गीतों के अलावा चौरस रात, जानम, एक बूंद चांद, रावी पार, 'रात, चांद और मैं', रात पश्मीने की, 'दो लोग', 'पाजी नज्में', 'धुंआ', 'ऑटम मून', 'पुखराज', 'जिया जले', 'ग़ालिब', खराशें और 'लकीरें'.. आदि अनेक किताबें उनकी बहुआयामी कल्पनाशीलता की दुनिया को उनके पाठकों तक पहुंचाने में सफल रही हैं।

गुलज़ार भारतीय सिनेमा के एक खास वर्ग के दर्शकों के लिए सामान्य परिपाटी से हटकर सुकुमार-सुकोमल भावनाओं को फिल्म का विषय बनाने में बेहद कामयाब रहे हैं। 'मेरे अपने', 'परिचय', 'कोशिश', 'अचानक', 'खुशबू', 'आंधी', 'मौसम', 'किनारा', 'किताब', 'अंगूर', 'नमकीन', 'मीरा', 'इजाजत', 'लेकिन', 'लिबास', 'माचिस' और 'हू तू तू' जैसी कई फिल्मों के निर्देशन से उनके कौशल का अद्भुत परिचय मिलता है।

गुलज़ार के नाम 5 राष्ट्रीय फिल्म अवार्ड, दो सर्वश्रेष्ठ गीतकार, एक सर्वश्रेष्ठ स्क्रीनप्ले, एक सर्वश्रेष्ठ फिल्म निर्देशक और एक सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय फिल्म निर्देशक, 22 फिल्मफेयर पुरस्कार, एक एकेडेमी अवार्ड और एक ग्रैमी अवार्ड के साथ ऑस्कर पुरस्कार के वे धनी हैं। इसके साथ ही हिंदी के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार, 2004 में पद्मभूषण और 2013 में भारतीय फिल्म जगत का सबसे बड़े दादा साहेब फालके तथा इस देश के साहित्य क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ ज्ञानपीठ पुरस्कार से उन्हे सम्मानित किया गया है।

गुलज़ार की रूमानियत

गुलजार की खास पहचान उनके रूमानी गीतों की दुनिया है। "रूमानियत से मतलब सिर्फ रोमांटिक प्यार या आशिकी नहीं, बल्कि भावनाओं को बेहद नर्म और सूक्ष्म तरीके से महसूस करने और लिखने का ढंग है।"[1] इसी भाव से गुलज़ार के लिखे गीत भी खुशबूदार, कोमल और संवेदनाओं से भरे हुए लगते हैं। वे अक्सर रोजमर्रा की चीजों और छोटे-छोटे पलों में भी नर्मी, लगाव और दर्द की मिली-जुली भावना पैदा कर देते हैं। गुलज़ार एक ऐसे रोमानी शायर हैं, जिन्हें पढ़ना हमेशा सुखद लगता है। उन्हें पढ़ते हुए अपने रिश्तों की दुनिया कुछ और महीन और सुंदर ढंग से हमारे सामने खुलती है।

गुलजार लीक पर नहीं चले, उन्होंने अपनी अलग लीक बनाई है। गोरे रंग पर गुमान करने वाली फिल्मी दुनिया में अपना 'बंदिनी' फिल्म का पहला गीत लाए तो इस अर्ज़ के साथ कि "मोरा गोरा अंग लई ले / मोहे श्याम रंग दई दे / छुप जाऊँगी रात ही में / मोहे पी का संग दै दे / एक लाज रोके पैया/ एक मोह खींचे भैया/ जाऊँ किधर न जानू/ हमका कोई बताई दे।"[2] मानवीय संवेदनाओं का इतना सूक्ष्म चित्रण, जो हृदय को स्पंदित करे, गुलजार के ही बस की बात है। जीवन के हर पहलू को उन्होंने अपने दिल से महसूस किया और उसे कागज़ पर खूबसूरती से उतारा है। शायद इसी कारण उनके गीत और शायरी पढ़ते हुए हमें लगता है कि जैसे वह हमारी ही बात कह रहे हों।

किसी दिन नींद से उठने के बाद अगर आपके कानों पर यह गाना पड़ता है तो आप दिनभर यह गीत गुनगुनाए बिना नहीं रह सकते. वह गीत है- "तुझ से नाराज नहीं जिंदगी, हैरान हूँ मै / तेरे मासूम सवालों से परेशान हूँ मैं / जीने के लिए सोचा ही न था, दर्द सँभालने होंगे / मुस्कुराएँ तो मुस्कुराने के कर्ज उठाने होंगे।"[3] 'मासूम' फ़िल्म का यह एक बेहद रूमानी और दार्शनिक गीत है जो ज़िंदगी से शिकायत नहीं बल्कि उसकी मुश्किलों, सवालों और दर्द को हैरानी और अपनेपन के साथ स्वीकार करने की भावना व्यक्त करता है।

"तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा तो नहीं, तेरे बिना ज़िंदगी भी लेकिन जिंदगी तो नहीं/ तुम जो कह दो तो आज की रात चाँद डूबेगा नहीं / रात को रोक लो, रात की बात है और जिंदगी बाकी तो नहीं।"[4] 'आंधी' फ़िल्म का यह गीत बेहद साधा लेकिन गहरे रूपक और भावनात्मक चित्रों से भरा है। अधूरे प्यार, समझौते और साथ न छूटने की एक बहुत नर्म कसक वाला रूमानी गीत आज भी लोगों की जुबान पर है।

गुलज़ार की सर्जना का एक–एक शब्द जीवन के विविध रंगों को विलक्षण अनुभूति के साथ प्रस्तुत करता है। यतीन्द्र मिश्र के अनुसार- "मसलन, शायर का मानना है कि जिस भाप की लिखावट से वो नज़्में लिख रहे हैं, इस भाप के चूल्हे पर ढेर सारी जुबानों की हाँडियाँ रखी हुई हैं। ज़ाहिर है जिंदगी के फ़लसफे से भी जो उबाल इन ज़ुबानो को मिलती है, उससे न सिर्फ़ दूसरी आवाज़ों और बोलियों की इबारतें पक रही हैं, बल्कि जिंदगी ख़ुद भी उसी चूल्हे पर चढ़ी हुई, नज़्मों की आँच से धिक रही है। चूल्हे पर चढ़ी हुई जिंदगी के बर्तन में ढ़ेरों मानवीय संवेदनाएँ कुछ अनूठा पकाने के लिए हर समय कुछ नया रच रही हैं।"[5] गुलज़ार का जीवन हमें हर मोड पर प्रेरणा देता रहा है, क्योंकि उन्होने जीवन की प्रत्येक अनुभूति को महसूस कर उसे गीत, कविता, शायरी के रूप में प्रस्तुत किया है।

'इजाजत' फिल्म के गीत में गुलजार की बेहद अलग रूमानियत से हम परिचित हो जाते हैं। जहाँ नायिका अपने पुराने प्रेम की यादों और चीज़ों को वापस माँगती है, जो उसके लिए अब भी महत्वपूर्ण हैं। एक सौ सोला चांद की रातें..., एक तुम्हारे कान्धे का तिल.../ गीली मेहंदी की खुशबू, झूठ मूठ के शिकवे कुछ/ झूठ मूठ के वादे भी सब / याद करा दो, सब भिजवा दो / मेरा वो सामान लौटा दो.../ एक इजाज़त दे दो बस /जब इसको दफनाऊंगी, मैं भी वहीं सो जाऊंगी।"[6] कहना गलत नहीं होगा की गुलज़ार के गीतों में प्रेम में विरह, जीवन में विराग, रिश्तों में बढ़ती हुई दूरी और हमारे समय को हमारे साथ जोड़कर रखने की ताकत है।

गुलज़ार के गीतों में आते-जाते, रंग बदलते चांद को बहुत बार याद किया जाता है, जिसके संदर्भ में वे लिखते हैं कि "इन गीतों में चांद कभी संज्ञा है, कभी कारक, कहीं उपमा तो कहीं उपमान, कहीं अलंकार तो कहीं विशेषण, कहीं व्यंजना है, कहीं लक्षणा और अगर चांद सिर्फ चांद है तो वह चांद तो है ही न! भाषा विज्ञान की हदों को तोड़ता है यह चांद और किसी जादू की पुड़िया की तरह उसमें से कुछ भी निकल सकता है- कोई भी रूप, कोई भी अर्थ।"[7]

गुलज़ार पंजाबी लोक ज़ुबान के बड़े फनकार हैं और अपनी गीत–यात्रा में ढेरों ऐसे गीत लिख चुके हैं, जिनसे पंजाब की मिट्टी की सोंधी खुशबू आती है। कुछ पंक्तियाँ इसी संदर्भ में 'माचिस' की गंभीरता को देने के लिहाज से पढ़ी जानी चाहिए– "गोरी चटकोरी जो कटोरी से खिलाती थी/ जुम्मे के जुम्मे जो सुरमे लगाती थी/ कच्ची मुँडेर के तले.../ जूठी–जूठी मोई ने रसोई में पुकारा

था/ लोहे के चिमटे से लिपटे को मारा था /... चुन्नी लेके सोती थी कमाल लगती थी/ पानी में जलता चिराग लगती थी/ ओए बीबा तेरा चूल्हा जले.../ चप्पा–चप्पा चरखा चले ...।"[8]

गुलज़ार के लिखे किनारा फिल्म का गीत 'नाम गुम जाएगा, चेहरा यह बदल जायेगा, मेरी आवाज ही पहचान है' दिल को गहरा सुकून देता है। 'बचपन का शोर सुकून देता था, आज की खामोशी खाने को दौड़ती है।' जैसी पंक्तियाँ गुलज़ार की गहरी सोच, जिंदगी के अनुभव और भावनाओं का बखूबी परिचय देती हैं। इनके पीछे जीवन की सादगी, संवेदना और कठोर सच्चाई छिपी होती है जो पढ़ने और सुनने वाले के दिल को छू जाती हैं। गुलज़ार अपना सूफियाना रंग लिए लोगों की साँसों में बसते हैं। उनकी शायरी में एक सादगी होती है, पर वो सादगी दिल को छू जाती है। 'ऐ उम्र, अगर दम है तो कर दे इतनी सी ख़ता..,बचपन तो छीन लिया, बचपना छीन कर बता...' कहनेवाले गुलजार के गीतों में शब्द कम पर जज़्बात गहरे होते हैं।

मोहब्बत की नर्मी और तन्हाई की गहराई गुलजार के गीतों की विशेषता है। वे अपने अल्फ़ाज़ों से न सिर्फ़ मोहब्बत को परिभाषित करते हैं, बल्कि बिछड़ने, इंतज़ार और तन्हाई जैसे जज़्बातों को भी बेहद खूबसूरती से बयां करते हैं। उन्होंने अपने 'माचिस' फ़िल्म में रिश्तों की मासूमियत को अद्भुत तरीके से व्यक्त किया है- "छोड़ आए हम वो गलियां/ जहां तेरे पैरों के, कंवल गिरा करते थे/ हंसे तो दो गालों में, भंवर पड़ा करते थे/ तेरी कमर के बल पे, नदी मुड़ा करती थी/ हंसी तेरी सुन-सुनके, फसल पका करती थी/ छोड़ आए हम वो गलियां।"[9] गुलज़ार का यह गीत विरह में बिछड़े टूटे हुए दिल की आवाज़ बनकर खामोशी में भी एक सुकून भर देता है।

गुलज़ार के गीत उन जज़्बातों को बयां करते हैं जिन्हें शब्दों में कहना मुश्किल होता है। जिंदगी के हर जज्बात को गुलजार ने अपनी कलम से बखूबी कागज पर उतारा। गुलजार ने जिस भाव को अपने शब्द दिए उसे अमर बना दिया। **'**'इस मोडसे जाते हैं, कुछ सुस्त कदम रस्ते, कुछ तेज कदम राहे', 'दिल ढूंढता है, फिर वही फुर्सत रात दिन, बैठे रहे तसव्वरे जाना किये हुए', 'जब तारें जमीं पर चलते हैं, आकाश जमीं हो जाता है, उस रात नही फिर घर जाता, वो चांद यही सो जाता है', 'वो यार है जो खुशबू की तरह, जिस की जुबाँ उर्दू की तरह', 'तावीज बनाके पहनूं उसे, आयत की तरह मिल जाये कहीं', 'सुरमई अंखियोंमें नन्हा मुन्हा एक सपना दे जा रे', **'**आने वाला पल**,** जानेवाला है, हो सके तो इसमें जिंदगी बिताओ, पल यह जो जानेवाला है', *'जिनके सर हो इश्क की छांव, पांव के नीचे जन्नत होगी', 'दिल तो बच्चा है जी',* 'लब हिले तो मोगरे के फूल खिलते हैं कहीं, आपकी आँखो में क्या साहिल भी मिलते है कहीं, आप की खामोशियाँ भी आपकी आवाज है...' जैसे कई गीत आज भी हर पीढ़ी के संगीत प्रेमियों के दिलों में बसे हुए हैं।

जब फिल्मी दुनिया ने महीन और मुलायम किस्म के गीतों के लिए गुलज़ार का लोहा मान लिया तो अचानक 'सत्या' और 'ओंकारा' जैसी फिल्मों के रूखे और जटिल यथार्थ के बीच एक अलग मिज़ाज के गीत भी रच दिए। 'गोली मार भेजे में, भेजा शोर करता है, भेजे की सुनेगा तो मरेगा कल्लू' में अलग प्रकार का टपोरीपन है। इसी तरह 'ओंकारा' के 'बीड़ी जलाई ले जिगरपे पिया, जिगरमां बडी आग है'' में गुलज़ार बड़ी बारीकी के साथ वह नाजुक संतुलन बनाए रखते हैं जो न हो तो पूरा गीत अश्लील लगने लगे। 'कजरारे कजरारे, तेरे कारे कारे नैना, *झूम बराबर झूम,* जैसे उनके आइटम गीत उनकी गीतात्मक क्षमता को दर्शाते हैं। उन्हें मीका के लिए *इबान-ए-बतूता* और यो यो के लिए *हॉर्न ओके* प्लीज जैसे विचित्र गीत लिखने में भी कोई दिक्कत नहीं हुई। सबसे बड़ी बात है कि ये सारे खेल वे इतनी सादगी और सहजता से करते हैं कि अक्सर उनके गीत ज़ुबान पर चढ़ जाते हैं।

निष्कर्ष

महान कवि, गीतकार और फिल्म निर्देशक गुलज़ार भारतीय सिनेमा के सबसे प्रतिष्ठित नामों में से एक हैं, जिन्हें अक्सर 'हिंदी सिनेमा के रूमानी गीतकार' के रूप में जाना जाता है। उनकी लेखन शैली अपनी सादगी, गहराई और मानवीय भावनाओं की सूक्ष्म समझ के लिए विख्यात है, जिसने उन्हें दशकों तक श्रोताओं का प्रिय बनाए रखा है। गुलज़ार के गीत सरल भाषा में होते हैं, लेकिन वे जीवन और प्रेम के जटिल पहलुओं को छूते हैं, जो सीधे दिल तक पहुंचते हैं। वे आम बोलचाल के शब्दों को गीतों में पिरोते हैं, जिससे श्रोता उनके गीतों में खुद को जुड़ा हुआ महसूस करते हैं।

गुलज़ार का भाषाओं से एक अनोखा जुड़ाव है और वे अपने गीतों में इसका इस्तेमाल बेहद अनोखे अंदाज़ में करते हैं। शब्दों के इस्तेमाल का उनका मानदंड सिर्फ़ अर्थ ही नहीं, बल्कि ध्वनि और पाठकों के साथ उसके जुड़ाव पर भी आधारित रहा है। उनके गीत स्नेह, रोमांस और प्रतिबिंब से भरे हैं जो प्यार में पड़े लोगों की मनोवैज्ञानिक गतिविधियों का स्पष्ट रूप से

वर्णन करते हैं। उनके गीत मानवीय रिश्तों की जटिलताओं, प्यार और अधूरेपन को खूबसूरती से दर्शाते हैं। उनके रूमानी गीत अद्वितीय हैं, जो प्रेम के हर रंग, इंतज़ार से लेकर मिलन तक को बड़ी खूबी से बयां करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिश्र योगिनी- हिंदी-उर्दू गीतलेखन परंपरा का अनुशीलन, सारंग प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2017, पृ. 157
2. गुलजार- मेरा कुछ सामान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2005, पृ. 29
3. गुलजार- कुछ और नज़्में, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ. 41
4. खेतान विनोद- उम्र से लंबी सड़कों पर: गुलजार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.162
5. मिश्र यतीन्द्र, गुलज़ार सा'ब हज़ार राहें मुड़ के देखीं…,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ 24
6. गुलज़ार- इजाज़त, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.,नई दिल्ली, 2011पृ. 56
7. खेतान विनोद- उम्र से लंबी सड़कों पर: गुलजार, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ. 145
8. मिश्र यतीन्द्र- गुलज़ार सा'ब हज़ार राहें मुड़ के देखीं…,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृष्ठ 270
9. गुलजार- छैया छैया, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 128

*****

पीड़ा से परिवर्तन तक : दुष्यन्त कुमार की ग़ज़ल-चेतना

डॉ. कविता संदीप तळेकर
असिस्टेंट प्रोफेसर
श्री पंचम खेमराज महाविद्यालय
सावंतवाड़ी सिंधुदुर्ग।
Email id- kavitat1216@gmail.com
Mob- 9623055237

शोध सार

हिंदी में ग़ज़ल लेखन की परंपरा बीसवीं शताब्दी के मध्य से स्पष्ट रूप में दिखाई देने लगती है। प्रारंभिक हिंदी ग़ज़लकारों ने उर्दू की शास्त्रीय परंपरा को अपनाते हुए हिंदी शब्दावली का प्रयोग किया। धीरे-धीरे हिंदी ग़ज़ल ने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई।स्वतंत्रता आंदोलन, समाज सुधार, वर्ग-संघर्ष, लोकतंत्र, भ्रष्टाचार और आम आदमी की पीड़ा हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख विषय बने। यही वह भूमि थी, जहाँ दुष्यंत कुमार जैसे रचनाकारों ने हिंदी ग़ज़ल को नई ऊँचाई दी। प्रारंभिक ग़ज़लें प्रेम, विरह, सौंदर्य और आध्यात्मिक अनुभूतियों से जुड़ी रहीं, परंतु आधुनिक काल में इसके विषयों का व्यापक विस्तार हुआ।

हिंदी ग़ज़ल के विकास-क्रम पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि कथ्य के स्तर पर नई ज़मीन मिलने के साथ ही हिंदी ग़ज़ल ने अपना एक सशक्त, समकालीन और जनोन्मुख रूप अर्जित किया। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं था, बल्कि सामाजिक चेतना, ऐतिहासिक परिस्थितियों और रचनात्मक साहस का परिणाम था। स्वाधीनता आंदोलन के कालखंड में और उसके आसपास, सूर्यकांत त्रिपाठी, निराला तथा त्रिलोचन जैसे प्रगतिशील कवियों ने ग़ज़ल को हिंदी की संवेदना, भाषा और जीवनानुभव से जोड़ते हुए उसे एक नया मुहावरा प्रदान किया। इन कवियों ने यह सिद्ध किया कि ग़ज़ल केवल प्रेम या व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को स्वर देने का भी सशक्त माध्यम बन सकती है।

बीज शब्द :

वर्ग-संघर्ष, अंतःसूत्र, जटिलता, समसामयिक यथार्थ, आध्यात्मिक अनुभूतियों, बौद्धिक संघर्ष, यथास्थिति, प्रतिरोध।

प्रस्तावना :

दुष्यंत कुमार हिंदी साहित्य के उन कवियों में हैं जिन्होंने कविता और ग़ज़ल दोनों में समान अधिकार से सृजन किया। उनका रचनात्मक व्यक्तित्व सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विडंबनाओं और मानवीय पीड़ा से गहराई से जुड़ा हुआ था। वे सत्ता-तंत्र की असंवेदनशीलता, आम जनता की विवशता और लोकतंत्र के खोखलेपन को ग़ज़ल के माध्यम से उजागर करते हैं। हिंदी ग़ज़ल की विकास-यात्रा तथा दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों के माध्यम से हिंदी ग़ज़ल को नई सामाजिक-राजनीतिक चेतना प्रदान करने की प्रक्रिया का अध्ययन करना है। दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल को केवल प्रेम और व्यक्तिगत अनुभूति तक सीमित न रखकर उसे आम आदमी की आवाज़, प्रतिरोध और लोकतांत्रिक चेतना का माध्यम बनाया।

उनका काव्य-संग्रह 'साये में धूप' इस परिपक्वता का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसमें दुष्यंत एक सजग, सुलझे हुए और तटस्थ रचनाकार के रूप में व्यवस्था के विभिन्न घटकों की गहन आलोचना करते दिखाई देते हैं। वे किसी एक व्यक्ति या वर्ग को लक्ष्य नहीं बनाते, बल्कि उस संपूर्ण व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न खड़ा करते हैं, जो मनुष्य को असुरक्षा, भय और विवशता की स्थिति में धकेल देती है।दुष्यंत की कविताओं से होकर गुजरना वस्तुतः उनकी रचना-प्रक्रिया से होकर गुजरना है। इस यात्रा में पाठक धीरे-धीरे व्यवस्था के शोषक चेहरों को पहचानने लगता है और अंततः यह बोध भी विकसित होता है कि ये चेहरे उसके अपने आसपास के सामाजिक परिवेश में ही मौजूद हैं। वह यह भी देखता है कि शोषित वर्ग या तो अपने शोषण से अनभिज्ञ है या परिस्थितियों से इतना विवश है कि प्रतिरोध करने में असमर्थ है। यह स्थिति किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि उस पूरी व्यवस्था की विफलता का प्रमाण है, जिसके भीतर रहकर मनुष्य स्वयं को सुरक्षित नहीं महसूस कर पाता।

मुख्य विषय

यह काल स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग दो दशक बाद का है, जब देश का सामान्य नागरिक लोकतंत्र की उस व्यवस्था से मोहभंग अनुभव कर रहा था, जो जनहित की अपेक्षा पूँजीपति वर्ग के हितों की संरक्षक प्रतीत होने लगी थी। लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण, राजनीतिक अवसरवाद और सामाजिक असमानताओं ने जनता के भीतर गहरे असंतोष को जन्म दिया। इस जन-असंतोष को संगठित स्वर देने का कार्य उस समय जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चल रहे आंदोलनों ने किया। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में

देश ने आपातकाल जैसे दमनकारी दौर का सामना किया, जिसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को गंभीर रूप से प्रभावित किया। ऐसे घुटन भरे राजनीतिक और सामाजिक वातावरण में दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें जन्म लेती हैं, जो केवल साहित्यिक रचनाएँ नहीं, बल्कि समय का सजीव दस्तावेज़ बन जाती हैं। उनकी ग़ज़लें सत्ता से सवाल करती हैं, व्यवस्था की विडंबनाओं को उजागर करती हैं और आम आदमी की पीड़ा को स्वर प्रदान करती हैं। स्वयं दुष्यंत कुमार ने अपनी इसी नई ग़ज़ल की चेतना को रेखांकित करते हुए लिखा था-

"हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकालनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरे कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।"[1]

एक सजग और संवेदनशील रचनाकार की भाँति दुष्यंत कुमार की दृष्टि निरंतर अपने समय और समाज पर केंद्रित रही। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना पर उनकी पैनी नजर थी। वे स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि असत्य, छल, प्रपंच, ईर्ष्या, द्वेष और पाखंड धीरे-धीरे सामाजिक जीवन के अनिवार्य तत्व बनते जा रहे हैं। जिन पर विश्वास किया जाता है, वही विश्वासघात करने लगते हैं और अपने ही लोग 'आस्तीन के साँप' सिद्ध होते हैं। इसी सामाजिक अनुभव और आत्मीय पीड़ा से प्रेरित होकर दुष्यंत ने अपनी कविता में व्यवस्था की इस विडंबनापूर्ण सच्चाई को स्वर दिया।

"हमने पाले साँप आस्तीनों में
दूध पिलाया / खुले हुए आँगन में छोड़ा
पक्का फर्श उखाड़ / बनाए उनके लिए रास्ते
उनको अपना माना
पर ये साँप रहे/उनके दाँतों से विष न गया।
हमने तोड़े नहीं / इन्होंने उन्हें प्रयोग किया
आज नसों में व्याप गया है जो
वह अपनी उदारता का विष है
इसे उतारो कडवे-कडवे घूँट पियो।"[2]

सरदार मुजावर ने दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों को केंद्र में रखते हुए उनके सामाजिक प्रभाव को रेखांकित किया है।" उनके अनुसार दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें केवल काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे समाज और व्यक्ति दोनों की चेतना को जाग्रत करने का सशक्त माध्यम हैं। जहाँ एक ओर दुष्यंत अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सोई हुई सामाजिक संवेदनाओं को झकझोरते हैं, वहीं दूसरी ओर समाज में व्याप्त बुराइयों के उन्मूलन हेतु क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता पर भी बल देते हैं। निःसंदेह उनकी प्रत्येक ग़ज़ल एक मशाल के समान है, जिसके प्रकाश में व्यक्ति और समाज दोनों ही आत्मचिंतन करते हुए विकास के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।"[3]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में समाजवाद की स्थापना और गरीबी उन्मूलन के वादे बार-बार किए गए, किंतु व्यवहारिक स्तर पर इन आश्वासनों की वास्तविकता कुछ और ही रही। आमजन के सरोकारों से कटे हुए पूंजीवादी समाजवाद के माध्यम से इन वादों को औपचारिक रूप से पूरा करने का प्रयास किया गया। परिणामस्वरूप गरीबी आज भी भारत की वैश्विक पहचान के रूप में बनी हुई है। अनेक गरीबी उन्मूलन योजनाओं के संचालन के बावजूद करोड़ों लोग आज भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने को विवश हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि योजनाओं का क्रियान्वयन न तो ईमानदारी से होता है और न ही जमीनी स्तर पर प्रभावी ढंग से।

दुष्यंत कुमार ने अपनी अनेक रचनाओं में राजनीतिक नेतृत्व द्वारा किए गए खोखले आश्वासनों की सच्चाई को बेबाकी से उजागर किया है। उनके काव्य-संग्रह 'साये में धूप' का आरंभिक शेर ही इन झूठे वायदों की विडंबनापूर्ण सच्चाई को पूरी तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करता है—

"कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।"[4]

दुष्यन्त कुमार की कविता 'मैं कौन हूँ' आधुनिक समाज में व्याप्त बेरोज़गारी, गरीबी और उससे उत्पन्न पहचान-संकट को अत्यंत मार्मिक रूप में अभिव्यक्त करती है। इस कविता में कवि यह रेखांकित करता है कि समकालीन सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान उसके पद, आर्थिक स्थिति और सामाजिक हैसियत से निर्धारित होने लगी है। जिसके पास न कोई पद है, न धन-दौलत, वह समाज की दृष्टि में ही नहीं, बल्कि अपनी ही दृष्टि में भी महत्वहीन हो जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के भीतर आत्मग्लानि और हीनता का भाव जन्म लेता है और वह अस्तित्वगत प्रश्न पूछने को विवश हो जाता है—'मैं कौन हूँ?' कविता में प्रयुक्त प्रतीक

"चप्पलों सी ज़िन्दगी को
सड़कों पर घिसटा हुआ
किसी छत सा गाँव की
चूता हुआ, रिसता हुआ
ऊँगलियों में पिरा रहे
रुमाल सा मैं कौन हूँ?. "[5]

'चप्पलों सी घिसती ज़िंदगी', 'रिसती छत' और 'उँगलियों में पिरता रुमाल' जीवन की दयनीय अवस्था, असुरक्षा और निरंतर संघर्ष को सशक्त ढंग से उभारते हैं। गरीबी, अभाव और बेरोज़गारी मनुष्य को मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक स्तर पर तोड़ देती है। जब पेट की भूख सर्वोपरि हो जाती है, तब जीवन की कोमल संवेदनाएँ, इच्छाएँ और उत्सव-बोध निष्क्रिय हो जाते हैं। पर्व-त्योहार, जो सामान्यतः उल्लास और सामूहिक आनंद के प्रतीक होते हैं, ऐसे अभावग्रस्त जीवन में पीड़ा का कारण बन जाते हैं।

इसी संदर्भ में दुष्यन्त कुमार की होली-विषयक कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जहाँ वे उत्सवधर्मिता को नकारते हुए भूख की भयावह वास्तविकता को सामने रखते हैं। 'हे होली के त्यौहार हमें तुम माफ करो' जैसी पंक्तियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि जब पेट में 'समाधिस्थ भीषण ज्वाला' धधक रही हो, तब रंग, उत्साह और उमंग अर्थहीन हो जाते हैं। इस प्रकार दुष्यन्त कुमार की ये कविताएँ केवल व्यक्तिगत पीड़ा का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक असमानता, बेरोज़गारी और गरीबी के विरुद्ध एक सशक्त मानवीय हस्तक्षेप प्रस्तुत करती हैं, जो पाठक को सोचने और व्यवस्था पर प्रश्न उठाने के लिए प्रेरित करता है।

" हे होली के त्यौहार हमें तुम माफ करो.....
है आज पेट में समाधिस्थ भीषण ज्वाला
जिसकी लपटों में जलकर पिघल गया
ये मोम सदृश उत्साह हृदय का..
अब हमसे चला नहीं जाता भूखे पेटों
हमको पहिले खाली पेटों को भरना है
पहिले ये रोटी का मसला हल करना है
हम गा न सकेंगे गीत तुम्हारे स्वागत के
हैं क्योंकि तुम्हारी पावक से
अपनी जठराग्नि कहीं प्यारी
हमें तुम माफ करो...[6]

आपातकालीन परिस्थितियों में दुष्यंत कुमार की कविता तीखे व्यंग्य के माध्यम से सत्ता की निरंकुशता को उजागर करती है।

...घर के दरवाजों पर पहरा
जलसों पर नारों पर पहरा
सारे अखबारों पर पहरा
खबरें आती हैं छन-छनकर।
अपनी कलम उड़ाकर रख दे
या फिर इसको इसका हक दे
तनिक सच्चाई की न झलक दे

सिर्फ उजालों का वर्णन कर।"[7]

चारों ओर पहरे का उल्लेख उस भयग्रस्त वातावरण का संकेत है, जहाँ निजी जीवन से लेकर सार्वजनिक मंचों तक स्वतंत्रता छिन गई थी।अख़बारों और नारों पर नियंत्रण अभिव्यक्ति की आवाज़ को दबाने की सत्ता-नीति को व्यंजित करता है।सूचनाओं का 'ऊपर' तक सीमित रहना लोकतंत्र के खोखलेपन को सामने लाता है।'कलम' पर उठता प्रश्न रचनाकार की नैतिक जिम्मेदारी और सत्ता के दबाव के द्वंद्व को रेखांकित करता है।सत्य की 'झलक' तक न दिखने देना आपातकाल की सबसे बड़ी विडंबना बनकर उभरता है। इस प्रकार कविता व्यंग्यात्मक लहजे में आपातकालीन दमन और लोकतांत्रिक मूल्यों के हनन का सशक्त दस्तावेज बन जाती है।हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर दुष्यन्त कुमार को अपने रचनात्मक संघर्ष पर गहरा विश्वास है। वे मानते हैं कि कवि का कर्तव्य केवल यथार्थ का अनावरण करना ही नहीं, बल्कि भविष्य के प्रति आशा का संचार करना भी है। उनकी कविता में यह विश्वास दृढ़ रूप में उभरता है कि आज के रचनात्मक और वैचारिक संकेत कल सार्थक परिवर्तन का रूप लेंगे। 'कल उगेंगे चाँद-तारे, कल उगेगा दिन' जैसी पंक्तियाँ केवल स्वप्न नहीं, बल्कि इतिहास को दिशा देने वाली चेतना का उद्घोष हैं। कवि जानता है कि बंजर दिखाई देने वाला समय भी एक दिन फसल देगा, क्योंकि रचनात्मक श्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता।

"सिर्फ मृगछलना नहीं वह चमचमाती रेत
अर्थ लेंगे कल हमारे आज के संकेत।
सूर्य की पहली किरन पहचानता है कौन
क्या हुआ जो युग हमारे आगमन पर मौन
तुम न मानो शब्द कोई है 'नामुमकिन'
कल उगेंगे चाँद-तारे कल उगेगा दिन
कल फसल देंगे समय को यही बंजर खेत।"[8]

दुष्यन्त अपने समय के ताप, उसकी पीड़ा, व्यथा, छटपटाहट और आम आदमी की विवशताओं को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ महसूस करते हैं और उन्हें विद्रोही स्वर में कविता के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। उनकी रचनाओं में सांस्कृतिक विघटन और नैतिक अवमूल्यन के भयावह दृश्य उभरते हैं, जहाँ भोगवादी संस्कृति के वर्चस्व ने मनुष्य को मनुष्यता से विमुख कर दिया है। 'अब नई तहज़ीब के पेशे-लज्जर हम आदमी को भूनकर खाने लगे हैं' जैसी पंक्तियाँ इस अमानवीय व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य हैं। इस प्रकार दुष्यन्त कुमार की कविता एक ओर युगीन त्रासदी का दस्तावेज़ है, तो दूसरी ओर परिवर्तन की अनिवार्यता और भविष्य की उजली संभावना का बीज-भाषण भी है।

"अब नई तहजीब के पेशे-नजर हम
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं|"[9]

निष्कर्षत:

कहा जा सकता है कि दुष्यन्त कुमार की कविताएँ अपने युग की समूची वेदना, बेचैनी और असंतोष को सशक्त वाणी प्रदान करती हैं। उनकी काव्य-अभिव्यक्ति में जो सहजता दिखाई देती है, वह किसी सतही भावुकता का परिणाम नहीं, बल्कि गहरे सामाजिक अनुभवों, जीवन-संघर्षों और यथार्थ से टकराकर उपजी अनुभूतियों का स्वाभाविक निष्कर्ष है। यही कारण है कि उनकी कविता में निरंतर एक आंतरिक ताप, आग और आवेग व्याप्त रहता है। यह आवेग केवल भावनात्मक उत्तेजना तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक विसंगतियों के प्रति जागरूक चेतना और परिवर्तन की आकांक्षा से संचालित होता है।

दुष्यन्त की कविता केवल संवेदना की अभिव्यक्ति भर नहीं है, बल्कि वह निश्चित जीवनानुभवों और स्वच्छंद मानवीय अनुभूतियों का सघन कलात्मक रूपांतरण है। वे अपने समय की त्रासदियों, आम आदमी की पीड़ा, व्यवस्था की अमानवीयता और सामाजिक अन्याय को अत्यंत प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। परंतु उनकी रचनात्मक दृष्टि यहीं रुक नहीं जाती। दुष्यन्त केवल समाज की विद्रूपताओं का चित्रण करके संतुष्ट नहीं होते, बल्कि उन विकृतियों को बदलने की आकांक्षा भी उनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनकी कविता प्रतिरोध, चेतना और आशा का समन्वय है, जो पाठक को न केवल सोचने के लिए विवश करती है, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित भी करती है। इस प्रकार दुष्यन्त कुमार की कविता अपने युग की पीड़ा का दस्तावेज़ होने के साथ-साथ भविष्य की परिवर्तनकामी चेतना का घोष भी बन जाती है।

संदर्भ :

1.दुष्यंत कुमार- साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- बीसवाँ, 2008, पृष्ठ-30
2. दुष्यन्त कुमार रचनावली, पहला खण्ड, पृ०-382
3. मुजावर डॉ. सरदार , दुष्यंत कुमार की गजलों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ संख्या-34 |
4. सं.- विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग-2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ सं.-261
5. दुष्यन्त कुमार रचनावली, पहला खण्ड, पृ०-423
6. दुष्यन्त कुमार रचनावली, पहला खण्ड, पृ०-203-204
7. दुष्यन्त कुमार रचनावली, दूसरा खण्ड, पृ०-232
8. दुष्यन्त कुमार रचनावली, पहला खण्ड, पृ०-414
9. सं.- विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग-2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ सं.-262

*****

साहिर लुधियानवी के गीतों में सामाजिक परिदृश्य

डॉ. युवराज राजाराम मुळये
प्राध्यापक एवं हिंदी विभाग प्रमुख,
श्री सिद्धेश्वर महाविद्यालय माजलगाव
तहसील माजलगाव,जिला बीड महाराष्ट्र ४३११३
ईमेल :- yrmulye2012@gmail.com
दूरभाष :- 7588566823 / 9890785810

शोध आलेख का सारांश:-

इस बात से कोई असहमत नहीं होगा कि साहिर लुधियानवी भारतीय साहित्य और संस्कृति जगत के सबसे प्रशंसित प्रगतिशील कवियों में से एक हैं। प्रगतिशील सौंदर्यशास्त्र में उनका बहुत बड़ा योगदान था, हालांकि शुरुआती वर्षों में, जब वे अपेक्षाकृत युवा थे और मुख्य रूप से सिनेमा के लिए लिखते थे, तब कई रूढ़िवादी, शास्त्रीय साहित्यकारों और आलोचकों ने उन्हें गंभीरता से नहीं लिया। वास्तव में, उस समय के समकालीन उर्दू साहित्य जगत के एक बड़े हिस्से ने उन्हें 'एक लोकप्रिय रोमांटिक कवि' कहकर खारिज कर दिया, जो मूल रूप से बेचैन युवाओं की भावुक इच्छाओं को पूरा करता था।

हालांकि, वे समाज के विभिन्न वर्गों में बेहद लोकप्रिय बने रहे। धीरे-धीरे, सारगर्भित काव्य रचनाओं के निरंतर सृजन से उन्होंने एक प्रगतिशील और क्रांतिकारी कवि के रूप में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की, जो न्याय और समता के आदर्शों के प्रति अडिग रहे और ठोस काव्य रचनाएँ करते रहे। साहिर की काव्यात्मक कल्पना प्रगतिशील सौंदर्यशास्त्र और समाजवादी खोज से गहराई से ओतप्रोत थी। उनकी कविता, चाहे साहित्यिक हो या सिनेमाई, प्रगतिशील रोमांटिकता, समाजवादी विद्रोह और आशावाद को समान रूप से प्रतिबिंबित करती थी। उदाहरण के लिए, साहिर से पहले विभिन्न शैलियों के सैकड़ों कवियों ने भव्य मध्ययुगीन स्थापत्य चमत्कार, ताजमहल के विभिन्न आंतरिक पहलुओं के बारे में लिखा; लेकिन कोई भी सबसे महत्वपूर्ण और गंभीर प्रश्न - श्रम और उन अदृश्य जनसमूहों के बारे में बात नहीं कर सका, जिन्होंने इस स्थापत्य चमत्कार को बनाने के लिए परिश्रम किया। साहिर के विचार में, ताजमहल अनावश्यक वैभव का एक स्थल मात्र है, जो शासक वर्ग के अनुचित भोग-विलास और श्रमिकों के गहन शोषण और सामाजिक अलगाव को दर्शाता है।

बीज शब्द :-

सिनेमा, चेतना, प्रगतिशील, कट्टरता, पहचान, संवेदना, अमानवीय, अन्याय, शोषण, सशक्तिकरण, धर्मनिरपेक्षता, भेदभाव, पूंजीवादी, नफरत, खामियों, नुमाया, फ़ितरत, रूढ़िवादी, लोकतंत्र, नवाज़ा, अलफ़ाज़, सभ्यता, शालीनता, अभिमान, कलात्मक, नैतिकता,पवित्रता, बेमिसाल, बोधगम्यता, परम्परा.

प्रस्तावना :-

साहिर लुधियानवी उर्दू साहित्य और भारतीय सिनेमा दोनों के ऐसे रचनाकार थे, जिन्होंने शब्दों को सामाजिक चेतना की ताक़त बना दिया। वे प्रगतिशील लेखक संघ के अग्रणी स्तंभों में से एक थे। उनकी विचारधारा स्पष्ट रूप से मानवतावादी और समाजवादी थी, वे वर्गभेद, शोषण, धार्मिक कट्टरता और असमानता के खिलाफ अपनी लेखनी से आवाज़ उठाते रहे।साहित्य में साहिर की प्रसिद्ध काव्य-संरचनाएँ "तल्ख़ियाँ", "आओ कि कोई ख़्वाब बुनें", और "परछाइयाँ" जैसी कृतियाँ हैं, जिनमें प्रेम के साथ-साथ समाज की पीड़ा और विरोध का गहरा स्वर मिलता है। फ़िल्मों में उन्होंने गीतकार के रूप में अपनी अलग पहचान बनाई, उनके गीत सिर्फ रोमांटिक नहीं, बल्कि सामाजिक और दार्शनिक भी थे। प्यासा, फिर सुबह होगी, कभी कभी, नया दौर और धूल का फूल जैसी फ़िल्मों में उनके लिखे गीतों ने भारतीय सिनेमा में काव्यात्मक संवेदना का नया अध्याय जोड़ा हैं।

साहिर लुधियानवी के गीतों में सामाजिक परिदृश्य प्रमुखता से झलकता है। उनके गीतों में कई महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दों को उठाया गया है, जिनमें से कुछ प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं -

वर्ग संघर्ष:

साहिर ने अपनी रचनाओं में अमीर और गरीब के बीच की खाई को स्पष्ट रूप से दर्शाया है। उन्होंने पूंजीपतियों के शोषण और आम आदमी के संघर्ष को बयां किया है।

युद्ध विरोधी भावनाएं:

उनके कई गीत युद्ध की विभीषिका और उसके अमानवीय परिणामों पर केंद्रित हैं। उन्होंने शांति की वकालत की और युद्ध के कारण होने वाले दुखों को उजागर किया।

महिलाओं की स्थिति:

साहिर ने समाज में महिलाओं के साथ होने वाले अन्याय और उनके शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाई। उन्होंने महिलाओं के सशक्तिकरण और समानता की बात की।

धार्मिक सद्भाव:

उनके गीतों में धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सद्भाव का संदेश मिलता है। उन्होंने सभी धर्मों के लोगों के बीच एकता की भावना को बढ़ावा दिया।

जातिवाद का विरोध:

साहिर ने जाति व्यवस्था और उससे उत्पन्न होने वाले भेदभाव का कड़ा विरोध किया। उन्होंने समानता पर आधारित समाज की कल्पना की।

भ्रष्टाचार और असमानता:

उन्होंने समाज में फैले भ्रष्टाचार, असमानता और अन्याय पर भी अपनी कलम चलाई और व्यवस्था पर सवाल उठाए।
साहिर लुधियानवी के गीतों में सामाजिक परिदृश्य अत्यंत गहरा और यथार्थवादी है। उन्होंने फिल्मी गीतों को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उन्हें सामाजिक क्रांति और चेतना का माध्यम बनाया। उनके गीतों में सामाजिक स्थिति के निम्नलिखित पहलू प्रमुखता से दिखाई देते हैं:

१. गरीबी और भुखमरी का चित्रण:साहिर ने समाज के निचले तबके की पीड़ा को बखूबी उकेरा है। फिल्म 'प्यास' का गीत *"जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहाँ हैं"* आज़ाद भारत की गरीबी, वेश्यावृत्ति और भूख का एक कड़वा दस्तावेज़ है। साहिर की कविताओं का संग्रह 'तल्खियाँ' में भी यह दर्द साफ झलकता है।

२. पूंजीवाद और शोषण का विरोध:उनके गीतों में अमीर-गरीब के बीच की गहरी खाई के प्रति तीखा आक्रोश मिलता है। *"ये महलों, ये तख्तों, ये ताजों की दुनिया, ये इंसान के दुश्मन समाजों की दुनिया"* जैसे बोल पूंजीवादी व्यवस्था पर सीधा प्रहार करते हैं।

३. सांप्रदायिकता और विभाजन का दर्द:साहिर मानवतावादी थे। उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले दंगों और नफरत का विरोध किया। उनका प्रसिद्ध गीत *"तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है इंसान बनेगा"* (फिल्म: धूल का फूल) सामाजिक सद्भाव का सबसे बड़ा उदाहरण है।

४. नारी की सामाजिक स्थिति:साहिर ने पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं के शोषण पर अपनी आवाज बुलंद की। फिल्म 'साधना' का गीत *"aurat ne janam diya mardon ko, mardon ne use bazaar diya"* समाज में नारी के प्रति दोहरे मापदंडों को उजागर करता है।

५. मजदूर और मेहनतकश का सम्मान:उन्होंने मजदूरों के संघर्ष और उनकी शक्ति को गौरव प्रदान किया। फिल्म 'नया दौर' का गीत *"साथी हाथ बढ़ाना, एक अकेला थक जाएगा मिलकर बोझ उठाना"* सामूहिक श्रम और सामाजिक एकता का प्रतीक है।

६. व्यवस्था के प्रति मोहभंग:आजादी के बाद आम जनता की उम्मीदें पूरी न होने पर साहिर के गीतों में एक किस्म का 'मोहभंग' (Disillusionment) दिखाई देता है। उन्होंने व्यवस्था की खामियों को निडरता से सामने रखा।

साहिर के गीतों का विस्तृत अध्ययन Rekhta (साहिर लुधियानवी) पर किया जा सकता है। उनके गीत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि 1950 और 60 के दशक में थे।

खुद्दारियों के खून को अर्ज़ां1 न कर सके,
हम अपने जौहरों 2 को नुमाया न कर सके।
(1– सस्ता 2– गुणों को)

खुद्दारी हमेशा उनके लिए बेशक़ीमती रही। इसे कभी उन्होंने सस्ते में नहीं लिया और न ही ऐसा करने की ज़ुर्रत किसी को करने दी। वह कहते हैं कि अपने गुणों को पूरी तरह दुनिया के सामने नहीं ला सके। उनकी चाहत थी कि दिल की आवाज़ को वह पूरी गहराई और ऊँचाई के साथ सुना सकें। सुरों के हर घुमाव, मोड़, नक़्क़ाशी और बारीक़ कारीगरी को प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य

के साथ सुनने और पढ़ने वालों की आत्मा में उतार सकें। साहिर के लिए कविता आत्मा की आवाज़ है और मोहब्बत की पवित्र पुकार है।

मैं शायर हूँ मुझे फ़ितरत1 के नज़्ज़ारों से उल्फ़त है,
मेरा दिल दुश्मने–नग़मा–सराई2 हो नहीं सकता।
मुझे इनसानियत का दर्द भी बख्शा है कुदरत ने,
मेरा मक़सद3 फ़क़त4 शोला–नवाई5 हो नहीं सकता।

(1– प्रकृति 2– गीत गाने का विरोधी 3– उद्देश्य 4– केवल 5– आग बरसाना)

उन्होंने पुकार सुनी और कविता के मर्म को समझा। शब्द और अर्थ की रहस्य भरी घाटियों में उतरे, सुर और ताल में एकलय होकर गाया की प्रकृति और संसार से मुझे प्यार है। मैं गीतों का आशिक़ हूँ और केवल आग बरसाना मेरा उद्देश्य नहीं बल्कि प्रकाश और ताप से संसार को भरना है। प्रेम और ज्ञान के आलोक से भरा हुआ एक नया संसार रचना है। विध्वंस और निर्माण की प्रक्रिया में साहिर अपने भीतर के विस्फोट से भी गुज़रे। टूटे–बिखरे लेकिन उन्होंने अपने को समेटा और यह बखूबी समझ लिया कि पुराने को ध्वस्त होना है और खण्डहर के केन्द्र से ही नया निर्माण होना है। यह कुदरत और ज़िन्दगी का फ़लसफ़ा है। एक कवि इस दर्शन को आत्मसात करके ही कवि होने को प्रमाणित करता है। कुदरत में यह सब बाहर होता है जो मौसमों के स्वभाव से प्रकट होता है लेकिन कवि के मन में यह सब घटित होता है। कुदरत को समझने के लिए मन को साधना ज़रूरी है। साहिर लुधियानवी का एक गीत है, 'तोरा मन दर्पण कहलाये' जिसका इस्तेमाल संगीतकार रवि ने 1965 में फ़िल्म 'काजल' में किया था और बड़े खूबसूरत अन्दाज़ में आशा भोंसले से गवाया था। आप इस गीत के तरन्नुम में डूबेंगे तो जीवन के अनमोल रहस्य की परतें खुलने लगेंगी। जीवन और प्रकृति अद्भुत रासायनिक समन्वय का मेल है और इस समन्वय में ज़रा–सा भी असन्तुलन विध्वंस और अन्त, यानी मृत्यु का संकेत है। इन संकेतों को समझ कर ही अपनी मनुष्यता को समझा जा सकता है।

हम साहिर साहब के कशमकश का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। वह सारी ज़िन्दगी अपने आप से और दुनिया के रूढ़िवादी नियमों से लड़ते रहे। वह बहुत लोकप्रिय रहे लेकिन अपने सिद्धान्तों के कारण बहुत अकेले भी रहे। यह अकेलापन उन्हें छीजता रहा और अतत: उन्हें इस फ़ानी दुनिया से हमेशा के लिए ले गया। उनकी बहन अनवर सुल्ताना का बयान सुनिए, "माँ जी की मौत के बाद से ही भाईजान भीतर से पूरी तरह टूट चुके थे। उसके बाद उन्हें दिल का दौरा पड़ा और उनकी ज़िन्दगी के तौर–तरीक़े पूरी तरह से बदल गये।—— आखिरकार 25 अक्टूबर 1980 का वह मनहूस दिन आ ही गया जब—— उनकी गर्दन एक तरफ़ झूल गयी और वे हमेशा के लिए ख़मोश हो गये। हम पर मानो बिजली टूट पड़ी। हमारी तकलीफ़ और दर्द का अन्दाज़ा कोई भी नहीं लगा सकता।" (अयूबी 1985 : 46) (1)

साहिर लोकप्रियता की बुलंदियों पर रहे। अपने पढ़ने–सुनने वालों से घिरे रहे लेकिन भीतर ही भीतर अपने अकेलेपन के बर्फ़ को तोड़ने–पिघलाने की असफल कोशिशें करते रहे। अपने हालत का पता वह अपनी एक नज़्म 'आज' में देते हैं,

साथियो! मैंने बरसों तुम्हारे लिए
चाँद, तारों, बहारों के सपने बुने
हुस्न और इश्क़ के गीत गाता रहा
आरज़ूओं के1 ऐवां2 सजाता रहा
मैं तुम्हारा मुगन्नी3, तुम्हारे लिए
जब भी आया नये गीत लाता रहा
आज लेकिन मेरे दामने–चाक में4
गर्दे–राहे–सफ़र5 के सिवा कुछ नहीं

(1– आकाक्षांओं के 2– महल 3– गायक 4– फटी हुई झोली में 5– रास्ते की धूल)

साहिर अपनी रचनाओं में मोहब्बत, आग, आँसू, विद्रोह, ललकार, अकेलेपन, सामन्तवाद–आतंकवाद,राजनीतिक टुच्चेपन, फ़ासिज़्म और जंग के खिलाफ़ रोमेन्टिक नग़में लिखते रहे। उन्होंने बँटवारे का दर्द सहा था। निर्दोष लोगों की बेरहम हत्याएँ देखी थीं। अपने सारे तकलीफ़देह अनुभवों को उन्होंने अपनी कृतियों में उकेरा था।

उन्होंने भविष्य की ख़ौफ़नाक छायाओं का अन्दाज़ा लगा लिया था। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों मुल्क साम्राज्यवादी ताक़तों के ज़ुल्म से लहुलूहान थे। पाकिस्तान ने फौजी हुकुमत कुबूल कर ली लेकिन हिन्दुस्तान लोकतंत्र को बचाने

की लड़ाई में जी–जान से लगा हुआ था। वह कठोर जातिवादी बंधनों को मिटाने, छुआछूत समाप्त करने के दोहरे संग्राम में मुब्तिला था। एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद था और दूसरी ओर भारतीय सामन्तवाद। इस दोतरफ़ा लड़ाई का इतिहास खून सना हुआ है। समाज में अमीर–ग़रीब के बीच की खाई कभी कम नहीं हुई।औरतों पर ज़ुल्म किसी युग में ख़त्म नहीं हुआ। मातृसत्ता के अवसान के बाद पितृसत्ता का भयानक और हिंसात्मक रूप आज भी क़ायम है, जो दिल हिला कर रख देता है। अबोध बच्चियों का बलात्कार और उनकी हत्याएँ किसी भी सभ्य समाज का सिर नीचा कर देती हैं। हिन्दू–मुस्लिम, सिख–ईसाई पॉलिटिक्स ने तो आग में घी का काम किया। सत्ता पर हर हाल में बने रहने के लिए राजनीतिक दलों ने जो पापाचार किये हैं उन्हें जानकर लगता है कि हिटलर और मुसोलोनी इनके सामने कुछ नहीं हैं।

साहिर अपनी माँ को बहुत चाहते थे। माँ की मृत्यु ने उन्हें बहुत बेचैन कर दिया। इस बेचैनी ने उन्हें समाज और देश का असली चेहरा दिखा दिया। औरतों की इज़्ज़त न घर में थी और न बाहर। उन्हें तानों से, गालियों से नवाज़ा जाता रहा। उनके विरोध को हिंसक तरीक़ों से ख़ामोश कर दिया गया। उन्होंने एक गीत में दर्ज किया कि,

औरत ने जनम दिया मर्दों को मर्दों ने उसे बाज़ार दिया
जब जी चाहा मसला कुचला जब जी चाहा दुत्कार दिया
जिसके सीनों ने इनको दूध दिया उन सीनों का व्यापार किया
जिस कोख में इनका जिस्म ढला उस कोख का कारोबार किया

इतना ही नहीं उन्होंने 1957 में बनी फ़िल्म 'प्यासा' में अपनी एक नज़्म 'चकले' में आततायी सत्ता की आँखों में आँखें डाल कर सवाल किया कि, 'जिन्हें नाज़ है हिन्द पर वो कहाँ हैं?' दरअस्ल मूल रचना में कुछ अरबी के मुश्किल अलफ़ाज़ थे,

ये कूचे ये नीलाम घर दिलकशी के
ये लुटते हुए कारवाँ ज़िन्दगी के
कहाँ हैं कहाँ हैं मुहाफ़िज़ खुदी के
सना–ख़्वान–ए–तक्दीस–ए–मशरिक़1 कहाँ हैं

(1– पूरब की सभ्यता के रक्षक कहाँ हैं?)

संगीतकार एस डी बर्मन ने निर्देशक गुरुदत्त से चर्चा की और कहा कि अरबी ज़बान के कुछ शब्दों को सरल बनाना होगा तब ही आम दर्शक समझ सकेंगे। साहिर साहब भी सहमत हुए और उन्होंने नज़्म के भावों को यथासम्भव सुरक्षित रखते हुए कुछ परिवर्तन किये और फ़िल्मांकन हुआ। यह नज़्म लोगों के दिलों में उतर गयी। मोहम्मद रफ़ी साहब ने औरत की बेबसी, तड़प और प्रतिरोध को अपनी जादुई आवाज़ से इस तरह साकार किया कि 'चकले' की चीख़ पूछने लगी कि जिन्हें अपनी सभ्यता, शालीनता और अपने पूर्वीपन पर अभिमान है कि वे हर हाल में पश्चिम से श्रेष्ठ हैं तो पतन के इस दौर में वे कहाँ हैं? औरत की इनसाफ़ माँगती पुकार को दबाने में उन्हें ज़रा भी शर्म नहीं आयी? तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू भी नज़्म और उसकी कलात्मक प्रस्तुति के मुरीद रहे। उन्होंने खूब तारीफ़ की और कहा कि, "यह औरत की ज़िन्दगी के सियाह पहलू को रेखांकित करती हुई नज़्म है। शायर अपने साथ पढ़ने वालों को भी नीमरौशनी में डूबी और बदबुओं में नहाई तंग गलियों में लिये जाता है, जिनमें ज़िन्दा ज़िस्मों के गोश्त ख़रीदे–बेचे जाते हैं।" (2) अपने इसी ईमानदार तेवर के लिए साहिर को औरतों के हक़ में लड़ने वाला शायर कहा जाता है।

साहिर को यक़ीन था कि औरतें इस ज़ुल्म से अपने बल पर आज़ाद हो जाएँगी। लेकिन आज भी औरतें अपनी इज़्ज़त बचाने के जद्दोजहद में लगी हुई हैं। 'लोग औरत को फ़क़त जिस्म समझ लेते हैं' का ये बन्द रूह को शर्मसार कर देता है,

कितनी सदियों से ये वहशत का चलन जारी है
कितनी सदियों से है क़ायम ये गुनाहों का रिवाज़
लोग औरत की हर एक चीख़ को नग़मा समझें
वो क़बीलों का हो कि शहरों का रिवाज़
लोग औरत को फ़क़त जिस्म समझ लेते हैं

साहिर 1957 में गुरुदत्त निर्देशित फ़िल्म 'प्यासा' के लिए एक नज़्म लिखते हैं, 'ये दुनिया अगर मिल भी जाये तो क्या है?' इसमें वह दुनिया के सबसे पुराने और घिनौने व्यवसाय जिस्मफ़रोशी की मुख़ालिफ़त करते हैं,

जवानी भटकती है बदकार बनकर
जवाँ जिस्म सजते हैं बाज़ार बनकर

यहाँ प्यार होता है व्यापार बनकर
ये दुनिया अगर मिल भी जाये तो क्या है
जला दो इसे फूँक डालो ये दुनिया
मेरे सामने से हटा लो ये दुनिया
तुम्हारी है तुम्ही सम्भालो ये दुनिया
ये दुनिया अगर मिल भी जाये तो क्या है

बाज़ार का एक ही उसूल है दौलत पैदा करना। व्यापार में नैतिकता और पवित्रता के लिए कोई जगह नहीं है। देह व्यापार में तो औरत एक साधन है और खिलौने से ज़्यादा हैसियत नहीं रखती। इस खिलौने से खेलने के लिए बस नोटों की गड्डी चाहिए। हवा में उड़ते हुए नोटों का इतिहास जब भी लिखा जाएगा तो औरतों की कुचली हुई जानों का इतिहास भी दर्ज होगा। साहिर अपनी ग़ज़ल 'नूरजहाँ के मज़ार पर' औरत का दर्द दर्ज करते हैं,

पहलूए–शाह में ये दुख़्तरे–जुम्हूर1 की क़ब्र
कितने गुम–गश्ता फ़सानों का पता देती है
कितने ख़ूं–रेज़ हकाएक से उठाती है नक़ाब
कितनी कुचली हुई जानों का पता देती है

(1– लोकतंत्र के बेटी)

साम्राज्यवाद के हिमायती इतिहासकार जब अतीत का लेखा–जोखा करते हैं तो उनकी नज़रें जंग में जुटे रणबांकुरों के कारनामों को गिनाने में होती है। यह मर्दवादी सोच का विकृत पहलू है कि वह औरतों की तकलीफ़ और उनकी बेमिसाल क़ुर्बानी पर नहीं के बराबर लिखते हैं। साहिर इसी ग़ज़ल में लिखते हैं कि,

सहमी–सहमी सी फ़ज़ाओं में वीराँ मरक़द1
इतना ख़ामोश है फ़रियाद–कुनाँ2 हो जैसे
सर्द शाख़ों में हवा चीख़ रही हो ऐसे
रूह–ए–तक्दीश3 वफ़ा मर्सियां–ख़्वां4 हो जैसे

(1– क़ब्र 2– फ़रियादी 3– पवित्रता 4– शोकगीत)

पाठकों के मन में यह सवाल उठता होगा कि ज़्यादातर फ़िल्मी रचनाओं की ही चर्चा क्यों? साहिर के जिगरी दोस्त हमीद अख़्तर साहब कहते हैं कि साहिर फ़िल्मों के लिए ही बना था। उसकी ख़्वाहिश थी कि उसकी रचनाएँ उन लोगों तक पहुँचे जो निरक्षर हैं और रोज़ी–रोटी कमाने के हाड़तोड़ काम में जुटे हुए हैं। यह काम साहिर फ़िल्मों के ज़रिये ही कर सकता था और उसने इसे बेहद खूबसूरत और आर्टिस्टिक ढंग से किया। उसने जो लकीर खींची उसे पार करना तो दूर, उसके क़रीब भी कोई दूसरा नहीं पहुंच सका। साहिर लुधियानवी मार्क्सवादी और इंक़लाबी मिज़ाजके शायर रहे। सड़ी–गली क़दरों के दुश्मन और समाज को आमूल–चूल बदलने वाली क़दरों के दोस्त। ख़्वाज़ा अहमद अब्बास ने 'वह उधार बाक़ी रह गया' उन्वान से साहिर को एक 'खुली चिट्ठी' लिखी थी जब वह पाकिस्तान में थे। वह लिखते हैं कि, "साहिर 'जादूगर' को कहते हैं। इसलिए जब लुधियाना के अब्दुल हई ने 'साहिर' तख़ल्लुस अख़्तियार किया तो वाकई जादू जगा दिया। ये साहिरी और शायरी एक दूसरे का नेमुल–बदल थीं। दोनों एक ही हस्ती के मुख़तलिफ़ रूप थे। साहिर का जादू लोगों के सिर पर चढ़कर बोलते देखा है।" (3)

दोनों दोस्तों ने आकाशवाणी के प्रोग्रामों में मिलकर गीतकारों–शायरों का नाम के लिए रेडियो के डायरेक्टर जनरल से बात की। अब्बास लिखते हैं अब, "हर गाने के साथ शायर का नाम आता है, और यह कोई कम कामयाबी नहीं है। और साहिर तो हमेशा शायरों और अदीबों के हुकूक के लिए जद्दोजहद करते रहे। ख़्वाह जंग गवर्नमेंट से हो या प्रोड्यूसरों से।" (4) सन् 1949 में सरकार ने उनके नाम वारंट जारी कर दिया। अपने एक लेख 'फ़िल्मी और अदबी शायरी 'एक जायज़ा' में वह लिखते हैं कि नग़मानिगार को, "ये ख़्याल रखना पड़ता है कि मुल्क के दूर–दराज़ गोशों (क्षेत्रों) में बसने वाले अवाम को जिनकी अक्सरीयत (बहुमत) आज भी अनपढ़ है और जिनकी मादरी ज़बान उर्दू या हिन्दी नहीं है, इन नग़मों को मफ़्हूम (आसानी से) समझ सकें।" (5)

फ़िल्म लेखक इब्राहीम जलीस लिखते हैं कि, "फ़िल्मी दुनिया में संगीतकारों को एक गीतकार से ऊँचा समझने की परम्परा रही है। रिलीज़ करने के लिए फ़िल्म ख़रीदने से पहले वितरक भी इस जानकारी से सन्तुष्ट होना चाहते हैं, 'संगीत किसने दिया है? नौशाद, एस डी बर्मन, शंकर–जयकिशन? किसने? किसी वितरक ने आज तक गीतकार का नाम नहीं पूछा। लेकिन साहिर

और मजरूह ने इस परम्परा को बदलने का काम किया। वे जब गीत लिखते थे तो संगीतकार के बारे में कोई नहीं पूछता था।" (जलीस 1910 : 55) (6)

साहिर शायर और एक्टिविस्ट होने के विरल उदाहरण रहे। उन्होंने सामाजिक ताने–बाने में बड़ी ज़िम्मेदारी और गम्भीरता के साथ राजनीति को जोड़ा। साहिर के इस महत्वपूर्ण योगदान पर जां निसार अख़्तर लिखते हैं कि, "उन्होंने सौन्दर्य, अनुभूति और बोधगम्यता को एक साथ इस तरह प्रस्तुत किया कि प्रेमियों के मिलन की खुशी और बिछोह की पीड़ा एकाकार हो गयी। फ़िल्मों के लिए लिखते हुए साहिर ने न तो खुद को नीचे गिरने दिया और न प्रगतिशील आन्दोलन के बुनियादी उसूलों के साथ फ़रेब किया। उन्होंने हमेशा अपनी शायरी में उन्हीं लोगों की नुमाइन्दगी की जो उनसे अपने गीतों के ज़रिये समाज में बदलाव की उम्मीद रखते थे। उनके गीत उस शायर के गीत थे जो अपनी ज़िम्मेदारियों को बखूबी जानता था, और उनकी इस उपलब्धि के लिए मैं उन्हें दिली मुबारकबाद देता हूँ।"(अख़्तर 1985 : 393–398) (7)

अन्य गीतकारों के विपरीत, साहिर ने केवल प्यार और सुंदरता पर ही नहीं लिखा, बल्कि समाज की कड़वी सच्चाइयों, युद्ध की संवेदनहीनता, राजनीति और आम आदमी के संघर्षों को भी प्रमुखता दी।उनके प्रसिद्ध गीतों में "कभी कभी मेरे दिल में", "ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है", "मैं पल दो पल का शायर हूँ", और "वो सुबह कभी तो आएगी" शामिल हैं।

निष्कर्ष :-

कुल मिलाकर, साहिर लुधियानवी के गीत केवल मनोरंजन के साधन नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक चेतना और बदलाव के प्रतीक थे, जिन्होंने आम लोगों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने और एक बेहतर समाज बनाने के लिए प्रेरित किया।साहिर उन दुर्लभ साहित्यकारों में से एक थे जिनकी आधुनिकता और धर्मनिरपेक्षता के प्रति अटूट प्रतिबद्धता थी। व्यक्तिगत रूप से, उन्होंने पाकिस्तान छोड़कर भारत को चुना, जो धर्मनिरपेक्षता की नींव पर बना राष्ट्र है। उन्होंने अपने पेशेवर कार्यों में भी धर्मनिरपेक्षता के प्रति वही उत्साह और प्रतिबद्धता दिखाई। इसका प्रमाण यह है कि मुंबई की आम व्यावसायिक फिल्मों में भी वे यह सुनिश्चित करते थे कि धर्मनिरपेक्षता का गहरा और सूक्ष्म संदेश गीतों के व्यापक सामाजिक परिदृश्य में समाहित हो। वास्तव में, साहिर अपनी पीढ़ी के उन गिने-चुने साहित्यकारों में से एक थे जो सच्चे नारीवादी थे। उनके लेखन में लगातार उस उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाई गई है जो महिलाओं के पूरे वर्ग पर व्यवस्थित रूप से थोपा जा रहा है, जिनकी पहचान को 'द्वितीय लिंग' तक सीमित कर दिया गया है। वे खेद व्यक्त करते हैं, दरअसल, काल्पनिक रूप से यह सवाल पूछना उचित होगा कि अगर साहिर आज के भारत में लिख रहे होते तो क्या होता। यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है कि भय, धमकियों और प्रतिशोध के सर्वव्यापी राजनीतिक माहौल को देखते हुए, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि असंतुष्ट मुसलमानों, छात्रों, बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं (और विरोध करने वाले किसानों) को राज्य की पूरी ताकत से व्यवस्थित रूप से सताया जा रहा है, साहिर को संभवतः "मुस्लिम शहरी नक्सल" करार दिया जाता। और फिर, उन्हें अन्यायपूर्ण तरीके से जेल में डाल दिया जाता, ठीक उसी तरह जैसे सैकड़ों अंतरात्मा के कैदी महीनों तक झूठे आरोपों में, बिना किसी सबूत के, और बिना न्याय के किसी भी तरह से जेल में सड़ते रहते हैं।

संदर्भ सूची -

1– हर पल का शायर साहिर, सुरिन्दर देओल , प्रस्तावना : गोपी चन्द नारंग, अनुवाद : प्रभात मिलिन्द पृष्ठ 28
2– उपर्युक्त, पृष्ठ 123
3– दुनिया इन दिनों, संस्मरण : वह उधार बाक़ी रह गया, ख़्वाज़ा अहमद अब्बास, वर्ष : 13, अंक : 7, मासिक पत्रिका, प्रधान सम्पादक : डॉ– सुधीर सक्सेना, सम्पादक : सरिता सक्सेना, भोपाल, मध्य प्रदेश, पृष्ठ 28
4– उपर्युक्त, पृष्ठ 29
5– उपर्युक्त, पृष्ठ 22
6– हर पल का शायर साहिर, सुरिन्दर देओल , प्रस्तावना : गोपी चन्द नारंग, अनुवाद : प्रभात मिलिन्द पृष्ठ 169।
7– उपर्युक्त, पृष्ठ 169

*****

हिंदी गीत और गज़ल में प्रतिरोधी स्वर

प्रा.डॉ.भारत बा. उपाध्य
सहयोगी प्राध्यापक,हिंदी विभाग,
वारणा महाविदयालय,ऐतवडे खुर्द
तहसील,वाळवा जिला-सांगली
संपर्क - 9921808286

सार (Abstract)

हिंदी कविता की परंपरा में *गीत* और *ग़ज़ल* ने सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति की है। यह शोध-पत्र हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोध को एक केंद्रीय सौंदर्यात्मक एवं वैचारिक तत्त्व के रूप में विश्लेषित करता है। निराला, नागार्जुन, धूमिल और दुष्यंत कुमार जैसे कवियों-शायरों की रचनाओं के माध्यम से यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि किस प्रकार काव्य-भाषा असहमति, लोकतांत्रिक चेतना और सामाजिक आलोचना का माध्यम बनती है। शोध का निष्कर्ष है कि हिंदी गीत और ग़ज़ल केवल प्रतिरोध का प्रतिबिंब नहीं हैं, बल्कि वे सामूहिक चेतना और परिवर्तनकारी आंदोलनों को दिशा देने में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

बीजशब्द- हिंदी गीत,गज़ल,कविता,गीतकार,प्रतिरोध,स्वर, अन्याय, शोषण,असमानता, न्याय समाज ओर चेतना, प्रतिरोध की संकल्पना

भूमिका-

हिंदी गीत और गज़ल में प्रतिरोधी स्वर एक महत्वपूर्ण विषय है, जो समाज में व्याप्त असमानता, अन्याय और शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाता है। हिंदी गीत में प्रतिरोधी स्वर का इतिहास बहुत पुराना है। लोकगीत, भजन, और अन्य प्रकार के गीतों में प्रतिरोधी स्वर की आवाज़ सुनाई देती है। इन गीतों में समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और असमानता के खिलाफ आवाज़ उठाई गई है।गज़ल में भी प्रतिरोधी स्वर की आवाज़ सुनाई देती है। गज़लकारों ने अपने गज़लों में समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और असमानता के खिलाफ आवाज़ उठाई है। इन गज़लों में प्रेम, जीवन, और समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया गया है। यह शोध-पत्र हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोध की प्रकृति, रूपों और महत्त्व का विश्लेषण करने का प्रयास है।साहित्य सदैव समाज में हस्तक्षेप करने वाला माध्यम रहा है। हिंदी साहित्य परंपरा में गीत और ग़ज़ल अपनी संगीतमयता, भावनात्मक संप्रेषण और जन-सुलभता के कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रेम और सौंदर्य के पारंपरिक विषयों से आगे बढ़कर इन विधाओं ने शोषण, असमानता, सत्तावाद और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध मुखर स्वर प्रस्तुत किया है। यह शोध-पत्र हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोध की प्रकृति, रूपों और महत्त्व का विश्लेषण करने का प्रयास है।

हिंदी गीत,गज़ल,कविता साहित्य में प्रतिरोध का तात्पर्य केवल प्रत्यक्ष विद्रोह से नहीं, बल्कि दमनकारी संरचनाओं की निरंतर आलोचना से है। हिंदी कविता में प्रतिरोध प्रायः रूपक, व्यंग्य, विडंबना और प्रतीकात्मक बिंबों के माध्यम से व्यक्त होता है, जिससे कवि सत्ता को सूक्ष्म किंतु प्रभावशाली ढंग से चुनौती देता है। हिंदी गीत परंपरा का गहरा संबंध सामाजिक यथार्थ से रहा है ।

ग़ज़ल शब्द तीन अक्षरों से मिलकर बना है - ग़-ज़्ल। इन तीन मूल अक्षरों से तीन अलग-अलग शब्द बनते हैं। पहला शब्द है 'ग़ज़ल', जिसका अर्थ है मीठी और चंचल अंदाज़ में बात करना। दूसरा शब्द है 'ग़ज़ाल', जो एक युवा और सुंदर हिरण को संदर्भित करता है। और तीसरा शब्द है 'ग़ज़ला', जिसका अर्थ है सूत कातना या धागा बनाना। ग़ज़ल शब्द की उत्पत्ति इसके पहले और दूसरे शब्दों से हुई है, जिनका अर्थ है घायल हिरण का विलाप। यह ग़ज़ल के प्रमुख विषयों - प्रेम, स्मृति और विरह की पीड़ा - को बखूबी दर्शाता है।

प्रतिरोधी स्वर की परिभाषा-प्रतिरोधी स्वर वह आवाज़ है जो समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और असमानता के खिलाफ उठती है। यह आवाज़ न केवल शोषितों की आवाज़ है, बल्कि यह समाज के सभी वर्गों की आवाज़ है जो न्याय और समानता की मांग करते हैं। साहित्य सदैव समाज में हस्तक्षेप करने वाला माध्यम रहा है। हिंदी साहित्य परंपरा में गीत और ग़ज़ल अपनी संगीतमयता, भावनात्मक संप्रेषण और जन-सुलभता के कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रेम और सौंदर्य के पारंपरिक विषयों से आगे बढ़कर इन विधाओं ने शोषण, असमानता, सत्तावाद और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध मुखर स्वर प्रस्तुत किया है।

हिंदी गीत परंपरा में प्रतिरोध काफी हद तक देखा जाता है- प्रतिरोधी गीत ऐसी क्रान्तिकारी गीत धारा है, जो सत्य और न्याय की वकालत करती है, शोषण विहीन समाज की संकल्पना को साकार करना चाहती है, वर्चस्ववादी सत्ता के ख़िलाफ़ है

तथा जो संघर्ष से नहीं डरती। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, अनुराधा गुप्ता और धूमिल जैसे कवियों ने अपने गीतों में अन्याय के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध व्यक्त किया।नागार्जुन की कविताएँ प्रत्यक्ष और संघर्षशील हैं, जिनमें लोकभाषा के माध्यम से सत्तावादी प्रवृत्तियों पर सीधा प्रहार किया गया है।धूमिल के गीत और कविताएँ आम नागरिक के आक्रोश और लोकतंत्र की विडंबनाओं को स्वर देती हैं। निराला के गीत वर्गीय विषमता और हाशिये पर खड़े मनुष्य की पीड़ा को उजागर करते हैं।गगन गिल: उनकी कविताएं स्त्री मन के अकेलेपन, जीवन की क्षणभंगुरता और सामाजिक बदलाव को उकेरती हैं। सुरजीत सिंह सौम्य मालवीय: उनकी कविताओं में सामाजिक विद्रूपताओं का जीवंत दिग्दर्शन कराया गया है।अवंतिका शुक्ल: उनकी कविताएं कथक में स्त्री की आवाज और प्रतिरोधी स्वर को दर्शाती हैं।प्रतिरोधी गीतकार हर कहीं अन्याय के ख़िलाफ़ खड़े हों, हर कहीं उनकी दृष्टि जाय और हर कहीं उनके गीत कमज़ोर, शोषित और पीड़ित की आवाज़ बनें तभी वे सच्चे इन्सान, सच्चे साहित्यकार और सच्चे गीतकार होने का दावा कर सकते हैं।

प्रतिरोधी गीत ऐसी क्रान्तिकारी गीत धारा है, जो सत्य और न्याय की वकालत करती है, शोषण विहीन समाज की संकल्पना को साकार करना चाहती है, वर्चस्ववादी सत्ता के ख़िलाफ़ है तथा जो संघर्ष से नहीं डरती। भारतीय समाज की बड़ी विडंबना रही है कि जिस घर में एक लड़की का जन्म होता है वह उसे अपना घर नहीं कह सकती क्योंकि विवाह के बाद वह जिस घर में जाएगी वही परंपरा के अनुसार उसका 'अपना' घर है। कवियत्री अनुराधा गुप्ता के शब्दो में....

"क्यों रे नऊआ पेट कटऊआ क्यों (चों) दीनी परदेस जी,
कहा करूँ जिजमान की बेटी करम लिखा परदेस जी,
चिट्ठी होय तो बाँच लेउ पै करम न बांचौ जाय जी।
"सासू तो ऐ मैया बुढ़िया डोकरिया
आजु मरै की काल्हि रे।
ननदी तो ए भैया बन की कोइलिया
आजु उड़ै की तो काल्हि रे"।1

बेटी की मायके के प्रति हुलस, सास-ननद का भय और दोनों पक्षों का एक दूसरे के प्रति कड़वापन भारतीय समाजिक स्थिति की विडंबना को उजागर करते हैं। वास्तविकता में ससुराल में बेगाने लोगों के बीच वह स्त्री उस घर को भी अपना नहीं समझ पाती। आत्मीयता के अभाव में उसे मायका ही याद आता है ।

साहित्यिक प्रतिरोध में निम्नलिखित तत्त्व शामिल होते है। जैसे- राजनीतिक और आर्थिक सत्ता का विरोध,मानवीय गरिमा और अधिकारों की स्थापना,सामाजिक पाखंड का अनावरण,लोकतांत्रिक एवं समतामूलक मूल्यों की आकांक्षा आदि के रुप में देखा जा शकता है । इस प्रकार हिंदी गीत में प्रतिरोध एक जीवन्त अनुभव बनकर उभरता है।

हिंदी ग़ज़ल में प्रतिरोधी स्वर- इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी ग़ज़लें भ्रष्टाचार, सत्ता की संवेदनहीनता और लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध प्रस्तुत करती हैं। हिंदी ग़ज़ल परंपरा ने उर्दू सौंदर्यशास्त्र से प्रेरणा लेते हुए स्वतंत्रता के बाद एक नया सामाजिक-राजनीतिक स्वर ग्रहण किया। दुष्यंत कुमार के अतिरिक्त अदम गोंडवी और मंज़र भोपाली जैसे शायरों ने ग़ज़ल को जनांदोलनों और मंचीय संघर्षों से जोड़ा। ग़ज़ल ने श्रृंगार रस की प्रधानता और स्थूल प्रेम के नाज़-नखरों से हटकर दैनन्दिन परिवर्तन को भी वाणी दी।समाज के प्रत्येक क्षेत्र में हुए परिवर्तनों और विद्रूपताओं ने ग़ज़ल की धार को प्रखर बनाया। सामाजिक परिवर्तन एवं चिन्तन की पृष्ठभूमि में ग़ज़ल की भूमिका भी बदल गई। ग़ज़ल एक गूढ़ काव्य और संगीत विधा है जिसकी जड़ें 7वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के अरब में हैं। ग़ज़लें अर्थपूर्ण शब्दों के सूक्ष्म प्रयोग और सुंदर छंदों के माध्यम से हमारे भीतर गहरी भावनाओं को जागृत करती हैं।भाप बन सकती नहीं पानी अगर हो नीम-गर्म,क्रांति लाने के लिए हथियार की बातें करो- अदम गोंडवी जी ने क्रांति के लिए गजल/साहित्य का आधार लिया है। गजलकार बी.आर.विप्लवी जी ने अहिसा,शासन,बगावत,वामपंथी,धर्म और व्यवस्था शब्दो के माध्यम से प्रतिरोध की भाषा और भाव को अभिव्यक्त किया है। बी.आर.विप्लवी के शब्दो में

अहिंसा, खूब शासन कर रही है कटी गर्दन, समर्थन कर रही है।
ग़रीबों की लँगोटी खींचने को, ये पूँजी, नंगा नर्तन कर रही है।2

ग़ज़ल एक प्रकार की कविता है जिसकी उत्पत्ति अरबी साहित्य में हुई और बाद में यह फ़ारसी, उर्दू और अन्य भाषाओं में लोकप्रिय हुई। ग़ज़ल का संक्षिप्त शेर-रूप तीखे और स्मरणीय प्रतिरोधी वक्तव्यों को संभव बनाता है। जैसे-डॉ.भावना कुंअर जी शब्दो में -

दुःखों की बस्तियों में तो, बस आँसू का बसेरा है
जिधर भी देखती हूँ मैं, अँधेरा ही अँधेरा है।
वो कैसे जी रहें हैं यूँ, न रोटी है न कपड़ा है
उन्हें मायूसियों के फिर, घने जंगल ने घेरा है।3

डॉ.भावना कुँअर जी ने दुःखों की बस्तियों में तो, बस आँसू का बसेरा है इस गजल में दुख की बस्तियों में ऑसू का बसेरा कहा है। वह रोजी रोटी और कपडा इस बुनीयादी जरूरतों के लिए भटकना पड राह है। इन्होंने प्रेम जैसे शाश्वत मानवीय मूल्य पर बाजारवाद के प्रभाव को अपनी ग़ज़लों में मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। समकालीन हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोध नए संदर्भों में सामने आता है- किसान, श्रमिक और स्त्री विमर्श,दलित और वंचित अस्मिताओं की आवाज़,वैश्वीकरण,बाजारीकरण की उपभोक्तावाद की आलोचना आदि। साहित्य और सोशल मीडिया ने इन प्रतिरोधी स्वरों को व्यापक मंच प्रदान किया है। लक्ष्मीशंकर वाजपेयी एक स्थान पर कहते है कि,सूरज कभी डुबता नहीं है ले किन लोग कहते है की सूरज हर रोज डुबता दिखाई देता है-

सच्चाई ये है पल भर को कभी सूरज नहीं डूबा
करोड़ों लोग हर दिन ही इसे डूबा बताते हैं 4

बाजारवाद के कारण जहां आम आदमी प्राथमिक सुविधाओं के लिए स्वयं को बेच रहा है वहाँ दूसरी और पूंजीपतियों के महल बनते जा रहे हैं। आम आदमी की स्थिति इतनी दयनीय है कि उसकी झोपड़ी भी बिकने के कगार पर है। देश में भीषण आर्थिक विषमता के कारण इनके जीवन मूल्य बदल गए है। अमीर वर्ग के महलों के सामने गरीब की झोपड़ीं को झुकना पड़ता है। वर्तमान युग में मनुष्य से अधिक पैसों का महत्व दिया जा रहा है। कुंअर बैचेन का यह शेर दोहरे रूप को व्यक्त करता हुआ देख लीजिए –

"जहाँ इंसान की औकात से दौलत बड़ी होगी
महल तनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोपड़ी होगी" 5

अपने जीवन में रूपये-पैसों को ही सब कुछ मान लेने वाले लोग मानवता एवं इंसानियत को भूल गए है। ग़ज़लकार चन्द्रसेन विराट ने अपनी ग़ज़लों में शहरी लोगों की पैसों को ईश्वर मानने की प्रवृति पर व्यंग्य करते हुए लिखा कि वर्तमान समाज में मनुष्य ने 'अर्थ' को ही ईश्वर मान लिया है।

पैसों का तंत्र है, यहां पैसा ही ईश्वर
पैसे के अधीन है मेरे शहर के लोग''6

आज का मानव सामने वाले की जेब देखकर व्यवहार रखता है। उसे सिक्कों की खनक पसंद है ग़ज़लकार राजेश रेडड्डी के यह शेर कितना सार्थक है -

''जब तलक जेब में चार पैसे रहे
बस तभी तक ये दुनिया हमारी रही''7

कुंअर बैचेन के अनुसार, मानव प्रेम पूजाघर के समान था लेकिन वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति में वह बाजार बन गया है।आज का मनुष्य सामने वाले की हैसियत देखकर बातचीत करता है। उसका प्यार बाजार में बिकने वाली वस्तु के समान हो गया है।

"प्यार पूजाघर था पहले अब तो बस बाज़ार है
जिसको देखो वो ही बिकने के लिए तैयार है" 8

आज के युग में मनुष्य की महत्ता कम होती जा रही और उकसी कीमत धन-दौलत से होती है, मानवीय मूल्यों से नहीं। अब जीवन मूल्यों की ग़ज़लकार जहीर कुरैशी समाज में आये इस बदलाव को जानना चाहते है। आज प्रतिभा के बजाय पैसों का सम्मान हो रहा है—

"यह बदलाव कहाँ से आया, कैसे आया, ज्ञात नहीं

प्रतिभा से ज्यादा लोगों ने पैसों का सम्मान किया" 9

समकालीन ग़ज़लकारों ने इस शोषण एवं भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध बेबाकी से किया। वे अपनी ग़ज़लों में परिवर्तन एवं नव निर्माण के पक्षधर है। दुष्यन्त कुमार ने अपनी ग़ज़लों में इसी शोषण एवं भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध करते हुए मनुष्य को उससे लड़ने एवं संघर्ष करने की नयी चेतना दी है। वे कहते है कि इसका अन्त अब गिड़गिड़ाने से नहीं होगा -

‘‘गिड़गिड़ाने का यहां कोई असर होता नहीं,
पेट भरकर गालियाँ दो, आह भरकर बद्दुआ।’’10

निष्कर्ष (Conclusion)

हिंदी गीत और गज़ल में प्रतिरोधी स्वर एक महत्वपूर्ण विषय है, जो समाज में व्याप्त असमानता, अन्याय और शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाता है। इन गीतों और गज़लों में समाज के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया गया है, और इनमें प्रतिरोधी स्वर की आवाज़ सुनाई देती है। गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोध प्रायः प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। भाषा, बिंब और शिल्प में अंधकार- दमन और भय का प्रतीक,भूख -आर्थिक अन्याय का संकेत,टूटा हुआ घर-सामाजिक व्यवस्था का विघटन,भोर/उजाला - परिवर्तन और आशा का बिंब।ऐसे बिंब प्रतिरोध को सार्वकालिक और सार्वभौमिक बना देते हैं।

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

हिंदी गीत और ग़ज़ल प्रतिरोध की सशक्त काव्य विधाएँ हैं। सौंदर्य और संवेदना के साथ नैतिक आग्रह को जोड़ते हुए ये विधाएँ सामाजिक यथार्थ की आलोचना करती हैं और परिवर्तन की चेतना जगाती हैं। इस प्रकार प्रतिरोध हिंदी कविता का अनिवार्य और केन्द्रीय तत्त्व बनकर उभरता है।

संदर्भ सूची

1. https://sahityakunj.net/entries/view/dukhon-kee-bastiyon-mem-to-bas-aansuu-ka-basera-hai
2. समकालीन भारतीय साहित्य,साहित्य अकादमीकी व्दैमासिक पत्रिका -नवबंर-दिसंबर-2024 पृष्ट सृ.66
3. https://www.hindwi.org/ghazals/resistance/nilofar-shabnam-nahin-angar-ki-baten-karo-adam-gondvi-ghazals?sort=
4. समकालीन भारतीय साहित्य,साहित्य अकादमीकी व्दैमासिक पत्रिका –जूलाई – अगस्त,2024 पृष्ट सृ. 59
5.कुंअर बैचेन आंधियों धीरे चलो, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-92
6.डॉ. मधु खर्राटे चन्द्रसेन विराट की प्रतिनिधि हिन्दी ग़ज़लें, विद्या प्रकाशन, गुजैनी, कानपुर, पृष्ठ संख्या-71
7.राजेश रेड्डी उड़ान, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-39
8. कुंअर बैचेन आंधियों धीरे चलो, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-56
9.डॉ. मधु खर्राटे, जहीर कुरैशी की चुनिन्दा ग़ज़लें, विद्या प्रकाशन, गुजैनी कानपुर, पृष्ठ संख्या-98
10.दुष्यन्त कुमार साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-21

*****

अल्फाजों का जादूगर – साहिर लुधियानवी !

प्रो.(डॉ.) विजय महादेव गाडे
शोध-निर्देशक एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
बाबासाहेब चितळे महाविद्यालय, भिलवडी
जि. सांगली (महाराष्ट्र) 416 303
चलभाष – 09860271909
E-mail: vijaygade2010@gmail.com

शोध सारांश :

केवल हिन्दी-उर्दू ही नहीं अपितु आधुनिक भारतीय काव्यधारा के एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में साहिर लुधियानवी सर्वपरिचित हैं। साहिर हिन्दी फिल्म इंडस्ट्री का एक सुनहरा ख्वाब था और अन्त तक ख्वाब की तरह उम्र गुजारता रहा।'आओ, कोई ख्वाब बुने !' लिखने वाले साहिर अन्त तक ख्वाब ही रहें किसी का ख्वाब नहीं बन सकें ! माजी के विगत सात दशकों से साहिर के अल्फाज युवा पीढी के होठों पर बस्ती कर चूके हैं और आज भी साहिर की लोकप्रियता कायम है इसके प्रति किसी के भी मन में कोई शक नहीं है। ' मैं पल दो पल का शायर हूं ' लिखनेवाले साहिर अन्त में ' मैं हर एक पल शायर हूं !' लिखते रहें और इसी में साहिर की महानता छिपी हुई है। यह आलेख साहिर के गैर फिल्मी नग्मात और नज्मों पर आधारित है। इस आलेख में साहिर की काव्यधारा की प्रगतिशीलता,साम्यवाद , नारी विमर्श , किसान विमर्श और रागात्मक संवेदना आदि बातों के दर्शन होते हैं। साहिर इस फारसी शब्द का अर्थ है जादूगर जिसे साहिर ने अपना उपनाम बनाकर इस शब्द को सार्थक बनाया इसलिए हमनें इस आलेख का नामकरण ' अल्फाजों का जादूगर – साहिर लुधियानवी' किया है। आज साहिर हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी मृत्यु के 45 वर्षों के बाद आज भी उनके काव्य की प्रासंगिकता और संवाद धर्मिता अक्षय है इतना हम कह सकते हैं। इस आलेख के माध्यम से साहिर के साहित्यिक प्रदेय का परिचय प्राप्त हो जाता है।

बीज शब्द: प्रगतिशीलता , रोमांस वाद , साम्यवाद , नारी वाद , किसान विमर्श , प्रासंगिकता आदि

प्रस्तावना :

हयात एक मुस्तकिल गम के सिवा कुछ भी नहीं शायद
ख़ुशी भी याद आती हैं , तो आंसू बनके आती हैं ! [1]

साहिर का जीवन सफर बहुत ही अद्भुत ,अकल्पनीय ,असीम अजर और अक्षर रहा है। अब्दुल हई से 'साहिर ' तक का यह सफर सचमुच अविस्मरणीय है। साहिर अपने निजी जीवन में साम्यवाद से काफी प्रभावित थे इसलिए साम्यवाद का प्रभाव उनकी कविता की प्रथम विशेषता है । दुसरी विशेषता है उनकी रोमांस वादी कविताओं एवं गीतों का जिनसे हम सब परिचित हैं जब की उनकी काव्यधारा की तीसरी विशेषता है उनके काव्य से उभरने वाला सशक्त नारी विमर्श। नारी के संदर्भ में साहिर ने जो भी कुछ लिखा है उसकी तुलना किसी अन्य समकालीन गीतकारों से नहीं हो सकती यह एक निखूट सत्य है।

साहिर 8 मार्च 1921 के दिन लुधियाना में एक जागीरदार के घराने में पैदा हुए किन्तु उनके जन्म के बाद उनके माता-पिता अलग हुए और साहिर अपनी मां के साथ रहने लगे। लुधियाना के सरकारी कॉलेज में पढाई पूरी करने के बाद लाहौर के दयालसिंह कॉलेज में दाखिला लिया और कॉलेज के दिनों में प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन में शरीक हुए।सन 1943 में 22 वर्ष की उम्र में साहिर का प्रथम काव्यसंकलन 'तल्खियां 'लाहौर से ही प्रकाशित हुआ और जिस संकलन से साहिर को काफी शोहरत हासिल हुई। सन 1945 में वें लाहौर से ही प्रकाशित होने वाले ' अदब-ए-लतीफ ' , 'सवेरा ' और ' शाहकार ' जैसी प्रसिद्ध पत्रिकाओं के संपादक बन गए। सवेरा में प्रकाशित उनकी रचना के कारण पाकिस्तान सरकार ने उनके खिलाफ अरेस्ट वारंट जारी किया इसलिए सन 1949 में साहिर दिल्ली आए और फिर मुंबई को उन्होंने अपना आशियाना बनाया और वें मुंबईकर बन गए। उन दिनों में साहिर ने मुंबई में ' शाहराह' और ' प्रीतलडी 'पत्रिकाओं का संपादन भी किया था।

लाहौर में साहिर को एक युवती पसंद आती है या अलग शब्दों में कहें तो साहिर उसे चाहते थे किन्तु भिन्न धर्मीय होने के कारण उनकी मुहब्बत अपने अंजाम तक नहीं पहुंची और उनका प्रेम नाकामयाब रहा और साहिर की त्रासदियों का सिलसिला कायम रहा इसलिए 'तल्खियां ' काव्य संकलन की यह पंक्तियां साहिर की तत्कालीन मनस्थिति का परिचय देने के लिए काफी है

चंद कलियां निशात की चुनकर मुद्दतों महवेयास रहता हूं
तेरा मिलना ख़ुशी की बात लेकिन तुझको पाकर भी उदास रहता हूं ! [2]

साहिर की यह अवधारणा थी कि दुनिया की नजर में गरीबों के पास अधिक गुस्सा होता है इसलिए दुनिया यह मानती है गरीबों के पास तहजीब नहीं होती जिसे साहिर ने अपनी एक नज्म के माध्यम से स्पष्ट करते हुए लिखा है –

‘ आप बेवजह परेशान –सी क्यों हैं मादाम ?
लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे ...
लोग कहते हैं तो लोगों पे ताज्जुब कैसा ?
सच तो कहते हैं कि नादारों की इज्जत कैसी ?
लोग कहते हैं, मगर आप अभी तक चुप हैं ?
आप भी कहिए ,गरीबों में शराफत कैसी ? [3]

परंपरा से प्रस्थापित मूल्यों का नये मूल्यों के साथ सदैव झगडा चलता रहता है। मानवी मूल्य अधिकाधिक उन्नत और सर्वोच्च शिखर पर आसीन होने चाहिए यह आदर्शवाद हुआ लेकिन असलियत कुछ और होती है। समाज अधिकतर स्थितिशील ही रहता है ,वह गतिशील बनना नहीं चाहता इसलिए प्रगतिशील रहने का प्रयास प्रगतिशील मानव ही कर सकता है और इसी कशमकश में उलझ कर साहिर ने एक नज्म लिखी जिसकी पंक्तियों से हमें साहिर की मन स्थिति का बोध होता है।

‘आह ! ये गारे हलाकत, ये दिए का महबस,
उम्र अपनी इन्हीं तारिक़ मकानों में कटी !
जिन्दगी फितरते –बेहिस की पुरानी तकसीर ,
इक हकीकत थी ,मगर चंद फसानों में कटी !’ [4]

हिन्दी लंबी कविता के तर्ज पर साहिर ने उर्दू में एक प्रसिद्ध नज्म लिखी जिसका शीर्षक है ‘ परछाइयां ‘ जो आज भी लोकप्रिय है। इस नज्म से साहिर की काव्यधारा की विशेषताओं का हमें परिचय प्राप्त होता है। वैसे इस नज्म पर केवल आलेख ही नहीं अपितु एक आलोचना की किताब भी लिखी जा सकती है और यह कविता साहिर की अवधारणाओं का एक दर्पण है ऐसा कहते हुए हमें कोई संकोच प्रतीत नहीं होता। इस नज्म से नारीवाद , साम्यवाद , किसान विमर्श और रोमांस वाद भी प्रकट होता है।इस नज्म का आगाज प्रकृति के सुन्दर और मादक चित्रण से होता है जो भले ही उर्दू में मूल रूप से लिखी गई है लेकिन खडी बोली हिन्दी में भी शायराना अन्दाज पैदा करने की अद्भूत क्षमता रखती है। इस नज्म की शुरुआती पंक्तियां –

‘ जवान रात के सीने पे दुधियां आंचल,
मचल रहा है किसी ख्वाबे मरमरी की तरह।
हसीन फूल हसीन पत्तियों ,हसीन शाखें ,
लचक रही है किसी जिस्मे नाजनीन की तरह।
फिजां में घुल से गए उफक के नर्म खुतुत ,
जमीं हसीन है , ख्वाबों की सरजमीं की तरह।
तसव्वुरात की परछाइयां उभरती हैं !’ [5]

साहिर इक बार जब अपने माजी अर्थात अतीत के बारें में सोच रहें थे तो उनकी कलम से यह पंक्तियां निकली –

‘ मुहब्बत तर्क की मैंने ,गरीबां सी लिया मैंने ,
जमाने अब तो खुश हो जहर यह भी पी लिया मैंने।
अभी जिन्दा हूं लेकिन सोचता रहता हूं खलवत में ,
अब तक किस तमन्ना के सहारे जी लिया मैंने !’ [6]

‘ मता –ए –गैर ‘ नज्म में साहिर की रागात्मक संवेदना उभरती है। साहिर की नज्में पढते समय इस बात पर हैरानी होती है कि एक साम्यवादी और जमाने की कडवाहट पीनेवाला शख्स प्यार के संदर्भ में कितना कोमल हो जाता है और एक संस्कृत श्लोक याद आता है –

‘ वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि
लोकोत्तरणां चेतासि को नु विज्ञातुमर्हति।।’ [7]

साहिर लिखते हैं –

‘ तू किसी और के दामन की कली है लेकिन

मिरी रातें तिरी खुशबू से बसी रहती है ,
तू कहीं भी हो तिरे फूल से आरिज की कसम
तेरी पलकें मिरी आंखों पर झुकी रहती है !' [8]

ताजमहल के संदर्भ में अनेक विचारकों ने अपनी अवधारणा स्पष्ट की है लेकिन साहिर का अभिमत इन सब विचारकों से भिन्न है। साहिर ताजमहल को पूंजी वाद की निशानी मानते हुए लिखते हैं –

' ये चमनजार ,ये जमना का किनारा ,ये महल
ये मुनक्कश दरो – दीवार ,ये महराब ,ये ताक।
इक शहनशाह ने दौलत का सहारा लेकर
हम गरीबों की मुहब्बत का उडाया है मजाक़ ! ' [9]

प्रेम की असफलता को साहिर ने ' फरार ' इस नज्म में स्पष्ट करते हुए लिखा है –

' मुझको कहने दो कि मैं आज भी जी सकता हूं
इश्क नाकाम सही ,जिन्दगी नाकाम नहीं।
वो कंवल जिनको कभी उनके लिए खिलना था
उनकी नजर से बहुत दूर भी खिल सकते हैं। ' [10]

आखरी दो पंक्तियों से साहिर की जीवन के प्रति आसक्ति और प्रबल आशावाद ही प्रकट होता है।

साहिर की नज्में पढने के बाद यह अहसास होता है की साहिर का रुझान मृत्यु या मृत्यु वाद की ओर था लेकिन हमारे मतानुसार यह साहिर के काव्य की एक प्रवृत्ति है। जर्मन महाकवि रेनर मारिया रिल्के की कविता में हमें मृत्यु की भयावह तस्वीरें नजर आती हैं। अज्ञेय ,नीरज ने भी अपने साहित्य में मृत्यु का खौफनाक चित्रण किया है। साहिर ने अपनी बात प्रस्तुत करते हुए जो लिखा है उससे नीरज की स्मृतियां उजागर हो जाती है। महाकवि नीरज को अपनी वापसी पर संदेह है इसलिए नीरज ने लिखा हैं –

' इसलिए आज तुझे आखरी खत और लिख दूं
आज मैं आग की दरिया में उतर जाऊंगा।
गोरी – गोरी सी तेरी संदली बाहों की कसम
लौट आया तो तुझे चांद नया लाऊंगा !' [11]

जब की साहिर ने लिखा है –

' अभी रोशन हैं तेरे गर्म शबिस्तां के दिए
आज मैं मौत के गारों में उतर जाऊंगा।
और दम तोडती बत्ती के धुएँ के हमराह
सरहदे-मर्गे-मुसलसल से गुजर जाऊंगा !' [12]

कवि रोमांटिक माहोल से हमें युद्ध भूमि की ओर ले जाता है और युद्ध की भयावहता तथा उसका अंजाम इन बातों पर साहिर ने इतनी सूक्ष्मता से लिखा है कि ऐसी कविता का शायद कहीं मिलना असंभव ही नहीं नामुमकीन है –

' खामोश जमीं के सीने में , खेमों कौ तनाबें गडने लगी
मक्खन –सी मुलायम राहों पर बूटों की खराशें पडने लगी।
इन्सान की कीमत गिरने लगी ,अजनास के भावों चढने लगे
चौपाल की रौनक घटने लगी , भरती के दफ्तर बढने लगे।
बस्ती के सजीले शोख जवां , बन – बन के सिपाही जाने लगे
जिस राह से कम ही लौट सकें, उस राह पे राही जाने लगे !' [13]

ग्रामीण जनजीवन पर जंग के होने वाले असर को साहिर ने यूं परिभाषित किया है –

' बदहाल घरों की बदहाली बढते – बढते जंजाल बनी
महंगाई बढ कर काल बनी ,सारी बस्ती कंगाल बनी।
चरवाहियां रास्ता भूल गई ,पनहारियां पनघट छोड गई

कितनी ही कंवारी अबलाएं मां – बाप की चौखट छोड गई।
इफलास –जदा दहकानों के हल बैल बिके ,खलियान बिके
जीने की तमन्ना के हाथों जीने ही के सामान बिके !' [14]

युद्धोपरांत स्थिति में नारी जाति के जो हालात होते हैं उसे साहिर ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है –

' तुम आ रही हो सरेआम बाल बिखराए हुए
हजार गोना मलामत का बार उठाए हुए।
हवसपन में मस्त निगाहों की चीरादस्ती से
बदन की झेंपती उरियानियां छिपाए हुए। ' [15]

और इसका अंजाम –

' उस शाम मुझे मालूम हुआ ,जब बाप की खेती छिन जाए
ममता के सुनहरे ख्वाबों की अनमोल निशानी बिकती है।
उस शाम मुझे मालूम हुआ , जब भाई जंग में काम आए
सरमाए के कहबाखाने में , बहनों की जवानी बिकती है।' [16]

ऐसे जहरिले मौसम में ,मौत के साए में भी मुहब्बत पल रही है और कवि लिखता है –

'और आज जब इन पेडों के नीचे फिर दो साए लहराएं हैं
फिर दो दिल मिलने आए हैं
फिर मौत की आंधी उठी है ,फिर जंग के बादल छाए हैं !' [17]

कवि जंगजू लोगों को चेतावनी देता है और कहता है कि अब तक जितना खून खराबा हुआ, बहुत हुआ और भविष्य में ऐसी नौबत फिर न आए क्योंकि जंग से आज तक किसी का भला नहीं हुआ है इसलिए कवि दहशतगर्दों को इशारा देते हुए कहता है –

' यह सरजमीं है गौतम की और नानक की
इस अर्जे-पाक पे वहशी न चल सकेंगे कभी।
हमारा खून अमानत है नस्ले –नौ के लिए
हमारे खून पे लश्कर न पल सकेंगे कभी !' [18]

' परछाइयां ' कविता का अन्त बहुत ही सशक्त ढंग से होता है। कवि अपनी दृष्टि भविष्य पर केंद्रित करते हुए लिखता है कि पिछली जंग में इन्सान के शरीर जल गए थे , किन्तु भविष्य में जंग हुई तो इन्सान की परछाई तक जल जाएगी और अणु बम तथा एटमी हथियारों से जमीन –आसमान दोनों जल जाएंगे और उनका अस्तित्व तहस-नहस होगा। इसलिए मानवजाति और विशेषत: जो युद्धपिपासू राजनेता हैं उन्हें सख्त चेतावनी देते हुए और उनकी आलोचना करते हुए रचनाकार लिखता है –

' कहो कि आज भी हम सब अगर खामोश रहें
तो इन दमकते खाकदां की खैर नहीं।
जुनूं की ढाली हुई एटमी बलाओं से
जमीं की खैर नहीं, आसमां की खैर नहीं !
गुजश्ता जंग में घर ही जलें मगर इस बार
अजब नहीं की ये तनहाइयां भी जल जाए।
गुजश्ता जंग में पैकर जले मगर इस बार
अजब नहीं की ये परछाइयां भी जल जाए ! [19]

साहिर एक फिल्मी गीतकार के रूप में प्रसिद्ध हैं किन्तु इसके साथ साहिर के प्रकाशित काव्य संकलनों के माध्यम से साहिर की साहित्यिक अवधारणाओं से हम परिचित हो जाते हैं। साहिर जन कवि हैं ,जनता के कवि हैं और सही मायने में साहिर ने अपना उपनाम 'साहिर ' सार्थक एवं सिद्ध किया है इसके प्रति किसी के मन में कोई आशंका नहीं हो सकती। इस आलेख का अन्त हम साहिर के कलाम से ही करना चाहते हैं –

' कहीं ऐसा न हो पांव मेरे थर्रा न जाए

और तेरी मरमरी बाहों का सहारा न मिले।
अश्क बहतें रहें खमोश सियाह रातों में
और तेरी रेशमी आंचल का किनारा न मिले !' [20]

निष्कर्ष :-

साहिर के नग्में और नज्मों का गहराई से अनुशीलन करने के बाद निम्न तथ्य उजागर होते हैं – साहिर मूलतः साम्यवादी और प्रगतिशील कवि हैं। साहिर के गीतों में रिवायती शायरी के दर्शन होते हैं लेकिन तरक्की पसंद शायरी ही अधिकतर नजर आती है। अपनी शायरी के द्वारा साहिर ने निजी जीवन की कडवाहट को उजागर किया है। किन्तु इससे तत्कालीन परिवेश को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास उनकी काव्यधारा में हमें मिलता है। स्त्री विमर्श का अत्यंत सशक्त चित्रण साहिर ने किया है और नारी की ओर देखने का एक नया नजरिया कवि ने प्रदान किया है। समाज के शोषित ,वंचित और पीडित वर्ग का चित्रण उनकी कविता और गीतों में मिलता है विशेषत:किसान और मजदूर वर्ग उनके काव्य का केन्द्र है। रिवायती शायरी से अनुप्राणित उनका रोमांस वाद है और प्रेम गीत लिखने में भी साहिर सब से आगे रहें इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता। साहिर ने साठ से अधिक वर्षों से पहले जो लिखा था , जिन प्रश्नों को उठाया था वें प्रश्न आज भी कायम हैं और इससे साहिर के साहित्य की प्रासंगिकता आज भी बरकरार हैं। संक्षेप में साहिर के गीत मानव जीवन की परिभाषा करते हैं और जीवन के अनेक नए आयाम उद्घाटित करते हैं और यहीं साहिर का गीत विधा के लिए प्रदेय भी हैं।

संदर्भ संकेत

1 साहिर लुधियानवी – तल्खियां,स्टार पब्लिकेशन ,4 /5 –बी आसफ अली रोड , नई दिल्ली 110021 तृतीय संस्करण 1959 पृ .03
2 वहीं पृ .1
3 प्रीतम अमृता – न राधा न रुक्मिणी ,नशनल बुक ट्रस्ट ,इंडिया ,नेहरू भवन ,वसंत कुंज ,फेज- 11 नई दिल्ली 100070 प्रथम संस्करण पृ. 13
4 साहिर लुधियानवी – तल्खियां,स्टार पब्लिकेशन ,4 /5 –बी आसफ अली रोड , नई दिल्ली 110021 तृतीय संस्करण 1959 पृ . 73
5 साहिर लुधियानवी – परछाइयां, राजकमल प्रकाशन 1 बी ,नेताजी सुभाष मार्ग ,नई दिल्ली 110002 तृतीय संस्करण 1980 पृ .22
6 साहिर लुधियानवी – तल्खियां,स्टार पब्लिकेशन ,4 /5 –बी आसफ अली रोड , नई दिल्ली 110021 तृतीय संस्करण 1959 पृ . 43
7 भवभूति - उत्तर राम चरित Forgotten Books Publisher, Kolkata. संस्करण 2004 1 -15 पृ .27
8 साहिर लुधियानवी – तल्खियां,स्टार पब्लिकेशन ,4 /5 –बी आसफ अली रोड , नई दिल्ली 110021 तृतीय संस्करण 1959 पृ . 59
9 साहिर लुधियानवी – जब धरती नग्में गाएगी , राजकमल प्रकाशन 1 बी ,नेताजी सुभाष मार्ग ,नई दिल्ली 110002 प्रथम संस्करण 1977 पृ . 29
10 साहिर लुधियानवी – तल्खियां,स्टार पब्लिकेशन ,4 /5 –बी आसफ अली रोड , नई दिल्ली 110021 तृतीय संस्करण 1959 पृ .43
11 नीरज गोपालदास – नीरज रचनावली , आत्माराम एन्ड संस प्रकाशन , नई दिल्ली तृतीय संस्करण 1997 पृ .269
12 साहिर लुधियानवी – तल्खियां,स्टार पब्लिकेशन ,4 /5 –बी आसफ अली रोड , नई दिल्ली 110021 तृतीय संस्करण 1959 पृ . 93
13 साहिर लुधियानवी – परछाइयां, राजकमल प्रकाशन 1 बी ,नेताजी सुभाष मार्ग ,नई दिल्ली 110002 तृतीय संस्करण 1980 पृ .23
14 वहीं पृ .23
15 वहीं पृ .23
16 वहीं पृ .23
17 वहीं पृ .24
18 वहीं पृ .24
19 वहीं पृ .25
20 साहिर लुधियानवी – जब धरती नग्में गाएगी , राजकमल प्रकाशन 1 बी ,नेताजी सुभाष मार्ग ,नई दिल्ली 110002 प्रथम संस्करण 1977 पृ . 38

*****

नीरज के गीतों में विविध भावों का चित्रण

डॉ. जयशंकर रामजीत पांडेय
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
द. ग. तटकरे महाविद्यालय,
माणगांव-रायगढ
मो. नं. ९४२११६६८००
ईमेल -
jrpandey1979@rediffmail.com

शोध सार:

गोपालदास नीरज के गीतों के विविध भावों का जब मूल्यांकन करते हैं तो हमें पता चलता है कि उनके प्रेम गीतों में मधुरता, भावात्मकता, सामाजिकता, संगीतात्मकता व भाषा की कोमलता सबसे अधिक है। इसी कारण आज भी जब हम हिंदी सिनेमा पुराने सदाबहार मधुर गीतों को सुनते हैं तो हम गुनगुना उठते है। उनके दौर के अन्य गीतकारों में सस्ती फुहड़ता, भावुकता, प्रेम दिखावा था तो इनके गीतों में संस्कृति से जुड़ाव है, विरासत को बचाने का भाव है, आदमी को आदमी से जोड़ने का लगाव है।

बीज शब्द: गीत, नीरज, भाव, जीवन, समाज, प्रेम।

प्रस्तावना

संसार की सभी भाषाओं से पहले गीतों का जन्म हो चुका था, भले ही तब भाषा का लिखित अस्तित्व उपलब्ध नहीं था। भारत में तो सामवेद से गीत का जन्म माना जाता है। हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना है और इस साहित्य में गीतों की एक लंबी और समृद्ध परंपरा रही हैं। गीतों का प्राचीन रूप लोक परंपराओं में मिलता है, जिनमें मानवीय भावनाओं और अनुभवों को अभिव्यक्त किया गया है। आदिकाल हो या भक्तिकाल, रीतिकाल हो या आधुनिक काल, गीत सभी साहित्यकारों का एक प्रिय क्षेत्र रहा है। आधुनिक हिंदी साहित्य के बीसवीं सदी के साठोत्तरी के बाद तो नवगीत आंदोलन चला जिसमें व्यक्तिगत भावनाओं से जुड़े गीतों को प्रमुखता दी गई। आधुनिक हिंदी गीतकारों में गोपालदास नीरज का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वे हिंदी के श्रेष्ठ गीतकार होने के साथ - साथ मुंबई फिल्म नगरी के भी सर्वश्रेष्ठ गीतकार थे। उनका मुंबई सिनेमा उद्योग में रहना तो बहुत कम रहा लेकिन अल्प समय में ही अपने भाव भरे गीतों की धमक से एक अलग पहचान बना ली थी। उनके गीत इतने भावपूर्ण होते थे कि श्रोताओं पर जादू कर देते थे। उन्हें लगातार तीन बार सर्वश्रेष्ठ गीतकार का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था, लेकिन यहाँ की भाव भूमि उन्हें पसंद नही आया तो वापस अपने गाँव चले गए। गोपालदास नीरज का शुरुआती जीवन उनका बड़ा संघर्षमय आरोपमय रहा, लेकिन उससे टूटे नहीं, हर बार दुगनी उत्साह से दूसरे क्षेत्र में सफल होने का प्रयास किया। अपनी बिखरी जिंदगी को संवारने के लिए हिंदी फिल्मों में गीत लेखन के लिए आए। यहाँ उन्होंने एक से बढ़कर एक फिल्मी गीत लिखे जो लोगों की जुबा पर आज भी चढ़े हैं। इन्हें गीतों का राजकुमार भी कहा जाता है। इन्हें सर्वश्रेष्ठ गीत लेखन के लिए लगातार तीन बार फिल्म फेयर पुरस्कार भी मिला। मुंबई की फिल्मी जिंदगी का चमकीला आकर्षण इन्हें ज्यादा दिन रोक नहीं पाया क्योंकि ये बहुत भावुक, प्रेमी हृदय, सच्चे दिल के व्यक्ति थे, यहाँ की दांव पेंच भरी जिंदगी, ऊपर उठाने और गिरने की लोगों की आदत, अपने लोगों को पसंद और दूसरों को पराया समझने का भाव इन्हें पसंद नहीं आया। यहाँ वास्तविक प्रेम को महत्व नहीं दिखावे की दुनिया को ज्यादा पसंद किया जाता था जो कि उनकी उसूलों के खिलाफ था। कुछ वर्षों उनका मन भर गया तो उसे छोड़कर अपने मूल गाँव अलीगढ़ चले गए और वहीं जीवन के अंतिम समय तक रहें।

गोपालदास नीरज अपने को गीतकार के रूप में स्थापित करते रहें। उन्होंने हिंदी गीत साहित्य को अपनी भावनाओं से भरी जिंदगी से जन सामान्य तक पहुँचाया। नीरज की लोकप्रियता संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए ईर्ष्या का विषय बन सकता है। इन्होंने अपनी गीतों में भावों को तो महत्वपूर्ण स्थान दिया लेकिन उसके साथ ही साथ सौंदर्य, प्रेम और रोटी को भी आवाज दी। इन्होंने एक से बढ़कर एक काव्य संग्रह लिखे जिनमें संघर्ष, अंतर्ध्वनि, विभावरी, प्राणगीत, लिख लिख भेजत पाती, दर्द दिया है, बादल बरस गयो, असावरी, दो गीत, नीरज की पाती, नदी किनारे, लहर पुकारे, कारवॉ गुजर गया, फिर दीप जलेगा, तुम्हारे लिए, नीरज की गीतिकाएं, गीत भी अगीत भी, वंशीवट सूना है जैसे काव्य संग्रह है जिनमें उनके भाव भरे गीत समाए है।

मूल आलेख

गोपालदास नीरज का कहना है की गीत का सबसे प्रमुख तत्व लय है। गीत को उसका लय ही चिरायू करती है। जैसे पृथ्वी एक लय में है, सूर्य एक लय में है उसी तरह गीतों की आत्मा उसका लयबद्ध होना है। गीत को लय ही चिरंजीवी बनाती है।

इनके गीतों की असली पहचान उनके प्रेम भाव के गीत है। वे अपनी पहचान प्रेम को ही मानते हैं। प्रेम भाव से इनका बड़ा गहरा जुड़ाव था। ये कहते हैं कि जब कभी इतिहास में मुझे याद किया जाएगा तो मेरे प्रेम भाव से ही याद किया जाएगा। उनके गीतों की भाव भूमि के मुख्य पहलू थे प्रेम और विरह, जीवन का यथार्थ संघर्ष, सामाजिक चेतना और सरल भाषा में आम आदमी के जुड़ाव। उनके प्रेम गीतों में सिर्फ प्रेम की ही भूमि नहीं है अपितु मिलन का उल्लास है, विरह की गहरी पीड़ा और तड़प है, जहाँ अपने खोए हुए प्रेम और बीते हुए पल को याद किया है।

उनके गीतों की भाव भूमि को देखे तो पता चलता है कि उसमें दार्शनिक गहराई है, जीवन की नश्वरता निराशा के बीच आशा का दीप जलाने की प्रेरणा है, समाज में व्याप्त अंधकार और बुराइयों पर प्रहार है। नीरज जी के प्रेम गीतों में विशेषताएं देखे तो उसमें विरह भावना, मिलन भावना, वासना की भावना, निस्वार्थ प्रेम की भावना, समर्पण की भावना, पूज्यता की भावना, प्रेयसी की भावना, उपालंभ की भावना, और मानव प्रेम की भावना दिखाई देता है।

गोपालदास नीरज के गीतों में सबसे प्रबल भाव जो उभरकर आया है वह प्रेम है, इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता है। जो व्यक्ति बचपन से ही प्रेम की तलाश कर रहा हो, युवावस्था में प्रेम के अनेक लांछन झेले हो, माया नगरी में आकर जिनके प्रेमगीत सागर की लहरों से टकराए हो। प्रेम के बिना ये अपनी जिंदगी को अधूरा समझते है। कवि नीरज की दृष्टि से प्रेम ही वह भाव है, जो संसार के सभी दुःखों का निवारण कर सकता है। सभी समस्याओं के समाधान, सभी को जोड़ना इससे ही संभव है।

गोपालदास नीरज के गीतों में जो प्रेम वर्णन है, उसमें सामाजिकता की स्थापना सबसे पहले की गई है। नीरज के प्रेम गीतों में कोमल भावनाएं जरूर भरी हुई है, लेकिन वे अपने भावनाओं की बाढ़ में कभी मर्यादा की सीमा को तोड़ा नहीं है। सामाजिकता उनके प्रेम नदी को हमेशा बांधे रखी है। उनके गीतों में मनुष्यों की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। निराशा में डूबे हुए लोगों को भी गुनगुनाने एवं आशा का फूल खिलाने का काम करती है। गोपालदास के गीत प्रेम से करुणा तक पहुंचती है। उनमें सच्ची संवेदना पाई जाती है। नीरज की कविताओं में पीड़ा और प्रेम के बीच में त्याग, समर्पण, लगाव, अपनापन, दया, करुणा, ईमानदारी सच्चाई जैसे भाव पाए जाते हैं। गोपालदास नीरज के गीतों पर प्रोफेसर डॉ. शंभूनाथ तिवारी का कहना है, "नीरज जिस कद व पद के लायक रहे हिंदी साहित्य ने वो नहीं दिया। जैसा मूल्यांकन होना था वह भी नहीं हो पाया। वे उस दौर में गीत को ऊंचाई पर ले गए, जब दिनकर ने कहा था कि गीत तो मर गया। नवगीत का चलन बढ़ रहा था, नीरज ने गीतों को अच्छे शब्दों में पिरोकर मंच पर उतरा और साबित किया कि गीत कभी नहीं मर सकता।"[1]

गोपालदास नीरज प्रेमी दिल व्यक्ति थे। प्रेम भाव का निरूपण उनके साहित्य में सबसे ज्यादा हुआ है। प्रेम शब्द के कितने रूप हो सकते हैं, कितने वर्णन हो सकते हैं, कितनी स्थितियाँ और परिस्थितियां हो सकती है, कवि बिहारीदास की तरह नीरज के गीतों में वे सभी चित्रित हुए है। गोपालदास नीरज के प्रेम चित्रण में चाहत है, लगन है, समर्पण है, त्याग है, अपनापन है, जुदाई है, मिलन है, बेकरारी है, प्रेम में लुटाई भी है, क्या - क्या नहीं है। उदाहरण के लिए एक गीत देखें -

"खुशी जिसने खोजी वो धन लेकर लौटा,
हँसी जिसने खोजी वो चमन लेकर लौटा,
मगर प्यार को खोजने जो गया वो,
न तन ले के लौटा न मन ले के लौटा।"[1]

गोपालदास नीरज ने समाज में कम होते भाइचारे आपसी प्रेम पर व्यंग्य किया है। मुंबई फिल्म नगरी या यहां की दुनिया में यह आम बात है, आज देश के लोग तो चांद छूने की बात करने लगे हैं लेकिन दूसरे इंसान तक पहुंच नहीं पाते हैं। नीरज के प्रेम भरे गीतों में सामाजिकता हमेशा दिखता है। उदाहरण के लिए इस गीत में देखें कि उनके प्रेम में सामाजिकता का कितना बड़ा भाव दिखता है -

"चांद को छूके चले आए हैं विज्ञान के पंख,
देखना ये है कि इंसान कहां तक पहुंचे।"[2]

गोपालदास नीरज पर आरोप लगाया जाता है कि ये प्रेम, बिरह, मस्ती और सौंदर्य के गीतकार है। लेकिन मेरा मानना है कि ये व्यक्तिगत प्रेम की जगह सामूहिक प्रेम को ज्यादा महत्व देते हैं। वे हर इंसान में प्रेम की प्रगाढ़ता को देखना पसंद करते हैं। उनके लिए प्रेम जितना व्यक्तिगत होता है उतना ही वह सामूहिक भी होती है। वे लिखते है-

"क्या करेगा प्यार वह भगवान को?
क्या करेगा प्यार वह ईमान को?
जन्म लेकर गोद में इंसान की
प्यार कर पाया न जो इंसान को।"[3]

दूसरी तरफ वे अपने फिल्मों में यह गीत गाते है -

"बस यही अपराध में हर बार करता हूँ,
आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ।"[3]

नीरज के गीतों में वफादारी भाव का चित्रण मिलता है। प्रेम करना मुश्किल नहीं होता लेकिन वफ़ा को निभाना बड़ा मुश्किल होता है। हर प्रेमी दिल के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि वे अपने प्रेम को निभाएं कैसे। प्रेम करना सभी जानते हैं लेकिन निभाना बहुत कम लोग जानते हैं। प्रेम की असली महत्व तो उसके निभाने से है। इस निभाने के महत्व को गोपालदास नीरज जानते हैं । निभाने की कीमत को अपने गीतों में अभिव्यक्त करते हैं। नीरज जी वफादारी को को सबसे बड़ी चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। वे अपने प्रेमिका से कहते भी है -

"प्यार तो करना बहुत आसान प्रेयसी!
अंत तक उसका निभाना ही कठिन है।
है बहुत आसान ठुकराना किसी को, है
न मुश्किल भूल भी जाना किसी को,
प्राण-दीपक बीच सांसों को हवा में,
याद की बाती जलाना ही कठिन है।"[4]

गोपालदास नीरज प्रेम गीतों में करुणा का स्वर भी बहुत मुखर रूप में आया है। प्रेम में प्रतिदान की अपेक्षा की जाती है लेकिन करुणा में नहीं। करुणा तो प्रेम के आगे की चीज है जो कि हमारी संवेदना को झकझोर देती है। करुणा के सहारे ही हमारा प्रेम व्यक्तिगत से समष्टिगत तक पहुंचता है। गोपालदास नीरज के गीतों में करुणा मूल्य का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। मानवीय मूल्य का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता। जब प्रेम में करुणा समाई होती है तो वहां त्याग, दया, समर्पण, विश्वास, त्याग और अपनत्व होता है, वहां कभी भी अन्याय नहीं हो सकता है। नीरज के प्रेम गीत में करुणा का चित्रण देखें -

"जाति पाति से बड़ा धर्म है,
धर्म ध्यान से बड़ा कर्म है,
कर्मकांड से बड़ा मर्म है,
मगर सभी से बड़ा यहाँ
यह छोटा सा इंसान है,
और अगर यह प्यार की
तो धरती स्वर्ग समान है।"[5]

समीक्षक डॉ. योगेंद्र दत्त शर्मा लिखते हैं कि, "नीरज मूलतः और अनिवार्यता रोमांटिक कवि हैं लेकिन उनकी यह रोमांटिकता निरी हवाई नहीं है। यह स्वप्नदर्शिता से उपजी रोमांटिकता है, जिसमें अपने समय, समाज और जनजीवन से जुड़ा यथार्थ और उसकी विरूपताओं को बदलने और बेदखल करने का क्रांतिकारी स्वप्न देखने और साकार करने का काव्योचित जज्बा, दर्प, आग्रह और हठधर्मी भी शामिल है।"[5]

निष्कर्ष:

गोपालदास नीरज के गीतों के विविध भावों का जब मूल्यांकन करते हैं तो हमें पता चलता है कि उनके प्रेम गीतों में मधुरता, भावात्मकता, सामाजिकता, संगीतात्मकता व भाषा की कोमलता सबसे अधिक है। इसी कारण आज भी जब हम हिंदी सिनेमा पुराने सदाबहार मधुर गीतों को सुनते हैं तो हम गुनगुना उठते है। उनके दौर के अन्य गीतकारों में सस्ती फुहड़ता, भावुकता, प्रेम दिखावा था तो इनके गीतों में संस्कृति से जुड़ाव है, विरासत को बचाने का भाव है, आदमी को आदमी से जोड़ने का लगाव है। उनके प्रेम गीतों में अलगाव से ज्यादा जुडाव है। गोपालदास नीरज की काव्य प्रतिभा के बारे में डॉ. कुसुम सिंह करती है कि, "यह नीरजीय व्यक्तित्व के शब्द साधना का प्रतिफल था कि एक बार नीरज ने जो गीत रच दिया वह सफलता के मुकाम पर चढ़कर

सदैव के लिए अमर हो गया। उन्होंने राजकपूर और देवानंद जैसे उच्चकोटि के फिल्मकारों की फिल्मों के लिए गीत लिख कर न सिर्फ हिंदी सिनेमा को बल्कि हिंदी भाषा को भी गौरवान्वित किया है। कारण है की फिल्मों में उनके गीत लेखन से पहले हिंदी सिनेमा में उर्दू शायरों का वर्चस्व था उन्होंने अपने गीतों में विशुद्ध हिंदी भाषा का प्रयोग कर एक नई परंपरा एवं शैली को जन्म दिया।"[6] नीरज ने अपने गीतों में हिंदी भाषा की मधुरता और सरसता को उर्दू शैली के साथ मिलकर बढ़ाया। गोपालदास नीरज पर संत कबीर का भी प्रभाव देखा जा सकता है वे अपने को मस्त फकीर मानते हैं।

संदर्भ सूची

1)**https://www.jagran.com/uttar-pradesh/aligarh-city-the-feeling-of-love-beauty-and-spirituality-in-neerajs**

2) नीरज के प्रेमगीत, संपा. अशोक अंजुम, किताबघर प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या - 9

3) https://www.amarujala.com/kavya/kavya-charcha/gopal-das-neeraj-love-ghazal-in-kavya

4) गीत जो गाए नहीं, गोपालदास नीरज, डायमंड पॉकेट बुक्स नई दिल्ली, संस्करण 2005,

5) आजकल पत्रिका, अंक जनवरी 2025, संपादक कुलश्रेष्ठ कमल, पृष्ठ संख्या-17,

6) अपनी माटी, त्रैमासिक ई-पत्रिका, वर्ष - दो, अंक - 17, जनवरी - मार्च 2015,

*****

हिन्दी फिल्मी गीतों का सांस्कृतिक परिदृश्य

प्रा.डॉ.भरत त्र्यंबक शेणकर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
ॲड्. मनोहरराव नानासाहेब देशमुख
कला,विज्ञान व वाणिज महाविद्यालय, राजूर,
मोबा. 9423164521
ई–मेल btshenkar@gmail.com

शोधालेख का सारांश :

सिनेमा आज मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। साहित्य की तरह फिल्में भी अपनी संस्कृति से अलग नहीं रह सकती। साहित्य में जिस तरह हमारी भारतीय संस्कृति का विस्तृत विवेचन हुआ है उसी तरह फिल्मों के गीतों में भी हमारी भारतीय संस्कृति का गौरवगान हुआ है। हिन्दी फिल्मी गीतों में गीतकारों ने जो गीत लिखे है उसमें अपने वतन की मिट्टी की खुशबू, स्वर तथा संगीत विद्यमान है। इन गीतों में देश की आबो-हवा, खेत-खलिहान,यहाँ का रहन-सहन , स्वभाव,शूरता-वीरता, आचार-विचार, व्यवहार, सभ्यता एवं भारतीयपन की अवधारणा पूरी तरह अवतरित हुई है। हिन्दी फिल्मों में लिखे गए गीतों में हमारे देश की संस्कृति – सभ्यता के वे सारे आयाम, भारतवर्ष का वह हर अनूठापन, जिन विशेषताओं के कारण वह सारे संसार में पहचाना ,सराहा जाता है, प्राप्त होते है। "तमाम फूहड़ता, उचक्केपनऔर चालाक व्यापारिकता के बावजूद मुख्यधारा भारतीय सिनेमा विभिन्न धर्मों और समाजों का साझा मानव-मूल्यों, परम्पराओं और आदर्शों का ही इस्तेमाल कर रहा है। हमारी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने में हिन्दी फिल्में और उनमें चित्रित गीत हमारी धरोहर है, जो हमारे देश की सांस्कृतिक विविधता के परिचायक है।

बीज शब्द : सिनेमा, गीत और संगीत, सांस्कृतिक विरासत, मनोरंजन, संस्कृति, धरोहर, त्योहार के गीत, लोकगीत, देशप्रेम, मानवमूल्य, लोकसंस्कृति आदि

प्रस्तावना :

साहित्य समाज का अभिन्न अंग है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में समाज को केंद्र में रखकर विश्व के सभी साहित्यकारों ने अपने विचार तथा भावनाओं का प्रकटीकरण किया है। साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है गीत । विश्व के आरंभ से किसी-न-किसी रूप में गीत को हमने अनुभव किया है। मनुष्य हमेशा कलाओं का भोक्ता रहा है। अपने उदास मन को स्थिरता तथा आनंद प्रदान करने के लिए उसने मनोरंजन के अनेक साधनों की खोज की। सिनेमा उसी खोज की उपलब्धि है। भारतीय सिनेमा की गरिमामय परंपरा रही है। भारतीय फिल्मों के जनक दादा साहब फालके को माना जाता है, जिन्होने सन 1931 में पहली भारतीय मुक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' बनाई। भारत में सन 1931 में बनी प्रथम बोलती फिल्म 'आलम आरा' थी जिसकी भाषा हिन्दी थी। "चलचित्र का नाम सुनते ही मन में लहरें हिलोरे मारने लगती है। सिनेमा आज की अनिवार्यता बन गया है। सिनेमा आज मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। सिनेमा हॉल में तीन घंटे के लिए व्यक्ति अपनी चिंताओं,कुंठाओं एव परेशानियों को भूल जाता है। चलचित्र में संगीत, नृत्य, कथानक,अभिनय,रोचक दृश्यों आदि के समावेश होने से यह मनोरंजन का सर्वाधिक प्रभावशाली साधन बन गया है"।[1]

"सिनेमा को गीत-संगीत से अलग नहीं करके नहीं देखा जा सकता। खासतौर पर जब हम भारतीय या हिन्दी सिनेमा की बात करते है।,तो गीत-संगीत किसी फिल्म की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण प्रतीत होता है। हम कह सकते है कि किसी फिल्म के लिए कहानी या पटकथा जितनी अनिवार्य रही है,उतना ही गीत-संगीत भी। इसलिए जब से फिल्म है ,कहानी है तभी से गीत-संगीत भी। चूंकि गीत-संगीत हमारी संकृति का हिस्सा है,जिसके केंद्र में उल्लास है"।[2] साहित्य की तरह फिल्में भी अपनी संस्कृति से अलग नहीं रह सकती। साहित्य में जिस तरह हमारी भारतीय संस्कृति का विस्तृत विवेचन हुआ है उसी तरह फिल्मों के गीतों में भी हमारी भारतीय संस्कृति का गौरवगान हुआ है। हिन्दी फिल्मी गीतों में गीतकारों ने जो गीत लिखे है उसमें अपने वतन की मिट्टी की खुशबू ,स्वर तथा संगीत विद्यमान है। इन गीतों में देश की आबो-हवा, खेत-खलिहान,यहाँ का रहन-सहन , स्वभाव,शूरता-वीरता, आचार-विचार, व्यवहार, सभ्यता एवं भारतीयपन की अवधारणा पूरी तरह अवतरित हुई है।

शोधालेख का विश्लेषण :

धर्म भारतीय संस्कृति की धरोहर मानी जाती है। "फिल्मों की शुरुआत भी धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं से हुई है। देश की पहली गूँगी फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' एवं पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' इन्हीं विषयों पर आधारित फिल्में थी"।[3] 'रामायण' और 'महाभारत' हमारी भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ माने जाते है। इन्हीं दो महाकाव्यों पर बनी धारावाहिक के गीत आज भी हमें प्रेरणा प्रदान करते हैं। 'मंगल भवन अमंगल हारी,द्रवहु सुदसरथ अचर बिहारी' 1987 में दूरदर्शन पर प्रसारित हुए रामानन्द सागर के 'रामायण' धारावाहिक का यह शीर्षक गीत है। इसके साथ-साथ 'हम कथा सुनाते राम सकल गुण धाम की,ये रामायण है पुण्य कथा श्रीराम की' जैसे गीत आज भी लोकप्रिय है। 'अथ श्री महाभारत कथा' 1988 में बी.आर.चोपड़ा की धारावाहिक 'महाभारत' का यह गीत आज भी लोकप्रिय है, जिसे महेंद्र कपूर ने गाया था। इन दो धारावाहिकों ने समस्त भारतीय मनों को जीत लिया था। इन धारावहिकों मे जो गीत प्रसंग के अनुसार लिखे गए उन गीतों ने इन धारावाहिकों को अमर बना दिया। राम और कृष्ण तथा भारतीय देवी-देवताओं पर बनी कई फिल्मों के गीत आज भी लोकप्रिय है। 1975 में बनी 'जय संतोषी माँ' एक तरह से चमत्कार रूप से साबित हुई, जो अब तक की धार्मिक एवं पौराणिक फिल्मों में सर्वाधिक प्रसिद्ध रही। इस फिल्म में चित्रित सभी गीत अत्यंत लोकप्रिय हुए। 'मैं तो आरती उतारूँ रे', 'करती हूँ तुम्हारा व्रत मैं','यहाँ वहाँ जहाँ तहाँ मत पूछो कहा कहा' इन गीतों के साथ-साथ 'मत रो मत रो आज राधिके सुन ले बात हमारी ..जो दु:ख से घबरा जाये वो नहीं हिन्द की नारी...' इस गीत की चर्चा हमेशा रहेगी, क्योंकि इस गीत में भारतीय स्त्री मन का गहराई से अंकन हुआ है।

इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता कि गीत भारतीय सामूहिक जीवन का अविभाज्य अंग रहा है।लोकसंस्कृति में आम तौर पर सभी तीज-त्योहार, जन्म, विवाह, खुशी-उत्साह तथा सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति के लिए गीत है, जिनमें कुछ गीत सामूहिक है तो कुछ व्यक्तिगत। त्योहारों के गीत आमतौर पर सामूहिक उत्साह को अभिव्यक्त करने का माध्यम होते है। त्योहार भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग माने जाते है, जिससे भारतीय संस्कृति को सारे विश्व में ख्याति प्राप्त हुई है। भारतीय फिल्मों में दिवाली, होली,रक्षाबंधन तथा अन्य त्योहारों के गीत बड़ी मात्रा में चित्रित हुए है।1941 में बनी 'खजांची' फिल्म मे चित्रित 'आई दिवाली आई कैसे उजाले लाई घर घर खुशियों के दीप जले' गीत उस समय काफी लोकप्रिय हुआ था। बाद में किस्मत (1943) तानसेन (1943) रतन (1944) सबसे बड़ा रूपय्या (1955) नजराना (1961) गाईड(1965) में बनी सभी फिल्मों में दिवाली के गीत चित्रित थे। 1977 में बनी 'शिर्डी के साई बाबा' फिल्म का 'दीपावली मनाई सुहानी' जैसे गीत आज भी दीपाली के अवसर पर लोग बड़े चाव से सुनते है। दीवाली के बाद होली के गीतों का चित्रण भी फिल्मों में आज तक होता रहा है। 1960 में बनी व्ही. शांताराम की अजरामर फिल्म का गीत 'अरे जारे हट नटखट',1975 की शोले का 'होली के दिन खिल जाते है', 1981 की फिल्म सिलसिला का 'रंग बरसे' जैसे गीत होली के त्योहार में चार चाँद लगा देते है।

राखी भाई-बहन के पवित्र रिश्तों का एक पवित्र त्योहार है। "भाई बहन के इस पवित्र रिश्ते के प्रेम और त्याग को फिल्मों में भारतीय दर्शकों के दिलों में बसाने के अलावा इसे हर परिवार और समाज तक पहुंचाया है। रक्षा बंधन पर आधारित फिल्मों के कई गीत तो ऐसे रहे हैं जो भाई-बहन के मन, कर्म और विचार को ममत्व की सुगंध से सराबोर कर देते है। इन गीतों को सुनकर भाई-बहन के प्रेम में नए संचार की अनुभूति और स्पर्श होने लगता है"।[4] 1959 में बनी 'छोटी बहन' फिल्म का 'भैया मेरे राखी के बंधन को निभाना', 'रेशम की डोरी' फिल्म का 'बहना ने भाई की कलाई पे प्यार बांधा है', 'काजल' फिल्म का 'मेरे भैया मेरे चन्दामेरे अनमोल रतन', 'हरे राम हरे कृष्ण' फिल्म का 'फूलों का तारों का सबका कहना है एक हजारों में मेरी बहना है' जैसे गीत आज भी इस त्योहार के अवसर पर गाये तथा सुने जाते है।

भारतीय संस्कृति के सांकृतिक परिवेश में हर्षोल्लास से भरे लोकगीत है, वहाँ मृत्यु से संबन्धित शोकगीत है। यहाँ संयोग श्रुंगार के प्नणयगीत भी है तो वियोग श्रुंगार के अवसाद गीत भी है। अत: जब से मानवीय संस्कृति का प्रारंभ हुआ तब से लोक में गायन की परंपरा भी अग्रसर हुई है। गीत जहां एक ओर मनोरंजन प्रदान करता है वहाँ जीवन की यतार्थता को प्रदर्शित करता है। कभी वह आसमान में उडनेवाली परी बनकर हमें कल्पना जगत में ले जाकर काल्पनिक सपनें दिखाता है तो कभी हमारे साथ बैठकर हमारे सुख-दु:ख से रूबरू होकर हमारे साथ घूमता है। अपनी रागात्मक वृत्तियों के कारण गीत को साहित्य के उद्यान में खिलने वाला सबसे अधिक खूबसूरत ,सबसे अधिक रंगीन पुष्प माना जाता है। फिल्मों को सफल बनाने में उस फिल्म के गीतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। आधुनिक युवा पीढ़ी को अपनी गौरवशाली सांस्कृतिक धरोहर की जानकारी प्रदान करने के लिए कुछ सांस्कृतिक फिल्मों और उसके गीतों का काफी योगदान रहा है।

हिन्दी फिल्मों में देश की धरती का गौरवशाली वर्णन हुआ है। धरती को माँ समझ कर इसके उपकार का चित्रण अनेक फिल्मी गीतों में हुआ है। धरती माँ के सामने अपना-पराया का कोई भेद नहीं है। 1667 में बनी 'उपकार' फिल्म का गीत इस देश की धरतीमाता का गौरवगान करता है –

'मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती ..मेरे देश की धरती
बैलों के गले में जब घुंगरू जीवन का राग सुनाते है
गम कोस दूर हो जाते है खुशियों के कमल मुस्काते है
सुनकार रहट की आवाजें , यूं लगे कहीं शहनाई बजे
आते ही मस्त बहारों के दुल्हन की तरह हर खेत सजे .."[5]

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी फिल्मों में चित्रित गीतों का परिदृश्य अत्यंत व्यापक है। भारतीय संस्कृति विश्व की महान संस्कृति है। हमारे समाज का खान-पान,रहन-सहन, तीज-त्योहार,पोषाख तथा लोक जीवन का बारीकी से वर्णन हमारी हिन्दी फिल्मों के गीतों में हुआ है। आज फिल्मों पर पाश्चात्य पाश्चात्य संस्कृति हावी हो रही है, ऐसे में हमारी भारतीय सभ्यता आज भी टिकी हुई है।फिल्मी गीतों में अभिव्यक्त देश के गौरवगान में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की अवधारणा अपने पूरे आयामों से प्रतिबिंबित होती है। कहा जा सकता है कि किसी भी देश कि गौरव-गरिमा उस देश की सभ्यता, संस्कृति में निहित होती है। हिन्दी फिल्मों में लिखे गए गीतों में हमारे देश की संस्कृति – सभ्यता के वे सारे आयाम, भारतवर्ष का वह हर अनूठापन, जिन विशेषताओं के कारण वह सारे संसार में पहचाना ,सराहा जाता है, प्राप्त होते है।

"तमाम फूहड़ता, उचक्केपनऔर चालाक व्यापारिकता के बावजूद मुख्यधारा भारतीय सिनेमा विभिन्न धर्मों और सामाजों का साझा मानव-मूल्यों, परम्पराओं और आदर्शों का ही इस्तेमाल कर रहा है। अधिकांश पश्चिमी सिनेमा व्यक्ति केन्द्रित या मनोलोक-केन्द्रित है जबकि भारतीय सिनेमा की मूल इकाई परिवार है। 'रामायण' और 'महाभारत' के मूल्य जो इस्लाम, ईसाइयत,बौद्ध, जैन, सिख आदि के मूल्यों से कहीं अलग नहीं है, हमारी फिल्मों के नियामक है। परिवार उनके केंद्र में है"।[6] हमारी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने में हिन्दी फिल्में और उनमें चित्रित गीत हमारी धरोहर है , जो हमारे देश की सांस्कृतिक विविधता के परिचायक है।

संदर्भ सूची –

1. श्रेष्ठ हिन्दी निबंध,डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा,पृ-130
2. हिन्दी सिनेमा का इतिहास,संजीव श्रीवास्तव,पृ-114
3. हिन्दी सिनेमा का 100 वर्ष, दिलचस्प, पृ-47
4. हिन्दी सिनेमा का 100 वर्ष, दिलचस्प, पृ-84
5. उपकार (1967),गीतकार गुलशन बावरा
6. सिनेमा पढ़ने के तरीके ,विष्णु खरे,पृ-169

*****

दुष्यंत कुमार की गजलों में सामाजिक यथार्थ

डॉ. भास्कर उमराव भवर
हिंदी विभाध्यक्ष,
कर्मवीर हिरे कॉलेज, गारगोटी,
ता. भुदरगड, जि. कोल्हापुर
मो. नं. 9922604998
ई-मेल: drbhaskarbhavar@gmail.com

शोधालेख का सार :

'साये में धूप' दुष्यंत कुमार का महत्त्वपूर्ण गजल-संग्रह है। इस गजल-संग्रह के एक-एक शेर में स्वतंत्रता के बाद का सामाजिक यथार्थ झलकता है। उनकी गजलें परंपरागत प्रेमी-प्रेमिका के दायरे से बाहर आकर विविध सामाजिक समस्याओं पर चोट करती हुई दिखाई देती हैं। आज भी आम आदमी किस प्रकार दुख-दर्द, पीड़ाओं से भरा हुआ जीवन जीने के लिए अभिशक्त है। इसे दुष्यंत कुमार ने चित्रित करते हुए राजनीति के दिखावे की प्रवृत्ति पर गहरी चोट की है।

बीज शब्द : दुष्यंत कुमार की गजलें, दुष्यंत कुमार की गजलों में सामाजिक यथार्थ, साये में धूप में सामाजिक यथार्थ।

प्रस्तावना

दुष्यंतकुमार का जन्म आजादी के पहले 27 सितंबर, 1931 में उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में राजपुर नवादा नामक गाँव में हुआ है। उनका मृत्यु 29 दिसंबर, 1975 में हुआ। सिर्फ 42 साल की आयु में उन्होंने साहित्य तथा ग़ज़ल क्षेत्र में महत्तवपूर्ण योगदान दिया है। गजल का नाम लेते ही दुष्यंत कुमार का नाम सामने आता है। 'साये में धूप' उनका महत्त्वपूर्ण गजल-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन 1975 में हुआ है। इस संग्रह की गजलें सामाजिक समस्याओं पर चोट करती हुई दिखाई देती है। दुष्यंत कुमार का जन्म एक अच्छे परिवार में होने के बावजूद भी उनकी ग़ज़लों में आम आदमी की पुकार सुनाई देती है। इसमें आम आदमी का दुख-दर्द समाया हुआ है। आम आदमी को जीवन जीते समय किस प्रकार पीड़ाओं को सहना पड़ता है, इसका चित्रण उनकी गजलों में मिलता है।

उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद समाज किस दिशा की ओर जा रहा है, झूठी राजनीति, दिनों-दिन बढ़ता भ्रष्टाचार और उसमें पीसता हुआ आम आदमी आदि कई समस्याओं को उठाया है। उनकी हर गजल में सामाजिक यथार्थ झलकता हुआ दिखाई देता है। दुष्यंत कुमार की गजलों के संदर्भ में डॉ. काकोली गोराई लिखती हैं- "हिंदी गजल को सामाजिक सरोकारों से जोड़ने के क्रांतिकारी कार्य का सूत्रपात संभवत: दुष्यंत कुमार ने ही किया। उनकी गजलों में सामाजिक चेतना का प्रमुख स्वर उभरता है। इन सरोकारों में घर-परिवार, रिश्ते-नाते, शोषण, गरीबी ही नहीं, त्रासद-विसंगतियाँ, राजनीतिक छल जैसे कितने ही मुद्दे शामिल दिखाई देते हैं।"[1] समाज के हर एक पहलु का चित्रण दुष्यंत कुमार की गजलों में मिलता है।

अपनी गजलों में झूठी राजनीति पर दुष्यंत कुमार ने तीखा प्रहार किया है। वे नेताओं के खोखले नारे और घोषणाओं की पोलखोल करते हैं। नेताओं द्वारा आम जनता के लिए की गई बड़ी-बड़ी घोषणाएँ हवा में ही रह जाती हैं। सारी व्यवस्था गरीब जनता को लूटने में लगी हुई दिखाई देती है। शासकीय कार्यालय तथा राजनीति में भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि गरीब, आम आदमियों के लिए बनाई गई योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँचता। राजनीति में गरिबों की योजनाओं का पैसे बीच में ही हड़प किया जाता है। नेता लोग आम जनता को सिर्फ झूठे आश्वासन देते हैं। प्रत्यक्ष वे आम आदमियों के लिए कुछ नहीं करते। देश में भ्रष्टाचार कितना चरमसीमा पर पहुँच गया है, इस ओर निर्देश करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

"यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।"[2]

दुष्यंत कुमार प्रस्तुत शेर के माध्यम से भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया है। आज देश में भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। चारों ओर भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार दिखाई देता है। इस भ्रष्टाचार की चक्की में आम आदमी पीसता जा रहा है। इस संदर्भ में दुष्यंतकुमार लिखते हैं-

"हर सड़क पर इस कदम कीचड़ बिछी है
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।"[3]

इस प्रकार दुष्यंत कुमार प्रस्तुत शेर के माध्यम से भ्रष्टाचार कितना बढ़ गया है, इस पर निर्देश किया है।

वर्तमान व्यवस्था इतनी कठोर हो गई है कि खुद तो जनता की ओर ध्यान देने की बात दूर लेकिन आवेदन, बिनती से भी आम आदमी की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं देती। जनता ने कितने भी आंदोलन किए, कितने भी आवेदन दिए, कितनी भी बिनती की तो भी इस व्यवस्था पर कोई परिणाम नहीं होता। दुष्यंत जी के अनुसार अब जनता ने ही अपनी समस्याओं को हल करने के लिए कड़े कदम उठाना जरूरी है। नेता लोग जनता को सिर्फ आश्वासन देते हैं। लोगों को बड़े-बड़े सपनें दिखाएँ जाते हैं लेकिन सभी को अच्छी शिक्षा, रोजगार के समान अवसर ध्यान नहीं दिया जाता। जनता को सिर्फ आश्वासन देनेवाली व्यवस्था को सीधा करने के लिए उपायों को सुझाते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

"गिड़गिड़ाने का यहाँ कोई असर होता नहीं
पेट भरकर गालियाँ दो, आह भरकर बद्दुआ।"[4]

इस प्रकार दुष्यंत कुमार इस व्यवस्था को जी भरकर गालियाँ देने की सलाह देते हैं।

वर्तमान समय में चारों ओर दुख और मोहभंग की ही स्थिति दिखाई देती है। आदमी के जीवन में सुख कम और दुख ही ज्यादा दिखाई देता है। आम आदमी फटेहाल जिंदगी जीने के लिए मजबूर है। इन सारी बातों का चित्रण दुष्यंत कुमार की गजलों में मिलता है। उनकी गजलों के संदर्भ में डॉ. काकोली गोराई लिखती हैं- "देश की सामान्य जनता को स्वतंत्र भारत की सरकार से कई उम्मीदें थीं। लेकिन सरकार की ओर से जनता के विकास के लिए कोई प्रयास नहीं हुए, आम जनता की विपन्न अवस्था और सामाजिक परिवर्तन की अभिलाषा दुष्यंत कुमार की गजलों में हैं।"[5] आज भी आम आदमी रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत सुविधाओं के लिए मोहताज है। इस संदर्भ में दुष्यंत कुमार एक गजल में लिखते हैं-

"न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए"[6]

इस प्रकार बहुत बदहाली में आम आदमी जीवन जीता है। 'आज नहीं तो कल अपने जीवन में परिवर्तन आएगा' इस आशा पर वह जीता रहता है। वह सुखी-खुशहल जीवन के सपने देखता है लेकिन उसके ये सपनें सपनें ही रह जाते हैं। जीवन में आया हुआ थोड़ा-बहुत सुख कपूर की तरह हवा में उड़ जाता है और आदमी हमेशा के लिए दुख भोगने के लिए विविश हो जाता है। इस संदर्भ में दुष्यंतकुमार लिखते हैं-

"दुख को बहुत सहेज के रखना पड़ा हमें
सुख तो किसी कपूर की टिकिया-सा उड़ गया।"[7]

आज भी समाज रूढ़ी-परंपराओं से बाहर आने के लिए तैयार नहीं है। धर्म, गलत रूढ़ी और परंपराओं के नाम पर आम आदमी को लूटा जा रहा है। धर्म के ठेकेदार 'हमारा ही धर्म कितना श्रेष्ठ' साबित करने की चक्कर में समाज को गलत दिशा की ओर ले जा रहे हैं। आज धर्म के नाम पर लोगों को आपस में लड़ाने का काम किया जा रहा है। कोई भी धर्म हो, वह मानवता की सीख देता है लेकिन यह धर्म अपने असली रास्ते से भटक रहा है। देवता को प्रसंन्न करने तथा घर में सुख-शांति के लिए होम-हवन किया जाता है। इस पर बड़े पैमाने पर खर्च होता है लेकिन हाथ कुछ नहीं लगता। इसी बात की ओर निर्देश करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

"ये लोग होमो-हवन में यकीन रखते हैं
चलो यहाँ से चलें, हाथ जल न जायें कहीं।"[8]

दुष्यंत जी प्रस्तुत शेर के माध्यम से गलत रूढ़ी-परंपराओं से दूर रहने की सलाह देते हैं।

दुष्यंत कुमार परिवर्तन में विश्वास रखते हैं। कितना भी घना अँधेरा हो, कभी न कभी सूरज निकलेगा ही। इसलिए आदमी ने परिस्थिति से हताश नहीं होना चाहिए। इसलिए तो परिवर्तन की ओर निर्देश करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

"हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।"[9]

प्रस्तुत शेर के माध्यम से परिवर्तन की तीव्र ईच्छा व्यक्त की हुई दिखाई देती है। दुष्यंत कुमार चाहते हैं कि इस कठोर व्यवस्था में परिवर्तन आना चाहिए।

'साये में धूप' गजल-संग्रह में वर्तमान सामाजिक, राजनीति अव्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं। आज के व्यवस्था रूपी साये में ही अव्यवस्था रूपी धूप तप रही है याने सिर्फ दिखाने के लिए यह व्यवस्था आम आदमियों के लिए है लेकिन व्यवस्था द्वारा आम आदमियों का शोषण किया जाता है। ऐसी अवस्था जनता को न्याय कैसे मिल सकता है? इसलिए दुष्यंत कुमार लिखते हैं-

"यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए"[10]

दुष्यंत कुमार की गजलें सही अर्थों में एक सामाजिक दस्तावेज हैं। इसका एक-एक शेर सामाजिक सच्चाईयों को उजागर करता है। उनकी कुछ गजलें सामाजिक विषमता अर्थात् असमानता की ओर भी निर्देश करती हैं। इस समाज में चुनिंदा लोग ही सुख-सुविधाओं से ऐशो-आराम की जिंदगी जीते हैं। ज्यादातर लोगों को जीवन की बुनियादी जरूरतें पूरी करने के लिए दिन-रात झगड़ना पड़ता है। फिर भी वे लोग मूलभूत सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। वे अपनी गजलों के माध्यम से समाज में बदलाव लाना चाहते हैं। भूख की पीड़ा से जनता बेहाल है लेकिन इस व्यवस्था को इससे कोई लेना-देना हीं है। वे देश में बदलाव लाने की सिर्फ घोषणाएँ करते हैं लेकिन प्रत्यक्ष कुछ नहीं करते। इसलिए तो एक गजल में इस व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं-

"भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ
आजकल दिल्ली में है जेरे बहस यह मुद्दआ"[11]

इस प्रकार दुष्यंत कुमार की गजलों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से तत्कालीन राजनीति पर तीखा व्यंग्य किया है। वर्तमान राजनीति तो पहले से बदतर हुई दिखाई देती है। आज भी आम आदमी बुनियादी सुविधाओं के लिए संघर्ष करता दिखाई देता है।

निष्कर्ष :

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दुष्यंतकुमार की गजलों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है। इसमें आजादी के पश्चात् आम आदमी के मोहभंग की स्थिति को प्रमुखता से चित्रित किया है। झूठी नारेबाजी और स्वार्थी राजनीति के कारण आजादी के बाद भी आम आदमी के जीवन में परिवर्तन नहीं आया। आज भी वह गरीबी, शोषण जैसी समस्याओं से जूझता हुआ दिखाई देता है। इन सारी बातों का चित्रण में दुष्यंत कुमार के 'साये में धूप' गजल-संग्रह में मिलता है। आज की स्वार्थी राजनीति पर दुष्यंत कुमार ने अपने गजलों के माध्यम से चोट की है। उनकी गजलों के माध्यम से स्वतंत्रता के बाद का सामाजिक यथार्थ सामने आता है।

संदर्भ :

1. सं. उपेंद्र कुमार मिश्र, समकालीन अभिव्यक्ति, गजल विशेषांक, जनवरी-जून 2021, पृ.46
2. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ.15
3. वही, पृ. 27
4. वही, पृ. 21
5. सं. उपेंद्र कुमार मिश्र, समकालीन अभिव्यक्ति, गजल विशेषांक, जनवरी-जून 2021, पृ.45
6. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, पृ.13
7. वही, पृ.38
8. वही, पृ. 25
9. वही, पृ.49
10. वही, पृ.13
11. वही, पृ.21

*****

हिंदी फिल्मों में ग़ज़ल गायन शैली का विकासात्मक विश्लेषण

डॉ. भूषण सदानंद घरत
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
चांगू काना ठाकूर आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज (स्वायत्त)
नवीन पनवेल-४१०२०२६

सारांश:

फ़िल्मों में आने से पहले, ग़ज़लें सारंगी, तबला और तानपुरा के साथ गाई जाती थीं। पहले फिल्मों में वाद्य यंत्रों का ही प्रयोग होता था, लेकिन फिल्मों के आगमन के साथ ही ग़ज़लों में बांसुरी, कोंगा, बैगपाइप, ढोल, पियानो, वायलिन, गिटार, सिंथेसाइज़र आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग शुरू हो गया। इसके साथ ही फिल्मी ग़ज़लों का रूप पूरी तरह बदल गया। फिल्मी संगीत की तमाम सीमाओं के बावजूद, फिल्मों में गाई गई ग़ज़लों ने अपनी एक अलग पहचान बनाई, जिसके चलते कई ग़ज़ल गायकों ने अपनी या किसी अन्य ग़ज़ल गायक की फिल्मी ग़ज़लें अपने ग़ज़ल समारोहों में गाना शुरू कर दिया। गैर-फिल्मी ग़ज़लों की तरह ही, सैकड़ों फिल्मी ग़ज़लें आज भी ग़ज़ल प्रेमियों के बीच बेहद लोकप्रिय हैं।

बीज शब्द: फिल्म, संगीत, शैली, ग़ज़ल, गायन

जब मनुष्य का मन अपने अंतर्मन की भावनाओं को प्रकट करना चाहता है, तो वह किसी कला का सहारा लेता है। यह मनुष्य की सहज अभिव्यंजक प्रस्तुति है जो किसी भी कला रूप के माध्यम से हमारे सामने आती है। वह कला रूप संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला और कविता आदि कुछ भी हो सकता है। इन सभी कलाओं में संगीत का सर्वोच्च स्थान है। संगीत के अंतर्गत तीन कलाएँ आती हैं: गायन, वादन और नृत्य। संगीत इन तीनों कलाओं के संयोजन से बनता है, लेकिन वर्तमान समय में केवल इन्हीं तीनों कलाओं ने अपना स्वतंत्र स्थान प्राप्त किया है। भारत की संगीत परंपरा बहुत प्राचीन और विशाल है। प्राचीन काल में संगीत की दो प्रमुख धाराएँ प्रचलित थीं: मार्गी संगीत और देसी संगीत। मार्गी संगीत को दिव्य संगीत माना जाता था, अर्थात् ईश्वर की आराधना के लिए प्रयुक्त संगीत, जिसका प्रयोग विशेष अवसरों पर विशेष ढंग से विशेष व्यक्तियों द्वारा किया जाता था। मार्गी संगीत आम लोगों के लिए नहीं था। इस संगीत का मुख्य उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना था। लोक संगीत को प्राचीन काल में स्वदेशी संगीत कहा जाता था। विभिन्न देशों की लोक रुचियों के अनुसार मन को प्रसन्न करने वाले गायन, वादन और नृत्य को लोक संगीत कहा जाता है। वर्तमान समय में, शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत को प्राचीन मार्गी और स्वदेशी संगीत के संशोधित और विकसित रूप माना जाता है।

भारत का संगीत अपनी अनूठी विशेषताओं के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध है। प्राचीन काल से ही इसका प्रचलन रहा है।भारतीय संगीत में आरंभ से लेकर वर्तमान तक अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक उथल-पुथल के साथ-साथ भारत में अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों का संगम हुआ। इन सभी घटनाओं ने कलाओं को बहुत प्रभावित किया। अन्य कलाओं के साथ-साथ संगीत भी इन प्रभावों से अछूता नहीं रह सका। यही कारण है कि भारतीय संगीत हमेशा से विविधतापूर्ण रहा है, जिसके फलस्वरूप आज भारत में संगीत के विभिन्न रूप और गायन शैलियाँ प्रचलित हैं। इन विभिन्न संगीत शैलियों में शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत के अलावा उपशास्त्रीय संगीत, सूफी संगीत, रवींद्र संगीत, सुगम संगीत और फिल्मी संगीत जैसी अन्य शैलियाँ भी प्रचलित हैं। यद्यपि फिल्मी संगीत ने वर्तमान समय में अपनी एक अलग पहचान बना ली है, फिर भी इसे सुगम संगीत के अंतर्गत ही रखा जाता है। सुगम संगीत ने विशेष रूप से फिल्मों के माध्यम से लोगों को प्रभावित किया है। भारतीय संगीत में फिल्मी संगीत का एक महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए यदि वर्तमान में फिल्मी संगीत को भारत में सबसे अधिक सुना जाने वाला संगीत कहा जाए तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सिनेमाई संगीत विभिन्न संगीत विधाओं का संगम है, जो इसकी लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण है। विश्व की वैज्ञानिक उपलब्धियों में सिनेमा एकमात्र ऐसा आविष्कार है जिसने पूरे विश्व को सबसे अधिक प्रभावित किया है। अन्य देशों के सिनेमा और भारतीय सिनेमा में सबसे बड़ा अंतर भारतीय सिनेमा के संगीत में देखा जा सकता है। भारतीय सिनेमा अपने संगीत के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। भारत में कई भाषाओं में फिल्में बनती हैं, लेकिन हिंदी फिल्में यहाँ के सिनेमा का प्रतिनिधित्व करती हैं। हिंदी फिल्में और उनका संगीत हमारी संस्कृति में इस कदर घुलमिल गए हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। यदि सिनेमा समाज को कुछ हद तक बदलने में सफल रहा है, तो इस बदलाव में फिल्मी गीतों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। डॉ. मुकेश गर्ग के शब्दों में, "फिल्मी गीतों ने 20वीं सदी को आकार दिया।"1

21वीं सदी में हमारे देश में जो आतंक फैला, वह दुनिया में बेमिसाल है। यह सच है कि इस सदी में भारतीय संगीत की सबसे बड़ी क्रांति फिल्मों के माध्यम से आई है। फिल्में आती-जाती रहती हैं, बहुत कम फिल्में ऐसी होती हैं जिनकी कहानियां हमें याद रहती हैं, लेकिन फिल्मों के गाने हमारी यादों में बस जाते हैं, जो उन फिल्मों की अमिट छाप हमारे मन में छोड़ जाते हैं। फिल्मी गानों का जादू जो हमसे बात करता है, आसमान से नहीं गिरता, बल्कि हमारे परिवेश से, हमारी संस्कृति से ही आकार लेता है। फिल्मों में कहानी के अनुरूप भावनाओं को व्यक्त करने में विभिन्न गायन शैलियाँ भी बहुत सहायक होती हैं। फिल्मी संगीत में सबसे ज्यादा मधुर संगीत शैलियों का प्रयोग हुआ है। गानों के साथ-साथ, प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति करने वाली ग़ज़ल शैली का भी फिल्मी संगीत में खूब इस्तेमाल हुआ है। फिल्मों में कहानी के अनुरूप कई गायन शैलियों को शामिल किया गया है, और ग़ज़ल भी उन शैलियों में एक प्रमुख शैली रही है। फिल्मों में प्रयुक्त ग़ज़ल और गैर-ग़ज़ल: फिल्म ग़ज़लों के काव्य पहलू में कोई अंतर नहीं है, दोनों का अर्थ एक ही है। फिल्म ग़ज़ल गायन का आधार गैर-फिल्म ग़ज़ल गायन है, इसलिए ग़ज़लों के काव्य पहलू को छोड़कर, पहले फिल्म और गैर-फिल्म ग़ज़लों के बीच दिखाई देने वाले अंतरों पर संक्षेप में चर्चा करना प्रासंगिक होगा।

गैर-फिल्म ग़ज़लें :-

ग़ज़ल गायन एक ऐसी गायन शैली है जो धीमी गति में अभिव्यक्ति को प्राथमिकता देती है। ग़ज़लें प्रत्यक्ष संदेश देने के बजाय हाव-भाव और प्रतीकों के माध्यम से अपना संदेश व्यक्त करती हैं। भारत में गैर-फिल्मी ग़ज़लें हज़रत अमीर खुसरो के समय से लेकर आज तक अपनी विशिष्ट शैली और स्वरूप विकसित करती आ रही हैं।

अपनी संगीतमय विशेषताओं के कारण ग़ज़ल ने संगीत प्रेमियों को आकर्षित किया है, लेकिन इसका दायरा अधिकतर राज दरबारों, महलों और सभाओं तक ही सीमित रहा है। ध्रुपद, ख्याल और ठुमरी गायन शैलियों के साथ-साथ ग़ज़ल ने भी अपनी उपस्थिति बनाए रखी है। 20 वीं शताब्दी के पाँचवें और छठे दशक से ग़ज़ल गायन शैली ने भारत की एक ऐसी गायन शैली के रूप में अपनी पहचान बनाई जिसमें शास्त्रीय, उपशास्त्रीय और मधुर संगीत के रंगों का अनूठा मिश्रण था। ग़ज़ल ने ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी, दादरा, कव्वाली और लोकगीतों की विशेषताओं से प्रेरित होकर हर तरह से अपना रूप सुंदर और परिपक्व बनाया। अमीर खुसरो के समय से ही ग़ज़ल ने भारत में अपने सौंदर्य और संगीतमय पहलुओं को समृद्ध करना शुरू कर दिया था। अनेक सामाजिक और राजनीतिक उतार-चढ़ावों से गुज़रते हुए ग़ज़ल 20 वीं शताब्दी में और भी परिष्कृत, सुंदर और परिपक्व होकर उभरी। "19 वीं शताब्दी के अंत में, अपनी लोकप्रियता, सुंदर काव्य और रोमांटिक भाव के कारण ग़ज़ल को हाली और आज़ाद जैसे आलोचकों के विरोध का सामना करना पड़ा। इस विरोध के साथ ग़ज़ल का विस्तार और विकास हुआ।"2

20 वीं शताब्दी में ग़ज़ल से प्रेम करने वाले कवियों ने ग़ज़ल को युग की सर्वश्रेष्ठ काव्य विधा बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी, इसे नए स्वरों, नए रूपों और वर्तमान के अनुरूप ढाला। काव्य के साथ-साथ ग़ज़ल का संगीत से भी गहरा संबंध है। 20 वीं शताब्दी के पहले दशक में ग़ज़ल ठुमरी और दादरा गायकों के घरों में पली-बढ़ी और परिपक्व हुई, जहाँ तवायफ़ाएँ अपने ग्राहकों की सेवा में नृत्य करते हुए ग़ज़लें गाती थीं। "20 वीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक तक ग़ज़ल ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने का प्रयास शुरू कर दिया था।"3 बेगम अख्तर, के.एल. सहगल, तलत महमूद, मल्लिका पुखराज जैसी कलाकारों ने ग़ज़ल गायन में स्वतंत्र रूप से नाम कमाना शुरू किया। स्वतंत्रता के बाद, ग़ज़ल परिपक्व हुई और अन्य गायन शैलियों की तरह एक स्वतंत्र गायन शैली के रूप में उभरी। इस गायन शैली का विकास भारत और पाकिस्तान की ग़ज़ल गायन शैलियों के अनुरूप हुआ।

पाकिस्तान में ग़ज़ल के अच्छे कवियों ने ग़ज़ल के खजाने को समृद्ध करना जारी रखा। इनमें हाफ़िज़, फ़ैज़, नासिर, जोश और इंशा जैसे कवि ग़ज़लों को उर्दू कविता के शिखर पर ले गए। ख्याल गायन की परंपरा से आने वाले मेहंदी हसन जैसे गायकों ने इस जमीनी हकीकत को समझा और फिल्मी गीतों के साथ-साथ ग़ज़लों को भी आम लोगों तक पहुंचाया। ग़ज़ल उनकी कलात्मक विद्वत्ता और आत्म-अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन गई। पाकिस्तान में ग़ज़ल की इस परंपरा को समृद्ध करने में मल्लिका पुखराज, इकबाल बने, फरीदा खानम, नूर जहाँ, मेहंदी हसन, गुलाम अली, अमानत अली, परवेज़ मेहंदी, गुलाम अब्बास आदि जैसे गायकों ने अपनी गायकी से इसे रोशन किया। इन ग़ज़ल गायकों के अमूल्य योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। स्वतंत्रता के बाद, भारत में ग़ज़ल गायन का विकास जारी रहा। यहाँ भी, गैर-फिल्मी ग़ज़लों का विकास मधुर संगीत के माध्यम से होता रहा। के.एल. सहगल, बेगम अख्तर, जगजीत सिंह, चंदन दास, अनुप जलोटा, हरिहरन, पंकज उदास और भूपिंदर सिंह जैसे कई अन्य ग़ज़ल गायकों ने कैसेट, सीडी, सभाओं और मंच प्रस्तुतियों के माध्यम से भारत में आम लोगों के बीच गैर-

फिल्मी ग़ज़लों को लोकप्रिय बनाया। ऑल इंडिया रेडियो ने गैर-फिल्मी ग़ज़लों को आम लोगों तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पाकिस्तानी ग़ज़ल गायकों ने ग़ज़लों की पारंपरिक शैली को विकसित करना जारी रखा है। परंपरा को कायम रखते हुए, उन्होंने रचनात्मक प्रयोगों के माध्यम से ग़ज़ल का विस्तार करने का प्रयास किया, जिसमें वे सफल रहे। रागों की सहायता से ग़ज़ल के दायरे को बढ़ाना, ख्याल और ठुमरी दादरा की विशेषताओं जैसे कान, खटका, मुर्की, मिन्द और आलाप, बोल आलाप को ग़ज़ल गायन में अभिव्यक्त करना और ग़ज़ल गायन को सुंदर बनाना पाकिस्तानी ग़ज़ल गायन की उपलब्धियों में शुमार है। भारत में अधिक विकसित फिल्म उद्योग के कारण, यहाँ का गैर-फिल्मी ग़ज़ल गायन पाकिस्तान के पारंपरिक ग़ज़ल गायन से काफी अलग रहा। बेगम अख्तर के बाद, जब ग़ज़ल गायन की बागडोर अन्य ग़ज़ल गायकों के हाथों में आई, तो उन्होंने भारतीय और पश्चिमी वाद्ययंत्रों को शामिल करके ग़ज़ल का स्वरूप ही बदल दिया। पश्चिमी संगीत का प्रभाव पहले से ही फिल्मी संगीत पर पड़ रहा था, जगजीत सिंह और पंकज उदास जैसे गायकों ने ग़ज़ल में इस प्रभाव को स्वीकार किया और इसका सार्थक उपयोग किया। इस प्रकार, भारत में ग़ज़ल गायकों ने ग़ज़ल को गीतों के रूप में प्रस्तुत किया और इस नए रंग के साथ ग़ज़ल को युवा पीढ़ी के करीब लाने का प्रयास किया। गैर-फिल्मी ग़ज़ल शास्त्रीय संगीत की गायन शैलियों से अधिक प्रभावित थी। पाकिस्तान की ग़ज़ल गायन परंपरा ने अपनी स्थिरता, गंभीरता और पारंपरिक शैली को बरकरार रखा। वहीं, भारत में प्रयोगवादी ग़ज़ल गायकों ने ग़ज़ल गायन के स्वरूप में नवीनता लाने के लिए पश्चिमी संगीत का स्पर्श दिया, जिससे ग़ज़ल को एक नया रूप मिला। इस प्रकार, भारत में ग़ज़ल गायन ने अपने नवाचार, सहजता और नए प्रयोगों के साथ ग़ज़ल के लिए एक विशेष वातावरण का निर्माण जारी रखा। दूसरी ओर, पाकिस्तानी ग़ज़ल गायन ने ग़ज़ल की शास्त्रीय शैली को अधिक परिष्कृत, रचनात्मक और सुंदर बनाने में सफलता प्राप्त की है। गैर-फिल्मी ग़ज़ल गायन साहित्य और संगीत दोनों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

हिंदी फिल्म संगीत में ग़ज़ल का प्रयोग

फ़िल्मी ग़ज़ल गायन वास्तव में कोई अलग गायन शैली नहीं है। जब फ़िल्मों में गैर-फ़िल्मी ग़ज़ल गायन का प्रयोग होने लगा, तो इसे फ़िल्मी ग़ज़ल कहा जाने लगा क्योंकि यह फ़िल्म का एक हिस्सा थी। जब केहरवा, दादरा, दीपचंदी, रूपक और खेमटा जैसी लय पर आधारित ग़ज़लें फ़िल्मी संगीत में आई, तो ग़ज़लें आम लोगों द्वारा आसानी से गाई जाने लगीं। हिंदी फ़िल्में ज़्यादातर प्रेम की अभिव्यक्ति पर आधारित होती हैं, इसलिए फ़िल्मों में प्रेम की अभिव्यक्ति ग़ज़लों के माध्यम से भी व्यक्त की गई है। ग़ज़लें स्वयं प्रेम की अभिव्यक्ति का एक सरल माध्यम हैं। फ़िल्मी ग़ज़लों की बात करें, तो सबसे पहले ग़ज़लों को गैर-फ़िल्मी ग़ज़लों से अलग देखा जाता है क्योंकि वे फ़िल्म की कहानी के साथ सामंजस्य बिठाती हैं या दृश्य से संबंधित होती हैं। इसीलिए फ़िल्मों में ज़्यादातर धारावाहिक ग़ज़लों का ही प्रयोग किया गया है। एक फ़िल्म में पूरी ग़ज़ल एक ही कहानी कह रही होती है। प्रसिद्ध ग़ज़ल गायिका डॉ. रोशन भारती के अनुसार, "फ़िल्म की कहानी बड़े पर्दे पर अपनी कहानी कहती है, इसलिए फ़िल्म की ग़ज़ल में ऑर्केस्ट्रा भी बड़ा होता है, जो उसे गैर-फ़िल्मी ग़ज़ल से अलग बनाता है।"4 हिंदी फ़िल्में शुरू से ही फ़िल्म की कहानी के अनुकूल अलग-अलग गायन शैलियों का प्रयोग करती रही हैं। फ़िल्म के किस हिस्से में गीत-संगीत शामिल करना है, इसमें फ़िल्म की कहानी अहम भूमिका निभाती है। फ़िल्म की कहानी ही फ़िल्म में किसी ख़ास गायन शैली के गीत, ग़ज़ल, नज़्म, ठुमरी, लोरी आदि या किसी उपयुक्त संगीत के लिए जगह बनाती है, जो फ़िल्म के उस दृश्य में और जान डाल देता है। यही वह उपयुक्त गीत या ग़ज़ल होती है जो फ़िल्म के किसी ख़ास दृश्य को और आकार देने में मदद करती है। ग़ज़लें उस समय से फ़िल्मी कहानियों का हिस्सा रही हैं जब से बोलती फ़िल्में बननी शुरू हुईं। यह एक अलग बात है कि शुरुआत में गाने फिल्म की कहानी को विस्तार देते थे और फिल्मों में गानों की मौजूदगी या गैर-मौजूदगी मायने रखती थी। पंकज राग के अनुसार, "शुरुआती फिल्मों में संगीत ही कहानी बयां करता था और गाने अक्सर कहानी को आगे बढ़ाने का काम करते थे।"5.

यह एक स्थापित तथ्य है, गानों का यह फॉर्मूला बाद की फिल्मों में भी जारी रहा, जिनमें संयोग के गीत, जुदाई के गीत, नृत्य के गीत, क्लब डांस के गीत, उपदेशों से भरे गीत आदि कुछ ऐसे निश्चित फॉर्मूले थे जिन पर गाने बनने लगे। ऐसा नहीं है कि इस फॉर्मूले के चलते गानों में कहानी की कोई भूमिका नहीं रही, बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि फिल्मों में मौजूद गानों में खुद एक कहानी छिपी होती है। फिल्म की कहानी भी गानों की तरह ग़ज़लों के लिए उपयुक्त स्थान बनाती है। मुस्लिम समाज से जुड़ी कहानियों में, विशेषकर फिल्मी कहानियों में, ग़ज़लों के लिए एक उपयुक्त स्थान होता है, जो फिल्म की कहानी को सहज और जीवंत बनाने में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए, फिल्म 'उमराव जान' की ग़ज़लों को लिया जा सकता है। इस फिल्म की कहानी में, फिल्म की नायिका को बचपन में ही एक वेश्यालय में बेच दिया जाता है, जहाँ वह अपने दुर्भाग्यपूर्ण अतीत को घुंघरू पहनकर छुपाते हुए और ग़ज़लें गाकर और नाचकर अपने ग्राहकों की सेवा करते हुए एक वेश्या का जीवन व्यतीत करती है।

भारत में ग़ज़लें वेश्यालय में ही पनपती और परिपक्व होती हैं, इसलिए एक वेश्या पर आधारित इस फिल्म की कहानी में ग़ज़लों के लिए एक उपयुक्त स्थान बनता है। फिल्म की ग़ज़लें स्वयं फिल्म की कहानी बयां करती हैं। कहानी के सूक्ष्म भाव गीतों या ग़ज़लों के माध्यम से बहुत प्रभावी ढंग से व्यक्त किए जाते हैं। फिल्म के नायक और नायिकाएँ जो कुछ किरदार अहम होते हैं, कुछ खास भूमिकाएं निभाते हैं। इन किरदारों की विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए फिल्म में हमेशा गायन विधाओं का सहारा लिया गया है। खय्याम साहब द्वारा संगीतबद्ध फिल्म 'बाजार' (1982) की ग़ज़लों में कहानी ने अहम भूमिका निभाई है। हर ग़ज़ल कहानी को आगे बढ़ाती हुई प्रतीत होती है। अगर इस फिल्म से 'फिर छिरी रात बात फूलों की', 'खीर दिए की बेखुद किया' आदि ग़ज़लें हटा दी जाएं, तो फिल्म का पूरा प्रभाव खत्म हो जाएगा। मशहूर फिल्म निर्देशक प्रकाश कहते हैं कि, खय्याम साहब भी फिल्म में संगीत की भूमिका को उतना ही अहम मानते हैं। कुछ किरदार अहम होते हैं, कुछ खास भूमिकाएं निभाते हैं। इन किरदारों की विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए फिल्म में हमेशा गायन शैलियों का सहारा लिया गया है। जी हां, फिल्म 'बाजार' (1982) में खय्याम साहब द्वारा रचित ग़ज़लों में कहानी ने ही मुख्य भूमिका निभाई है। हर ग़ज़ल कहानी को आगे बढ़ाती हुई प्रतीत होती है। अगर इस फिल्म से 'फिर छिड़ी रात बात फूलों की' जैसी ग़ज़लें हटा दी जाएं, तो फिल्म का पूरा प्रभाव ही खत्म हो जाएगा। जिस तरह मशहूर फिल्म निर्देशक प्रकाश दा फिल्म में संगीत की भूमिका को अहम मानते हैं, उसी तरह खय्याम साहब फिल्म संगीत में कहानी की भूमिका को स्वीकार करते हुए कहते हैं, "जब हम किसी फिल्म के लिए संगीत बनाते हैं, तो हम स्क्रिप्ट और किरदारों का ही अनुसरण करते हैं।"6

धुन भी एक निश्चित दायरे में तय होती है, जबकि आम ग़ज़लें खुलेआम गाई जाती हैं। प्रसिद्ध ग़ज़ल गायक तौसीफ़ अख्तर के अनुसार, "शुरुआत में फ़िल्म ग़ज़लें ठुमरी-दादरा वाद्य यंत्र पर गाई जाती थीं। बाद में, समय के साथ, संगीत की संरचना में बहुत बदलाव आया, जिसके कारण ग़ज़ल शैली भी उभरने लगी। इस बदलाव में फ़िल्म संगीत और उसकी कहानी का महत्वपूर्ण योगदान है। फ़िल्म संगीत अपने सही अर्थों में फ़िल्म की कहानी बयां करता है। फ़िल्मों के गीतों के साथ-साथ ग़ज़ल गायन ने भी इस कार्य को बखूबी निभाया। फ़िल्मों में आने से पहले, ग़ज़ल गायन को उप-शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत माना जाता था। फ़िल्मों में आने के बाद, ग़ज़लों में प्रयुक्त होने वाले वाद्ययंत्रों में बदलाव आया, जिसके कारण ग़ज़लों को मधुर संगीत का हिस्सा माना जाने लगा।"7 2020 की फ़िल्मों में आने से पहले, ग़ज़लें सारंगी, तबला और तानपुरा के साथ गाई जाती थीं। पहले फिल्मों में वाद्य यंत्रों का ही प्रयोग होता था, लेकिन फिल्मों के आगमन के साथ ही ग़ज़लों में बांसुरी, कोंगा, बैगपाइप, ढोल, पियानो, वायलिन, गिटार, सिंथेसाइज़र आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग शुरू हो गया। इसके साथ ही फिल्मी ग़ज़लों का रूप पूरी तरह बदल गया। फिल्मी संगीत की तमाम सीमाओं के बावजूद, फिल्मों में गाई गई ग़ज़लों ने अपनी एक अलग पहचान बनाई, जिसके चलते कई ग़ज़ल गायकों ने अपनी या किसी अन्य ग़ज़ल गायक की फिल्मी ग़ज़लें अपने ग़ज़ल समारोहों में गाना शुरू कर दिया। गैर-फिल्मी ग़ज़लों की तरह ही, सैकड़ों फिल्मी ग़ज़लें आज भी ग़ज़ल प्रेमियों के बीच बेहद लोकप्रिय हैं।

हिंदी फिल्मों में पार्श्व गायन के विकास काल की बात करें तो, कहानियों के अनुरूप भारतीय संगीत की कई गायन शैलियों का प्रयोग फिल्मों में हमेशा से होता आया है। भारतीय संगीत की कई विधाएँ फिल्म संगीत का हिस्सा बन चुकी हैं, लेकिन आम जनता की रुचि को ध्यान में रखते हुए, मधुर संगीत हमेशा से इस क्षेत्र में प्रमुख रहा है। यद्यपि फिल्म संगीत में विभिन्न भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अधिकतर गीत शैली को ही प्राथमिकता दी गई है, लेकिन हिंदी फिल्मों की कथानक की मांग के अनुसार, जब भी ऐतिहासिक कथाओं, विवाह समारोहों, राजमहलों, सभाओं, गहन प्रेम कहानियों, प्रेम में विरह की पीड़ा और टूटे दिलों जैसी स्थितियों को जीवंत करने के लिए किसी विशेष गायन शैली की आवश्यकता पड़ी, तो इन सभी स्थितियों को दर्शाने वाली मधुर शैली 'ग़ज़ल' फिल्म संगीत का हिस्सा बन गई। प्रेम की अभिव्यक्ति को दर्शाने वाली फिल्मों में भी ग़ज़ल का प्रयोग होता रहा है।

सन्दर्भ:-

1.डॉ. मुकेश गर्ग, म्यूजिक मंथली, फिल्म इतिहास अंक, जनवरी-फरवरी 1995,पृष्ठ 1
2.राजेश मोहन, सुगम संगीत में गीत, ग़ज़ल और नज़्म: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 2013, पृष्ठ 370
3.राजेश मोहन, सुगम संगीत में गीत, ग़ज़ल और नज़्म: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 2013, पृष्ठ 377
4. प्रसिद्ध राज़ल गायिका डॉ. रोशन भारती,फिल्म इतिहास अंक, 2020
5. पंकज राग, धूणे की यात्रा, पृष्ठ 11
6. अन्ना मोरकॉम, हिंदी फिल्म गीत और सिनेमा, पृष्ठ 31
7. प्रसिद्ध ग़ज़ल गायक तैसीर अख्तर, फिल्म इतिहास अंक 2020

आधुनिक हिंदी गजलों में नारी चेतना का स्वर

डॉ. सुमेध पानाचंद नागदेवे
हिंदी विभागध्यक्ष
डॉ. मधुकरराव वासनिक पी.डब्ल्यू.एस.
कला, वाणिज्य, विज्ञान महाविद्यालय,
टेका नाका, कामठी मार्ग, नागपुर-२६
ईमेल: sumedh2911@gmail.com
मोबाईल: 9921286071

शोध सारांश:

ग़ज़ल मूलतः अरबी-फ़ारसी परंपरा से होते हुए उर्दू के माध्यम से भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त करती चली गई। आरम्भ में हिंदी ग़ज़ल उर्दू-छाया से मुक्त नहीं थी, भाषा भले ही संस्कृतनिष्ठ थी लेकिन उसका रूप और लय उर्दू जैसा ही था। आरम्भ में यह सिर्फ प्रेम या श्रृंगार की अभिव्यक्ति रही, कालांतर में बदलाव के साथ उसने अपनी भाषा, चिंतन और रूप में गहरी भारतीयता ग्रहण कर समाज, राजनीति, स्त्री-अस्तित्व, संघर्ष, आशा और मानवीय मूल्यों को अपने भीतर समेटने लगी। आधुनिक हिंदी ग़ज़लों में स्त्री अब केवल प्रेम या श्रृंगार की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि वह संघर्ष, स्वतंत्रता, समानता और अस्मिता की पूर्ण मानवीय आकृति बनकर उभरी। उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव हुआ। अब स्त्री सबला बनकर पुरुषप्रधान संस्कृति को चुनौती देते हुए दिखाई देती है। स्त्री की इसी सामाजिक स्थिति, उसकी भावनात्मक अस्मिता, दमन के विरुद्ध प्रतिरोध, स्वतंत्रता की चाह, और समानता का संघर्ष यह सभी स्वर आज की हिंदी ग़ज़ल का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। जिसने ग़ज़ल को न केवल शिल्पगत सुंदरता से आगे बढ़ाया बल्कि सामाजिक यथार्थ को,स्त्री की आवाज़, उसकी पीड़ा को, उसके संघर्ष और स्वप्नों को नया आयाम दिया। आधुनिक हिंदी गजलो ने स्त्री-विमर्श को अत्यंत मुखर रूप से प्रस्तुत कर उसे समृद्ध किया तथा नारी चेतना को नया स्वर प्रदान किया।

बीज शब्द: प्रेम या श्रृंगार की अभिव्यक्ति, सहज,सरल भाषा, स्त्री चेतना का स्वर, भावनात्मक समानता

ग़ज़ल मूलतः अरबी-फ़ारसी परंपरा से उपजी काव्य-विधा है, जो उर्दू के माध्यम से भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त करती चली गई। 18वीं और 19वीं शताब्दी में उर्दू साहित्य का विकास तेजी से हुआ। मीर, ग़ालिब, ज़ौक़, दाग़ जैसे शायरों ने ग़ज़ल को भावभूमि और काव्यशिल्प दोनों ही स्तरों पर समृद्ध बनाया। जिससे भारतीय श्रोताओं पर उर्दू ग़ज़ल का गहरा प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में इस विधा के प्रति आकर्षण बढ़ते चला गया। ग़ज़ल का आरंभ मुख्यतः भारतेंदु युग से माना जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'और मैथिलीशरण गुप्त जैसे साहित्यकारों ने हिंदी में ग़ज़ल की प्रारंभिक संरचना और शैली का प्रयोग किया। इस दौरान हिंदी ग़ज़ल उर्दू-छाया से मुक्त नहीं थी उसकी भाषा भले ही संस्कृतनिष्ठ थी लेकिन उसका रूप और लय उर्दू जैसा ही था। आरम्भ में यह उर्दू के प्रभाव से आई, लेकिन समय के साथ उसने अपनी भाषा, चिंतन और रूप में गहरी भारतीयता ग्रहण कर भाषा, विषय, शैली और संवेदना में विकास कर आधुनिक हिंदी ग़ज़ल के रूप में स्वतंत्र पहचान बनाई। 20वीं शताब्दी में जब खड़ीबोली हिंदी साहित्य की प्रमुख भाषा बनी, तब हिंदी ग़ज़ल को एक सहज,सरल भाषा मिली। उर्दू की नज़ाकत और फ़ारसी शब्दों के स्थान पर सरल हिंदी,बोलचाल की भाषा तथा लोक-प्रचलित मुहावरे का प्रयोग बढ़ा, जिससे ग़ज़ल आम जन के और करीब आने लगी। अब यह न सिर्फ प्रेम की अभिव्यक्ति रही, बल्कि समाज, राजनीति, स्त्री-अस्तित्व, संघर्ष, आशा और मानवीय मूल्यों को अपने भीतर समेटते हुए प्रतीत होने लगी। दुष्यंत कुमार जैसे गजलकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से गज़ल को परंपरागत प्रेम-वियोग की सीमाओं से बाहर निकाला तथा जनता की व्यथाओ, उनकी समस्याओ को,राजनीति को केंद्र में रखा। उन्होंने अपनी गज़ल में सामाजिक चेतना और जन-आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहा, *"कहाँ तो तय था चराग़ाँ हर एक घर के लिए कहाँ चराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।"*[१] प्रेम और रूमानियत से अपने आपको अलग करते हुए हिंदी गज़ल आगे बढ़ते हुए अन्य विषयो को छूने लगी। अब केवल वह प्रेम या दर्द तक सीमित नहीं रही बल्कि मध्यवर्गीय जीवन, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक परिवर्तन, शहरी जीवन की जटिलताएँ, सामाजिक न्याय, स्त्री चेतना के स्वर को भी अपने भीतर समेटे हुए है। आधुनिक काल के दुष्यंत कुमार, निदा फ़ाज़ली, शेर सिंह 'शेर', मन्नू सिंघल, अदम

गोंडवी,हरिओम पंवार,अनूप अशेष,लीलाधर जगूड़ी जैसे कई नई पीढ़ी के युवा ग़ज़लकारो ने ग़ज़ल को आधुनिक विषयों और वैश्विक दृष्टि के साथ जोड़ा।

ग़ज़ल परंपरागत रूप से प्रेम-काव्य माना गया, परन्तु आधुनिक हिंदी ग़ज़ल ने अपने सरोकारों का विस्तार किया। हिंदी ग़ज़लों में नारी-चेतना का उदय बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से आरम्भ होता हुआ स्पष्ट तथा सशक्त रुप में दिखाई देता है। देखा जाये तो प्राचीन समय से ही महिलाओं के साथ धर्म के नाम पर, परंपराओं के नाम पर, रीति रिवाजों के नाम पर उत्पीड़न हुआ, उन्हें उपभोग की वस्तु माना गया। उन्हें किसी भी तरह का कोई अधिकार नहीं था। न शिक्षा का अधिकार न ही संपत्ति रखने का अधिकार, वह तो स्वयं को अभिव्यक्त तक नहीं कर पाती थी। पुरुषप्रधान संस्कृति के नाम पर या फिर धर्म के नाम पर उनका शोषण किया जा रहा था। समाज में सती प्रथा, बाल विवाह जैसी कुप्रथाएं प्रचलित थी। वह केवल उपभोग मात्र की वस्तु बन गई थी। यहाँ तक कि उसे स्वयं निर्णय लेने का अधिकार भी नहीं था। अप्रत्यक्ष रूप से वह चार दीवारी में कैद थी जहाँ उसके स्वाभिमान और आत्मसम्मान को बार-बार कुचला जाता था। ऐसे समय समाज को नई दिशा देने वाले महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले जैसे कर्मठ, स्त्री उद्धारक महापुरुषों का उदय हुआ। उन्होंने शिक्षा के द्वार महिलाओं के लिए खोले। उन्हें शिक्षा लेने हेतु प्रेरित किया। समय बदलता गया महिलाएँ शिक्षित होने लगी। उनके भीतर आत्मसम्मान और आत्मविश्वास जगा। उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव हुआ परन्तु फिर भी पुरुषप्रधान संस्कृति उन्हें रोकने का प्रयास करती। स्त्री की इसी सामाजिक स्थिति, उसकी भावनात्मक अस्मिता, दमन के विरुद्ध प्रतिरोध, स्वतंत्रता की चाह, और समानता का संघर्ष सभी स्वर आज की हिंदी ग़ज़ल का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। नारी-चेतना एक ऐसा विमर्श है जिसने ग़ज़ल को केवल शिल्पगत सुंदरता से आगे बढ़ाकर सामाजिक-यथार्थ का दस्तावेज़ बना दिया। आधुनिक हिंदी ग़ज़ल का यह दौर स्त्री की आवाज़, पीड़ा, संघर्ष और स्वप्नों को नए आयाम देता है। अनामिका, ममता किरण, रवींद्रनाथ त्यागी, अदम गोंडवी, कुमार विश्वास आदि कवियों की ग़ज़लों में स्त्री-विमर्श अत्यंत मुखर रूप में प्रकट होता हुआ दिखाई देता है। स्त्री की स्वायत्ता और आत्मसम्मान को स्वीकारते हुए अनामिका अपनी गज़ल में कहती है, *"जो मेरी उड़ान से डरते हैं, वे क्या मेरा आसमान समझेंगे।"*[२] इस गज़ल की पंक्तियों के माध्यम से गजलकार ने स्त्री की उडान,उसकी प्रगती को स्वीकारते हुए पुरुषप्रधान मानसिकता पर तंज कसा है। यह बताने का प्रयास किया गया है कि स्त्रीयां किसी भी रूप में पुरुषो से कम नहीं है हर क्षेत्र में वह आगे बढ़ती हुई दिखाई दे रही है। ममता किरण ने अपनी ग़ज़ल 'औरत होना कितना भारी' में स्त्री की पीड़ा, उसकी व्यथा को व्यक्त करते हुए कहा है, *"चलती हूँ तो कटती नज़रें, रुकती हूँ तो झुकते सवाल"*[३] इन पंक्तियों में स्त्री जीवन के सामाजिक संघर्ष को व्यक्त करते हुए हुए ममता किरण समाज की उन नजरों को बयां करती है जो महिलाओ को प्रति हीनता का भाव रखता है। समाज की उस सोच को बयां करता है जो स्त्रीयों की उडान पर सवाल खड़े करता है। रवींद्रनाथ त्यागी स्त्रीयों की स्थिति को व्यक्त करते हुए कहते है- *"घर की हर दीवार पे रखा, औरत का ही श्रम अनाम।"*[४] वे स्त्री के महत्त्व को स्वीकारते हुए कहते कि महिलाओं के कारण ही घर घर लगता है। घर की प्रत्येक दीवार उनके श्रम की साक्षी है। पुरुष को पुरुषत्व भी स्त्री के श्रम से ही प्राप्त होता है। स्त्री-सशक्तिकरण पर अदम गोंडवी अपनी ग़ज़ल 'औरत की आवाज' में कहते है *"जिस चूल्हे ने राख बनाया, अब लपटें भी वहीं उठेंगी।"*[५] इस गज़ल की तीखी पंक्तियाँ नारी के प्रतिरोध स्वर को दर्शाते हुए नारी के भीतर की चेतना को जगाती है। सदियों से स्त्रियो का शोषण किया गया, समाज में किसी भी तरह का उनका कोई स्थान नहीं था, जो केवल चार दिवारी में कैद थी, अब उनका आत्मसम्मान और स्वाभिमान जाग गया है। अब वह सशक्त हो गई है, स्वयं की लढाई स्वयं लड़ सकती सकती है। अब वह ज्वाला बन गई है, जो भी उनका शोषण करना चाहेगा वह उनकी ज्वाला मे स्वयं भस्म हो जायेगा। कुमार विश्वास अपने ग़ज़ल में स्त्री को समान रूप से प्रेम के सहभागी के रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते है, *"तुम हो तो रिश्तों का अर्थ बदलता है, वरना सब इक बोझ पुराने।"*[६] यहाँ स्त्री पुरुष को एक दूसरे के साथी के रूप में स्वीकार करते हुए उनकी भावनात्मक समानता को महत्त्व दिया है। रिश्तो की महक तभी कायम हो सकती है जब दोनों मिलकर साथ चले। एक दूसरे के प्रति कोई हीनता का भाव न हो, आपसी विश्वास हो, प्रेम हो, आदर हो, समानाधिकार हो। वरना रिश्ते बोझ बनने में समय नहीं लगेगा,आपसी विश्वास समाप्त हो जायेगा और रिश्ता वही टूट जाएगा। अतः आधुनिक हिंदी गजलो में नारी चेतना की दृष्टी से नजर डाले तो यह महसूस होगा कि यह केवल विषय नहीं एक दृष्टि है।

आधुनिक हिंदी ग़ज़लों में स्त्री प्रारंभ में सिर्फ प्रेम या श्रृंगार की अभिव्यक्ति रही, कालांतर में बदलाव होते हुए वह संघर्ष, स्वतंत्रता, समानता और अस्मिता की पूर्ण मानवीय आकृति बनकर उभरी। महिलाओ के शिक्षित होने से उनके भीतर आत्मसम्मान और आत्मविश्वास जगा,जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव हुआ। पुरुषप्रधान संस्कृति उन्हें रोकने का भरसक प्रयास करती परन्तु स्त्री सबला बनकर उतनी ही ताकत से पुनः खड़ी हुई। स्त्री की इसी सामाजिक स्थिति, उसकी भावनात्मक अस्मिता,

दमन के विरुद्ध प्रतिरोध, स्वतंत्रता की चाह, और समानता का संघर्ष यह सभी स्वर आज की हिंदी ग़ज़ल का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। जिसने ग़ज़ल को न केवल शिल्पगत सुंदरता से आगे बढ़ाया बल्कि सामाजिक-यथार्थ का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ बना दिया। आधुनिक हिंदी ग़ज़ल का यह दौर स्त्री की आवाज़, उसकी पीड़ा, उसके संघर्ष और स्वप्नों को नया आयाम देता है। दुष्यंत कुमार, अनामिका, ममता किरण, रवींद्रनाथ त्यागी, अदम गोंडवी, कुमार विश्वास आदि कवियों की ग़ज़लों ने स्त्री-विमर्श को अत्यंत मुखर रूप से प्रस्तुत करते हुए उसे समृद्ध किया, नारी चेतना को नया स्वर दिया।

सन्दर्भ सूची:

१. कहाँ तो तय था चराग़ाँ हर एक घर के लिए, साए में धूप, गज़ल संग्रह,दुष्यंत कुमार,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1975,पृष्ठ क्र.: **83**

२. मैं अपनी राह स्वयं चुन लूँ,अनामिका की नज़्में व ग़ज़लें, अनामिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ क्र.: ११२

३. औरत होना कितना भारी, कुछ लफ़्ज़ मेरी तरफ़, ममता किरण, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ क्र.: ६७

४. गृहस्थी की एक कहानी", त्यागी की चुनिंदा ग़ज़लें, रवींद्रनाथ त्यागी, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2004, पृष्ठ क्र.: ५९

५. औरत की आवाज़,अदम गोंडवी ग़ज़ल-संग्रह, अदम गोंडवी, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ क्र.: ९१

६. तुम बिन कितना तनहा हूँ,कौन कहता है…, कुमार विश्वास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ क्र.: १३३)

*****

"दुष्यंन्तोत्तर हिंदी गजलों में बदलते सामाजिक मूल्यों का प्रतिबिंब"

डॉ. कृष्णात आनंदराव पाटील
हिंदी विभाग प्रमुख
श्री शिव –शाहू महाविद्यालय ,सरूड
gurupriyangi@gmail.com
दूरभाष- 9130749494

शोध सारांश :

दिन प्रतिदिन समाज में होनेवाले परिवर्तनों को हिंदी गजलकारों ने देखा,भोगा और परखा हैं| बदलती सामाजिक परिस्थितियों उन्होने गजले लिखी| उन गजलों में हमे बाजारवाद, भूमंडलीकरन, नारी विमर्श,गरिबी,भूखमरी,भ्रष्टाचार, बदलते जीवन मूल्य आदि बाते उजागर होती है| हिंदी गजलकारों ने अपने समय के यथार्थ से आंख नही चुराई है| समाज का यथार्थ चित्रण करना ही इन रचनाकारों का प्रधान उद्देश है| वर्तमान युग में अत्यंत तीव्र गति से मानवीय मूल्यों का पतन हो रहा है|

बीज शब्द : गजल, सामाजिक मूल्यों आदि |

भूमिका :

साहित्य समाज के उतार –चढाव,सुख-दुख,आशा-निराशा,आमोद –प्रमोद,वेदना – पीडा,अभाव,आदि का स्वरूप हैं | इसलिए साहित्य को समाज का प्रतिबिंब कहा जाता है | समाज की गतिशीलता के साथ साहित्य प्रभावित होता है | एक युग ऐसा भी था जिसमें मानवीय मूल्यों का उदात्त आदर्श माना जाता था | पारस्पारिक,प्रेम,दया,सहानुभुति,संवेदना ,सत्य,जैसे मूल्य सामाजिक समन्वय के लिए आवश्यक माने जाते है | इमानदारी,मानवता ,परोपकार को चरम आदर्श के रूप में देखा जाता था | परिवार समाज एक इकाई है,जिसमें रहकर ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता है | परिवार का आधार पारस्पारिकता हैं | परिवार के नाते रिश्तों का आत्मीय संबंध होता है | किंतु समय के साथ इसमें परिवर्तन आया है | मानव मूल्यों का पतन इस तरह हो गया है कि, जो पिता अपनी संतानों के लिए अपार परिश्रम करता रहा है | जिसने अपनी स्वयं की चिंता न करते हुए रात –दिन अपनी संतानों के सुख –चैन का ध्यान रखा है | जिसने पुत्रों को शिक्षित कर उच्च पदस्थ पहुचाया है | जो अपने हित से अधिक पुत्रों के कल्याण की कामना करता रहा है,उसे वृद्धावस्था में पुत्र बोझ मानता है | इस विवशता को गजलकार जहीर कुरेशी कुछ इस तरह व्यक्त करते है –

"बोझ का पर्वत है ,बुढा बच्चों के लिये
झिडकिया मिलती है ,उसकों रोज ,आदर की तरह |"[1]

मनुष्य की संवेदना इतनी मर चुकी है कि, वह डुबते को सहारा देने की जहमत भी नही उठाता | हालातों के चक्र में फसे व्यक्ति को बाहर निकालने के स्थान पर वह उसे भॅवर में फॅसा देता है | मनुष्य के इस व्यवहार पर कटाक्ष करते हुये गजलकार कहता है –

"जो भी आता है , भॅवर में ही फॅसा जाता है |
जिंदगी में कोई आता नही चम्पू बनकर |"[2]

वर्तमान युग में कोई किसी की बात सुनने के लिये तैयार नही है | किसी की भावनाओं को कोई समझना नही चाहता | सब अपनी ही मस्ती में मस्त है | मनुष्य अत्यंत आत्मकेंद्री हो गया हैं | उसे दूसरों से कोई लेना देना नही है | संवेदना और सहानुभुति का मनुष्य के जीवन में कोई स्थान नही रहा |दुसरों का दुख,दर्द,पीडा,तकलीफ ,मुसीबते,परेशानियों को समझकर उसे सहयोग देने की बात अब हवा हि गयी है | इस प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुये गिरीराजशरण अग्रवाल लिखते है –

"किसको मन की बात सुनाए ऐसी बंजर बस्ती में
जंगल छिपे हुए बैठे है ,सबके अंदर बस्ती में
किसको कितनी चोट लगी है ,उनको इससे मतलब क्या
नोंच रहे हैं मांस शिकारी कुत्ते खुलकर बस्ती में |"[3]

एक जमाना था जब रिश्ते – नाते,आत्मीय संबधों को बडा महत्व था | लोग एक दुसरे से खुलकर मिलते थे | एक – दुसरे का आदर – सम्मान किया करते थे | दुसरों की ख़ुशी को अपनी ख़ुशी समझते थे | इन संबंधों में एक रागात्मकता थी,अपनापन था | किंतु समय के साथ – साथ इस तरह के संबंध खत्म होते चले गये | अब केवल उनकी अस्थिया शेष रह गयी है –

"यही शहर है जहा सब सगा समझते थे |
यही खडा हू संबंधों की अस्थिया लेकर |"[4]

इन दिनों जीवन –मूल्यो में जिस गति से गिरवट आयी है,जो इससे पूर्व कभी देखी नही गयी | जिसकी वजह से मानवता कलंकित हो रही है |सत्य,न्याय,इमान सभी पर आघात हुआ है | राक्षसी प्रवृत्ति ने चारों ओर अपना डेरा जमा लिया है | मानवता का हरभरा उपवन उजड रहा है | समाज में दानवी बीज बोए जा रहे है | यह स्थिति समाज के लिये हानिकारक है –

"जीवन मूल्यों की गठरी में ,छलनी जैसे छेद हो रहे
मानवता को रही कलंकित ,सत्य –न्याय इमान रो रहे
जनसंख्या –विस्फोट हो रहा ,श्वानों और श्रृंगालो का
मानवता की बगिया खंडहर ,दानवता का बीज बो रहे |"[5]

आज बुढों को बोझ समझा जा रहा है | बेटा और बहू उन्हे घर में रखने के लिये तैयार नही है | उन्हे घर में रखने के लिये शर्म महसूस हो रही है | उन्हें ऐसा लगता है ,घर पर जो मित्र आते है,तब बूढों को देखकर वे रुकते नही है | इन बूढों की वजह से उन्हें अपमानित होना पडा है | इस तरह की घटिया सोच नई पीढी में पनपने लगी है और वे बूढों को घर से निकालकर वृद्धाश्रम में पहुंचा रहे हैं –

"नया घर है ,चलों बूढों को वृद्धाश्रम में पहुंचा दे
मेरे बेटे के साथी देख कर उसको हि भागे है |"[6]

इस समाज में लोग कहते कूछ है और करते कूछ और ही है | जो अत्यंत स्वार्थी लोग समाज में दिखाई डे रहे है | इसी कारण गजलकार सूर्यभानु गुप्त कहते है –

"हर कंधे पर सौ –सौ चेहरे ,गिनती क्या इक –दो की
रावण से ज्यादा खतरे है ,इस मक्कार सदी के |"[7]

लोग दिन –प्रतिदिन संवेदनहीन होते जा रहे है | उन्हें दुसरों से कोई लेना – देना नही रहा है | कही कोई हादसा हो तो लोग मूक दर्शक बन जाते है | वे संवेदना को भूल चुके है | मनुष्य कि इस प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए गजलकार कहते है –

"लोग अपनी खिडकीयों से झांकते भर गये
सामने जलते हुए घर,राख होकर रह गये |
ये भरम भर है कि हम पहले से ज्यादा सभ्य है
सच तो ये है सभ्यता के सिर्फ खंडहर रह गये |" [8]

मनुष्य यह कई बार सोचता है कि जब समाज का समुचां वातावरण ही खराब हो चुका है ,तो मरे अकेले के सद्कार्य करने से क्या फर्क पडेगा | लेकिन हमे याद रखना चाहिये कि, हम बदलेंगे ,युग सुधरेगा | दुसरों को सीख देना आसान होता है | अपने आप में परिवर्तन करना जरुरी है –

"मन का आंगन बुहार ळे ,ए सच्ची पूजा है
अपना जीवन संवार ले , ए सच्ची पूजा है
ये नसीहत ,वों सीख सबको देने से पहले
हम स्वयं को सुधार ले , ए सच्ची पूजा है |"[9]

निष्कर्ष :

इस तरह हम देखते हैं कि दुष्यंत्तोत्तर हिंदी गजलों में मानवीय मूल्यों के पतन के ही दृश्य दिखाई नही देते,बल्कि यह पतन कितना घातक है | इसकी ओर भी संकेत किया गया है | इतना ही नही तो वातावरण में परिवर्तन हेतु सद्गुणों को उभारने की प्रेरणा भी परिलक्षित होती है |

संदर्भ ग्रंथ :

1. कुरेशी जहीर, भीड में सबसे अलग ,पृ.9
2. सक्सेना प्रतिमा, आधुनिक हिंदी गजल और आधुनिकता बोध ,पृ.158
3. अग्रवाल गिरीराजशरण , सन्नाटे की गुंज ,पृ.71
4. शर्मा अनिलकुमार , साठोत्तरी हिंदी गजल ,पृ.79
5. विवेक ज्ञानप्रकाश, इस मुश्किल वक्त में,पृ.26
6. कुरेशी जहीर, समंदर ब्याहने आया नही ,पृ.28
7. गर्ग शेरजंग , तीसरा गजल शतक,पृ.53
8. डॉ .गौतम ब्रह्मजीत, वक्त के मंजर ,पृ.21
9. भटनागर शचीन्द्र , तिराहे पर,पृ.78

*****

आदिवासी लोकगीत और संस्कृति

डॉ. मधुकर लक्ष्मण डोंगरे
मु एवं डाकघर - जयवंतराव पवार कला वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय टोकावडे
पिनकोड - 421402

शोध सार:

जिंदगी आनंद पूर्ण जीने का एक महत्वपूर्ण तरीका इन लोकगीतों में दिखता है। इनके गीतों में मानव जीवन का सुखद एवं दुखद दोनों ही पक्ष का मनोहारी वर्णन दिखता है। साथ ही साथ अपने पारिवारिक संबंधों को महत्वपूर्ण भावपूर्ण अंगों से रेखांकित किया हुआ है। इसके साथ प्रकृति का इतना सुंदर वर्णन आदिवासी समाज के निरक्षर लोगों ने किया हुआ है देखने के पश्चात वह अक्षर ज्ञान से दूर थे। लेकिन प्रकृति की आत्मा प्रकृति का जीवन प्रकृति की सजीवता उनके हृदय में सम्मिलित थी। अक्षरधारा बनकर उभरकर आयी हुई हैं। हालांकि आधुनिक साहित्यकारों ने आदिवासी समाज के लोकगीतों को अपने साहित्य में सम्मिलित करने में कुचराई दिखाई हुई है।

बीज शब्द: आदिवासी, लोकगीत, परिवार, समाज, संस्कृति

प्रस्तावना:-

भारतीय समाज विविध धर्म जनजातियों में विभक्त है। उन सभी जनजातियों का परिचय जितना पुराना है। उतना ही उनका साहित्य भी पुराना है। हालांकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। यह उक्ति सभी समाज के लिखित और मौखिक साहित्य पर परिलक्षित होती है। साहित्य उसे समाज का दृश्याकन करता है। साहित्य समाज के तत्कालीन स्थितियों को हमारे सामने रखता है। मनुष्य के संस्कार भावनाएं तथा अनुभूति जब लिपिबद्ध होता है। तब वह लोक साहित्य बनकर उभरकर आता है। अतः निसंदेह साहित्य मानव जीवन का वह प्रतिबिंब है जो कि उसकी रीति-रिवाज पर्वत त्यौहार, संस्कार, संस्कृति आदि का दर्शन करता है। इस संदर्भ में वरिष्ठ आलोचक डॉ मृदुला गुप्ता का निम्न मत है,“ साहित्य मानव की व्यापक चेतना का लिखित रूप है। परंतु उसमें लोक तत्व की परिव्याप्ति का विस्तार भी कम नहीं है। यदि साहित्य को मानव मन की सूक्ष्मतम अनुभूतियों का इंद्रधनुषी प्रतिबिंब भी कहे तो उसमें परिव्याप्त लोक तत्वों को उसकी सूक्ष्मतम अंतरंग सतरंगिनी ने आभा का मूल कहा जाना चाहिए।”[१]

भारतीय संस्कृति में ही लोकजीवन है। या यह कहे तो अधिक उचित रहेगा कि भारतीय लोक जीवन में ही उसकी संस्कृति छिपी हुई है। उसमें भारतीय लोक साहित्य का अंतरंग दिखाई देता है। यही नहीं अगर यह कहा जाए कि भारतीय जन-जीवन का आत्मा लोक संस्कृति में है। तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। भारतीय समाज का एक अभिन्न अंग है, आदिवासी समाज। आदिवासी समाज में उनके संस्कृति की पहचान है। लोकगीत अतः हम आदिवासी लोकगीत और उनकी संस्कृति को यहां पर देखने का प्रयास करेंगे। आदिवासी लोकगीत या लोक साहित्य भारत के आदिवासियों का अंतरंग है। वह आदिवासी समाज की संस्कृति तथा लोक जीवन के सप्तरंग का दर्शन करता है। इसी लोक साहित्य को डॉ. श्रीराम शर्मा परिभाषित करते हुए कहते है, “लोक साहित्य सर्वसाधारण लोक समाज की वह मौखिक एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, जिसमें किसी अभ्यास तथा अध्ययन की अपेक्षा नहीं ,इसमें आदिम मानस के अवशेष विद्यमान रहते हैं।”[२]

भारतीय लोकगीतों की परंपरा बहुत पुरानी है। उसमें आदिवासी लोकगीतों का विशेष महत्व है। आदिवासी लोकगीतों में मानव जीवन का समग्र चित्रण चित्रित हुआ है उसमें एक अलग प्रकार की मिठास है। आदिवासी लोकगीतों के अनेक प्रकार है। इसमें कुछ निम्न प्रकार हैं। संस्कार गीत, संस्कार गीत के अंतर्गत जन्म गीत विवाह के गीत, हल्दी के गीत, विदाई गीत, लोकगीत, सोहर गीत, दीपावली और होली के गीत, इंदल के गीत, भागदेव आदि आते हैं। अतः हम यहां पावरा समाज में बालक के जन्म के अवसर पर गाया हुआ जन्म गीत देखते है।

“गावो गावो बाजे गावीन हंबाते ॥ गावीन देखाड़ो आज हाजु रिह हे।
आज आपणों गर राजा फानटा आयो। आज तीन जगाम, उजवो पाड्यो।
आज आपणो गर, गांडा ठाकुर आयो, आज तीन जगाम् उजावो पाड्यो ॥

आज आपणो गर माँ रानी काजल, यहाभोगी आवी। आज तीन जगाम् उजवो पड्या ।" ३

अर्थात है सखियों आज का दिन हमारे लिए बहुत मंगलमय है । क्योंकि आज हमारे राजा फांटा तथा गांडा ठाकुर तथा रानी काजल देवी जैसे बड़े लोगों का अवतरण हुआ है । जिसके कारण तीनों लोक प्रकाशित हो चुके हैं । आदिवासी समाज में विवाह प्रसंग को विशेष महत्व है । विवाह के अवसर पर वह अपने रिश्तेदारों को आमंत्रित करते हैं । अपने रिश्तेदारों को पत्रिका देखकर उनका सम्मान करते हैं । आदर पूर्वक उनको हम विवाह के अवसर पर घर बुलाते हैं । इस अवसर का गीत डॉ.गौतम भाईदास कुंवर जी ने यहां पर प्रस्तुत किया हुआ है।

"पहली पत्रिको मायकुवालाले दे जेरा बाले भाया,
दूसरी पत्रिकों बँडूवालाले रे जेरा बाले भाया,
तीसरी पत्रिको मोड़ा पाहुले दे जेरा बाले भाया,
चौथो पत्रिको मोडी पाहुले दे जेरा बाले भाया,
पाचवाँ पत्रिको दोस्त, पोहन्ये ले दे जेरा बाले भाया।"४

उपर्युक्त भिल्ली लोकगीत में वह पुत्र की मां अपने व पुत्र से कहती है कि, तुम्हारे शादी में तुम मेरे मायके में अर्थात तुम्हारे मामा को पहली पत्रिका देना । इसके पश्चात आप दूसरी पत्रिका रामदेव बजने वाले को देना । तीसरी पत्रिका तुम्हारी बड़ी बहन को देना । उसके बाद चौथी पत्रिका आपका पालन पोषण जिसने किया । वह आप के पिता समान बड़े भाई को देना । अंत में पांचवी पत्रिका तुम्हारे अपने दोस्त को भी देना । इस प्रकार का संदेश ममता पूर्ण शब्दों में सम्मान के साथ वह अपने विवाह के प्रसंग में उन लोगों को अपने परिवारों को बुलाती है । मंगलमय में प्रसंग में अपने सभी लोगों को आमंत्रित करने का आदिवासी समाज की एक अलग प्रकार की संस्कृति है । विशेष लगाव प्यार स्नेह से वह अपने रिश्तेदारों को अपने कार्यक्रमों में आमंत्रित करती है । इसी प्रकार विवाह के पूर्व आदिवासी समाज की लड़कियां अपने शरीर को गोंडवाती है । इससे वह शरीर की खूबसूरती और निखरती है और अधिक बढ़ती है । इस प्रसंग का एक लोकगीत है, मैं वहां पर प्रस्तुत करता हूं,

"ओझा री मेरी छाती में मछरी बना दे न
नहीं बेटी वहाँ शहद की मक्खी का छत्ता बनवा।
नहीं माँ छत्ता नहीं बनवाएँगी मछरी बनवाएँगी,
वह मछरी जो नदी के पानी से अनोखा प्यार करती हैं।
वह मुझे बेहद पसंद है अच्छा वही सही।" ५

भिल्ली पावरा आदिवासी समाज में विवाह अवसर पर कई लोकगीत हैं । जैसे की बारात के गीत, हल्दी के गीत तथा विदाई के गीत इसमें विदाई का गीत का भाव प्रसंग अत्यंत हृदय स्पर्शी है,

"जेहकी बाजारू में फूल बेचाय
तेहकी तो पोयरी बेचाय गीयी।
आमी यादे आवे का नाय याहकी ले,
आमी यादे आवे का नाय बाहकाले।"[६]

उपर्युक्त लोकगीत का अर्थ यह है कि, जिस तरह आमतौर पर बाजार में फूलों को बेचा जाता है । इस तरह हमने लड़की का दहेज लेकर उसको बेच दिया है । इसलिए लड़की अपने माता-पिता से दूर चली जाती है । जो की अट्ठारह – बीस वर्ष अपने माता-पिता के साथ रहती है । उसको सयानी होने पर पराए घर जाना होता है । वह अपने माता-पिता से दूर पराए घर जाने के बाद उसे अपने मां-बाप की याद आएगी कि नहीं इसकी चिंता उसके माता-पिता करते हैं । यही भाव उसमें दिखाया हुआ है । इस समाज में त्योहारों का विशेष महत्व है । उनके लिए उत्सव त्यौहार उनके आत्मा है । वह बड़े ही उत्साहपूर्ण वातावरण में अपने संस्कृति के त्योहारों को संपन्न करते हैं । होली तथा दीपावली के समय में आदिवासी समाज एक उनका अलग ही नजरिया इन त्योहारों के प्रति देखते हैं । इसके पीछे एक लोक परंपरा भी है । भिल्ली समाज के लोगों का मानना है कि दीपावली के शुभ अवसर पर दीपावली हमारे घर मेहमान रानी बनकर आती है । इसी आशय का एक गीत यहां पर प्रस्तुत किया जाता है।

"राणी दिवाली केडा बाले या खीजा वेमा पाहुना,
रानी दिवाली केडी बाले या खीजा वेमा पाहुना ।
वदे लागेमा मेथी जुडी वेदी लागेमा बोहिना,

साखे सुगेल्या केल्ला देऊ वदे लागेमा बोहिना।
वदे लागेमा कांदा जुडी वदे लागेमा बोहिना,
राणी दिवाली व जुडी वदे लागेमा बोहिना।"[७]

इसी के साथ आदिवासी समाज में इंदल के गीत तथा मेले के गीत प्रसिद्ध है। मेले में यह मूवी के लोकगीत विशेष प्रसिद्ध है आदिवासी समाज में महामोगी को देवी माना जाता है। उनका मानना है कि, मा मोगे अमर है वह अपने दुख को लेकर जो उनके पास आता है वह उसे दुख दूर कर कर हंसती हुई लौट आई है। इसी आशय का एक भिल्लोरी लोकगीत प्रसिद्ध है,

"देव मोगरा माता नावे तो अमरे हाये,
केडा-आखे याहा केड आखे देव हाये,
देव मोगरा माता नावे तो अमरे हाये।
मनवी लोकू पोयरी याहा देव बनी मेहली याहाँ,
देव मोगरा माता नावे तो अमरे हाये।
होना आरती खरा दिवो वंदे त्यागे देवमोगरा,
देव मोगरा माता नावे तो अमरे हाये।"[८]

आदिवासी समाज जंगलों में निवास करता है। और जंगल को ही वह अपना परिवार चलाने का साधन मानता है। उसे पारिवारिक आवश्यकता को पूर्ति करने के लिए वह सप्ताह बाजार की व्यवस्था है। पूर्वापार से गांव संस्कृति में चले आ रही है। आज भी हम इस व्यवस्था को गांव में देखते हैं। इस सप्ताह बाजार में जाने के लिए जाते समय भी एक लोकगीत है वह निम्न प्रकार का है।

"बोचडे चोड़ी वावोत्ते, अम्बा लेन्यो गाँव। गाँवो ने नावे दरी, आवे वा सावी लीला।"[९]

उपर्युक्त लोकगीत का अर्थ है एक प्रेमी अपने-अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए बाजार में आता है। वह बाजार में आने के लिए अपने गांव से आते वक्त आई हुई कठिनाई को यहां पर चित्रित करता है। आदिवासी समाज के अपने एक विशेष प्रकार की लोक संस्कृति है इसे अपने जीवन का विभाज्य इकाई समझते हैं। वह संस्कृति वह लोग परंपरा ही उनकी जिंदगी जीने की रहस्य लीला है। अमृत वाहिनी है। इस लोक संस्कृति को वह अपना प्राण तत्व मानते हैं। इसके सारे वह जिंदगी जीते हैं। लोकगीत के बारे में डॉ. गौतम भाई दास कुंवर जी ने महत्वपूर्ण बात कही हुई है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भिल्ली पावरा आदिवासी समाज में लोक जीवन एवं सामाजिक सांस्कृतिक सांस्कृतिक जीवन में जीवन में लोकगीतों का अन्य साधारण महत्व है। जिंदगी आनंद पूर्ण जीने का एक महत्वपूर्ण तरीका इन लोकगीतों में दिखता है। इनके गीतों में मानव जीवन का सुखद एवं दुखद दोनों ही पक्ष का मनोहारी वर्णन दिखता है। साथ ही साथ अपने पारिवारिक संबंधों को महत्वपूर्ण भावपूर्ण अंगों से रेखांकित किया हुआ है। इसके साथ प्रकृति का इतना सुंदर वर्णन आदिवासी समाज के निरक्षर लोगों ने किया हुआ है देखने के पश्चात वह अक्षर ज्ञान से दूर थे। लेकिन प्रकृति की आत्मा प्रकृति का जीवन प्रकृति की सजीवता उनके हृदय में सम्मिलित थी। अक्षरधारा बनकर उभरकर आयी हुई हैं। हालांकि आधुनिक साहित्यकारों ने आदिवासी समाज के लोकगीतों को अपने साहित्य में सम्मिलित करने में कुचराई दिखाई हुई है। लेकिन सत्य को सत्य के प्रकाश को अंधेरा का कुहेरा कब तक ढँक सकता है? वह तो एक न एक दिन बाहर आकर रहेगा। मैं अपनी बात डॉ.गौतम भाईदास कुंवर के शब्दों में रखता हूं।

"लोकगीत आज भी लोकमन को स्वाभाविक और निश्चल जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। इनमें मानव मन में सुख-दुःख, करूण, वेदना, उदारता, सहानुभूति, संवेदना, प्रेम आदि आदि अनेकानेक भाव उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति एवं समाज को अच्छे बूरे का ज्ञान भी इन गीतों से होता है। इन गीतों में समाज को संगठित करके एकता निर्माण करने की अनोखी क्षमता है।"[१०]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१) आदिवासी लोक साहित्य डॉ.गौतम भाईदास कुंवर, प्रकाशक - चंद्रलोक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८०
२) आदिवासी लोक साहित्य डॉ.गौतम भाईदास कुंवर, प्रकाशक - चंद्रलोक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ८४
३) आदिवासी लोक साहित्य डॉ.गौतम भाईदास कुंवर, प्रकाशक - चंद्रलोक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या -११४
४) आदिवासी लोक साहित्य डॉ.गौतम भाईदास कुंवर, प्रकाशक - चंद्रलोक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - ११५

५) आदिवासी साहित्य विविध आयाम :- डॉ रमेश संभाजी कुरे डॉ.मालती धोंडोपंत शिंदे, प्राध्यापक प्रवीण अनंतराव शिंदे, प्रकाशक - विकास प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ संख्या-१२१
६) आदिवासी लोक साहित्य डॉक्टर गौतम भाई दास कुंवर प्रकाशक चंद्रलोक प्रकाशन पृष्ठ संख्या - १२०
७) आदिवासी लोक साहित्य डॉक्टर गौतम भाई दास कुंवर प्रकाशक चंद्रलोक प्रकाशन पृष्ठ संख्या -१२४
८) आदिवासी लोक साहित्य डॉक्टर गौतम भाई दास कुंवर प्रकाशक चंद्रलोक प्रकाशन पृष्ठ संख्या -१२५
९) आदिवासी लोक साहित्य डॉक्टर गौतम भाई दास कुंवर प्रकाशक चंद्रलोक प्रकाशन पृष्ठ संख्या - १२७
१०) आदिवासी लोक साहित्य डॉक्टर गौतम भाई दास कुंवर प्रकाशक चंद्रलोक प्रकाशन पृष्ठ संख्या -१३७

*****

संवेदनाओं की सघन अनुभूति के गीतकार : गुलजार

प्रो. (डॉ.) प्रवीणकुमार न. चौगुले
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
श्रीमती कस्तुरबाई वालचंद कॉलेज
ऑफ आर्ट्स ॲण्ड सायन्स, सांगली
मोबाईल नं. : 9881814116
ई-मेल:
pravinkumarc@yahoo.com

शोध-सारांश -

गीतों के माध्यम से हिंदी को विश्व में पहुँचाने वाले गीतकारों में से अग्रणी है गुलजार, जो कल्पना, शब्द, सौंदर्य एवं संवेदनाओं के अनूठे जादूगर हैं और जिन्हें ऑस्कर, ग्रॅमी एवं ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। गुलजार अब तक अपनी बहुमुखी प्रतिभा के लिए सात राष्ट्रीय पुरस्कार जीत चुके हैं तथा उनको कुल 20 फिल्मफेअर अवार्ड मिले हैं। 2004 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया। कविता, कहानी, फिल्मों मे निर्देशन, संवाद और गीत-लेखन का सिलसिला आज भी उनकी अपनी अनूठी रफ्तार से जारी है। गुलजार ने अब तक लगभग सौ फिल्मों के लिए गीत लिखें हैं और बाइस फिल्में निर्देशित की हैं।

गुलजार की खूबी है कि वे हिंदी फिल्मों के व्यवसायिक धरातल में भी अपने गीतों के माध्यम से अपने अंदर की गहरी संवेदनशीलता को लेकर रिश्तों को स्पर्श देने में कामयाब हैं। उनके गीतों में रिश्तों के ताने-बाने को, उनकी जटिलताओं को, जहाँ उनके मूल स्वरूप में पकड़ा गया है, वहाँ उनमें व्याप्त कोमलतम भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति दी गई है। प्रकृतिगत बिंब-प्रतीक मानो अपनी तमाम सौंदर्यात्मक संवेदनाओं को लेकर उनके गीतों का एक अनूठा हिस्सा बन गए हैं। उन्होंने बचपन और बाल-मनोविज्ञान को अपने गीतों के माध्यम से बखूबी प्रस्तुत किया है। प्रेम और प्रकृति के संमिश्रण को इतनी गहराई से उनके गीतों के लब्ज बयान करते हैं कि अद्भुत भावविभोर रोमांस में श्रोता बँध जाता है और सहृदय तो उस बँध पाश में बँधने में सुकुन महसूस करता है। गुलजार के गीत जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण पैदा करते हैं एवं जीने की एक नई ऊर्जा प्रदान करते हैं। अतः समाज को उदात्त की चोटी का अहसास दिलाने एवं दिशा-निर्देश करने हेतु उनके गीतों का अध्ययन आवश्यक बन पड़ता है। इन गीतों में कल्पना, सौंदर्य, प्रेम, प्रकृति एवं संवेदनाओं का अनुपम संगम हुआ है, जिसके कारण मन में आल्हाद उत्पन्न होता है एवं उत्कट अहसास होता है। उनके अनगिनत गीतों में छिपी संवेदनाएँ समाज को एक संदेश देती हैं तथा उसकी मार्गदर्शक बनी हुई हैं। इन गीतों में अभिव्यक्त गहरी संवेदनाओं की विभिन्न परतों को शिद्दत से तलाशना तथा उनको उघाडकर सामने रखते हुए उसकी अनुभूति को महसूस कराना मेरे शोध का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

संगीत की तरह मधुर एवं कोमलतम शब्दों एवं उनमें अभिव्यक्त संवेदनाओं तथा भावों के रूमानी अहसास से हृदय उनके गीतों में भाव-विभोर हो डूब जाता है। गुलजार की शायरी में निर्मलता के तलाश की कोशिश दिखाई देती है। वे बहुत मामूली चीजों में भी बहुत खास तरह से अभिव्यक्त होते हैं। वे उदासी, खुशी, मिलन-बिछोह या बचपन, लगभग सभी भावों को सहजता से अभिव्यक्त करते हैं। दुरूहता के विरूद्ध एक सादगी हमेशा छू लेती है। गुलजार के गीतों ने पीछले पाँच दशकों से लोगों के मनों को मोह लिया है, उनके लब्जों ने कितने ही दिलों पर अधिराज्य स्थापित किया है। उनके गीतों में अभिव्यक्त संवेदनाओं ने तमाम दिलों को एक अनोखे अहसास से झकझोरा है साथ ही उनके गीतों ने समाज को जीने की एक नई दृष्टि दी है, संदेश दिया है और मार्गदर्शन किया है। निश्चय ही गुलजार विश्व के अद्वितीय हिंदी गीतकार हैं और रहेंगे।

बीज-शब्द - हिंदी गीत, गहरी संवेदना, गीतकार गुलजार, जीने की ऊर्जा, आल्हाद।

प्रास्ताविक -

गीत अपने नादमाधुर्य, संगीतात्मकता एवं कोमलता को लेकर लोक-हृदय के तार झंकृत करते हैं। संवेदनात्मक धरातल पर एक गहरा अहसास पैदा करने की क्षमता इन गीतों में होती है। गीत अपने नादात्मक सौंदर्य को लेकर अपने ताल पर थिरकने के लिए विवश कर देते हैं। इन गीतों में एक खास किस्म का चुंबकीय आकर्षण होता है, जो लोगों को अपनी ओर खिंचता रहता है। पूरे विश्व में इन गीतों ने अपनी जादू से सभी को मोहित किया है। हिंदी गीतों ने भी न सिर्फ भारत में ही अपना असर कायम किया है, बल्कि पूरे विश्व में कई लोग उसके कायल हैं। फिल्मी गीत अपनी संगीतात्मकता के चलते अधिक संचारात्मक प्रकृति के होते हैं।

हिंदी फिल्मी गीत उन लोगों की जबान भी चढ़े दिखाई देते हैं, जिन्होंने हिंदी को कभी व्यवस्थित ढंग से पढ़ा नहीं। इन गीतों के माध्यम से हिंदी दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों तक पहुँची। गीतों को जब संगीत का आलंबन मिलता है, तो उनकी यात्रा लंबी हो जाती है। वे अपने इतिहास और भूगोल का अतिक्रमण करने की क्षमता अर्जित कर लेते हैं। हिंदी फिल्मी गीतों ने देश और विदेश की लंबी यात्राएँ करने में सफलता पाई है।1 इन्हीं गीतों के माध्यम से हिंदी को विश्व में पहुँचाने वाले गीतकारों में से अग्रणी है गुलजार, जो कल्पना, शब्द, सौंदर्य एवं संवेदनाओं के अनूठे जादूगर हैं और जिन्हें ऑस्कर, ग्रॅमी एवं ज्ञानपीठ पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। अपने गीतों, नज्मों और कहानियों के लिए उन्होंने ख्याति पाई। कविता, कहानी, फिल्मों मे निर्देशन, संवाद और गीत-लेखन का सिलसिला उनकी अपनी अनूठी रफ्तार से आज भी जारी है। गुलजार की संवेदनशीलता फिल्मी दुनिया पर छा गई। गुलजार ने लगभग पचास फिल्मों की पटकथाएँ लिखी हैं तथा कई विशिष्ट फिल्म जैसे 'मेरे अपने', 'अचानक', 'कोशिश', 'मौसम', 'आंधी', 'खुशबू', 'परिचय', 'इजाजत', 'मीरा', 'किनारा', 'नमकीन', 'लेकिन', 'लिबास', 'माचिस' आदि का सफलता से निर्देशन किया है। गुलजार ने अब तक लगभग सौ फिल्मों के लिए गीत लिखें हैं और बाइस फिल्में निर्देशित की हैं।

गुलजार अब तक सात राष्ट्रीय पुरस्कार जीत चुके हैं। सर्वश्रेष्ठ निर्देशन - 'मौसम', सर्वश्रेष्ठ फिल्म - 'माचिस', सर्वश्रेष्ठ गीत - 'मेरा कुछ सामान' (इजाजत), 'यारा सीली सीली' (लेकिन), सर्वश्रेष्ठ पटकथा - 'कोशिश', सर्वश्रेष्ठ वृतचित्र - 'पं. भीमसेन जोशी और उस्ताद अमजद अली खान'। गुलजार को अब तक कुल 20 फिल्मफेअर अवार्ड मिले हैं, तो गीतों के लिए उन्हें 11 फिल्मफेअर अवार्ड मिले हैं। निर्देशन के लिए एक (मौसम), कहानी के लिए एक (माचिस), फिल्म के लिए एक (आंधी) और संवाद के लिए चार ('आनंद', 'नमकहराम', 'मचिस' और 'साथियाँ') फिल्मफेअर अवार्डस् मिले हैं। गुलजार साहित्य में रमते थे। साहित्यकार बनने के प्रति उनका अधिक रूझाव था। उनके साक्षात्कारों में उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया है। काव्य-क्षेत्र में तीन पंक्तियों की कविता - 'त्रिवेणी' इस नई पद्धति, विधा का उन्होंने सूत्रपात किया है। उनके कहानी-संग्रह 'धुआँ' के लिए 2003 में उन्हें 'साहित्य अकादमी अवार्ड' मिला और 2004 में भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया। सन 2013 में आयोजित 61 वे राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार समारोह के अवसर पर भारतीय सिनेमा के विकास में गुलजार के योगदान के लिए उन्हें 'दादासाहब फालके' पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। ऐसे महान गीतकार की गीतों में प्रतिबिंबित संवेदनाओं की सघन अनुभूति को समूचे विश्व के सामने रखने का प्रयास प्रस्तुत शोध में किया गया है, जिससे की विश्व उस अनुभूति को महसूस कर सके, उसका अस्वाद ले सके एवं उससे प्रेरणा ले सके।

संवेदनाओं की सघन अनुभूति के गीतकार : गुलजार

गुलजार की खूबी है कि वे हिंदी फिल्मों के व्यवसायिक धरातल में भी अपने गीतों के माध्यम से अपने अंदर की गहरी संवेदनशीलता को लेकर रिश्तों को स्पर्श देने में कामयाब हैं। गुलजार ने फिल्मों में गीत-लेखन की शुरुआत 1961 मे फिल्म 'काबुलीवाला' से की, गीत था 'गंगा आए कहाँ से'। 'बंदिनी' के गीत 'मोरा गोरा अंग लई ले' से गुलजार फिल्म-जगत् में प्रसिद्धी पा गए। इस दशक यानि 60-70 में गुलजार ने 'बंदिनी' (63), 'पूर्णिमा' (65), 'दो दूनी चार' (68) और 'खामोशी' (69) इन फिल्मों में गीत लिखें। 'मोरा गोरा अंग लई ले' (बंदिनी), 'तुम्हें जिंदगी के उजाले मुबारक' (पूर्णिमा), 'वो शाम कुछ अजीब थी' और 'हमने देखी है इन आँखों की महकती खुशबू' (खामोशी) आदि गीत बेहद लोकप्रिय हुए। फिल्मी गीतों में भी प्रकृति की सूक्ष्म व्यंजना गुलजार की लेखनी द्वारा इस तरह खुल जाती है :

चुलबुला यह पानी अपनी
राह बहना भूलकर
लेटे-लेटे आईना
चमका रहा है फूल पर... (हवाओं पे लिख दो/'खामोशी') [1]

संबंधों की महत्ता के लिए गुलजार की शायरी में जब हम उतरते हैं, तो वे प्राथमिक तौर पर कल्पना की उड़ान के मुग्धयात्री प्रतीत होते हैं, लेकिन ज्यों-ज्यों हम उन संबंधों की बुनावट में जाते हैं, वे श्रोता को अपने साथ शामिल करते हुए उसके आस-पास से संवाद का माध्यम बन जाते हैं। उनके गीत खो गई चीजों को फिर से याद दिलाने, पहचान करवाने या प्रकाश में ले आने का उपक्रम रचते हैं, कि हमें अचानक लगता है - यह सब तो यहीं था, इतने पास! जैसे 'शाख पर जब धूप आई/हाथ छूने के लिए/छाँव छम् से नीचे कूदी/हँसके बोली, आइए!' (हवाओं पे लिख दो/दो दूनी चार)[2]

सन 1970-80 के दशक में गुलजार ने 'सीमा', 'गुड्डी', 'मेरे अपने' (71), 'परिचय' (72), 'मौसम', 'खुशबू', 'आँधी' (75), 'घर', 'खट्टा-मीठा', 'किनारा', 'घरौंदा', 'किताब' (77), 'गोलमाल' (79) आदि फिल्मों के लिए गीत लिखें। इस दशक में

फिल्मों की संख्या अधिक हैं और गीतों की भी। गौरतलब है कि यहीं वो दशक है, जिसमें गुलजार ने निर्देशन की कमान संभाली और 'मेरे अपने', 'परिचय', 'मौसम', 'खुशबू', 'आँधी' व 'किताब' का निर्देशन किया। फिल्मों की सरंचना में गीतों को घुला देने और उनके खुबसूरत फिल्मांकन के उदाहरण के तौर पर इन फिल्मों को देखा जा सकता है। 'हालचाल ठीक ठाक है' (मेरे अपने), 'तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा' (आँधी), 'दिल ढूँढता है फिर वहीं' (मौसम) ये गीत बहुत ही चर्चित रहें। इस दशक में गुलजार को 'मौसम' के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। 'दो दीवाने शहर में' (घरौंदा 77) और 'आनेवाल पल जाने वाला है' (गोलमाल 79) को सर्वश्रेष्ठ गीत का फिल्मफेअर अवार्ड मिला। उनके लिए रिश्तों का बहुत मूल्य है। उनके गीतों में रिश्तों के ताने-बाने को, उनकी जटिलताओं को, जहाँ उनके मूल स्वरूप में पकड़ा गया है, वहाँ उनमें व्याप्त कोमलतम भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति दी गई है। प्रकृतिगत बिंबों-प्रतीकों में चाँद मानो अपनी तमाम सौंदर्यात्मक संवेदनाओं को लेकर उनके गीतों का एक अनूठा हिस्सा बन गया है। लाज और लिहाज, ताना और आत्मीयता...लगभग हर एक प्रसंग के लिए चाँद को गुलजार ने याद किया है। चाँद इच्छाओं का बिंब बन गया है। लेकिन यह चाँद हर जगह एक नए रूप में मौजूद है। पीले चाँद का शाखों में अटक जाना या गीले चाँद का खिल जाना उन्हें रेशमी रातों (तेरे बिना जिया जाए ना/घर) या चाँद की बिंदी वाली, बिंदी वाली रतियाँ (परिचय) तक लाता है। तभी आकाश जमीं हो जाता है, चाँद यहीं सो जाता है (दो दीवाने.../घरौंदा)[3]

गुलजार की चाह दरअसल प्रेम में पूर्णत्व की है। चाहे वह दो प्राणियों के बीच है या प्रकृति और मन के बीच। 'न घर - न ठिकाना' वाले मुसाफिर को एक घर की निरंतर तलाश है। ये घरौंदा के दीवाने, खिड़की में खुलेगा अंबर या अंबर पे खुलेगी खिड़की...आस्मानी रंग की आँखों में/बसने का बहाना ढूँढ़ते हैं। गुलजार चलताऊ रोमांस के शाब्दिक बाजीगर नहीं हैं, बल्कि जानते हैं कि हालचाल वास्तव में कैसे हैं - 'गोल-मोल रोटी का पहिया चला/पीछे-पीछे चाँदी का रूपैया चला/रोटी को बेचारी को चील ले गई/चाँदी ले के मुँह काला कौवा चला...'(हालचाल ठीक है/मेरे अपने)[4] साथ ही गुलजार छूटने की छटपटाहट और मिलने की व्यर्थता को एक साथ संभव कर पाने की कसक को 'तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा तो नहीं/तेरे बिना जिंदगी भी तो लेकिन जिंदगी नहीं!' में महसूस करा देते हैं। 'गुड्डी' का प्रार्थना-गीत 'हमको मन की शक्ति देना' आज भी हमें प्रेरणा देता है।

अपने कैरीयर के तीसरे दशक (1980-90) में 'खुबसूरत', 'थोडी सी बेवफाई' (80), 'बसेरा' (81), 'मासूम', 'सदमा' (83), 'इजाजत', 'लिबास' (88) आदि फिल्मों में गुलजार ने गीत लिखें। 'पिया बावरी' (खुबसूरत), 'आँखों में हमने आपके सपने सजाए हैं' (थोडी-सी बेवफाई), 'ऐ जिंदगी गले लगा ले' (सदमा), 'रोज-रोज आँखो तले' (जीवा), 'खाली हाथ शाम', 'मेरा कुछ सामान' (इजाजत), 'सीली हवा छू गई' (लिबास) आदि इस दशक के बेहद लोकप्रिय गाने थे। 'हजार राहें' (थोडी-सी बेवफाई), 'तुझसे नाराज नहीं जिंदगी' (मासूम) और 'मेरा कुछ सामान' (इजाजत) को फिल्मफेअर अवार्ड मिला था। उल्लेखनीय है कि इस दशक को हिन्दी सिनेमा के पतन का दौर माना जाता है। लेकिन इस खराब दौर में भी गुलजार ने 'अंगुर', 'इजाजत' और 'लिबास' जैसी फिल्में बनाई। उनके गीत इस दौर के संगीत पक्ष के गिरावट से अछूते रहें। 'तुझसे नाराज नहीं जिंदगी' और 'मेरा कुछ सामान' जैसे गीतों से उन्होंने नई ऊँचाइयों को छुआ। गुलजार की एक विशेषता रही कि उन्होंने बचपन और बाल-मनोविज्ञान को अपने गीतों के माध्यम से बखूबी प्रस्तुत किया। सूक्ष्म बाल-तरंगों के अनूठे सौंदर्य को उन्होंने अपने गीतों के माध्यम से महसूस करा दिया है। इस दृष्टि से मासूम के 'लकड़ी की काठी' और 'तुझसे नाराज नहीं जिंदगी' इन दोनों गीतों को शायद कभी भुलाया नहीं जाएगा। सदियों तक होठों पर इन गीतों के शब्दों को गुनगुनाया जाएगा। इसी प्रकार दूरदर्शन के हिंदी 'जंगलबुक' वाले मोगली के 'जंगल जंगल बात चली है पता चला है/चड्डी पहन के फूल खिला है, फूल खिला है' गीत ने भी मन में घर कर लिया है।

सन 1990-2000 के बीच में गुलजार की 'लेकिन' (91), 'माया मेमसाहब', 'रुदाली' (93), 'माचिस' (96), 'आस्था' (97), 'दिल से', 'सत्या' (98), 'जहाँ तुम ले चलो', 'हुतूतू' (99) आदि फिल्में आई। इस दशक में उन्होंने एक ओर 'यारा सीली सीली' (लेकिन, 91) लिखा तो दूसरी ओर 'गोली मार भेजे में' लिखा, जो मनोविज्ञान और दर्शन को बखूबी व्यक्त करता है। 'छोड आए हम वो गलियाँ' (माचिस, 96) से उनका दार्शनिक अंदाज बरकरार रहा, तो 'चुपड़ी चुपड़ी चाची' (चाची 420) से बाल-सुलभ अंदाज भी। 'रुदाली' और 'दिल से' के सभी गीत लोकप्रिय हुएँ। 'यारा सीली सीली' (लेकिन, 91) और 'चल छैयाँ छैयाँ' (दिल से, 98) को फिल्मफेअर अवार्ड मिला। उनके गीतों की और एक विशेषता यह भी है कि उनमें रिश्ते के प्रियत्व छिन जाने पर हाहाकार या विलाप के स्वर नहीं, दहकती खामोशी के अहसास जीवंत होते हैं। विवशताओं और अंतहीन प्रतीक्षा की पीड़ा के चित्र 'लेकिन' तथा 'रूदाली' के गीतों में देखने को मिलते हैं। मनमोहक जादूभरे लब्जों को लेकर थिरकता यौवन 'चल छैयाँ छैयाँ' के रूप में हमेशा याद रहेगा।

सन 2000 से 2010 तक के दौर में तो गुलजार के 'फिजाँ', 'अक्स' (2000), 'फिलहाल', 'अशोका' (02), 'साथियाँ', 'चुपके से' (03) 'पिंजर', 'मकबुल' (04) 'रु-ब-रु', 'बंटी और बबली' (05), 'झूम बराबर झूम', 'नो स्मोकिंग', 'दस कहानियाँ' (07), 'युवराज' (08), 'बिल्लू', 'स्लमडाग मिलेनियर', 'कमीने' (09) इन तमाम फिल्मों के गीत-लेखन को देखें तो ज्ञात होता है कि वे अधिक सक्रिय हो गए हैं। 'साथियाँ' इस गीत में तो उन्होंने मानों प्रेम में समूचे प्रकृतिगत सौंदर्य के प्रतिमानों को उँड़ेल दिया है। इस दौर में उनकी चमक फिल्मफेअर ('साथियाँ' और 'बंटी और बबली') से आगे जाकर ऑस्कर ('जय हो', स्लम्डाग मिलेनियर, 09) तक पहुँच गई है। 'आ धूप मलूँ' (फिजा), 'बंदा ये बिंदास है' (अक्स), 'साथियाँ' (साथियाँ), 'मार उडारी' (पिंजर), 'रु-ब-रु' (मकबुल), 'फूँक दे' (नो स्मोकिंग), 'बोल ना हल्के हल्के' (झूम बराबर झूम), 'बीड़ी जलाईले', 'जबाँ पे लागा नमक इश्क का' (ओमकारा), 'तू ही तो मेरी दोस्त है' (युवराज), 'धन ते नान' (कमिने) आदि गीत चार्ट बस्टर में हिट रहे हैं। 'कजरारे कजरारे' ने लोकप्रियता के सारे मानदंड तोड़ दिए हैं। वैसे इसी दशक में गुलजार ने 'किस आफ लव', 'टिकट टू हालीवुड' (झूम बराबर झूम), 'मरजानी मरजानी' (बिल्लू) जैसे गीत भी लिखे हैं।[5] 'जब तक है जान' इस फिल्म के 'साँस में तेरे' गीत में उत्कट प्रेम-भावों को उन्होंने बखूबी गुंथा है। प्रेम और प्रकृति के संमिश्रण को इतनी गहराई से 'साथियाँ' के लब्ज बयान करते हैं कि अद्भुत भावविभोर रोमांस में श्रोता बँध जाता है और सहृदय तो उस बँध पाश में बँधने में सुकुन महसूस करता है। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

पीली धूप पहन के तुम, देखो बाग में मत जाना
भँवरे तुमको सब छेड़ेंगे, फूलों में मत जाना
मध्धम-मध्धम हँस दे फिर से, सोना-सोना फिर से हँस दे
ताजा गिरे पत्ते की तरह, सब्जे लौन पर लेटे हुए
सात रंग है बहारों के, एक अदा में लपेटे हुए
सावन भादो सारे तुमसे,
मौसम-मौसम हँसते रहना, मध्धम-मध्धम हँसते रहना...साथियाँ...
कभी नीले आसमाँ पे, चलो घुमने चले हम
कोई अब्र मिल गया तो, जमीं पे बरसले हम
तेरी बाली हिल गई है, कभी शब चमक उठी है
कभी शाम खिल गई है.... (साथियाँ, 2003)

गुलजार के गीत जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण पैदा करते हैं एवं जीने की एक नई ऊर्जा प्रदान करते हैं। अतः समाज को उदात्त की चोटी का अहसास दिलाने एवं दिशा-निर्देश करने हेतु उनके गीतों का अध्ययन आवश्यक बन पड़ता है। इस दृष्टि से इस प्रकार के गहरे अध्ययन की उपलब्धि अपने-आप बनती है।

शोध-पद्धति -

प्रस्तुत शोध हेतु गुलजार के गीतों का संकलन, सर्वेक्षण, वर्णन, विवरण-विश्लेषण, क्षेत्रिय कार्य-पद्धति आदि अनुसंधान की शोध-पद्धतियों को यथावत अपनाया गया है।

निष्कर्ष -

अतः फिल्म-गीतों में गुलजार एक परंपरा है, एक ऐसी परंपरा जो हमें अपने साथ ले चलने के लिए निरंतर खींचती है। जो हमारी अनुभूतियों को बेजान होने से बचाने का अवसर प्रदान करती है। संगीत की तरह मधुर एवं कोमलतम शब्दों एवं उनमें अभिव्यक्त संवेदनाओं तथा भावों के रूमानी अहसास से हृदय उनके गीतों में भावविभोर हो डूब जाता है। गुलजार की सारी मौलिकता और अपनापन इसलिए भी और महत्वपूर्ण जान पड़ता है, क्योंकि वे अपनी सारी संवेदनशीलता और शब्द गीतों में लेकर आए हैं। गुलजार की शायरी में निर्मलता के तलाश की कोशिश दिखाई देती है। वे बहुत मामूली चीजों में भी बहुत खास तरह से अभिव्यक्त होते हैं। वे उदासी, खुशी, मिलन-बिछोह या बचपन, लगभग सभी भावों को सहजता से अभिव्यक्त करते हैं। गुलजार के शब्द, लोक-हृदय के उफानों, सुखों, इच्छाओं तथा यथार्थ के प्रति उत्पन्न आवेगों को इस तरह बाँटते प्रतीत होते हैं कि हम उन्हें देखने-सुनने-महसूसने लगते हैं। दुरूहता के विरूद्ध एक सादगी हमेशा छू लेती है। उनकी कुल गीत-यात्रा प्रकृति और मन के बीच अपने-अपको खो देने की प्रबल इच्छा से संपन्न होती है। सृजन का बहुमुखी स्त्रोत उनमें रहा है, जिसने एक समग्र परंपरा की तरह अपना रास्ता बनाया है। गुलजार के गीतों ने पीछले पाँच दशकों से लोगों के मनों को मोह लिया है, उनके लब्जों ने कितने ही दिलों

पर अधिराज्य स्थापित किया है। उनके गीतों में अभिव्यक्त संवेदनाओं ने तमाम दिलों को एक अनोखे एवं गहरे अहसास से झकझोरा है। निश्चित रूप से इन गीतों में अभिव्यक्त गहरी संवेदनाओं की विभिन्न परतों को, उसकी अनुभूति को प्रस्तुत शोध की उपलब्धियों द्वारा महसूस किया जा सकता है। उनके गीतों ने समाज को जीने की एक नई दृष्टि दी है, संदेश दिया है और मार्गदर्शन किया है। निश्चय ही गुलजार विश्व के अद्वितीय गीतकार हैं और रहेंगे। गुलजार के गीतों को लेकर भविष्य में शोध की और भी बहुत सारी संभावनाएँ हैं, जैसे कि उनके गीतों का शैलीविषयक, समाजशास्त्रीय, सौंदर्यशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक अध्ययन, उनके गीतों में अभिव्यक्त उदात्तता, उनके एवं अन्य महान गीतकारों के गीतों का तुलनात्मक अध्ययन आदि।

संदर्भ -

1. 'हिंदी फिल्में - भाषा, साहित्य और संस्कृति की लोकदूत', (हिंदी मीड़िया: 2008) http://hindimedia.blogspot.in/2008/11/blog-post.html
2. गुलजार, मेरा कुछ सामान, (नई दिल्ली, राधाकृष्ण पब्लिकेशन प्रा. लि., : 2005) पृ. 4.
3. गुलजार, मेरा कुछ सामान, (नई दिल्ली, राधाकृष्ण पब्लिकेशन प्रा. लि., : 2005) पृ. 6.
4. गुलजार, मेरा कुछ सामान, (नई दिल्ली, राधाकृष्ण पब्लिकेशन प्रा. लि., : 2005) पृ. 6.
5. गुलजार, मेरा कुछ सामान, (नई दिल्ली, राधाकृष्ण पब्लिकेशन प्रा. लि., : 2005) पृ. 7
6. अमितेश, गुलजार : गीत-यात्रा के पाँच दशक (भाग: एक), (प्रतिपक्षी: 2011). http://pratipakshi.blogspot.in/2011/01/blog-post_27.html

*****

हिंदी गीत और ग़ज़ल : नारी परिदृश्य

डॉ. संगीता राहुल यादव
हिंदी विभाग, सहाय्यक प्राध्यापक
दलित मित्र कदम गुरुजी विज्ञान महाविद्यालय
मंगळवेढा, सोलापूर
sgraut1@gmail.com
9028342652

शोध सार

आधुनिक हिंदी गीतों में नारी को शक्ति के रूप में दर्शाया गया है, जो सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करती है और स्वच्छंदता का संदेश देती है।हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में ग़ज़ल अत्यंत संवेदनशील विधा है साहित्यकार संवेदनशील होने के कारण समाज के दुःख-दर्द से प्रभावित होता है और यही प्रभाव उसकी अभिव्यक्ति है। हिंदी ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा और सामाजिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्फुटित हुआ है। इस ज़मीन से जुड़े सामाजिक संदर्भ-संघर्ष, सामाजिक स्थितियाँ, गजल के विषय रहे हैं। ग़ज़ल की एक और विशेषता यह है कि,हिंदी गीतों और ग़ज़लों में नारी का चित्रण विविध रूपों में किया गया है, जिसमें उसे एक तरफ़ त्याग और प्रेम की प्रतिमूर्ति, माँ, बहन, बेटी और प्रेमिका के रूप में दर्शाया गया है, तो दूसरी ओर सामाजिक, दमन और पीड़ा का शिकार भी दिखाया गया है। आधुनिक युग में स्त्री-विमर्श के साथ, ग़ज़लों और गीतों में नारी के संघर्ष, उसकी शक्ति और अपनी पहचान की चेतना को प्रमुखता दी गई है। ग़ज़ल और गीत की विधा के माध्यम से उसके जीवन की सच्चाई और विडंबनाओं को सामने लाया गया है।

बीज शब्द- गीत, नारी, समाज ग़ज़ल।

गीतों और ग़ज़लों में नारी के पारंपरिक चित्रण

ग़ज़ल की सामाजिकता स्पष्ट करते हुए ग़ज़लकार माधव कौशिक ने लिखा हैं ,ग़ज़ल के निरंतर विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि समकालीन समाज के तमाम अंतर्विरोधों व संकटपूर्ण स्थितियों को इस विधा के माध्यम से बखूबी बयान किया जा सकता है। सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के साथ-साथ मानवसैन की गहनतम भावनाओं को अभिव्यक्त करने तथा सूक्ष्म संवेदनाओं को वाणी प्रदान करने की अपार क्षमता और सामर्थ्य इस काव्य विधा में खूब है। यह तो स्वीकार करना ही होगा कि हिंदी ग़ज़ल संवेदनाओं की ज़मीन है।गीतों में अक्सर नारी को त्याग और प्रेम का प्रतीक माना जाता है, जो परिवार और घर को प्यार से संजोती है। माँ के ममतामयी रूप, बेटी की खुशियों और राखी जैसे त्योहारों में उसके महत्व को दिखाया गया है। प्रेम और सौंदर्य के संदर्भ में उसका वर्णन किया जाता है, जहाँ वह अपने प्रिय के प्रति समर्पित होती है। उसके रूप-सौंदर्य और कोमलता का वर्णन किया जाता है, जैसे "खुशियों को रखती सँजो, ज्यों मोती को सीप," या "हरसिंगार है, बेटी लाल गुलाब"। संक्षेप में, हिंदी गीतों और ग़ज़लों में नारी का परिदृश्य एक आयामी आदर्श से हटकर बहुआयामी यथार्थ की ओर बढ़ा है, जो उसकी सुंदरता के साथ-साथ उसके संघर्षों, शक्ति और सामाजिक पहचान को भी दर्शाता है।

आधुनिक ग़ज़लों में नारी का चित्रण

गजलकार माधव कौशिक ने लिखा है,ग़ज़ल के निरंतर विकास ने सिद्ध कर दिया है कि समकालीन समाज के तमाम अंतर्विरोधों व संकटपूर्ण स्थितियों को इस विधा के यम से बखूबी बयान किया जा सकता है। यह तो स्वीकार करना ही होगा कि हिंदी ग़ज़ल संवेदनाओं की ज़मीन है। इस ज़मीन से जुड़े सामाजिक संदर्भ-संघर्ष, सामाजिक स्थितियाँ, ग़ज़ल के विषय रहे हैं। ग़ज़ल की एक और विशेषता यह है कि वह सामाजिक यथार्थ से सम्पृक्त है। सच्चाई ग़ज़ल का मूल भाव है। गज़लकारों के अपने दौर में जो सामाजिक परिदृश्य उभर रहे हैं उन्हें गहराई से ऑककर उसकी अभिव्यक्ति गज़ल का मूल स्वर है। कुँअर जी नारी समाज की दयनीय स्थिति-गति से व्यथित एवं बेचैन हैं। उनके अनुसार नारी केवल देह नहीं हैं। उसे भोग की वस्तु मान लेना मूर्खता है, अविवेक है, क्योंकि-

ये बीबी ही नहीं, माँ हैं, बहन हैं और बेटी हैं, ये किसने कह दिया औरत तो बिस्तर का खिलौना है।

आज ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में दिन-ब-दिन प्रगति हो रही है। फलस्वरूप नारी शिक्षा को अहम् भूमिका दी गई। परंतु पुरूषों की मानसिकता में पत्नी अभी भी दासी बनी हुई है जब चाहे वह उसे डॉटता-फटकारता है, अपमान करता है, उसे हीन मानता है। अदम गोंडवी इसे अभिव्यक्ति देते हुए लिखते हैं -

औरत तुम्हारी पाँव की जूती की तरह है, जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो।

इस संदर्भ में डॉ उर्मिलेश मानते है कि आज की हिंदी ग़ज़ल व्यक्ति और समाज को व्याख्या देने वाली काव्य विधा है। ग़ज़लों की सामाजिक प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हुए ज्ञानप्रकाश विवेक लिखते हैं "वह समय अंतर्विरोधों, जटिलताओं और संबंधों के स्खलन का है, पुरानी मान्यताएँ, पुराने केन्द्र ढह रहे हैं। नये मूल्य, समाज को नया स्थापत्य दे रहे हैं। वे मूल्य बेशक बाज़ारवादी संस्कृति से छनकर आये हैं, और ये मूल्य वस्तुतः बेचैनी पैदा कर रहे हैं समाज में जो अंतर्विरोध दिखाई देते हैं, कहीं न कहीं उन बनते बिगडते मूल्यों के कारण भी है। कवि समाज की इकाई होता है और वह आम लोगों से कहीं अधिक सूक्ष्मता से जीवन की बदलती स्थितियों का मूल्यांकन करता हैं। समकालीन ग़ज़लों में नारी के दर्द, पीड़ा और सामाजिक समस्याओं को सशक्त अभिव्यक्ति दी गई है। आधुनिक युग में भी स्त्री न तो परिवार में सुरक्षित है न बाहर उसे डॉट-फटकार कर उसका यौन शोषण किया जाता है। कभी-कभी तो स्त्रियों को परिवार के लिए रोटी मुहैया करने के लिए अपना देह तक बेचना पड़ता है। नारी की इस त्रासदमय स्थिति पर अदम गोंडवी ने लिखा हैं-

कोई भी सिरफिरा धमका के जब चाहे ज़िना कर ले, हमारा मुल्क इस माने में बुधुआ की लुगाई है।
रोटी कितनी महंगी है ये वो औरत बताएगी,जिसने जिस्म गिरवी रख के ये किमत चुकाई है।

आज ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में दिन-ब-दिन प्रगति हो रही है। फलस्वरूप नारी शिक्षा को अहम् भूमिका दी गई। परंतु पुरूषों की मानसिकता में पत्नी अभी भी दासी बनी हुई है जा चाहे वह उसे डॉटता-फटकारता है, अपमान करता है, उसे हीन मानता है। अदम गोंडवी इसे अभिव्यक्ति देते हुए लिखते हैं -

औरत तुम्हारी पाँव की जूती की तरह है, जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो।

हिंदी ग़ज़लकारों ने सामाजिक स्थितियों का गहराई अध्ययन किया है। समग्र ग़ज़लकारों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनकी काव्य चेतना का विकास प्रायः उनकी जीवन यात्रा की गति के अनुरूप ही हुआ है। यथार्थ का चित्रण रचनाधर्मिता का मूल उद्देश्य है इसी कारण इन ग़ज़लकारों ने सामाजिक जीवन के संपूर्ण यथार्थ को अपनी ग़ज़ल में मुखरित किया हैं। उनकी ग़ज़लें जीवन का गीत हैं जिनमें भावों की आर्द्रता, विचारों की तरलता और कल्पना की सप्रमाणता का ऐसा त्रिवेणी संगम है जो बार-बार चिंतन के लिए विवश करता है। इसी कारण हिंदी ग़ज़लों में समाज में व्याप्त विकृतियों, विसंगतियाँ, आम आदमी की पीड़ा, शोषण की वेदना और नारी जीवन का भयावह यथार्थ वर्णित हुआ है। ये ग़ज़लकार सामाजिकता के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण समाज की सही-सही तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। इनकी ग़ज़ल केवल रंजक नहीं हैं अपितु प्रत्येक व्यक्ति को सोचने के लिए विवश करती हैं। ये हिंदी साहित्य की ऐसी अमूल्य निधि है जो सदैव गौरवास्पद रहेगी।

हिंदी गीतों में नारी परिदृश्य

पहाड़ में नारी का जीवन बहुत कष्टमय होता है। ससुराल का कटु व्यवहार उस समय और भी नरक के समान हो जाता है जब विवाहिता का पति परदेश में हो। पहाड़ों से दूर रोजी-रोटी के लिए नवयुवकों को सेना में या मैदानी क्षेत्रों के कई स्थानों में जाना पड़ता है। ऐसी दशा में विछोह होना स्वाभाविक है। अभाव एवं प्रताड़ना-भरे जीवन में जहाँ वियोग का दारूण दुःख भी हो तो उस नारी के हृदय की व्यथा अकेले पर्वतीय अंचल में खुदेड़ गीतों के रूप में पुस्फुटित होती है। वह खुले आकाश में स्वच्छन्द बहने वाले पवन को अपनी विवशता का दिनदर्शन अपने सहज अभिनय के द्वारा करवाती और कहती है-

पौन तू प्राण मेरो, दासी छौं मैं भी तेरो । जैं दिशा और मेरो, तँ दिशा मारी फेरो ।।

बेटी ससुराल में अपने मायके की स्मृति में व्याकुल होकर गीत गाती है। यह पहाड़ की बेटियों के घुटन भरें एवं शोषित जीवन के गीत होते थे इन गीतों में सासू द्वारा किया गया उत्पीडन एवं डोर आचरण का वर्णन होता था। बेटी को सास के द्वारा दी गई यातनाओं से उसका हृदय व्यथित हो जा था उसे कोई ससुराल में स्नेह करने वाला नही होता था। उसका पति रोजगार हेतु वर्षो तक शहरों में ही उता था इस कारण वह अपने रूध कण्ठ से हर दम मायके की याद में खोई रहती थी। तथा उसे सास द्वारा दी गई यात्नाओं को तथा मायके की याद को लोक गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती थी। बेटी के द्वारा मार्मिक शब्दों का प्रयोग कर लोक गीत के माध्यम से अपने मायके की याद निम्न पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त की जाती है -

" है ऊँची डांड्यूँ तुम नीसी ह्वै जावा ।घणी कुलायों तुम छांटि होवा ।।
मेकू लगी छ खुद मैतुड़ा की।बाबाजी को देश देखण देवा ।।"

स्त्री-विमर्श के साथ, नारी के प्रति दृष्टिकोण बदला है। कवियों ने उसे सिर्फ एक देवी या अबला के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और सशक्त व्यक्ति के रूप में चित्रित करना शुरू कर दिया है। यह विमर्श समाज की संरचनाओं और पुरुषप्रधान व्यवस्थाओं पर

सवाल उठाता है, जहाँ नारी को सदियों से हुए अन्याय का शिकार होना पड़ा है।समकालीन हिंदी गीतों में, विशेष रूप से महिला-केंद्रित फिल्मों के गीतों में, महिलाओं को अधिक स्वतंत्र, मजबूत और सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ संघर्ष करते हुए दिखाया गया है। ये गीतमहिला सशक्तिकरण और लचीलेपन का जश्न मनाते हैं। आधुनिक हिंदी गीतों में नारी को शक्ति के रूप में दर्शाया गया है, जो सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करती है और स्वच्छंदता का संदेश देती है।

पुराने हिंदी गीतों में नारी को अक्सर एक आदर्श माँ, वफादार पत्नी और आज्ञाकारी बहन के रूप में चित्रित किया गया है। वह अक्सर प्रेम, सुंदरता और बलिदान की मूर्ति होती थी।रोमांटिक और सुंदरता-केंद्रित गीत,बड़ी संख्या में गीतों ने महिला की शारीरिक सुंदरता, उसकी आँखों, मुस्कान और रूप की प्रशंसा की है ,जैसे "ये चाँद सा रोशन चेहरा"। शास्त्रीय उर्दू और प्रारंभिक हिंदी ग़ज़लों में, 'माशूका' प्रेमिका या 'साकी' शराब परोसने वाली का चित्रण अक्सर आदर्शवादी और कभी-कभी केवल एक कल्पना के रूप में होता था। शायर अक्सर उनके रूप-रंग और प्रेम की पीड़ा का वर्णन करते थे।नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण गीतों में हुआ है। कुछ गीतों में माँ के स्नेह, बहन के प्यार और प्रेमिका के वियोग को भी चित्रित किया गया है।

निष्कर्ष:

सामाजिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के साथ-साथ मान की गहनतम भावनाओं को अभिव्यक्त करने तथा सूक्ष्म संवेदनाओं को वाणी प्रदान करने की अपार संता और सामर्थ्य इस काव्य विषा में खूब है। इन्ही विषम परिस्थितियों के कारण वह गीत गाती थी यह गीत विरह गीत होते थे जिसे मायके की याद एवं खुद के कारण खुदेड़ गीत कहा गया। इस भाव अभिव्यक्ति एवं सास के शोषण के कारण भी खुदेड़ गीतों का उद्भव एवं विकास हुआ। हिंदी गीतों और ग़ज़लों में नारी के परिदृश्य में समय के साथ महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं, जो पारंपरिक चित्रण से लेकर आधुनिक, सशक्त और यथार्थवादी भूमिकाओं तक फैले हैं। हिंदी गीत और ग़ज़ल दोनों में ही नारी परिदृश्य का बहुआयामी चित्रण हुआ है। कवियों ने नारी के संघर्ष, शक्ति, प्रेम और सामाजिक सरोकारों को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। आधुनिक हिंदी ग़ज़लों में नारी का चित्रण कहीं अधिक यथार्थवादी, संवेदनशील और सामाजिक मुद्दों से जुड़ा हुआ है। ग़ज़लकारों ने नारी जीवन की त्रासदियों, शोषण, दर्द और पीड़ाओं को सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्त्री-कविता: पक्ष और परिप्रेक्ष्य (भाग-एक), लेखिका रेखा सेठी, राज कमल प्रकाशन, पृ. 99
2. लोक साहित्य एवं गढ़वाली लोक साहित्य हरीश प्रकाशन मंदिर 301 गोल्डन पैलेस (प्रथम तल) अस्पताल मार्ग आगरा-28-2003 उत्तर प्रदेश ।
3.अतीत का सब (प्रो० गंगा प्रसाद 'विमल') वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
4. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा ज्ञानप्रकाश विवेक - पृ. २१४
5. हिंदी ग़ज़लों का सौंदर्य शास्त्र डॉ. रामप्रकाश 'पथिक' - पृ. ५६
https://www.apnimaati.com/2024/12/blog-post_126.html
https://andjournal.in/wp-content/uploads/2020/09/2019b_23-1.pdf

*****

मीराबाई के काव्य में लोकगीत, साहित्य और संस्कृति

संगिता दिपक माळी
सहायक प्राध्यापिका हिन्दी विभाग
महात्मा फुले कला, विज्ञान
एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
पनवेल जि. रायगड 410206
मोबा 8806808269 :
मेल : malisangita7050@gmail.com

सारांश –

मीराबाई के काव्य में लोकगीत, साहित्य और संस्कृति का मिलन बहुत ही गहरा है। उन्होंने अपनी भक्ति को लोक भाषा, लोक धुनों और पारंपरिक गीतों के माध्यम से व्यक्त किया हैं। उनकी रचनाओं में स्थानिय संस्कृति की झलक मिलती है। उनके पद केवल भक्तिभाव से ओतप्रोत नहीं हैं-, बल्कि उनमें तत्कालीन समाज, लोक संस्कृति और लोक साहित्य की झलक भी स्पष्ट दिखाई देती है। उनके पद स्वाभाविक रूप से गाये जाते हैं। मीराबाई का काव्य मुख्य रूप से भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य, माधुर्य भाव की भक्ति पर आधारित है, जिसमें उन्होंने प्रेम, विरह, समर्पण और लोकजीवन के सरल चित्रों के माध्यम से अपनी दिव्य - अनुभूति को व्यक्त किया है। उनकी भाषा राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का मिश्रण है, जो सरल और सुगम है, और उनके पद आज भी भक्तिगीतों के रूप में गाए जाते हैं, जैसे 'पायोजी मैंने राम रतन धन पायो' और 'मेरो दरद न जाणै कोय'। मीराबाई के काव्य में लोकगीत, साहित्य और संस्कृति का मिलन उनकी भक्ति और कृष्ण प्रेम को और भी जीवंत बनाता है। उनके कुछ प्रसिद्ध पदों में से ,जैसे 'पायो जि मैंने राम रतन धन पायों' में भक्ति भाव और सांस्कृतिक प्रतीकों का बहुत सुंदर चित्रण मिलता है।लोकगीत साहित्य और संस्कृति अक्सर अपनी जड़ों से जुड़े हुए होते हैं। इनमें पारंपरिक कहानियाँ, लोकधुनें और सामाजिक मूल्य झलकते हैं स्पष्ट है कि कई बार इन काव्य रचनाओं में लोक जीवन की सच्चाई, परम्पराएँ और त्यौहार भी सामने आते हैं, जो साहित्य को और भी अर्थपूर्ण बना देते हैं।

मूल शब्द : काव्य, लोकगीत, लोक साहित्य, लोक संस्कृति, परंपरा

लोकगीत का अर्थ (Folk Songs)- लोकगीत लोक साहित्य का एक रूप है, और लोक साहित्य लोक संस्कृति का एक बड़ा और महत्वपूर्ण हिस्सा है। "ये आम लोगों द्वारा, आम लोगों के लिए, उनकी भावनाओं और जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने के लिए गाए जाने वाले गीत होते हैं, जिनका कोई एक निश्चित रचनाकार नहीं होता और ये मौखिक रूप से फैलते हैं।"[1] यह गीत सरल, सहज और स्थानीय भाषा में होते हैं। सामूहिक रूप से गाए जाते हैं (जैसे विवाह, त्योहारों पर)। इनमें प्रकृति, प्रेम, श्रम, रीति-रिवाज और सामाजिक जीवन की झलक होती है। उदाहरण: क्षेत्रीय विवाह गीत, आदिवासी गीत, मौसमी गीत।

लोक साहित्य का अर्थ (Folk Literature)

यह लोक संस्कृति का वह हिस्सा है जिसे कहानियों, कविताओं, गीतों, मिथकों, पहेलियों, कहावतों आदि के रूप में मौखिक या लिखित रूप में संरक्षित किया जाता है। इसमें गद्य और पद्य दोनों शामिल होते हैं (जैसे महाकाव्य, परीकथाएँ, दंतकथाएँ)। यह साहित्य सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को दर्शाता है।

लोक संस्कृति का अर्थ (Folk Culture)

यह किसी विशेष समूह की साझा अभिव्यंजक संस्कृति है, जिसमें लोकगीत, लोक साहित्य, रीति-रिवाज, विश्वास, कलाएँ (नृत्य, भवन शैली), अनुष्ठान और भौतिक संस्कृति शामिल हैं। यह समाज के विश्वासों, अंधविश्वासों, त्योहारों और जीवनशैली का आईना है।

लोकगीत और लोकसाहित्य –

लोक साहित्य के माध्यम से लोक संस्कृति के सभी पहलुओं (रीति-रिवाज, मान्यताएँ, इतिहास) को समझा जा सकता है, और लोकगीत इस प्रक्रिया का एक मधुर और प्रभावी माध्यम हैं।लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं संरक्षित गीतों को लोकगीत कहा जाता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने लेखन को लोकसमर्पित कर देता है। लोकगीत किसी एक व्यक्ति की नहीं-, बल्कि पूरे समाज की थाती होते हैं। शास्त्र के किसी नियम की बाध्यता नहीं, मनुष्य के सुखदुख की तरंग में जो छंदोबद्ध वाणी - सहज उत्पन्न करे, वही लोकगीत है।लोकगीतों की भाषा गाँवों और आंचलिक क्षेत्रों की बोलियाँ होती हैं। इनकी भाषा अच्छी तरह

समझी जाने वाली तथा हृदय के भावों के अनुसार होती है। इसी कारण लोकगीत बहुत आह्लादकर और आनन्ददायक होते हैं। इनकी भाषा की सरलता प्रमुख विशेषता मानी जाती है, लोकगीतों की सफलता का कारण भी यही है। भारत का प्रसिद्ध लोक गीत केसरिया बालम माना जाता है। लोकगीतों के अनेक प्रकार मने जाते हैं जैसे- विवाह गीत, जन्म के गीत, त्योहारों के गीत, धार्मिक गीत, सामाजिक गीत, वीरता गीत आदि प्रकार के गीत लोकगीत के नाम से जाने जाते हैं।

मीराबाई के काव्य में लोकगीत-

मीराबाई के काव्य में लोकगीतों (लोक-धुनों और लोक-भाषा) का गहरा प्रभाव है, जहाँ उनके पद सरल, भावनात्मक और सीधे जनमानस से जुड़ते हैं; उन्होंने कृष्ण-प्रेम को लोक-प्रचलित शैलियों जैसे 'पग घूँघरू बाँध' या 'पायो जी म्हें तो राम रतन धन पायो' जैसे गीतों में व्यक्त किया है, जिनमें लोकभाषा (ब्रज और राजस्थानी का मिश्रण), सीधी-सादी उपमाएँ और कृष्ण-भक्ति की सहज अभिव्यक्ति मिलती है, जो उन्हें शास्त्र-बद्ध न होकर भी लोक-प्रकृति का हिस्सा बनाती है। "लोकरंग मीरा ले काव्य गीतों का श्रृंगार करते हैं। लोक तात्विक मिठास धीरे – धीरे इतना गहरा होता जाता है कि उसे रस सम्प्रेषण में कोई प्रयत्न नहीं करना होता है। उनका काव्य लोकधर्मी रहा है। इसलिए वह जन- जन का कंठहार है। जन जन की भाषा में उसके सहज उच्छवासों में ढली उसकी गीतियाँ इतनी समक्ष है कि देश के अनेक राज्यों में उसके गीत- पद लोकगीतों की जगह गाए जाते हैं।"[2] मीरा ने शास्त्रीय बंधनों से मुक्त होकर लोक-भाषा (जैसे राजस्थानी और ब्रज का मिश्रण) का प्रयोग किया, जिससे उनके पद आम जनता के लिए सुलभ हो गए। उनके पद लोक-गीतों की तरह ही सीधे हृदय को छूते हैं और विरह, प्रेम, और समर्पण के भावों को व्यक्त करते हैं। उनके कई पद (जैसे 'पग घूँघरू बाँध मीरा नाची रे') लोक-धुनों पर आधारित हैं, जिन्हें लोग आसानी से गा सकते हैं और जो आज भी लोकप्रिय हैं।

उनके 'पदों' में कोई कृत्रिम अलंकरण नहीं, बल्कि लोक-प्रकृति की सहजता और सरलता दिखती है, जैसे 'प्रीतड़ी है, दुखड़ा रो मूल'। संक्षेप में, मीरा के काव्य ने लोकगीतों की भावना, भाषा और धुन को अपनाकर भक्ति-काव्य को जन-जन तक पहुँचाया, जिससे उनका साहित्य आज भी प्रासंगिक और लोकप्रिय है। निम्न पदावली में उनकी भक्ति स्पष्ट हुई है –

"मेरे तो राम नाम दूसरों न कोई,
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई,
भाई छोडया बन्धु छोडया- छोडया सगा सोई,
साध संग बैठ- बैठ लोक लाज खोई"[3]

मीराबाई के काव्य में लोकगीत और संस्कृति गहराई से समाई है, उन्होंने अपनी भक्ति को आम लोगों की भाषा (राजस्थानी, ब्रज) और गेय लोक-शैली में व्यक्त किया, जिसमें लोक-प्रकृति, रीति-रिवाजों, वेशभूषा (बाजूबंद, चूड़ा), और दैनिक जीवन के बिंब (चमेली के फूल, सूल) का सुंदर चित्रण मिलता है, जिससे उनके पद जन-मानस से जुड़ गए और उन्हें 'लोक-निधि' कहा जाता है। मीरा की भाषा लोक-प्रचलित थी, जिसमें राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का मिश्रण था, जो आम लोगों को आसानी से समझ आती थी। उनके पद शास्त्रीय छंदों की बजाय लोक-संगीत की लय और धुनों पर आधारित थे, जिससे वे आसानी से गाए जा सकें। उनके पद किसी शास्त्रीय बंधन में नहीं, बल्कि लोक-प्रकृति के सहज प्रवाह में बहते हैं, जैसे 'प्रीतड़ी है, दुखड़ा रो मूल'।

मीराबाई के काव्य में लोक साहित्य -

वह साहित्य जो निरक्षर जनता के जीवन की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, और अनुभवों की सहज अभिव्यक्ति है, जो मौखिक परंपरा से चलता है। इसमें लोकगीत, लोककथाएँ (कहानियाँ, मिथक, दंतकथाएँ), मुहावरे, लोकोक्तियाँ (कहावतें), पहेलियाँ, और जादू-टोने से जुड़े मंत्र आदि शामिल होते हैं। यह बिना पढ़े-लिखे समाज का साहित्य है, जो पीढ़ियों को मौखिक रूप से हस्तांतरित होता है।

हिंदी में लोकगीत (Folk Songs) और लोक साहित्य (Folk Literature) आम जनता के सरल, मौखिक रूप से हस्तांतरित होने वाले गीत और कहानियाँ हैं, जो संस्कृति, परंपराओं, और जीवन के सुख-दुःख को दर्शाते हैं यह लोकजीवन की सहज अभिव्यक्ति है जिसमें इतिहास, किंवदंतियाँ, मुहावरे और पर्वों से जुड़े गीत शामिल होते हैं, और ये साहित्य का आधार बनते हैं, जैसे जन्म से मृत्यु तक के संस्कार गीत, क्षेत्रीय लोककथाएँ, और पहेलियाँ। लोक (जनता) के गीत, जो किसी एक व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं, बल्कि पूरे समुदाय द्वारा अपनाए जाते हैं और गाए जाते हैं। "मीराबाई के कुछ पदों की भाषा पूर्ण रूप से गुजरती है तो कुछ की शुद्ध ब्रजभाषा कहीं–कहीं पंजाबी का प्रयोग भी दिखाई देता है। शेष पद मुख्य रूप से राजस्थानी में ही पाए जाते हैं।"[4] इनमें विवाह (बिदाई गीत), फसल, त्योहार (होली के रसिया), जन्म-मृत्यु के संस्कार, और देवी-देवताओं से जुड़े गीत होते हैं। ये

सरल, सहज, और क्षेत्रीय भाषाओं में होते हैं, जो ढोलक जैसे साधारण वाद्यों के साथ गाए जाते हैं और इनमें नृत्य का पुट भी होता है (जैसे गरबा)। 'भात गीत', 'शोकगीत', 'रसिया', और विभिन्न आंचलिक गीत। लोकगीत, लोक साहित्य का एक अभिन्न अंग हैं और उसके माध्यम से ही लोक संस्कृति और इतिहास आगे बढ़ता है। ये साहित्यकारों को प्रेरणा देते हैं और ग्रामीण जीवन की सच्ची तस्वीर पेश करते हैं। इनका अध्ययन (लोककथा विज्ञान) सांस्कृतिक विरासत को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

मीराबाई के काव्य में लोक संस्कृति -

उन्होंने अपने पदों में लोक-संस्कृति के अनुरूप श्रृंगारिक तत्वों का वर्णन किया, जैसे बाजूबंद, चूड़ा, अँगिया, और झूमर, जो आज भी महिलाओं को प्रिय हैं। चमेली के फूल, हिवड़े में सूल (काँटा), और लापसी (मिठाई) जैसे लोक-प्रचलित बिंबों का प्रयोग करके अपनी बात कही। उन्होंने लोक-प्रचलित लोक-लाज (लोक की मर्यादा) त्यागकर 'पग घुंघरू बाँध' नृत्य किया, जो तत्कालीन समाज के लिए एक क्रांतिकारी कदम था। संक्षेप में, लोकगीत और लोक साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं, जो भारतीय जनजीवन की आत्मा को सरल और सुंदर ढंग से प्रस्तुत करते हैं, और हमारी सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण हिस्सा हर महीने, मौसम और हर अवसर के लिए एक गाना है। 'बारा मासा'- बारह महीनों के गीत उत्तर भारत में लगभग हर जगह गाए जाते हैं। आषाढ़ के बादलों का, श्रवण की वर्षा, कार्तिक के दीपों का प्रकाश, माघ की वसंत की कलियों और फाल्गुन के रंगों के त्योहार का वर्णन मिलता है।

मीराबाई का काव्य लोकसाहित्य का जीवंत रूप है। उनके पदों में भाषा, बिंब, भाव, लय, धुन और विषय आदि लोक-जीवन से जुड़े हुए हैं। इसी कारण मीराबाई का काव्य *उच्च साहित्यिक कृति होने के साथसाथ- लोकसाहित्य की अमूल्य धरोहर-* भी है। पोशाक, रीतिरिवाज-, पारिवारिक संबंधों, त्योहारों और संगीत की सांस्कृतिक उदा. जैसे- *फाग*, *होरी*, *झूलन*, *तीज* त्यौहार इत्यादि।

निष्कर्ष:

मीराबाई ने अपनी भक्ति को लोक-संस्कृति और लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। उनके पद केवल धार्मिक साहित्य नहीं, बल्कि राजस्थान और ब्रज की संस्कृति का दर्पण हैं, जो उनके गहरे भावों और लोक-जीवन के प्रति जुड़ाव को दर्शाते हैं, जिससे वे आज भी प्रासंगिक हैं। स्पष्ट है कि मीराबाई के लोकगीतों में सरल भाषा, गेयता, लोकबिंब नजर आते हैं। मीराबाई के काव्य में लोक-साहित्य अत्यंत गहराई से जुड़ा हुआ है। मीराबाई के पदावली के पदों का मुख्य विषय उनकी रचयित्री के भावों का प्रकाश ही जान पडता है। रस विषय के पद उनके अंतर्गत प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। उनके पद केवल भक्तिभाव की अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि भारतीय लोक-जीवन, लोक-भाषा और लोक-परंपराओं के प्रामाणिक दस्तावेज भी हैं। मीराबाई का काव्य साहित्यिक परिष्कार की तुलना में लोक-संवेदना और सहज अनुभूति को अधिक महत्व देता है। मीराबाई ने ब्रजभाषा, राजस्थानी (मेवाड़ी), और गुजराती जैसी लोक-बोलियों का प्रयोग किया, जो लोक-साहित्य की मूल भाषाएँ हैं। इन भाषाओं में बनी सहजता, मिठास और गीतात्मकता उनके पदों को जन-जीवन से जोड़ती है। 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'- यह भाषा पूर्णतः लोक-सुलभ है। उनका साहित्य भक्तिरस, आत्मनिष्ठता, प्रतीकरूपक, सहज शैली आदि से परिपूर्ण है। साथ ही भक्ति परंपरा, राजस्थानी–ब्रज संस्कृति, नारी चेतना आदि द्वारा संस्कृति नजर आती है। मीराबाई का काव्य भारतीय लोकसाहित्य और संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है, जो भक्ति, प्रेम, समानता और मानवता की अमर ध्वनि को आज भी उजागर करता है। कहा जा सकता है कि मीराबाई का काव्य लोकगीत, लोक संस्कृति और साहित्य से ओत–प्रोत है। साथ ही उनके पदों में कृष्ण प्रेम, भक्ति और सांस्कृतिक विरासत का बहुत सुंदर संगम देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. https://www.google.com/search?q=LOKGEET+KA+ARTH
2. संजय मल्होत्रा, मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व, मीरा स्मृति संस्थान, चितौडगढ़ , 1998, पृ. 227
3. संपा. आ. पशुराम चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, उन्नीसवॉ संस्करण 1993 पृ. 165
4. संपा.डॉ. मधुरानी शुक्ला, प्रेम पगी मन्दाकिनी मीरा, ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण 2023,पृ 36

*****

हिंदी गीत और ग़ज़ल - सामाजिक परिदृश्य

संतोष सिंह
डॉ बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,
छत्रपति संभाजी नगर
पता -ए 1 /विंग १ - 602विहंग हिल्स ,
भयंदरपाढ़ा ,घोड़बंदर रोड ,ठाणे (प.) 400615
ईमेल -Santushsslng@gmall.com

शोध सार:

समकालीन कविता की बड़ी विशेषता यह है कि वह वस्तु जगत के रूप-रंग, भाव-विचार, स्वप्न-संघर्ष को जगत की भाषा में ढाल देती है । जगत विषय के साथ भाषा भी देता है; जो रचनाकार विषय को जगतभाषा के रंग में और जगतभाषा को विषय के रंग मिला देता है, वही रचनाकार अपनी रचना को संवेदना की भूमि पर बड़ा बना देता है । कथन और कथ्य के 'परस्पर वर्धमान' सम्बन्ध को भाषा के स्तर पर साधना ही रचनाकार की सृजनात्मक प्रतिभा का प्रमाण है । दरअसल भाषा के प्रति संवेदनशील होना मानवीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति संवेदनशील होना है। रूपवादी और वस्तुवादी अतिवाद से मुक्त कवि ही पूरे आत्म विश्वास से यह कह पाता हैजब गीत का शिल्प पूर्ण हो अर्थात सधा हुआ हो तो उसे गुनगुनाने तथा धारा प्रवाह से पढ़ा जाना ही अपने आप में आनंद का क्षण उत्पन्न करता है गीत की यही विशेषता गीत को बाकि अन्य विधाओं से अलग बनाती हुई प्रतीत होती है एक गीत के माध्यम से हम सम्पूर्ण परिस्थितियों का आकलन बड़ी आसानी से कर सकते हैं गीत में शब्दों का चुनाव तथा भावनाओं का बहाव दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

बीज शब्द: ग़ज़ल, समाज. गीत, रचना।

ग़ज़ल हिंदी की सबसे प्रचलित विधा बनकर उभर रही है पिछले पांच दशकों से हिंदी ग़ज़ल ने अपना बदलता स्वरुप सबके समक्ष प्रस्तुत और विस्तारित किया है। अरबी से होते हुए उर्दू ,हिंदी तथा अब भारत की लगभग सभी भाषाओँ में लिखी जानेवाली यह विधा समाज में बदलाव का सशक्त माध्यम के रूप में प्रतीत हो रही है । इसके प्रचलन का मुख्य कारण है इसका कहन मात्र दो पंक्तियों में पूरा विषय समाहित कर पाना ही है ।ग़ज़ल को लेकर कई विद्वानों ने अपनी बात कही है कोई उसे अपनी महबूब से बात करना कहता है तो कोई इसे स्त्री से बातचीत ग़ज़ल का पूर्व प्रचलित अर्थ यही था कि स्त्री से प्रेमभरी बातें करना ,इसका और अर्थ भी निकालते हुए विद्वान् कहते हैं ग़ज़ल शब्द गज़ाला से उद्धृत हुआ है ग़ज़ल हिरन के बच्चे को कहा जाता है शिकारी जब हिरन के बच्चे का शिकार करते थे तीर लगने के पक्षात उस बच्चे के क्रंदन अथवा अंतर्नाद अतः ग़ज़ल के रूप में प्रसिद्ध हुआ ग़ज़ल यानि वेदना ।

धीरे धीरे बदलते परिवेश में ग़ज़ल का विषय भी बदला ग़ज़ल महबूबा के गेसुओं या उसके सुन्दर रूप के वर्णन की बात कर रही थी तो समय के साथ साथ अब ग़ज़ल समाज के दर्द और पीड़ा को भी समाहित किये हुए है आज के समकालीन परिवेश में ग़ज़ल का विषय बदल गया है ग़ज़ल में समाज की पीड़ा, शोषित वर्ग का दर्द, प्रेम, स्त्री विमर्श, पर्यावरण की समस्या, आम जन का दुःख, रोजमर्रा की समस्या, भी अपने भीतर समाहित किये हुए है।

हिंदी ग़ज़ल को कहीं साहित्यिक घटना कहा गया है अगर गौर किया जाए तो ये कहीं सच भी प्रतीत होता है हिंदी ग़ज़ल से विरोध के स्वर जन्में और आम जन मानस तक यह बड़ी आसानी से पहुंचा और हिंदी ग़ज़ल ने आम जन मानस के दर्द को भी उकेरा है ।हिंदी ग़ज़ल परम्परा की बात करें तो कुछ विद्वान् अमीर खुसरो 1252-1325 को हिंदी का पहला ग़ज़लकार मानते है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अतिरिक्त उस समय में प्रताप नारायण मिश्र, चौधरी प्रेमधन, गोपाललाल गुप्त ने भी हिंदी में ग़ज़लें लिखीं और यह परंपरा धीरे धीरे श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद, तक पहुंचीवो ग़ज़ल को अपनी मुख्य विधा के रूप में नहीं बल्कि मुख्य विधा के पेचीदा शिल्प पर हाथ आजमाने का प्रयास कर रहे थे ।

जयशंकर प्रसाद की एक कोशिश देखिये

सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं
उन्हें अवकास ही रहता कहाँ है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं

और धीरे -धीरे यह परंपरा निराला से होती हुई दुष्यंत कुमार तक पहुंची

दुष्यंत कुमार को एक युग परिवर्तक के रूप में उभरता हुआ नाम पाया गया हलाकि दुष्यंत से पहले बलबीर सिंह रंग, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह भी ग़ज़ल साधना में रत रहे, और दुष्यंत के समकालीन में चन्द्रसेन विराट... तथा कई नाम थे परन्तु दुष्यंत की बात ही निराली थी दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का तेवर जो कि सटीक आघात था व्यवस्था पर जो समय की दरकार भी थी।

लगभग 5 दशकों से रचनारत हिंदी ग़ज़ल ने अपने विस्तार को इतना विस्तृत किया है की आज का यह दौर हिंदी ग़ज़ल का महत्वपूर्ण दौर प्रतीत होता है आज के ग़ज़लकार समाज पर पैनी नज़र लगाए हुए हैं और समाज की बात लिख रहे हैं ।एक तरफ प्रेम की बात कर रहे ग़ज़लकार अपना सब कुछ प्रेम पर निछावर करते हुए कहते हैं

चाँद, तारे न ये रंगों बू चाहिए
कुछ खिलौने नहीं मुझको तू चाहिए
- दीक्षित दनकौरी

और दूसरी तरफ आम बोलचाल की भाषा में हमारे घर के आम झगड़ों पर आघात करता हुआ दीक्षित दनकौरी का ये शेर भी है

अपनों का भी वार हुआ
ये भी आखिरकार हुआ
रिश्ता जब लाचार हुआ
आँगन की दीवार हुआ

समाज में व्याप्त विसंगतियों पर कुठारघात करता यह शेर घर -घर में घटनेवाली घटना को बखूबी सबके समक्ष रखता है यह शेर इस बात का भी स्पष्ट उदाहरण है कि शायर अपने आस -पास घटित होती घटना पर पैनी नज़र बनाये रहता है और आम जन मानस के संवेदना के स्तर को स्पर्श करता है और समाज की व्याप्त बुराइयों पर तंज भी करता है

पसारुं हाथ क्यों आगे किसी के
तरीके और भी हैं ख़ुदकुशी के

दीक्षित दनकौरी का यह शेर समाज के समक्ष एक हल भी देता है और प्रश्न भी खड़ा करता है प्रश्न इस बात का कि अपनी रीढ़ की हड्डी को कितना सीधा रखना है क्या करना उचित है क्या करना अनुचित

कहाँ कितना अपने आप को समझाना है और कहाँ खुद ही समझ जाना है समाज में जीने का तरीका सीखाता यह शेर सच कहूं तो जीवन की सारी समस्या का समाधान है। जब शायर अपने आप से सवाल पूछता है तब ही यह शेर होता है और दो पंक्ति में अपनी बात कह देना और सटीक बात यह बहुत ही विरले ही होता है

समाज को जीने का तरिका सीखाता यह शेर अपने भीतर न जाने कितनी परतें खोलता है

शामिल हूँ तेरे गम में बहुत शर्मसार भी
लाचार हूँ खड़ा हूँ तमाशाइयों के साथ

न जाने कितनी पीड़ा को महसूस करने के बाद यह पक्तियां हुई होंगी मर्म जानिये इन दो पंक्तियों का । दर्द इतना कि कुछ कह नहीं सकते और वेदना इतनी की सह नहीं सकते यह शेर दिल्ली के निर्भया हत्यकांड के समय की है और दीक्षित दनकौरी ने उस लाचार बेटी के लिए यह शेर कहा

था। शायर ने क्या क्या नहीं महसूस किया होगा और समाज की इस पीड़ा का कोई दुसरा कोई मरहम नहीं है आत्ममंथन और सोच के अलावा

क्या अनोखा है किरदार इंसान का
सूफियाना भी है वहशियाना भी है

इंसान के चेहरे पर कितने मुखौटे हैं यह शेर इस बात को उकेरता है

इंसान कितने रूपों में है एक तरफ साधु संत फ़कीर है तो दूसरी तरफ एक घातक दरिंदा भी है

दोनों रूप इंसान के ही हैं।

लगभग 4000 वर्ष पुराने भारतीय संगीत के इतिहास से लेकर आधुनिक काल के परिवेश में गीतों की अपनी पहचान है।हम यूँ भी कह सकते हैं मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही गीत उपस्थित हैं। गीत का जन्म कब हुआ यह कहना थोड़ा मुश्किल है परन्तु गीत का सम्बन्ध मानव सभ्यता से है।

गीत, साहित्य की सर्वाधिक पसंद की जानेवाली लोकप्रिय विधा है। फ़िल्मी गीतों का प्रचार प्रसार तथा फ़िल्मी गीतों में कई तरह के रंग जो समाज का ही प्रतिबिंब है। गीत में स्वरों के साथ-साथ संवेदनाएं की ध्वनि भी समाहित होती हैं। जो मानव हृदय में उत्पन्न होनेवाले दुखों, सुखों, हर्ष -विषाद, पीड़ा, प्रसन्नता को उजागर करता है । कहा जाता है कि जीवन जीने के लिए जैसे रोटी,कपड़ा,मकान की जरुरत होती है वैसे ही संगीत और गीत इंसानी रूह की अहम ख़ुराक़ और मानवीय संवेदना की झंकार है जो आदिम कल से झंकृत होती रही है।

हरिवंश राय बच्चन जी ने गीत के तत्वों में 'भावों की तीव्रता ' की बात कही है। भाव या अनुभूति की तीव्रता गीत में होनी चाहिए। भावों की एकता तथा गीत की गेयता की बात कही है। बिना इन तत्वों के गीत, गीत नहीं हैं। बच्चन जी के अनुसार " बड़ा कलाकार वो है जो अपनी कला पर हावी होता है "जो कला को अपने ऊपर हावी न होने दे।

भारतीय संस्कृति में गीतों का बड़ा महत्त्व है क्योंकि हमारे यहाँ जन्म से लेकर मरण तक के गीत हैं।

इरशाद कामिल के गीतों में प्रेम यह एक प्रमुख विषय है इसी के साथ मिलन, विरह, बिछडन की पीड़ा, समाज का दर्द, मजदूर वर्ग की बेचैनी, अवसाद, शोक, तथा मर्म पर कई गीत लिखा है और उसे बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है इरशाद कामिल के गीत परंपरा का निर्वहन करते हुई प्रतीत होते हैं।

अपने व्यक्तित्व की सरलता, सहजता, सौम्यता तथा प्रेम से भरे भाव, आत्मसम्मान और समाज में बदलाव पर पैनी नज़र का निर्वहन अपने गीतों में पूरी तन्मयता से करते नज़र आते है गीतों में जीवन दर्शन की झलक महसूस किया जा सकता है कई जगह तो इन्होने अपने शब्दों के चुनाव से लोगों का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित किया है। गीतों में मानवता के मर्म, विरह की वेदना, विभिन्न भाव को गीतों में पिरोने का कार्य किया है।

गीत में रचनात्मकता उसमें अन्तर्निहित, आत्मपरकता, समसामयिकता और सामाजिकता पर पुनर्विचार करने के कई सूत्र समाहित हैं।

नामवर सिंह की दृष्टि से गीत निज अपमानुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम है कोई प्रेमी अपने आत्मनिष्ठ प्रेम को अपनी प्रेमिका के समक्ष अपना प्रेम व्यक्त नहीं करता परन्तु सम्पूर्ण जीवन उसकी याद में या बिना अभिव्यक्ति के जीवन बीता देता है यह भी प्रेम का एक रूप है। प्रेम समय के साथ -साथ बदलता नहीं है परन्तु प्रेम को जीवन देने में बदलाव हुआ है। वक्त के साथ सब कुछ बदल गया है प्रेम वही है। मानव की संवेदनाओ को सहेजने तथा या विघटित करने में समाज का योगदान रहा है बिखरने और संवरने की एक प्रक्रिया है और यह मानवीय संवेदनाओं का ही एक घटक है।

गीत का विषय उदासी, ख़ुशी, दर्द, पीड़ा, समाज के आसपास ही घूमता है। गीत पूरी कहानी कहने के लिए परिपूर्ण है यदि उसकी संरचना में जोड़े गए शब्द प्रभावशाली हों।

गीतों में आकर्षण, प्रेम, विरह, त्याग, समाजिक सरोकार, विद्रोह, अधिकार इन सब का समाहित होना सामान्य हैं किन्तु गीतों में प्रेम के कई रंगों को उभारना और मन पर उसका उसी तरह प्रभाव का हो जाना गीतकार के कौशल को उभारता है। किसी गीत का असर कितने समय तक आपके मन पर तारी रहता है यह भी गीतकार और संगीतकार की कुशलता ही तो है।

संगीतकार अपनी बुद्धिमता से संगीत का निर्माण करता है और गीतकार भावनाओं को शब्दों में पिरोकर उस संगीत के साथ सामंजस्य निर्मित करता है। आपकी स्मृति को पुनः जागृत करने में गीत का और गीतकार का अहम रोल है।

इरशाद कामिल उन्हीं गीतकारों में से हैं जिनके गीत के हर बोल सुधि जन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं गीत को नया या समसामयिक बनाने की कोशिश इरशाद कामिल को और गीतकारों से अलग बनाता है।

आज के सामाजिक परिवेश में जब कान फोड़ू संगीत से आप विचलित होते हैं वहीँ इरशाद कामिल के लिखे गीत आपको और आपके दिल पर हौले से दस्तक देते हुए वर्तमान को जीते हुए स्मृतियों के झरोखे से अतीत की ओर ले जाने का सार्थक प्रयास करता होता प्रतीत है

प्रेम, विरह, सामाजिक चेतना, सांस्कतिक झलक पर तमाम गीत इनके हिस्से में हैं।

जब इरशाद कामिल गीतों की बुनते हुए लिखते हैं..

ख्वाब है तू नींद हूँ मैं
दोनों मिले रात बने
रोज़ यही माँगूँ दुआ
तेरी मेरी बात बने

मैं रंग शरबतों का तू मीठे घाट का पानी
मुझे खुद में घोल दे तो मेरे यार बात बन जानी ।
मैंने तो धीरे से
नींदों के धागे से
बाँधा है ख्वाब को तेरे

इस गीत में प्रेम की अपार संभावनाएं नज़र आती है।

संभावना इस बात की नहीं की प्रेमी कहना क्या चाहता है संभावना इस बात की कि क्या कहा नहीं गया है जिसका अर्थ लोग अपने हिसाब से निकाल लेते हैं। एक तरफ गीत में ख्वाब और नींद के हिस्से के द्वारा प्रेम की गहराई को दर्शाया जा रहा है की एक दूसरे के बिना दोनों का कोई औचित्य नहीं है नींद नहीं है तो ख्वाब का क्या ही होगा, दोनों के बिना दोनों अधूरे और दोनों जब मिलते हैं तो रात बनती है।

वही दूसरी तरफ ऐसे ही प्रेम को दर्शाने के लिए गीतकार ने बड़ी खूबसूरती से शरबतों के रंग को पानी में मिलाने की बात को बड़ी ही सरलता से प्रेषित किया है इससे गीतकार की कुशलता स्पष्ट झलकती है।इरशाद कामिल के गीतों में प्रेम एक प्रमुख विषय है इरशाद कामिल के गीतों में मिलन, विरह और पीड़ा, समाज का दर्द, मजदूर वर्ग की घुटन, अवसाद, रोष तथा मर्म को लिखा है और बड़े ही मार्मिक ढंग से उसे अपने गीतों में समाहित भी किया है

कई गीतों में जीवन दर्शन की झलक आप देख सकते हैं कई गीत श्रोता को सूफी वाद की तरफ भी मार्गदर्शित करते हैं जहां सुननेवाला अपने आप से बातें करने लगता है वही वह अध्यात्म की खिंचा चला जाता है

इरशाद कामिल शब्दों के चुनाव में बड़ी सतर्कता बरतते हैं कई शब्दों के बदल के बाद ही वह सही शब्द को सही जगह पर रखते हैं यह उनका कौशल है संवेदनाओं को गीतों में दर्शान या उस दर्द, ख़ुशी को उसी तरह से उतरना बड़ा मुश्किल कार्य है आसान हो जाना कठिन है कठिन का तो कोई छोर नहीं शब्द ब्रम्ह है और शब्दों का चुनाव या उसका सही उपयोग साधक की साधना और साधना का प्रतिफल है संवेदना का निर्माण।

समकालीन कविता की बड़ी विशेषता यह है कि वह वस्तु जगत के रूप-रंग, भाव-विचार, स्वप्न-संघर्ष को जगत की भाषा में ढाल देती है। जगत विषय के साथ भाषा भी देता है; जो रचनाकार विषय को जगतभाषा के रंग में और जगतभाषा को विषय के रंग मिला देता है, वही रचनाकार अपनी रचना को संवेदना की भूमि पर बड़ा बना देता है। कथन और कथ्य के 'परस्पर वर्धमान' सम्बन्ध को भाषा के स्तर पर साधना ही रचनाकार की सृजनात्मक प्रतिभा का प्रमाण है। दरअसल भाषा के प्रति संवेदनशील होना मानवीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति संवेदनशील होना है। रूपवादी और वस्तुवादी अतिवाद से मुक्त कवि ही पूरे आत्म विश्वास से यह कह पाता है

जब गीत का शिल्प पूर्ण हो अर्थात सधा हुआ हो तो उसे गुनगुनाने तथा धारा प्रवाह से पढ़ा जाना ही अपने आप में आनंद का क्षण उत्पन्न करता है गीत की यही विशेषता गीत को बाकि अन्य विधाओं से अलग बनाती हुई प्रतीत होती है एक गीत के माध्यम से हम सम्पूर्ण परिस्थितियों का आकलन बड़ी आसानी से कर सकते हैं गीत में शब्दों का चुनाव तथा भावनाओं का बहाव दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

मानकों की कसौटी पर गीत जितना आसान महसूस होता है उतना आसान होता नहीं है मुखड़े और अंतरे के बीच वाह से आह तक का सफर गीत का निर्माण है।भाव पक्ष की घनिष्ठता पर गीत का विवेचन करना ही सही मायने में गीत को परखने की सही कसौटी है।

अनायास ही गीत सुनकर भाव शून्य हो जाना और गीत सुनकर अनायास ही आँखों से आंसुओं का बह निकलना और अपने आप में खो जाने जैसा परिणाम प्रदर्शित करता हैऔर यह सब मानव की संवेदनशीलता को दर्शाता है। कभी कभी हम अनायास ही दुखी होते हैं और कुछ अनायास ही अच्छा लगता है ऐसा मन के भाव बह निकलने पर होता है ऐसे में गीत सुनने को जी चाहता है और गीत भी वही जो मन को शब्दों से भिगो दे।

ऐसा ही एक गीत को कभी कभी लगता है हमारे लिए ही लिखा गया हो और इस गीत में प्रेम, विरह, बैराग्य सब का कुछ कुछ अंश समाहित है अपने प्रेमी को याद करना और कभी पुरानी बातें सोचकर मन दुखी हो जाता है

आओगे जब तुम साजना
अंगना फूल खिलेंगे

बरसेगा सावन झूम -झूम के
दो दिल जब भी मिलेंगे

इस गीत में विषय और प्रस्तुति की दृष्टि से पर्याप्त विविधता है प्रायः विरह तथा प्रेम दोनों का मिश्रण कम ही देखने को मिलता है मगर यह यह दोनों विषय की संगतिया मिल जाएँगी गीतकार ने इस गीत में अपने प्रियतम के आने पर मन के भाव को प्रदर्शित किया है यह नितांत निजी और खुशनुमा अनुभवों की छवि को भी आलोकित करता है तथा अनेक जाने अनजाने अनुभव संसार समेत राग -रंग और भाव की गहराई को गीत में पिरोने की सार्थक कोशिश जान पड़ती है हम भाव, भाषा और विन्यास को इस गीत में देखते हैं।

अपनी अभिव्यक्ति के आधार पर मन की विभिन्न स्थिति की संभावनाएं तलाशता यह गीत भावनाओं से ओत - प्रोत किसी को भी अपने अतीत के सफर पर ले जाने के लिए पर्याप्त है ,जहाँ से मुड़कर शायद कभी न आने की तमन्ना मन में बलवती होती रहेंगी।

सुंदरता चाहे स्त्री की हो या किसी प्रकृति की दोनों में एक समानता होती है वह है सादगी की आप न प्रकृति का विकराल रूप देखना चाहेंगे ना ही स्त्री का।

जहाँ एक तरफ प्रेम और विरह के गीत हैं तो दूसरी तरफ इरशाद कामिल लिखते हैं।

साडा हक़ एथे रख
तुम लोगों की इस दुनिया में हर कदम पे इंसा गलत।
मैं सही समझ के जो कहूं तुम कहते हो गलत।
मैं गलत हूँ फिर कौन सही फिर कौन सही।
साडा हक़ एथे रख ...
तुम मेरे जीने की आदत का क्यों घोट रहे दम..

इस गीत ने न जाने कितने लोगों को अंदर से झकझोर दिया है इस गीत में गीतकार का एक अलग रंग उभर कर आता है वो रंग है भीतर से बहती हुई भावनाओं का गलत के प्रति पनप रहे आक्रोश का। जहाँ हम अपनी दिनचर्या में व्यस्त होते हैं कई परेशानियां सामाजिक तकलीफें झेलते हैं सब कुछ सहते हुए अपना जीवन गलत और सही के बीच दुविधा में जीवन बिता देते हैं वहीँ अपने अधिकारों से अवगत कराता गीतकार अपनी प्रत्येक पंक्ति में कुछ नया कहता है। सबके हक़ की बात करता नज़र आता है यह एक सचेत नागरिक की प्रथम पहचान है। गीतकार ने प्रेम ,विरह के गीत लिखे वहीँ विद्रोह या समाज को जागृत करनेवाले गीत लिखकर समाज का मार्गदर्शन भी किया।

आजकल प्रायः देखा गया है गीतों में भाषाई बदलाव के साथ कई गीतकारों ने कई सार्थक प्रयोग किये हैं आप यह विविधता इरशाद कामिल के गीतों में भी देख सकते हैं कई पंजाबी शब्द का बड़ी सुंदरता से प्रयोग किया गया है अब इरशाद कामिल पंजाब से हैं तो पंजाबी उनकी बोल चाल का हिस्सा है जब वह बात करते हैं उनकी बातों में पंजाब के मिट्टी की खुशबू महसूस होती है और कई जगह तो गीत के अंतरे और मुखड़ों में उन्होंने पूरा का पूरा पंजाबी शब्द इस्तेमाल में लाया है और उसे बड़ी सुंदरता से गीत में पिरो दिया है अब जब "साडा हक़ एथे रख " हमारे कानों में पड़ता है तो कुछ अटपटा सा नहीं लगता और हम बड़ी आसानी से समझ जाते हैं। यह छोटी सी पंक्ति मन में एक कोलाहल मचाने के लिए काफी है। सबसे सुन्दर बात यह है कि लोगों ने इसे सराहा है और यह इस बात का साफ़ संकेत हैं जो भाषा हमारे बोल चाल का हिस्सा है उसे आप साहित्य की अन्य भाषाओं में उपयोग में ला सकते हैं,हाँ ! मगर वह शब्द आप समझ सकें
क्योंकि यही बात अगर हम किसी और भाषा में कहते तो शायद वह उस तरह से मन पर प्रभाव नहीं डालता जितना "साडा हक़ एथे रख " के पंजाबी भाषा के शब्द ने मन पर प्रभाव डाला है।

जो भी मैं कहना चाहूँ
बर्बाद करे अल्फ़ाज़ मेरे
मैंने ये भी सोचा है अक्सर
तू भी, मैं भी सभी हैं सीसे
खुद की हम सभी में देखें
नहीं हूँ मैं, हूँ मैं तो फिर भी

यहाँ गीतकार अपने आप को हर कदम दुनिया से आगे बढ़ाने की कोशिश तो करता है पर समाज पाँव पकड़ लेता है। वह बदलाव लाना चाहता है पर सब कोशिशे नाकाम होती नज़र आती हैं, सब एक जैसे हैं शीशे से बने हुए। जिसका अर्थ यह भी निकलकर आता है सब अपने भीतर झाँक कर अपनी कमियों को सुधार सकते हैं मगर कोई यह कार्य करना नहीं चाहता।
गीतकार अपने भीतर की व्यथा व्यक्त कर रहा है और यह भी कहना चाह रहा है कि कितने भी सामाजिक अवरोध आएं मैं रुकनेवाला नहीं, झुकनेवाला नहीं। इस पंक्ति में समग्र समाज की बुराइयों को उजागर किया गया है कभी न रुकने पर जोर देते हुए कभी न रुकते हुए सतत चलने की बात कही गई है ।इस तरह गीतकार सहज माध्यम से बदलते परिवेश को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। वह पुरानी रूढ़िवादी परम्परा को तोड़कर आज़ाद होने की बात पर जोर देना तथा पीड़ित वर्ग की व्यथा को उजागर करने का प्रयास करता है। समाज में फैली कुरीतियों को ,कुप्रथाओं को तथा समाज के कमजोर वर्ग पर हो रहे अत्याचार को गीतकार महसूस कर रहा है और उसी पीड़ा को यह पंक्तियाँ बयाँ कर रही हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.दीक्षित दनकौरी, डूबते वक्त, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
2.दीक्षित दनकौरी, सब मिटटी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. इरशाद कामिल, काली औरत के ख्वाब, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. डॉ करुणाशंकर उपाध्याय, आधुनिक कविता का पुनर्पाठ, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
5. समकालीन गीतों में संवेदना के विका का स्वरुप लेख -नचिकेता
6. spotlfy.gaana.com

*****

'तीसरी कसम' (1966 ई.) फिल्म के गीतों में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना एवं मूल्य

डॉ.माधव राजप्पा मुंडकर
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
नाईट कॉलेज ऑफ आर्टस् अँड कॉमर्स, इचलकरंजी.
मो.नं. 8888198884
Email –madhav.mundkar@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय सिनेमा में गीतों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। सन 1931 में भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' के साथ गीतों का प्रारंभ हुआ, जिसमें 7 गाने थे और वजीर मोहम्मद खान द्वारा गाया गया गीत 'दे दे खुदा के नाम पे प्यारे' पहला फिल्म गीत बना, जिसने भारतीय सिनेमा को एक नई दिशा दी और संगीत को फिल्म का अभिन्न अंग बना दिया सन 1931 से शुरू हुआ हिंदी सिनेमा गीतों का यह सफर स्वर्ण युग (1930 से 1950 ई तक), रोमांस का युग (1960- से 1970 ई. तक), डिस्को और नृत्य युग (1980- से 1990 ई. तक), आधुनिक युग (2000 से 2010 ई. तक) और रीमेक युग (2010 से अब तक) इन पड़ावों को पार करते हुए अपने साथ अच्छे-बूरे अनुभवों को संजोता निरंतर आगे बढ रहा है। विवेच्य शोधपत्र में रोमांस और मधुरता का युग कहे जाने वाले साठ और सत्तर के दशक में बनी 'तीसरी कसम' (1966 ई.) के बहारदार गीतों का विवेचन किया गया है।

'तीसरी कसम' फिल्म के गीत कहानी को पर्दे पर जीवंत करते हैं। फिल्म के गीत मशहूर गीतकार-कवि शैलेंद्र जी ने लिखे थे जो इस फिल्म के निर्माता भी थे। उन्होंने इस फिल्म को बनाना अपने जीवन का एक रचनात्मक अभियान बनाया था। फिल्म के सभी गीत कहानी एवं बिहार के आँचल की लोकसंस्कृति को स्पष्ट करने में सक्षम है। ग्रामीण लोक जीवन, वहाँ के लोगों का भोला-भाला जीवन एवं मानवीय मूल्यों को ये गीत बड़ी सटीकता से पेश करते हैं। ग्रामांचलों में मनोरंजन का आधार होने वाली नौटंकी इस कला को भी कुछ गीतों के जरिए शैलेंद्र जी ने स्पष्ट किया है। प्रेम, सादगी, विरह दाह, संवेदना, मानवता, नारी वेदना, दुनियादारी, नि:स्वार्थ जीवन, सहयोग आदि मानवीय मूल्यों को इन गीतों के जरिए स्पष्ट करने में गीतकार शैलेंद्र सफल हुए हैं। इस कारण 'तीसरी कसम'के कुछ गीत आज भी प्रासंगिक लगते हैं।

बीज शब्द - 'तीसरी कसम' गीत, मानवी संवेदना, मूल्य, लोकसंस्कृति, नौटंकी गीत, नारी वेदना, प्रेम, विरह आदि ।

प्रस्तावना :-

भारतीय सिनेमा में गीत-संगीत का विशेष स्थान रहा है। विश्व सिनेमा से तुलना की बात करें तो भारतीय सिनेमा का गीत-संगीत हमेशा अव्वल रहा है। हिंदी सिनेमा मूलत: भारत के जीवन एवं संस्कृति से जुड़ा होने के कारण इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति में गीतों का हमेशा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बड़ी आश्चर्य की बात है कि हिंदी सिनेमा में हर मानवीय भाव एवं जीवन के विविध रूपों पर आधारित गीत है। भारतीय हिंदी सिनेमा के गीतों का इतिहास देखेंगे तो सिनेमा ने हर मौसम, हर त्यौहार और लोक-संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर आधारित बेहतरीन गीत समाज को दिए हैं। सन 1931 से हिंदी सिनेमा में गीतों की शुरुआत मानी जाती है- ''सन 1931 में भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' के साथ गीतों का प्रारंभ हुआ, जिसमें 7 गाने थे और वजीर मोहम्मद खान द्वारा गाया गया गीत 'दे दे खुदा के नाम पे प्यारे' पहला फिल्म गीत बना, जिसने भारतीय सिनेमा को एक नई दिशा दी और संगीत को फिल्म का अभिन्न अंग बना दिया।''[1] सन 1931 से शुरू हुआ हिंदी सिनेमा गीतों का यह सफर स्वर्ण युग (1930 से 1950 ई तक), रोमांस का युग (1960- से 1970 ई. तक), डिस्को और नृत्य युग (1980- से 1990 ई. तक), आधुनिक युग (2000 से 2010 ई. तक) और रीमेक युग (2010 से अब तक) इन पड़ावों को पार करते हुए अपने साथ अच्छे-बूरे अनुभवों को संजोता निरंतर आगे बढ रहा है। विवेच्य शोधपत्र में रोमांस और मधुरता का युग कहे जाने वाले साठ और सत्तर के दशक में बनी 'तीसरी कसम' (1966 ई.) के बहारदार गीतों का विवेचन किया गया है।

विषय-प्रवेश :

'तीसरी कसम' (1966 ई.) फिल्म की संक्षिप्त जानकारी:

हिंदी सिनेमा के इतिहास में 'तीसरी कसम' (1966 ई.) फिल्म को क्लासिक कलाकृति माना जाता है। बासु भट्टाचार्य के निर्देशन में बनी इस फिल्म को लेकर अनेक कहानियाँ बताई जाती है। यह फिल्म हिंदी के विख्यात आँचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मारे गए गुलफाम' इस कहानी पर आधारित है। विख्यात गीतकार शैलेंद्र जी इस फिल्म के निर्माता रहे और उन्होंने इस फिल्म को बनाने के लिए अपने जीवन की पूरी पूँजी दाँव पर लगाई थी। 'मारे गए गुलफाम' की कहानी पढने के बाद गीतकार शैलेंद्र जी इस कहानी के प्रेम में पड़ गए और उन्होंने 'तीसरी कसम' नाम से फिल्म बनाने की ठान ली। इसकी पटकथा नवेंदु घोष ने लिखी थी। यह फिल्म हिंदी सिनेमा के बॉक्स ऑफिस पर असफल रही और इसी सदमे में गीतकार शैलेंद्र जी का देहांत होने की चर्चा फिल्मी जगत में रही। लेकिन हिंदी सिनेमा के कलात्मक सिनेमा में यह फिल्म कालजयी बनी रही है। बिहार के लोक जीवन पर आधारित यह कहानी गाड़ीवान हीरा और नौटंकी में नृत्य करने वाली हीराबाई की मासुम प्रेम कहानी है। इस कहानी को शैलेंद्र जी ने 'तीसरी कसम' इस नाम से सिनेमा के पर्दे पर उतारा, जो हिंदी सिनेमा के इतिहास में आज भी मील का पत्थर मानी जाती है। कहानीकार फणीश्वरनाथ रेणु जी ने इस फिल्म के लिए संवाद लिखे थे जबकि शैलेंद्र जी के बेजोड़ गीतों और शंकर-जयकिसन के कर्णमुधर संगीत ने इस फिल्म को भारतीय हिंदी सिनेमा जगत में अमर बना दिया।

'तीसरी कसम' फिल्म के गीतों का विवेचन:

'तीसरी कसम' यह फिल्म उसके गीत और संगीत के लिए आज भी याद की जाती है। इस फिल्म में कुल आठ गाने हैं जिसमें से सात गीत खुद फिल्म के निर्माता शैलेंद्र जी ने लिखे हैं और एक गीत हसरत जयपुरी ने लिखा था। शैलेंद्र जी हिंदी सिनेमा ही नहीं, अपितु हिंदी साहित्य में एक कवि के रूप में विशेष स्थान रखते थे। शैलेंद्र जी खुद एक साहित्यिक होने के कारण रेणु जी की 'मारे गए गुलफाम' यह कहानी उनके मन-मस्तिष्क पर छा गई थी। इसलिए उन्होंने 'तीसरी कसम' इस फिल्म को एक रचनात्मक अभियान बना लिया था। फिल्म के एक-एक कड़ी को लेकर उनकी टीम ने बहुत मेहनत की थी। कहानी के साथ आत्मीक जुड़ाव होने के कारण और खुद एक पेशेवर गीतकार एवं कवि होने के नाते उन्होंने 'तीसरी कसम' के गीत लेखन का दायित्व भी खुद उठाया था। कहानी एवं उसके पात्रों के चरित्र के मानवीय मूल्यों को पर ही उन्होंने गीतों का शब्दांकन किया जिसे शंकर-जयकिशन की जोड़ी ने मधुर धुने दी हैं। मुकेश, आशा भोसले और मन्ना डे जैसे प्रतिभावान गायकों ने अपने मर्मस्पर्शी सुरील आवाज से इन गीतों को अमर बना दिया है। फिल्म समीक्षकों ने 'तीसरी कसम' फिल्म को 'सैल्यूलाइड पर लिखी कविता' (चलचित्रों पर लिखी कविता) कहा था। क्योंकि यह एक बेहद संवेदनशील एवं मानवीय गुणों से युक्त भावपूर्ण फिल्म थी। इसके सभी गीत भी मानवीय जीवन दर्शन एवं कलात्मकता की परिभाषा करते हैं। फिल्म के सभी गीत कहानी के संवादक बने हुए हैं। इन गीतों का मूल्यांकन इस प्रकार है-

1. दुनिया बनाने वाले, क्या तेरे मन में समाई:

प्रस्तुत गीत के माध्यम से 'तीसरी कसम' का नायक हीरामन गाड़ीवान भगवान से कुछ सवाल करता है। हीरामन बहुत ही सच्चा और भोला ग्रामीण युवक है। लेकिन समाज के स्वार्थी लोग उसे कदम-कदम पर ठगते रहते हैं। वह समाज की विभिन्न विसंगतियों को देखकर सवाल पूछता रहता है। जीवन के हर मोड़ पर संघर्ष करता रहता है। जीवन संघर्ष से थक जाने के बाद हर मनुष्य ईश्वर से सवाल करता है कि तुमने संसार का जाल क्यों बनाया है? आखिर तुम्हार मन ऐसा क्या आय कि तुमने यह संसार रच दिया है। मनुष्य के जीवन में रिश्ते-नाते निर्माण हो जाते और मनुष्य इन रिश्तों में उलझकर रह जाता है। प्रेम से उसका जीवन सुंदर हो जाता है लेकिन वह प्रेम न मिलने पर वह फिर से निराशा में चला जाता है। इसलिए हीरामन इस गीत में कहता है- ''प्रीत बनाके तूने जीना सिखाया, हंसना सिखाया, रोना सिखाया/ जीवन के पथ पर मीत मिलाए/ मीत मिला के तूने सपने जगाए/ सपने जगाके तूने, काहे दे दी जुदाई।''[2] स्पष्ट है कि जीवन के अलग-अलग मोड पर संघर्ष करने वाले मन की यह व्यथा कहने वाला गीत है।

2. सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है:

फिल्म का विवेच्य गीत मनुष्य के जीवन की नश्वरता और मूल्य की महत्ता को दर्शाता है। इसमें गीतकार शैलेंद्र जी का मानवतावादी दर्शन भी झलकता है। मनुष्य जीवन भर धर्म, मूल्य और संस्कृति की बातें कहता रहता है लेकिन असल में उसका पूरा जीवन स्वार्थ के जंजाल में ही उलझा रहता है। जीवन में सत्य, ईमानदारी, सहयोग, संवेदना, मानवता आदि का महत्त्व था लेकिन मनुष्य केवल मेरा...मेरा कहता रह जाता है और अपने जीवन को झूठी शान-शौकत के साधन जुटाने में व्यर्थ गँवा देता है। इसलिए गीतकार शैलेंद्र लिखते हैं- 'तुम्हारे महल चौबारे / यहीं रह जाएंगे सारे/ अकड़ किस बात कि प्यारे/ अकड़ किस बात कि प्यारे/ ये सिर फिर भी झुकाना है।''[3] अर्थात् मनुष्य जीवनभर अपने दौलत, संपत्ति का रौब झाड़कर सभी को अपने अंकित रखना

चाहता है। लेकिन मृत्यु जीवन की वह सच्चाई है जहाँ सभी को एक दिन अपना सिर झुकाना ही पड़ता है। एक दिन सभी को उस ईश्वर के पास जाना है और अपने कर्मों का हिसाब देना है। इसलिए हमें कभी झूठा आचरण नहीं करना चाहिए। स्वार्थवश किसी को ठगना नहीं चाहिए। यहाँ तुम्हारे पास हाथी, घोड़े, गाडियाँ, बंगले होंगे लेकिन वहाँ पैदल ही जाना है। सत्य, सादगी एवं संवेदना की राह पर चलने का संदेश यह गीत देता है।

3. चलत मुसाफिर मोह लियो रे पिंजडे वाली मुनिया:

विवेच्य गीत हिंदी सिनेमा जगत में काफी लोकप्रिय रहा है । बिहार की लोकसंस्कृति पर आधारित इस गीत में समाज की विसंगतियों की तीखी आलोचना की गई है। इस गीत का भावार्थ आज भी प्रासंगिक लगता है। शैलेंद्र जी ने यह गीत भोजपुरी बोली की ठसक में लिखा है। इसमें प्रेम के पिंजडे में बंद चिड़ियाँ और उस पर मोह में फँसे प्रेमी को प्रतीकात्मक अंदाज में पेश किया गया है। फिल्म की नायिका हीराबाई एक नौटंकी में नाच-गाना करने के लिए मजबूर है जो नौटंकी के मालिक के चंगुल में फँसी चिड़ियाँ है और भोला-भाला हीरामन उसके प्रेम मोह में बँध गया है। यह चिड़ियाँ जब मुक्त होकर हलवाई के दूकान, कपड़े के दूकान, पान की दूकान में जहाँ बैठती है तो वह क्रमश: बरफी, कपड़ा और बीड़े का रस सोख लेती है। अर्थात् हीराबाई एक ऐसी प्रेमिका है, जिसका कोई एक ठिकाना नहीं है। वह जहाँ पर भी नौटंकी के लिए जाती है वहाँ के लोगों का मन मोह लेती है। और ऐसी प्रेमिका से हीरामन को प्रेम होता है। लेकिन वह उसके प्रेम को स्वीकार करने में असमर्थ रहती है।

4. पान खाए सैयाँ हमारो...:

विवेच्य गीत नौटंकी कला शैली को प्रस्तुत करनेवाल गीत है। यह गीत बिहार की लोकसंस्कृति एवं नौटंकी कला का परिचायक है। प्रस्तुत गीत में एक प्रेमी जोड़े की नोंक-झोंक एवं झूठा-झूठा गुस्सा व्यक्त हुआ है। पति-पत्नी के बीच की यह नोंक-झोंक बिहार के लोकजीवन एवं दाम्पत्य प्रेम को व्यक्त करती है। नायिका अपने साँवले पति के अल्हड़पन, गैर जिम्मेदारी की शिकायत करती नज़र आती है। पति की अपनी दुनिया है और वह अपनी दुनिया में ही खोया रहता है। उसे अपने प्रेमिका या पत्नी की जरा-सी भी फिक्र नहीं है। अगर वह उससे कुछ चीजें माँगती है तो वह दूसरी ही चीजें लेकर आता है-''हमने मँगाई सूरमेदानी/ ले आया जालिम बनारस का जर्दा/ अपनी ही दुनया में खोया रहे वो/ हमरे दिल की ना पूछे बेदर्दा।''[4] स्पष्ट है कि इस गीत में शैलेंद्र जी ने पति-पत्नी के बीच के मनोरंजक नोंक-झोक को बहुत ही सुरमय अंदाज में व्यक्त किया है। यह बिहार लोक आँचल के दाम्पत्य जीवन की मासुमियत को भी स्पष्ट करता है।

5. सजनवा बैरी हो गए हमार:

'सजनवा बैरी हो गए हमार' यह गीत फिल्म में विरह गीत के रूप में प्रस्तुत हुआ है। जब हीरामन गाड़ीवान नौटंकी की कलाकार हीराबाई को उसके वांछित जगह पर छोड़ने जाता है तब हीराबाई के मन में 'महुआ घटयारिन' की लोककथा सुनने की रूचि निर्माण हो जाती है और वह हीरामन से उस कहानी को सुनाने की जिद करती है। हीराबाई को कथा सुनाने हेतु हीरामन लीक का रास्ता छोड़कर ननकपुर के रास्ते से अपनी गाड़ी हाँकने लगता है। फिल्म में यहाँ पर महुआ घटवारिन पर आधारित लोकगीत हीरामन सुनाता है -''सूनी सेज, गोद मेरी सूनी, मरम न जाने कोय/ छटपट तड़पे प्रीत बेचारी, ममता आँसू रोए/ ना कोई इस पार हमारा/ ना कोई उस पार/ सजनवा बैरी हो गए हमारा।''[5] अर्थात् महुआ घटयारिन का प्रेम अधूरा रहता है और वह इस प्रेम के लिए आज भी तड़पती है, ऐसी दंतकथा पूरे बिहार में प्रसिद्ध है।

6. 'हाय गज़ब कहीं तारा टूटा' और 'आ आ भी जा':

प्रस्तुत दोनों गीत 'तीसरी कसम' फिल्म की नायिका के जीवन एवं नारी वेदना को मुखर करनेवाले गीत है। नायिका हीराबाई नौटंकी में नाच-गान करनेवाली कलाकार है। उसका जीवन पूर्ण रूप से नौटंकी के लिए समर्पित किया गया है। वह चाहकर भी किसी से प्रेम नहीं कर सकती क्योंकि नौटंकी के मालिकों से उसका अग्रीमेंट हो चुका है। कुछ भावुक पलों में वह हीरामन गाड़ीवान की सादगी एवं उसके नि:स्वार्थ वृत्ति की ओर आकर्षित होकर प्रेम करने लगती है। लेकिन जीवन की सच्चाई उसे हीरामन से प्यार करने की इज़ाजत नहीं देती। ये दोनों गीत भी भारतीय समाज व्यवस्था की पुरुषी सोच में जकड़ी हुई महिलाओं की वेदना को स्पष्ट करते हैं।

7. 'मारे गए गुलफाम':

'तीसरी कसम' फिल्म का एक मात्र गीत 'मारे गए गुलफाम' यह गीत हसरत जयपुरी ने लिखा है। यह गीत फिल्म के नायक हीरामन के मोहभंग एवं प्रेमभंग की वेदना को बयां करता है। हीरामन गाड़ीवान अपने जीवन में नेक दिल से सब काम करता है, उसका काम करने का उद्देश्य सरल होता है लेकिन उसे अपने अच्छे कामों का हमेशा बुरा परिणाम ही मिलता है। वह प्रेम भी

नि:स्वार्थ करता है लेकिन उसे अपना प्यार भी नसीब नहीं होता- ''आबरू की कटारी से/ नैनो की दोधारी से/ वो हो के रहे जख्मी/ इक बाद-इ-बहारी से/ वो हो के रहे जख्मी/ ये जुल्फ क्यों लहराई / अजी हाँ मारे गए गुलफाम।''[6] स्पष्ट है कि फिल्म का नायक हीरामन हमेशा लोकलाज और अपनी इज्जत का ख्याल रखते हुए जीवन जीता है। लेकिन उसे हमेशा से समाज से दु:ख ही मिलता है। वह हीराबाई के दोधारी नयनों से भी घायल होता है, पर उसका इलाज नहीं मिलता। जीवन एवं प्रेम के इस संघर्ष में यह गुलफाम हमेशा मात खाता है।

निष्कर्ष :

स्पष्ट है कि 'तीसरी कसम' फिल्म के गीत कहानी को पर्दे पर जीवंत करते हैं। फिल्म के गीत मशहूर गीतकार-कवि शैलेंद्र जी ने लिखे थे जो इस फिल्म के निर्माता भी थे। उन्होंने इस फिल्म को बनाना अपने जीवन का एक रचनात्मक अभियान बनाया था। फिल्म के सभी गीत कहानी एवं बिहार के आँचल की लोकसंस्कृति को स्पष्ट करने में सक्षम है। ग्रामीण लोक जीवन, वहाँ के लोगों का भोला-भाला जीवन एवं मानवीय मूल्यों को ये गीत बड़ी सटीकता से पेश करते हैं। सभी गानों में मानवतावादी जीवन दर्शन का छाप दिखाई देती है। ग्रामाँचलों में पनपती अधुरी प्रेम कहानियाँ और मूल्यों-परंपरा के बंधनों के जकड़ा मानवीय जीवन को ये गीत स्पष्ट करते हैं। ग्रामांचलों में मनोरंजन का आधार होने वाली नौटंकी इस कला को भी कुछ गीतों के जरिए शैलेंद्र जी ने स्पष्ट किया है। प्रेम, सादगी, विरह दाह, संवेदना, मानवता, नारी वेदना, दुनियादारी, नि:स्वार्थ जीवन, सहयोग आदि मानवीय मूल्यों को इन गीतों के जरिए स्पष्ट करने में गीतकार शैलेंद्र सफल हुए हैं। इस कारण 'तीसरी कसम'के कुछ गीत आज भी प्रासंगिक लगते हैं।

संदर्भ-सूची :-

1. गोकुल, बॉलीवुड संगीत का विकास : क्लासिक्स से लेकर समकालीन हिट्स तक, www.artium.academy.com से उद्धृत
2. संपा. अमित चक्रदेव, हिंदी सिनेमा, गीत, संगीत की वेबसाईट www.Lyricsindia.net से उद्धृत
3. वही, www.Lyricsindia.net से उद्धृत
4. www.geetmanjusha.com से उद्धृत
5. संपा. ललित कुमार, wwwkavitakosh.com से उद्धृत
6. संपा. अमित चक्रदेव, हिंदी सिनेमा, गीत, संगीत की वेबसाईट www.Lyricsindia.net से उद्धृत

*****

स्वर से चेतना तक : हिंदी गीत–ग़ज़लों में स्त्री संवेदना और मानवीय दृष्टि का विकास

प्रा. आसमा मकबूल सौंदलगे -बेग
देवचंद महाविद्यालय अर्जुन नगर
ता- कागल, जि- कोल्हापुर पिन -591237
मेल – asmabaig1002@gmail.com.

शोध-आलेख सारांश -

हिंदी गीतों और ग़ज़लों की परंपरा में स्त्री चेतना एक ऐसी सजीव भावधारा के रूप में विकसित हुई है, जिसने नारी को मात्र सौंदर्य, प्रेम और करुणा की प्रतीकात्मक उपस्थिति से ऊपर उठाकर संवेदना, स्वत्व और सामाजिक विचार के केंद्र में स्थापित किया है। प्रारंभिक हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री की छवि यद्यपि प्रेरणा अथवा सौंदर्य के रूप में उभरती है, किंतु सामाजिक संरचना और साहित्यिक चेतना के क्रमिक विकास के साथ यह छवि आत्मसजग, प्रश्नाकुल और वैचारिक स्वर ग्रहण करती चली जाती है।

भक्ति युग में मीराबाई के पद स्त्री के आत्मस्वर को पहली बार सशक्त और निर्भीक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। उनका भक्ति भाव केवल आध्यात्मिक समर्पण नहीं, बल्कि सामाजिक बंधनों और पितृसत्तात्मक मर्यादाओं के विरुद्ध एक आंतरिक प्रतिरोध के रूप में भी देखा जा सकता है। इस स्तर पर स्त्री चेतना भावुकता के भीतर निहित आत्मनिर्णय की शक्ति के रूप में सामने आती है। इसके विपरीत रीतिकालीन गीतों और काव्य में स्त्री पुनः सौंदर्य-वस्तु के रूप में सीमित हो जाती है, किंतु छायावाद युग में महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान जैसी कवयित्रियों ने स्त्री की करुणा, पीड़ा और आत्मसंघर्ष को मानवीय संवेदना के गहन प्रतीक के रूप में पुनः प्रतिष्ठित किया।

हिंदी ग़ज़ल परंपरा में स्त्री चेतना आरंभ में सांकेतिक और प्रतीकात्मक रूप में अभिव्यक्त होती रही है। प्रारंभिक ग़ज़लों में स्त्री प्रायः मौन प्रेमिका के रूप में उपस्थित है, किंतु आधुनिक ग़ज़लों में यही मौन अर्थपूर्ण प्रतिरोध का स्वर ग्रहण कर लेता है। कैफ़ी आज़मी, निदा फ़ाज़ली और गुलज़ार, हिमांशी बाबरा, आरती कुमारी ,पूनम सिंहा जैसे रचनाकारों की ग़ज़लों में स्त्री केवल भावनात्मक आकांक्षा का विषय नहीं रहती, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने वाली संवेदनशील चेतना के रूप में उभरती है। स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री को एक पूर्ण मानव-सत्ता के रूप में देखने की प्रवृत्ति अधिक सशक्त होती है। नीरज, शैलेंद्र, नूरन सिस्टर्स, कौसर मुनीर के गीतों में स्त्री जीवन की सहयात्री, दृष्टा और विचारशील व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। समकालीन हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री चेतना और अधिक व्यापक आयाम ग्रहण करती है, जहाँ वह अपने अस्तित्व, स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और सामाजिक अधिकारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति करती है।

प्रस्तुत शोध-आलेख हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री चेतना की इसी ऐतिहासिक और भावात्मक यात्रा का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि गीत और ग़ज़ल केवल सौंदर्यात्मक काव्य-विधाएँ नहीं हैं, बल्कि वे स्त्री-केंद्रित मानवीय संवेदना, सामाजिक प्रतिरोध और सांस्कृतिक विमर्श के सशक्त माध्यम भी हैं। इस प्रकार हिंदी गीत और ग़ज़ल स्त्री को साहित्यिक केंद्र से सामाजिक केंद्र तक स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मुख्य बिंदु – स्त्री चेतना, मानवीय संवेदना, हिंदी गीत, ग़ज़ल, आधुनिक साहित्य

शोध – आलेख की पृष्ठभूमि -

हिंदी साहित्य में गीत और ग़ज़ल सदैव मानवीय अनुभूति की अभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम रहे हैं। इन काव्य-विधाओं ने समाज के सूक्ष्म भावबोध, सांस्कृतिक मूल्य और नैतिक दृष्टि को शब्द प्रदान किए हैं। विशेषतः स्त्री की उपस्थिति इन विधाओं में केवल साहित्यिक विषय के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संवेदना के संकेतक के रूप में उभरती रही है। इसके बावजूद, स्त्री चेतना के अध्ययन में गीत और ग़ज़ल जैसी भावप्रधान विधाओं को अपेक्षाकृत कम केंद्र में रखा गया है।

अधिकांश आलोचनात्मक अध्ययनों में स्त्री चेतना का विवेचन प्रायः उपन्यास, कहानी अथवा वैचारिक गद्य के संदर्भ में किया गया है, जबकि गीत और ग़ज़ल में अभिव्यक्त स्त्री संवेदना को या तो सौंदर्यात्मक अनुभूति मानकर सीमित कर दिया गया है या उसे भावुकता की श्रेणी में रखकर गंभीर सामाजिक विमर्श से अलग कर दिया गया है। परिणामस्वरूप इन विधाओं में निहित स्त्री अनुभवों की मानवीय और सामाजिक गहराई पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है।

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में स्त्री की स्थिति, उसकी भूमिका और उसकी चेतना निरंतर पुनर्परिभाषित हो रही है। ऐसे समय में यह आवश्यक हो जाता है कि साहित्यिक अभिव्यक्तियों को नए दृष्टिकोण से देखा जाए और यह समझा जाए कि गीत और ग़ज़ल जैसी

लोकप्रिय तथा प्रभावशाली विधाएँ स्त्री चेतना को किस प्रकार रूपायित करती हैं। विशेष रूप से यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि क्या इन काव्य रूपों में स्त्री केवल भावनात्मक विषय बनी रहती है, या वह सामाजिक अनुभव और मानवीय विवेक की सक्रिय वाहक भी है।

इसी संदर्भ में हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री चेतना और मानवीय संवेदना का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। यह शोध - आलेख इस आवश्यकता से प्रेरित है कि गीत और ग़ज़ल को केवल सौंदर्यपरक अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद और संवेदनात्मक विमर्श के माध्यम के रूप में समझा जाए। प्रस्तुत अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार स्त्री अनुभव इन विधाओं में निजी भावुकता से आगे बढ़कर सामाजिक अर्थ और मानवीय मूल्य ग्रहण करता है। अतः यह शोध – आलेख हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना के अध्ययन को एक नए काव्यात्मक परिप्रेक्ष्य से देखने की आवश्यकता को रेखांकित करता है और यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि गीत और ग़ज़लें स्त्री अनुभव को सामाजिक चेतना से जोड़ने में किस सीमा तक सक्षम हैं। इसी शोधात्मक आवश्यकता के कारण यह अध्ययन प्रासंगिक और अनिवार्य बन जाता है।

शोध – आलेख का केंद्रीय प्रश्न -

प्रस्तुत शोध – आलेख का केंद्रीय प्रश्न यह है कि हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री की प्रस्तुति क्या केवल भावनात्मक और सौंदर्यात्मक अनुभूति तक सीमित है, या वह सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और प्रतिरोध की वैचारिक भूमिका भी निभाती है। यह शोध इसी वैचारिक द्वंद्व के विश्लेषण के माध्यम से हिंदी गीत और ग़ज़ल की स्त्री-छवि के व्यापक सामाजिक अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।

शोध – आलेख के उद्देश्य -

• हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री-चेतना की अवधारणा तथा उसके ऐतिहासिक विकास-क्रम का आलोचनात्मक विश्लेषण करना।
• गीतों और ग़ज़लों में निहित मानवीय संवेदना के साहित्यिक स्वरूप को स्पष्ट करना।
• स्त्री-चेतना और सामाजिक प्रतिरोध के अंतर्संबंध को गीतात्मक और ग़ज़लात्मक अभिव्यक्ति के संदर्भ में रेखांकित करना।
• समकालीन हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री अस्मिता की वैचारिक अभिव्यक्ति का मूल्यांकन करना।

शोध – आलेख की सीमाएँ -

यह शोध – आलेख चयनित हिंदी गीतों और ग़ज़लों के साहित्यिक एवं भावात्मक विश्लेषण तक सीमित है। इस अध्ययन में सांख्यिकीय या क्षेत्रीय सर्वेक्षण को सम्मिलित नहीं किया गया है। अध्ययन का केंद्र मुख्यतः स्त्री-चेतना और मानवीय संवेदना है; अतः अन्य सामाजिक एवं वैचारिक विमर्श सहायक संदर्भ के रूप में ही प्रयुक्त किए गए हैं।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में गीत और ग़ज़ल ऐसी काव्य-विधाएँ हैं, जो मानवीय अनुभूति की सबसे सूक्ष्म परतों को स्वर देने की क्षमता रखती हैं। इन विधाओं का महत्व केवल सौंदर्यात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में भी रहा है। विशेष रूप से स्त्री की उपस्थिति इन रचनाओं में समय के साथ निरंतर रूपांतरित होती दिखाई देती है, जो साहित्य और समाज के अंतर्संबंध को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। परंपरागत काव्य संरचना में स्त्री को प्रायः प्रेम, विरह और सौंदर्य की सीमाओं में देखा गया, किंतु सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा और वैचारिक आंदोलनों के प्रभाव से यह दृष्टि धीरे-धीरे परिवर्तित होती गई। गीत और ग़ज़ल जैसे भावप्रधान माध्यमों ने इस परिवर्तन को संवेदनशील ढंग से अभिव्यक्त किया, जहाँ स्त्री अनुभव केवल व्यक्तिगत न रहकर सामाजिक अर्थ ग्रहण करता है।

स्त्री चेतना का साहित्यिक अध्ययन प्रायः कथात्मक और वैचारिक विधाओं तक सीमित रहा है, जबकि गीत और ग़ज़ल जैसी काव्य विधाओं में निहित स्त्री संवेदना पर अपेक्षाकृत कम शोध हुआ है। इसी रिक्ति को ध्यान में रखते हुए यह शोध – आलेख हिंदी गीतों और ग़ज़लों को स्त्री चेतना और मानवीय संवेदना के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करता है।
यह शोधपत्र गीत–ग़ज़लों को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि, संवेदनात्मक संवाद और नैतिक चेतना के माध्यम के रूप में समझने की दिशा में अग्रसर है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध – आलेख में साहित्यिक सौंदर्य और सामाजिक विमर्श के मध्य एक संतुलित आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने का प्रयास करता है।

जहाँ शब्द स्त्री बनते हैं : हिंदी गीत–ग़ज़लों में स्त्री-संवेदना और चेतना का ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य:

हिंदी गीत–ग़ज़लें साहित्य की वे विधाएँ हैं जहाँ भाषा केवल सौंदर्य का उपकरण न रहकर सामाजिक चेतना का संवाहक बन जाती है। इन विधाओं में शब्द इतिहास, संस्कृति और मानवीय अनुभवों के संचित अर्थों को अपने भीतर समेटते

हुए धीरे-धीरे एक संवेदनात्मक संरचना का निर्माण करते हैं। इसी संरचना में स्त्री-अनुभव एक केन्द्रीय संदर्भ के रूप में उभरता है, जो केवल लिंग आधारित पहचान तक सीमित न होकर सामाजिक शक्ति-संतुलन, नैतिक मूल्यों और मानवीय करुणा की पुनर्व्याख्या करता है। गीत और ग़ज़लों में स्त्री का स्वर इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि वह निजी अनुभूति को सामूहिक चेतना में रूपांतरित करता है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह कथन इस संदर्भ में विशेष अर्थ रखता है—"काव्य जीवन की अनुभूति को तीव्र और व्यापक बनाता है।"स्त्री चेतना को गीत और ग़ज़लों में समझने के लिए केवल स्त्री पात्रों की उपस्थिति को देखना पर्याप्त नहीं है; यह देखना अधिक आवश्यक है कि स्त्री को किस दृष्टि से देखा गया है, उसे बोलने का अवसर मिला है या नहीं, और उसकी संवेदना को मानवीय मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है या नहीं। प्रारंभिक हिंदी गीत परंपरा में स्त्री प्रायः सौंदर्य, करुणा और प्रेम की मूर्ति के रूप में उपस्थित होती है। वह प्रेरणा है, भावना है, लेकिन स्वतंत्र चेतना नहीं। यह स्थिति उस समाज का साहित्यिक प्रतिबिंब है, जहाँ स्त्री का जीवन परिवार और परंपरा की सीमाओं में बँधा हुआ था।

भक्ति काल इस संदर्भ में एक ऐतिहासिक परिवर्तन प्रस्तुत करता है। यहाँ गीतों में स्त्री पहली बार स्वयं बोलती हुई दिखाई देती है। मीराबाई के पदों में स्त्री का स्वर केवल ईश्वर से संवाद नहीं करता, बल्कि समाज से भी टकराता है— "लोक-लाज कुल-कान्ही तजि, गिरधर के गुण गाऊँ।" इस पंक्ति की व्याख्या केवल भक्ति के स्तर पर करना स्त्री चेतना के साथ अन्याय होगा। यहाँ 'लोक-लाज' और 'कुल-कान्ही' का त्याग सामाजिक नियंत्रण के विरुद्ध एक स्पष्ट घोषणा है। मीरा का प्रेम आध्यात्मिक अवश्य है, किंतु उसका स्वर आत्मनिर्णय और स्वतंत्रता का स्वर भी है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा है—"मीरा की साधना में नारी आत्मा की स्वतंत्रता पहली बार निर्भीक रूप में व्यक्त हुई है।" इस प्रकार भक्ति गीतों में स्त्री चेतना मानवीय संवेदना के साथ जुड़कर आत्ममुक्ति की वैचारिक भूमि तैयार करती है। यह चेतना आगे चलकर आधुनिक स्त्री विमर्श की आधारशिला बनती है।

रीतिकाल में यह प्रवाह अचानक संकुचित होता दिखाई देता है। गीतों में स्त्री का चित्रण अत्यधिक सौंदर्य-केंद्रित हो जाता है। नख-शिख वर्णन, श्रृंगार और देह सौंदर्य के बिंब स्त्री को एक कलात्मक वस्तु में बदल देते हैं। इस काल में स्त्री का मन, उसकी पीड़ा, उसकी सामाजिक स्थिति लगभग अदृश्य हो जाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन—"रीतिकालीन काव्य में नारी के आंतरिक जीवन, भाव-जगत और व्यक्तित्व की अपेक्षा उसके बाह्य सौंदर्य, रूप-वर्णन और नख-शिख चित्रण को ही प्रधानता दी गई है।" यह स्पष्ट करता है कि यह काल स्त्री चेतना के विकास में एक प्रकार का ठहराव है। मानवीय संवेदना यहाँ सौंदर्य में सिमट जाती है और चेतना की धार कुंद पड़ जाती है।

छायावाद युग में हिंदी गीतों को पुनः गहराई और आत्मिक विस्तार प्राप्त होता है। इस काल में स्त्री चेतना करुणा और वेदना के माध्यम से व्यक्त होती है, किंतु यह करुणा निष्क्रिय नहीं है। महादेवी वर्मा के गीत इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं—"मैं नीर भरी दुख की बदली, स्पंदन में चिर निस्सहाया।" यहाँ 'दुख' केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं, बल्कि अस्तित्वगत अनुभव है। महादेवी के लिए दुःख संवेदना की पराकाष्ठा है, जो मनुष्य को अधिक मानवीय बनाती है। स्वयं महादेवी वर्मा लिखती हैं—"दुःख मेरे लिए अनुभूति की पराकाष्ठा है, दुर्बलता नहीं।"

छायावादी गीतों में स्त्री चेतना समाज से प्रश्न करती है, किंतु वह प्रश्न करुणा के माध्यम से उठता है। यही कारण है कि यह चेतना पाठक के हृदय को आंदोलित करती है, टकराती नहीं। स्वतंत्रता के बाद हिंदी गीत और ग़ज़ल सामाजिक यथार्थ से सीधे जुड़ते हैं। इस दौर में स्त्री चेतना भावनात्मक सीमाओं को पार कर सामाजिक प्रतिरोध का रूप ले लेती है। साहिर लुधियानवी की पंक्तियाँ—

"औरत ने जनम दिया मर्दों को,मर्दों ने उसे बाज़ार दिया।"स्त्री के शोषण की सामाजिक संरचना को बिना किसी अलंकार के उजागर करती हैं। यहाँ गीत सौंदर्य नहीं, बल्कि सामाजिक विवेक का माध्यम बन जाता है। नामवर सिंह का यह कथन इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है—"आधुनिक साहित्य का मूल्य उसकी सामाजिक चेतना में निहित होता है।" हिंदी ग़ज़ल में स्त्री चेतना अपेक्षाकृत सूक्ष्म और सांकेतिक रूप में प्रकट होती है। ग़ज़ल की भाषा में मौन का विशेष महत्त्व है। गुलज़ार की पंक्ति—"ख़ामोशी का हासिल भी इक लम्बी सी ख़ामोशी थी ।" स्त्री के दबे हुए अनुभवों, अनकहे प्रश्नों और आंतरिक प्रतिरोध को स्वर देती है। यहाँ मौन कमजोरी नहीं, बल्कि गहन संवेदना का प्रतीक बन जाता है। समकालीन हिंदी गीतों और ग़ज़लों में स्त्री चेतना आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता और निर्णय की स्वतंत्रता से जुड़ती है। स्त्री अब प्रेम में भी अपनी अस्मिता के साथ उपस्थित होती है। वह त्याग की मूर्ति नहीं, बल्कि संवाद की सहभागी बनती है। यह परिवर्तन गीत और गज़लों की परंपरा को मानवीय और सामाजिक दोनों स्तरों पर समृद्ध करता है। इस प्रकार हिंदी गीत और ग़ज़लों में स्त्री चेतना का ऐतिहासिक प्रवाह केवल साहित्यिक विकास नहीं, बल्कि

समाज की बदलती मानसिकता का दर्पण है। यह चेतना सौंदर्य से संवेदना, संवेदना से विचार और विचार से सामाजिक हस्तक्षेप तक की यात्रा तय करती है। यही यात्रा इस शोधपत्र की वैचारिक आत्मा है।

मौन से मुखरता तक : आधुनिक हिंदी गीत–ग़ज़लों में स्त्री चेतना का विकास:

आधुनिक और समकालीन हिंदी गीत–ग़ज़लों में स्त्री-चेतना का स्वर केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि समय की माँग बनकर उभरता है। यह वह संवेदनात्मक परिवर्तन है जहाँ स्त्री की अनुभूति निजी न रहकर सामाजिक अनुभव में बदल जाती है। गीत और ग़ज़ल, जो सदियों से मानवीय भावनाओं के सबसे कोमल माध्यम रहे हैं, इसी परिवर्तन को सबसे पहले आत्मसात करते हैं। इसलिए जब स्त्री-चेतना गीतों में प्रकट होती है, तो वह केवल स्त्री की नहीं, बल्कि पूरे समाज की संवेदना बन जाती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी गीतों में स्त्री की उपस्थिति एक नए आत्मबोध के साथ दिखाई देती है। अब वह केवल प्रेम की प्रतीक्षा में बैठी नायिका नहीं है, बल्कि संबंधों में अपनी शर्तें, सीमाएँ और आकांक्षाएँ स्पष्ट करती हुई दृष्टिगोचर होती है। साहिर लुधियानवी के गीत इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनके यहाँ प्रेम हमेशा सामाजिक सच्चाइयों से जुड़ा रहता है। "चलो इक बार फिर से अजनबी बन जाएँ हम दोनों।" यह पंक्ति केवल टूटते संबंध की व्यथा नहीं है, बल्कि स्त्री की उस चेतना का संकेत है जो अपमानजनक या खोखले रिश्तों को स्वीकार करने से इनकार करती है। यहाँ स्त्री का भावनात्मक निर्णय स्वयं में एक वैचारिक घोषणा बन जाता है।कैफ़ी आज़मी की रचनाओं में यह चेतना और अधिक सघन हो जाती है। उनके गीतों में स्त्री कोमलता और संघर्ष—दोनों का संतुलित रूप है।"उठ मेरी जान, मेरे साथ ही चलना है तुझे।" यह आह्वान प्रेम का है, पर उसमें आदेश नहीं, साझेदारी है। यहाँ स्त्री किसी के पीछे नहीं चलती, बल्कि साथ चलती है। यही साथ चलने की भावना स्त्री-चेतना को मानवीय चेतना से जोड़ देती है। कैफ़ी की भाषा भावनात्मक होते हुए भी सामाजिक प्रतिबद्धता से मुक्त नहीं होती। जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है, हिंदी गीतों में स्त्री का स्वर और अधिक आत्मविश्वासी होता जाता है। सत्तर और अस्सी के दशक के गीतों में स्त्री अपने मौन के माध्यम से भी बोलती है। गुलज़ार के गीत इस मौन की सबसे सुंदर अभिव्यक्ति हैं।

"लफ़्ज़ों की ज़रूरत नहीं हर बार,
कुछ खामोशियाँ भी बहुत कुछ कह जाती हैं।"

यह पंक्ति स्त्री की आंतरिक दुनिया को उजागर करती है। यहाँ मौन कमजोरी नहीं, बल्कि गहरी आत्मचेतना का प्रतीक बन जाता है। गुलज़ार की स्त्री रोती नहीं, विलाप नहीं करती—वह समझती है, सोचती है और निर्णय लेती है। यही निर्णय उसे भावनात्मक नहीं, बल्कि वैचारिक रूप से सशक्त बनाता है। ग़ज़ल परंपरा में समकालीन शायरों ने स्त्री-चेतना को और अधिक यथार्थपरक बनाया है। निदा फ़ाज़ली, और बशीर बद्र की ग़ज़लों में स्त्री जीवन की जटिलताओं से गुजरती हुई दिखाई देती है।"कुछ रिश्ते ज़िंदगी भर के लिए नहीं होते, कुछ बस हमें समझदार बनाने आते हैं।" इस प्रकार की पंक्तियाँ स्त्री अनुभव को सार्वभौमिक मानवीय अनुभव में बदल देती हैं। यहाँ स्त्री का दर्द केवल उसका निजी दुख नहीं रह जाता, बल्कि जीवन की सच्चाई बन जाता है। समकालीन हिंदी गीतों में स्त्री अब अपने "ना" को भी पूरे आत्मसम्मान के साथ स्वीकार करती है। "ना कहना भी अब अपनी आवाज़ है।"यह स्वर स्त्री-चेतना की परिपक्व अवस्था को दर्शाता है। यहाँ भावुकता है, पर विवेक भी है। प्रेम है, पर आत्मविलोप नहीं। यही संतुलन आधुनिक गीतों को गहराई प्रदान करता है। इस संदर्भ में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि आधुनिक हिंदी गीत–ग़ज़लें स्त्री को आदर्श या विद्रोही के खाँचों से बाहर निकालकर एक पूर्ण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उसकी संवेदना करुणा तक सीमित नहीं रहती, बल्कि आत्मसम्मान, निर्णय और नैतिक जिम्मेदारी से जुड़ जाती है। यही वह बिंदु है जहाँ स्त्री-चेतना मानवीय चेतना का विस्तार बन जाती है।

अतः आधुनिक और समकालीन हिंदी गीत–ग़ज़लें केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि वे समाज के अंतःकरण का दस्तावेज़ हैं। इनमें स्त्री की आवाज़ जितनी कोमल है, उतनी ही स्पष्ट भी। यही स्पष्टता इन्हें जीवित, प्रभावशाली और वैचारिक रूप से समृद्ध बनाती है।

समकालीन स्त्री गीत-ग़ज़लकारों में आत्म-अभिव्यक्ति और स्वानुभव का स्वर:

समकालीन हिंदी–उर्दू ग़ज़ल परंपरा में स्त्री-चेतना का सबसे महत्वपूर्ण और निर्णायक परिवर्तन यह है कि अब स्त्री केवल ग़ज़ल का विषय नहीं रही, बल्कि स्वयं अपनी ग़ज़लों की रचनाकार और प्रस्तोता के रूप में सामने आई है। यह परिवर्तन ग़ज़ल की संवेदनात्मक संरचना को भीतर से बदल देता है। जहाँ पूर्ववर्ती कालों में स्त्री का दर्द, प्रेम और पीड़ा प्रायः पुरुष रचनाकारों की दृष्टि से अभिव्यक्त होती थी, वहीं समकालीन स्त्री ग़ज़लकारों के यहाँ यह अनुभव आत्मक, स्वानुभूत और प्रत्यक्ष

हो जाता है। यहाँ स्त्री अपनी ग़ज़लें स्वयं कहती है, स्वयं मंच पर प्रस्तुत करती है और अपने अनुभवों को बिना किसी मध्यस्थ के शब्द देती है।इस दौर की स्त्री ग़ज़लकार अपने निजी अनुभवों—प्रेम, विरह, अस्वीकार, अकेलेपन और आत्मसम्मान—को न तो छिपाती हैं और न ही उन्हें अलंकारिक आवरण में ढँकती हैं। वे अपने ही शब्दों में अपने दर्द और भावों को सामाजिक अनुभव में रूपांतरित करती हैं। हिमांशी बाबरा की ग़ज़लों में यह आत्मक स्वर विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है।

दिल ऐसे मुब्तला हुआ तेरे मलाल में
ज़ुल्फ़ें सफ़ेद हो गईं उन्नीस साल में
ऐसे वो रो रहा था मिरा हाल देख कर
आया हुआ हो जैसे किसी इंतिक़ाल में

हिमांशी बाबरा की ग़ज़लों में स्त्री का स्वर भीतर से आहत, किंतु आत्मसम्मान से भरा हुआ दिखाई देता है। उनके यहाँ प्रेम टूटने के बाद भी स्त्री स्वयं को खोती नहीं, बल्कि अपने अनुभव को स्वीकारते हुए आगे बढ़ती है। उनकी ग़ज़लों में स्त्री का दर्द करुण याचना नहीं बनता, बल्कि एक संयमित, शांत और सशक्त स्वीकार में बदल जाता है। यह स्वर उस स्त्री का है जो भावुक अवश्य है, पर कमजोर नहीं—जो अपने घावों को छिपाती नहीं, पर उनसे परिभाषित भी नहीं होती।

समकालीन महिला गजलकारों ने गजल के बदलते स्वरूप के साथ हर पहलू में अपनी बात रखी है। उन्होंने परंपरागत विषयों से आगे बढ़कर अपने अंतर्मन की व्यथा, अपनी अस्मिता और स्त्री जाति के संघर्ष और निजी अनुभवों के साथ- साथ शोषण, असमानता , सियासी दांव -पेंच और मानवता पर अपनी धारदार क़लम चलाई है। सियासत पर तंज करते हुए आरती कुमारी लिखती है-

हर रोज़ है बदलती सियासत भी रूप को
मुफ़लिस है आज कितना परेशान पूछिए।
पूनम सिन्हा लिखती है –
मेहनतकश क्योंकर हैं भूखे
मन यह प्रश्न टटोलेगा अब।

इस प्रकार समकालीन स्त्री ग़ज़लकारों के यहाँ ग़ज़ल स्त्री की आंतरिक दुनिया का दस्तावेज़ बन जाती है। यहाँ स्त्री का दुख करुणा की वस्तु नहीं, बल्कि मानवीय अनुभव का सम्मानित स्वर बनता है। यह आत्मक-सृजन ग़ज़ल परंपरा में स्त्री-चेतना का वह नया चरण है, जहाँ भावनात्मक संवेदना और वैचारिक आत्मसम्मान एक साथ उपस्थित होते हैं। यही कारण है कि समकालीन स्त्री ग़ज़लें केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि स्त्री के आत्मबोध और मानवीय चेतना की सशक्त घोषणा बन जाती हैं।

गज़लों की तरह समकालीन हिंदी गीतों में स्त्री-स्वर का उभार केवल कलात्मक परिवर्तन नहीं, बल्कि एक वैचारिक हस्तक्षेप है, जो पितृसत्तात्मक सोच की जड़ों को चुनौती देता है। सोना मोहापात्रा द्वारा गाया गया गीत 'मुझे क्या बेचेगा रुपैया ' इस बदलाव का सशक्त प्रतीक है, जहाँ स्त्री स्वयं को अपनी नियति की निर्माता के रूप में प्रस्तुत करती है—

बाबुल प्यारे सजन सखा रे सुन ओ मेरी मैय्या
बोझ नहीं मैं किसी के सर का ना मझधार में नैय्या
पतवार बनूँगी लहरों से लड़ूँगी अरे मुझे क्या बेचेगा रुपैया?"

जैसी पंक्तियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि आधुनिक स्त्री आर्थिक निर्भरता और सामाजिक सौदेबाज़ी से ऊपर उठकर अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम है। यहाँ स्त्री 'संरक्षित' नहीं, बल्कि 'संघर्षशील और स्वायत्त' इकाई के रूप में उभरती है। इसी क्रम में नूरन सिस्टर्स का गाया हुआ गीत 'पटाखा गुड्डी' स्त्री की आज़ादी, ऊर्जा और आत्मविश्वास का उत्सव रचता है। "मैंने तो तेरे उत्ते छड्डियां डोरियां" जैसी पंक्तियाँ प्रतीकात्मक रूप से उस मानसिक बंधन को काटने की घोषणा हैं, जो सदियों से स्त्री को नियंत्रित करता आया है। यह गीत स्त्री को बेफिक्र, निर्भीक और जीवन से संवाद करने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है, जो समाज द्वारा खींची गई सीमाओं को अस्वीकार करती है।

इसी तरह कौसर मुनीर ने लिखा गाना 'लव यू ज़िंदगी' जैसे गीतों में स्त्री जीवन को मुस्कराकर स्वीकार करने की बात करती है और नकारात्मकता को विदा कहती है। वह कहती है – जो दिल से लगे, उसे कह दो Hi Hi Hi Hi ,जो दिल न लगे उसे कह दो Bye Bye Bye Bye …आने दो आने दो , दिल में आ जाने दो, कह दो। मुस्कुराहट को Hi Hi… जाने दे जाने दो , दिल से चले जाने दो ,कह दो घबराहट को Bye Bye…

यह गीत केवल व्यक्तिगत खुशी का आख्यान नहीं, बल्कि स्त्री के मानसिक स्वास्थ्य, आत्मस्वीकृति और आत्मसम्मान का सांस्कृतिक बयान है। इन पंक्तियों में स्त्री की भावनात्मक स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय झलकता है—जो दिल से जुड़ता है उसे अपनाना (HI) और जो मन को बोझिल करे उसे छोड़ देना (BYE)। मुस्कुराहट को स्वीकार करना और घबराहट को विदा करना, आधुनिक स्त्री की मानसिक दृढ़ता, आत्मस्वीकृति और अपने जीवन पर अधिकार का प्रतीक है। सोना महापात्र द्वारा लिखा गीत – "बेखौफ आजाद है जीना मुझे" यह इस गीत की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ स्त्री केवल गायिका नहीं, बल्कि स्त्रियों के अनुभवों, पीड़ा और आकांक्षाओं की सृजक है।

रीति कि ज़ंजीरें खा गयी ज़ंग
न्याय के मंदिर भी हो गए भंग
ज़माना चले ना चले मेरे संग
बोलूंगी हल्ला, आवाज़ दबंग

इन पंक्तियों में स्त्री के संघर्ष और विद्रोही चेतना का तीव्र स्वर मुखर होता है। "रीति की ज़ंजीरें" सामाजिक रूढ़ियों का प्रतीक हैं, जो न्याय और स्त्री संघर्ष दोनों को कुचल देती हैं। न्याय-व्यवस्था के विघटन के बावजूद, स्त्री का स्वर डगमगाता नहीं—वह अकेले भी अन्याय के विरुद्ध खड़ी है। "बोलूंगी हल्ला, आवाज़ दबंग" स्त्री की निर्भीक, प्रतिरोधी और आत्मविश्वासी पहचान को रेखांकित करता है। गीत और गज़लों में स्त्री की यह आत्मक ओर स्व प्रस्तुति साहित्य को भावनात्मक , सृजनात्मक ईमानदारी प्रदान करती है, जो आधुनिक साहित्य की एक महत्वपूर्ण माँग है।समकालीन स्त्री ग़ज़लकारों की विशेषता यह भी है कि उनकी ग़ज़लें मंचीय प्रस्तुति के माध्यम से जीवंत अनुभव बन जाती हैं। जब स्त्री अपनी ही लिखी हुई ग़ज़ल को स्वयं प्रस्तुत करती है, तो शब्द केवल साहित्य नहीं रहते, बल्कि जीवन की प्रत्यक्ष साक्षी बन जाते हैं। उसका दर्द, उसकी स्मृति, उसका प्रेम और उसका संघर्ष श्रोता तक बिना किसी व्याख्याकार के पहुँचता है ।

इस प्रकार, समकालीन स्त्री-रचित फेमिनिस्ट गीत उसी तरह निजी अनुभव को सामूहिक चेतना में रूपांतरित करते हैं, जैसे आधुनिक स्त्री ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों में आत्मकथात्मक पीड़ा को सामाजिक प्रश्न का रूप देती हैं। गीत और ग़ज़ल—दोनों माध्यमों में स्त्री अब 'कथ्य' नहीं रही, बल्कि 'कर्ता' बन चुकी है। यह बदलाव हिंदी साहित्य और सांस्कृतिक विमर्श में स्त्री की बढ़ती वैचारिक, रचनात्मक और सामाजिक उपस्थिति का सशक्त प्रमाण है।

निष्कर्ष:

हिंदी गीत और ग़ज़लें केवल भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं रहीं, बल्कि वे समय-समय पर समाज की आंतरिक चेतना की साक्षी बनती रही हैं। इस शोध – आलेख के निष्कर्षस्वरूप यह स्पष्ट होता है कि स्त्री चेतना का विकास गीत–ग़ज़लों में किसी एक कालखंड या आंदोलन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह सांस्कृतिक स्मृति, सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदना के सतत संवाद से निर्मित हुई है।

प्रारंभिक गीतात्मक परंपरा में स्त्री की उपस्थिति भावुकता और सौंदर्यबोध के माध्यम से प्रकट हुई, परंतु धीरे-धीरे वही भावुकता एक गहरी मानवीय अनुभूति में रूपांतरित होती चली गई। गीतों और ग़ज़लों ने स्त्री के मौन, उसकी प्रतीक्षा, उसके दुःख और उसकी आकांक्षाओं को केवल अभिव्यक्त ही नहीं किया, बल्कि उन्हें समाज के सामूहिक अनुभव से जोड़ दिया। यही वह बिंदु है जहाँ स्त्री की व्यक्तिगत पीड़ा मानवीय संवेदना का स्वरूप ग्रहण करती है। आधुनिक काल में यह संवेदना चेतना में परिवर्तित होती दिखाई देती है। यहाँ स्त्री गीतों और ग़ज़लों में केवल अनुभव की वाहक नहीं रहती, बल्कि अर्थ-निर्माता बनती है। उसकी आवाज़ अब सहनशीलता की सीमा को पार कर आत्मबोध, स्वत्व और नैतिक प्रतिरोध की अभिव्यक्ति बन जाती है। यह परिवर्तन दर्शाता है कि हिंदी गीत–ग़ज़ल परंपरा ने स्त्री को विषय से आगे बढ़ाकर दृष्टिकोण के रूप में स्थापित किया है। इस शोध – आलेख से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि स्त्री चेतना का यह विकास किसी टकराव की परिणति नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों के विस्तार की प्रक्रिया है। गीत और ग़ज़लें यहाँ स्त्री-पुरुष के द्वंद्व को नहीं, बल्कि संवेदना के साझे धरातल को रेखांकित करती हैं। स्त्री स्वर के माध्यम से मानवीय करुणा, प्रेम, पीड़ा और नैतिकता का व्यापक संसार निर्मित होता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी गीत–ग़ज़लों में स्त्री चेतना का स्वर सामाजिक विमर्श को कठोर घोषणाओं से नहीं, बल्कि संवेदनशील शब्दों से दिशा देता है। यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह साहित्यिक यात्रा न केवल

स्त्री के आत्मसम्मान की पुष्टि करती है, बल्कि मानवता की भावनात्मक परिपक्वता को भी समृद्ध करती है। इसी दृष्टि से हिंदी गीत–ग़ज़लें आज भी समाज के अंतःकरण की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति बनी हुई हैं।

संदर्भ सूची –

1. शुक्ल, रामचंद्र — हिंदी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1929.
2. मीरा बाई — मीरा के पद (संपा. परशुराम चतुर्वेदी) साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1945.
3. वर्मा, महादेवी — श्रृंखला की कड़ियाँ लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1942.
4. वर्मा, महादेवी — यामा ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1939.
5. चौहान, सुभद्रा कुमारी — मुकुल राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1948.
6. सिंह, नामवर — कविता के नए प्रतिमान राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1968.
7. आजमी, कैफ़ी — कैफ़ी आज़मी : प्रतिनिधि गीत और ग़ज़लें साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1975.
8. शैलेंद्र — गीतों की दुनिया प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980.
9. सिंह, नामवर — आलोचना और सिनेमा वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,1982.
10. गुलज़ार — रात पश्मीने की राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999.
11. अरौड़ा, सुधा — स्त्री और साहित्य का विमर्श वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.

*****

हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतन

प्रा. जयवंत मधुकर बाबर
डॉ. डी. वाय पाटील कला, वाणिज्य और विज्ञान महाविद्यालय,
पिंपरी, पुणे – ४११०१८
मोबाईल नं – ७३५०५४३२९४
ईमेल – babarjmdyp@gmail.com

सार (Abstract)

हिंदी साहित्य की गीत और ग़ज़ल परंपरा प्रारंभ में मुख्यतः प्रेम, सौंदर्य और आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति तक सीमित रही, किंतु बीसवीं शताब्दी में सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के प्रभाव से इनमें प्रगतिशील चेतना का विकास हुआ। प्रगतिशील आंदोलन ने साहित्य को सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष, शोषण-विरोध और लोकतांत्रिक मूल्यों से जोड़ने का मार्ग प्रशस्त किया। इस चेतना के प्रभाव से गीत और ग़ज़ल केवल भावात्मक काव्य न रहकर सामाजिक परिवर्तन के सशक्त माध्यम बन गए।

हिंदी गीतों में नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों ने किसान, मजदूर और श्रमिक वर्ग के जीवन-संघर्षों को केंद्र में रखकर जनसंवेदना को स्वर प्रदान किया। वहीं हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी ने सत्ता, भ्रष्टाचार और सामाजिक असमानता के विरुद्ध प्रतिरोध की मुखर अभिव्यक्ति की। इन रचनाकारों की कृतियों में भाषा की सहजता, प्रतीकों की सामाजिक अर्थवत्ता और यथार्थपरक दृष्टि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

प्रगतिशील चेतना के प्रभाव से गीत और ग़ज़ल में स्त्री-विमर्श, जनवादी दृष्टिकोण और मानवीय करुणा का विस्तार हुआ। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना ने साहित्य को जनजीवन से जोड़ते हुए उसे सामाजिक यथार्थ और परिवर्तनकामी विचारधारा का प्रभावी साहित्यिक माध्यम बनाया है।

कुंजी शब्द (Keywords): हिंदी गीत, हिंदी ग़ज़ल, प्रगतिशील चेतना, जनवादी साहित्य, सामाजिक यथार्थ

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य समाज की चेतना, संवेदना और विचारधारा का सजीव दस्तावेज रहा है। इसकी गीत और ग़ज़ल परंपरा प्रारंभ में प्रेम, सौंदर्य और आत्मानुभूति की कोमल अभिव्यक्ति के रूप में विकसित हुई, किंतु समय के साथ सामाजिक यथार्थ के दबावों ने इन्हें नई दिशा प्रदान की। बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्रता आंदोलन, औद्योगीकरण और सामाजिक असमानताओं के प्रभाव से साहित्य में प्रगतिशील चेतना का उदय हुआ।

यह चेतना साहित्य को केवल 'कला के लिए कला' की सीमा में नहीं रखती, बल्कि इसे सामाजिक उत्तरदायित्व, जनचेतना और मानवीय मूल्यों से जोड़ती है। हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना के प्रवेश से काव्य का स्वर बदला और उसमें जनसंघर्ष, वर्ग-चेतना, शोषण-विरोध तथा मानवीय समानता जैसे विषय प्रमुख हुए। इस प्रकार गीत और ग़ज़ल केवल भावात्मक अभिव्यक्ति न रहकर सामाजिक परिवर्तन और प्रतिरोध के सशक्त साहित्यिक माध्यम बन गए।

प्रगतिशील चेतना: अर्थ और वैचारिक आधार

प्रगतिशील चेतना का मूल आधार समाज में परिवर्तन की आकांक्षा और अन्याय के प्रति विरोध है। यह चेतना समाज में व्याप्त शोषण, असमानता और अन्याय के प्रति जागरूकता उत्पन्न करती है।

रामविलास शर्मा के अनुसार—

"प्रगतिशील साहित्य वही है जो समाज की वास्तविक परिस्थितियों को समझकर परिवर्तन की दिशा में अग्रसर होता है" (शर्मा 42)।

इस दृष्टि से प्रगतिशील साहित्य मानव-केंद्रित, जनोन्मुखी और लोकतांत्रिक मूल्यों से संपृक्त होता है। यह केवल व्यक्तिगत संवेदनाओं या सौंदर्यपूर्ण अनुभवों का प्रतीक नहीं होता, बल्कि समाज और समय की वास्तविकताओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है।

हिंदी गीत में प्रगतिशील चेतना पारंपरिक गीत और परिवर्तनशील दृष्टि

हिंदी गीत परंपरा का प्रारंभिक स्वरूप मुख्यतः भावनात्मक और आत्मानुभूतिपरक रहा है। भक्ति काल के गीतों में ईश्वर-प्रेम, भक्ति, वैराग्य और आध्यात्मिक अनुभूति की प्रधानता मिलती है, जहाँ व्यक्ति की आंतरिक भावनाएँ केंद्र में रहती हैं। इसके

पश्चात छायावाद काल के गीतों में भी व्यक्ति की आत्मा, प्रकृति-सौंदर्य और निजी संवेदनाओं को प्रमुखता दी गई। इस काल के गीतों में कल्पना, रहस्य और भावुकता की अधिकता रही, जबकि सामाजिक यथार्थ अपेक्षाकृत पृष्ठभूमि में रहा।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्वतंत्रता आंदोलन, औपनिवेशिक शोषण और सामाजिक असमानताओं ने साहित्य की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। इन परिस्थितियों के प्रभाव से हिंदी गीतों में परिवर्तनशील दृष्टि विकसित हुई और यथार्थबोध का समावेश होने लगा। अब गीत केवल व्यक्तिगत अनुभूति तक सीमित न रहकर सामाजिक जीवन की जटिलताओं को अभिव्यक्त करने लगे। किसान, मजदूर, स्त्री और शोषित वर्ग गीतों के प्रमुख विषय बने, जिनके माध्यम से सामाजिक अन्याय और वर्गीय विषमता को उजागर किया गया। (शर्मा 67)।

नागार्जुन के गीत

नागार्जुन के गीत हिंदी साहित्य में प्रगतिशील चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में जनसामान्य के जीवन-संघर्ष, पीड़ा और आकांक्षाओं को केंद्र में रखा। उनके गीतों में किसान, मजदूर और शोषित वर्ग की वास्तविक स्थितियों का यथार्थपूर्ण चित्रण मिलता है। राजनीतिक व्यंग्य और सत्ता-विरोध उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं, जिनके माध्यम से वे सामाजिक अन्याय और व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रहार करते हैं।

नागार्जुन की भाषा सरल, सहज और जनसामान्य के निकट है, जिससे उनकी रचनाएँ व्यापक सामाजिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार जनचेतना को स्वर देना नागार्जुन की प्रगतिशील काव्य-दृष्टि का मूल आधार है (नागार्जुन 55)।

त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल

त्रिलोचन के गीत ग्रामीण जीवन और श्रमशील समाज की यथार्थपूर्ण अभिव्यक्ति हैं। उनके गीतों में ग्रामीण जीवन की कठिनाइयों, श्रमिक वर्ग के संघर्ष और उनके अधिकारों की मांग को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

केदारनाथ अग्रवाल ने श्रमिक चेतना और प्रकृति-बोध को प्रगतिशील दृष्टि से प्रस्तुत किया। उनके गीतों में श्रम की गरिमा और वर्गीय यथार्थ स्पष्ट रूप से उभरता है (अग्रवाल 39)।

इन दोनों कवियों के गीत सामाजिक यथार्थ को संवेदनशीलता और वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ उद्घाटित करते हैं।

हिंदी ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना

हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप

हिंदी ग़ज़ल का विकास उर्दू ग़ज़ल की समृद्ध परंपरा से प्रेरित होकर हुआ, किंतु हिंदी साहित्य में प्रवेश करते ही उसने अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित की। प्रारंभिक हिंदी ग़ज़लों में प्रेम, विरह, अकेलापन और व्यक्तिगत पीड़ा जैसे भावनात्मक विषय प्रमुख रहे। इनमें अभिव्यक्ति का स्वर व्यक्तिगत अनुभूतियों तक सीमित था और सामाजिक यथार्थ पृष्ठभूमि में रहता था।

बीसवीं शताब्दी के सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों, स्वतंत्रता आंदोलन तथा लोकतांत्रिक चेतना के प्रभाव से हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप बदलने लगा। धीरे-धीरे ग़ज़ल में सामाजिक अन्याय, राजनीतिक विसंगतियाँ, सत्ता की निरंकुशता और आम जनजीवन की समस्याएँ स्थान पाने लगीं। इस परिवर्तन के साथ ग़ज़ल की संवेदना व्यापक हुई और वह व्यक्तिगत भावुकता से आगे बढ़कर सामाजिक सरोकारों से जुड़ गई। (सिंह 88)।

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें

` दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़ल को प्रगतिशील चेतना से जोड़ा। उनकी ग़ज़लें सत्ता, भ्रष्टाचार और सामाजिक जड़ता पर तीखा प्रहार करती हैं। उनका प्रसिद्ध शेर सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को व्यक्त करता है—

"हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए, इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए" (कुमार 57) ।

यह शेर लोकतांत्रिक चेतना और सामाजिक परिवर्तन की मांग का प्रतीक बन गया है।

अदम गोंडवी की ग़ज़लें

अदम गोंडवी की ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना की अत्यंत सशक्त और मुखर अभिव्यक्ति मानी जाती हैं। उनकी रचनाओं का केंद्र आम आदमी का जीवन, उसका संघर्ष और उसकी पीड़ा है। वे ग़ज़ल को प्रेम और व्यक्तिगत अनुभूति की सीमाओं से बाहर निकालकर सामाजिक प्रतिरोध का माध्यम बनाते हैं।

अदम गोंडवी की भाषा अत्यंत सरल, सीधी और तीखी है, जो जनसामान्य के अनुभवों से सीधे जुड़ती है। उनकी ग़ज़लों में वर्ग-चेतना, राजनीतिक भ्रष्टाचार और लोकतांत्रिक व्यवस्था की विडंबनाओं पर तीखा व्यंग्य मिलता है (गोंडवी 22)।

उनकी प्रसिद्ध ग़ज़ल का यह शेर सामाजिक असमानता पर सीधा प्रश्न उठाता है—

"सौ में सत्तर आदमी फिलहाल जब नाशाद हैं, दिल पे रखकर हाथ कहिए देश क्या आज़ाद है?"
यह शेर लोकतंत्र की वास्तविक स्थिति और आर्थिक विषमता को उजागर करता है। एक अन्य शेर में सत्ता-विरोध स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है—
"जो डलहौज़ी न कर पाया, वही अब कर रहे हैं लोग, कि जंगल काटकर संसद बनाने जा रहे हैं लोग।"
इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि अदम गोंडवी की ग़ज़लों में प्रतिरोध की वैचारिक दृढ़ता, जनसंघर्ष की चेतना और सामाजिक न्याय की मांग प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त होती है।

गीत और ग़ज़ल में स्त्री-विमर्श

प्रगतिशील चेतना के प्रभाव से हिंदी गीत और ग़ज़ल में स्त्री की छवि में गहन और समग्र परिवर्तन आया है। पारंपरिक गीतों और प्रारंभिक ग़ज़लों में स्त्री प्रायः प्रेम की वस्तु, सुन्दरी या व्यक्तिगत अनुभूति की केंद्र बिंदु के रूप में प्रस्तुत होती थी।
प्रगतिशील दृष्टिकोण ने इस परंपरा को चुनौती दी और स्त्री को समाज में सक्रिय भूमिका देने पर बल दिया। अब गीत और ग़ज़ल में स्त्री केवल प्रेम की वस्तु न रहकर सामाजिक संघर्ष, प्रतिरोध और बदलाव की सक्रिय इकाई बनती है। कवियों ने स्त्री-शोषण, सामाजिक और आर्थिक असमानता, जाति और लिंग आधारित भेदभाव, तथा स्त्री अस्मिता जैसे विषयों को अपने काव्य का मुख्य केंद्र बनाया।

भाषा और शिल्प की विशेषताएँ

प्रगतिशील गीत और ग़ज़ल की भाषा सरल, सहज और जनसामान्य के निकट होती है। कवियों ने जटिल या अत्यधिक अलंकारिक शब्दावली का प्रयोग कम किया और संवादात्मक, प्रभावशाली भाषा को प्राथमिकता दी।
प्रतीक और बिंब इन रचनाओं में सामाजिक यथार्थ से सीधे जुड़े होते हैं। उदाहरण स्वरूप, नागार्जुन के गीतों में खेतों, मजदूरों और ग्रामीण जीवन के दृश्य प्रतीकात्मक रूप से सामाजिक संघर्ष और जीवन की कठिनाइयों की गहरी समझ प्रस्तुत करते हैं। गोंडवी की ग़ज़लों में सत्ता, भ्रष्टाचार और वर्गीय असमानता के बिंब तीखे और प्रभावपूर्ण होते हैं, जो पाठक को समाज की वास्तविकताओं से अवगत कराते हैं (गोंडवी 22)।
राम नामवर सिंह के अनुसार,
"प्रगतिशील गीत और ग़ज़ल में सरलता, संप्रेषणीयता और प्रतीकात्मकता का संतुलन पाठक के मानस पर गहरा प्रभाव डालता है" (सिंह 112)।

समकालीन संदर्भ

समकालीन हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना नए सामाजिक और वैश्विक संदर्भों के अनुसार विकसित हो रही है। वैश्वीकरण, बेरोज़गारी, सांप्रदायिकता, पर्यावरण संकट और तकनीकी परिवर्तन ने समाज में नए संघर्ष और चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं।
इन संदर्भों ने कविता और ग़ज़ल की विषय-वस्तु को भी प्रभावित किया है। समकालीन कवि इन समस्याओं को गीत और ग़ज़ल की अभिव्यक्ति में शामिल कर रहे हैं। उदाहरण स्वरूप, आधुनिक गीतों में ग्रामीण बेरोज़गारी, शिक्षा और स्वास्थ्य के मुद्दे, शहरों में बढ़ती सामाजिक असमानता और स्त्री अधिकारों पर ध्यान आकर्षित किया गया है। ग़ज़लों में प्रदूषण, जल संकट और राजनीतिक भ्रष्टाचार जैसे विषय प्रमुख रूप से प्रकट होते हैं।

निष्कर्ष

हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रगतिशील चेतना ने साहित्य को केवल भावनात्मक और सौंदर्यपरक अभिव्यक्ति तक सीमित रहने से बाहर निकालकर उसे सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय यथार्थ से जोड़ दिया है। प्रगतिशील कवियों ने अपने काव्य में किसान, मजदूर, श्रमिक और शोषित वर्ग के जीवन, संघर्ष और आकांक्षाओं को केंद्र में रखा, जिससे जनचेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना प्रबल हुई।

नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारनाथ अग्रवाल जैसे गीतकारों ने ग्रामीण जीवन और श्रमशील समाज की यथार्थपूर्ण छवियों के माध्यम से समाज की विसंगतियों को उजागर किया। इसी प्रकार दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी ने ग़ज़ल को सत्ता-विरोध, भ्रष्टाचार और सामाजिक असमानता के प्रतिरोध का माध्यम बनाया।

प्रगतिशील चेतना ने स्त्री-विमर्श में भी गहरा परिवर्तन किया; स्त्री अब केवल प्रेम या सुंदरी नहीं, बल्कि सामाजिक संघर्ष और बदलाव की सक्रिय इकाई बनकर उभरी। भाषा और शिल्प की सरलता, प्रतीकात्मकता और जनसामान्य के निकटता ने इन रचनाओं की प्रभावशीलता बढ़ाई।

समकालीन संदर्भों में यह चेतना वैश्वीकरण, पर्यावरण संकट, बेरोज़गारी और सामाजिक असमानता जैसे विषयों से जुड़कर आज भी हिंदी गीत और ग़ज़ल को सामाजिक बदलाव और जनसाधारण की आवाज़ का सशक्त माध्यम बनाती है। स्पष्ट है कि प्रगतिशील दृष्टि के बिना आधुनिक हिंदी गीत और ग़ज़ल की परंपरा अधूरी और अपूर्ण मानी जाएगी।

संदर्भ-सूची :-

- रामविलास शर्मा- *प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
- दुष्यंत कुमार- *साये में धूप*, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1975
- अदम गोंडवी- *धरती की सतह पर*, वाणी प्रकाशन, 2008 (अनुवर्ती संस्करण)
- नागार्जुन- *प्रतिनिधि कविताएँ*, राजकमल प्रकाशन, 2020
- केदारनाथ अग्रवाल- *फूल नहीं, रंग बोलते हैं*, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1965
- नामवर सिंह- *कविता के नए प्रतिमान*, राजकमल प्रकाशन, 2024

*****

वर्तमान परिवेश पर व्यंग्य करता : 'हालत ए वतन'

प्रा. बापू नानासाहेब शेळके
हिंदी विभाग,
नूतन विद्या प्रसारक मंडळ लासलगाव,
कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय लासलगाव

शोध आलेख सारांश :

प्रस्तुत शोध आलेख में कवि बृजेश सिंह के ग़ज़ल संग्रह 'हालत ए वतन' के ग़ज़लों के द्वारा वर्तमान परिवेश में व्याप्त विभिन्न समस्याओं पर प्रहार किया हैं। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता आज के वर्तमान युग के परिदृश्य हैं। जो युग का प्रतिबिंब है, दुर्भाग्य से इस परिदृश्य में व्याप्त असंगतियाँ समाज को खोकला बना रहीं हैं। जिसका असर भविष्य की पीढ़ियों पर हो रहा हैं। कवि बृजेश सिंह अपनी ग़ज़लों में वर्तमान परिवेश पर व्यंग्य करते हैं।

बीज शब्द :

ग़ज़ल, व्यंग्य, धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा, साहित्य, भ्रष्टाचार, पत्रकारिता आदि.

प्रस्तावना :

वर्तमान समय में ग़ज़ल विधा ने साहित्य के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान स्थापित किया है। काव्य की अन्य विधाओं से अगर इसकी तुलना की जाए तो ग़ज़ल सबसे प्रभावशाली एवं पाठकों का मन मोह लेने वाली विधा के रूप में हमारे समक्ष आती है। अरबी-फारसी से हिंदी में प्रतिष्ठित ग़ज़ल विधा को दुष्यंत कुमार ने अपना एक विशेष रूप दिया। श्रृंगारिकत्ता से निकलकर ग़ज़लों में सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक तथा धार्मिक समस्याओं को स्थान मिलने लगा। इसी परंपरा को वर्तमान में आगे लेकर जाने में डॉ. बृजेश सिंह का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

शोध आलेख का विश्लेक्षण :

वर्तमान हिंदी ग़ज़लकारों में एक प्रमुख हस्ताक्षर डॉ. बृजेश सिंह, जिन्होंने अल्प समय में ही ग़ज़ल क्षेत्र में अपना विशेष स्थान स्थापित किया हैं। उन्होंने कविता, ग़ज़ल, मुक्तक काव्य, महाकाव्य, खंड़काव्य, कहानी, नाटक, व्यंग्य, जीवनी, आध्यात्म एंव जीवन-दर्शन, उपन्यास, निबंध, यात्रा साहित्य, रेडिओ एवं फिल्म लेखन, संपादन आदि साहित्यिक विधाओं में प्रचुर साहित्य का सृजन किया है। आपकी ग़ज़ले देश – समाज की विभिन्न समस्याओं को छुते हुए, वर्तमान परिवेश में व्याप्त विद्रूपताओं पर करारा व्यंग्य करती हैं। इसी परिवेश पर व्यंग्य करता आपका ग़ज़ल संग्रह 'हालत ए वतन' जो वर्ष २०१२ में प्रकाशित हुआ। जिसमें कुल ७० ग़ज़लें संग्रहित है, जो समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालती है। जनतंत्र, व्यक्तिपूजा, प्रदुषण, सियासत, न्यायव्यवस्था, पैसा, गुनहगार, पत्रकारिता, आरक्षण, भ्रष्टाचार, धार्मिकता, दहशतगर्दी, मानवाधिकार, साहित्यिक चोरी, सूचना का अधिकार आदि मुद्दों पर खुलकर अपनी बेबाक राय रखी है। जो वर्तमान समय की विद्रूपताओं पर करारा व्यंग्य है।

धार्मिक व्यंग्य :

आज की धार्मिकता पर व्यंग्य करते हुए, कवि बृजेश कहते है -

"लोग पूजते रहे इन्हें भगवान की तरह मगर।
दौलत की हवस में कैसे गुनहगार हो गये।।" [१]

आज धर्म के नाम पर पैसा ही सबकुछ है। धर्म के आड़ में सारे पैसा कमाना चाहते है, भगवान की तरह जिनपर विश्वास किया, पूजा ऐसे ही लोग आज धर्म के नाम पर जनसामान्य से पैसे ले रहें है। यह कितना दुर्भाग्य है जो व्यक्ति अपनी पीड़ा से मुक्ति के लिए भगवान के द्वार पर आ रहा है उसे ही लुटकर यह धर्म के ठेकेदार गुनहगार हो गए हैं।

यही लोग आज देवता के आड़ में व्यक्ति पूजा के प्रचारक बन गए हैं। जो खुद को भगवान का अवतार बता रहें। जैसे –

"देवता कहाने में कद बौना सा लगता इन्हें।
तभी तो वो सीधे भगवान के अवतार हो गये।।" [२]

लोभ, मोह. माया से दूर रहने का प्रवचन देनेवाले पर ही आज सोने-चाँदी, रुपयों की बौछार हो रही हैं –

"दौलत लिप्सा से दूर हटने प्रवचन देते ही।
इन पर सोने-चाँदी रुपयों के बौछार हो गये।।" [३]

कवि बृजेश कहते है धर्म आज इनके लिए रोजगार का साधन बन गया है, गेरुआ वस्त्र पहनकर आज यह धर्म के ठेकेदार अपनी तिजोरियाँ भर रहे है –

"हुक्म बजाते ही दौलत की ढेर लग गई 'बृजेश' ।
गेरुआ वस्त्र आज तिजारत के औजार हो गये ।।" [४]

कहा जा सकता है की, धर्म जैसे संवेदनशील विषय पर भी वह अपने बेबाक राय रखते हुए करारी चोट करते है । इन विचारों को पढ़ते समय हम संत कबीरदास के धार्मिक विचारों को याद करते है ।

राजनीतिक व्यंग्य :

बृजेश सिंह मानवीय भावनाओं को समझनेवाले कवि है । जनता की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानते है । राजनीति जो प्रजातंत्र व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है । जहा लोककल्याण की भावना सर्वोच्य मानी जाती है । वह राजनीति आज लोककल्याण की भावना से कौसों दूर जाकर स्वार्थ पर केंद्रित हो गई है ऐसी राजनीति पर वो करारा प्रहार करते हुए 'हालत ए वतन' के दूसरी ग़ज़ल में कहते है –

" आज के रहबर ये कैसे सियासतदार हो गये ।
रहजनी के खेल आज सरे बाजार हो गये ।।" [५]

एक समय था जहाँ हम राजनीतिकों को प्रजातंत्र के पथप्रदर्शक मानते थे । वही लोकतंत्र के पथप्रदर्शक आज ऐसे राजनीतिकार बन गये है की, जिन्होंने प्रजातंत्र को लुटतंत्र का बाजार बना के रखा हैं ।

वो लोग राजनीति के आगे इतने लाचार बन गये है की, उनमें मानों भ्रष्टाचार की माला पहनने की होड़ लगी है । यथा -

"भ्रष्टतमों को माला पहनाने की होड़ लगी ।
सियासत के आगे हम इस कदर लाचार हो गये ।।" [६]

जिन्होंने इन भ्रष्टाचारियों के खिलाफ आवाज उठाई वे लोग इन सत्ताधारीयों के दृष्टि से गुनहगार हो गये । प्रजातंत्र में प्रजा की आवाज को ही दबाने के काम आज ने सत्ताधारी कर रहें है -

"आवाज उठाई जिनने भ्रष्टाचार के खिलाफ ।
हुक्मरानों की निगाहों में गुनहगार हो गये ।।" [७]

जिस प्रजा ने इन पर आँखे मूंदकर कर विश्वास किया की, यह देश का भला करेंगे । यह विश्वास दिखाया की यह देश को विकास के पथ पर लेकर जाएंगे । वही लोग अपने निजी स्वार्थ के देश को बेचने को तैयार है -

"अवाम ने जिन पर आँख मूंदकर भरोसा किया ।
क्षुद्र स्वार्थों में मुल्क बेचने तैयार हो गये ।।" [८]

अफ़सोस के साथ कवि बृजेश कहते हैं, जिन्होंने बेदर्दी से देश को लूट डाला है वही आज के प्रजातंत्र व्यवस्था के संरक्षक बन बैठे है -

"बेदर्दी से लूट डाला देश को जिनने 'बृजेश' ।
जम्हूरियत के वो ही सच्चे पहरेदार हो गये ।।" [९]

आज जिनके पास बाहुबल है, वो ही समाज के कर्णधार बन बैठे है । जो अपने बाहुबल से लोंगो को डराते-धमकाते है । कोई उनके खिलाफ आवाज उठता है, तो उसकी आवाज को हमेशा के लिए बंद कर देते है । आख़िरकार अमन चैन शांति के लिए लोग ऐसे बाहुबलियों की सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं –

"अमन चैन शांति ना आवाम को आज मय्यसर ।
बाहुबली ही अब समाज के कर्णधार हो गये ।।" [१०]

कवि का यह आक्रोश आज की राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ प्रजातंत्र पर करारा व्यंग्य करता है । विश्व में सबसे बड़े लोकतंत्र राष्ट्र की बात करने वाले देश में लोकतंत्र नींव मानी जाने वाली राजनीति किस कदर गीर गई हैं, इसका सजीव चित्र यहाँ उभरता हैं ।

सामाजिक व्यंग्य : कवि बृजेश सिंह अपनी ग़ज़लों में समाज के गिरते स्तर पर भाष्य करते हैं । आज समाज में पैसा ही सबकुछ है । उसके आगे सबकुछ बेकार है हर कोई पैसे के पीछे भाग रहा है । पैसा कमाने के लिए साम, दाम, दंड, भेद को अपना कर अपनी झोली भर रहें हैं । भ्रष्टत्तम मार्ग को अपनाकर काला धन कमा रहें है –

"काली दौलत की बदौलत असरदार हो गये।
समाज की नैया के वो खेवनहार हो गये ।।" [११]

काले धन के बदौलत कुछ लोग इतने असरदार हो गये है की, समाज की नैया पार करने का साधन ही काला धन को बना दिया हैं।

" दलाली हेराफेरी से कई आलीशान बंगले।
महज मेहनत के भरोसे जो, कर्जदार हो गये ।।" [१२]

आज समाज में कई ऐसे लोग है जो दलाली से हेराफेरी से अपने लिए आलीशान बंगले बना रहें हैं। तो वही समाज का एक दूसरा वर्ग ऐसा भी है जो दिन-रात मेहनत कर के पैसा जोड़ रहा फिर वह भी कर्जदार हो गया है। यह चित्र समाज के उस वर्ग को दर्शाता हैं जहाँ मेहनतहरा वर्ग केवल मेहनत ही कर रहा हैं। दूसरी ओर दलाली करने वाले अपना घर भर रहें है।

समाज के गरीब वर्ग की दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि कहते है -

" गरीब होना यकीन मानों सबसे बड़ा अपराध।
बेगुनाह होते आरोपों के बौछार हो गये ।।
'बृजेश' गरीबों के न्याय की कौन सोचता।
जब दौलत वाले न्याय के खरीदार हो गये ।।" [१३]

गरीबी आज सबसे बड़ा अपराध बन गई है। बेगुनाह होकर भी उन्हीं पर आरोप लगाकर उन्हें अपराधी बनाया जा रहा है। इन गरीबों की आवाज को सुननेवाला कोई नहीं है, पैसे वाले न्याय के खरीदार बन गये है। यहाँ कवि गरीबों की दुर्दशा का चित्रण करने के साथ हमारी न्याय व्यवस्था पर भी व्यंग्य करते है।

सांस्कृतिक व्यंग्य :

नई संस्कृति ने एक संवेदनहीनता को जन्म दिया है। आधुनिकता के नाम पर हम अपनी सांस्कृतिक विरासत, पारिवारिक मूल्यों को भूलकर आत्मकेंद्रित बनते जा रहे है –

"जिनके लिए सारी जिंदगी खपाई आज वो ही।
माँ-बाप औलादों की निगाहों में भार हो गये ।।
अपना घर मगर अब अपनी चलती नहीं अफ़सोस।
बुढ़ापे में अपने ही घर वो लाचार हो गये ।।
औलादों के दो मीठे बोल के लिए तरसते हैं।
कड़वे वचन सुनने आदि बुजुर्गवार हो गये ।।" [१४]

जिनके लिए माँ – बाप अपनी पूरी जिंदगी लगाकर उनकी भलाई के लिए मेहनत करते है। जिनको अपने बुढ़ापे का सहारा मानकर लालनपालन किया है। वही बच्चे आज उनसे दो मीठे बोल नहीं बोल सकते। जिस घर को बनाने में अपनी जिंदगी को नौछावर कर दि उसी घर में अब उनकी नहीं चलती। यह बुजुर्ग बच्चों के लिए भार बन गये है और उनके कड़वे वचन सुनने के लिए मजबूर है। यह आज की आधुनिक संस्कृतिक का वास्तव चित्र है। जिस पर कवि अपना व्यंग्य बान चलाते हैं।

एक स्त्री की वेशभूषा मात्र उसकी लज्जा को छिपाने का साधन नहीं बल्कि वह उसका शील का आभूषण होता हैं। परंतु आज फैशन के नाम पर जो वेशभूषा प्रदर्शन हो रहा हैं इसपर व्यंग्य करते हुए कवि कहते है –

"शील और लज्जा कभी सबसे बड़े आभूषण।
मगर फैशन में अब नारी – तन उघार हो गये ।।" [१५]

आधुनिकता और खुलेपन का यह अंधानुकरण हमारी सांस्कृतिक विरासत को नष्ट कर रहा है।

साहित्यिक व्यंग्य :

कवि बृजेश सिंह समसामयिक संदर्भो के साथ ग़जल को नई अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। आज की साहित्यिक कृतियों को लेकर जो बात उन्होंने की है सोचनेवाली है।

"पिता का लिखा खुद् के नाम से छपवा लिया।
किसी से क्या कहें बाप ही शर्मसार हो गये ।।
चोरी के साहित्य पर फुले नहीं समाते।

पिता को खत्मकर बड़े साहित्यकार हो गये ।।" [१६]

आज साहित्य के क्षेत्र में ऐसे साहित्यकारों का जन्म हुआ है की, नैतिकता का अंश मात्र उनमें नहीं है । पिता का लिखा हुआ साहित्य अपने नाम पर छपवा रहें है । किसी से क्या कहे इनके इस करतूत से बाप ही शर्मसार हैं । चोरी के साहित्य पर ही वह खुश है अपने पिता को खत्म कर अपने आप को बड़े साहित्यकार बता रहे हैं । साहित्यिक चोरी पर यह करारा व्यंग्य है ।

पत्रकारिता पर व्यंग्य :

पत्रकारिता जिसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता हैं । वह आज अपनी जिम्मेदारी से कौसों दूर नजर आता है, इसपर व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं -

"लुटते अस्मत इन हेतु खबर मसालेदार हो गये ।
आज के दौर के वही सफल पत्रकार हो गये ।।" [१७]

आज की पत्रकारिता मसालेदार बन गई है । जिससे अपेक्षा रखी जाती है वह समाज की समस्याओं को उजागर करें, परंतु वर्तमान समय में किसी औरत की इज्जत लुटी जाती हैं । तो वह खबर उनके लिए एक मसालेदार खबर बनती है और उसी खबर को वो दिन रात चलाते हैं । आज के दौर में ऐसी खबरे लेकर आनेवाले पत्रकार ही सफल पत्रकार माने जाते है ।

"सीधा प्रसारण आज की ऐसी हवस हो चुकी ।
चौथे स्तंभ के सामने कई अनाचार हो गये ।।" [१८]

ब्रेकिंग न्यूज के इस युग में लोकतंत्र का यह चौथा स्तंभ सीधे प्रसारण के हवस में अपना उत्तरदायित्व ही भूल गया है । सीधे प्रसारण के नाम पर ऐसी खबरें प्रसारित हो रही हैं, जिससे लोकतंत्र नीवं हिल रही है ।

"मजलूम अवाम के दुःख दर्द से क्या वास्ता ।
धनपतियों के हाथ में मीडिया अखबार हो गये ।।" [१९]

यह मिडिया अमीरों के हाथों की कठपुतली बन गई है । जिसे जन सामान्य के दुःख दर्द से कोई वास्ता नहीं । जो केवल अपने मालिकों का ढिंढोरा पिट रहें है ।

"पत्रकारिता हुक्मरानों की बॉह पकड़े कैसे ।
बिकने वाले टुकड़ाखोर भी कलमकार हो गये ।।" [२०]

यह पत्रकारिता सत्ताधारीयों के बाह पकड़े चल रही है । और उनके द्वारा ही तैयार किए गये टुकड़ाखोरों से मिडिया को चलाया जा रहा है । सत्ताधारी उनके लाभ की बातों को ही पत्रकारों की कलम चला रहें है ।

"पत्रकारिता मिशन के दिन कब के लद गये ।
पूंजीपतियों के गुलाम तमाम अख़बार हो गये ।।" [२१]

एक समय था जहाँ पत्रकारिता मिशन की तरह चलती थी । जिससे समाज की समस्याओं को उजागर किया जाता था । आज यह पत्रकारिता उस मिशन दूर चली गई है । उसका मूल कारण हैं आज के अधिकतर अख़बार पूंजीपतियों की गुलाम बन गये है । जो समाज की मूल समस्याओं उजागर ही नहीं करना चाहते ।

शिक्षा पर व्यंग्य :

आज का शिक्षा क्षेत्र का बदलता स्वरूप और उस क्षेत्र में काम करनेवाले शिक्षकों का हो रहा नैतिक पतन चिंता का विषय है । इसी शिक्षा व्यवस्था और शिक्षकों पर कवि व्यंग्य करते है -

"स्वार्थ में कहीं तक गिरने को तैयार हो गये ।
शिक्षकों के ऐसे -ऐसे अब संस्कार हो गये ।।" [२२]

अपने निजी स्वार्थ में शिक्षक इतने गिर गये है की, जिनसे संस्कारों का पाठ मिलता हैं । उनमें ही संस्कार नहीं रहें है । समाज का एक आदर्श, सुगड निर्माण पथ प्रदर्शक गुरुजन आज नहीं रहा । आज वो अनगढ़ बनानेवाला कुंभकार हो गया हैं -

"सुगढ़ पात्र – सा गढ़ने वाले अब गुरुजन कहाँ ।
अनगढ़ बनाने वाले कैसे कुंभकार हो गये ।। [२३]

विद्वता न रखने वाले पात्र इस क्षेत्र में आकर अपने आपको विद्वान बता रहे है । इधर उधर के थिगड़े जोड़कर अपनी विद्वता स्थापित करने तैयार खड़े हैं -

"इधर – उधर के थिगड़े को जोड़ते फिर कहते हैं कि ।

मौलिक शोध प्रबंध नायब तैयार हो गये ।।" [२४]

शिक्षा केंद्र ने बाजार का स्थान लिया है। जहाँ हर कोई पैसा कमाने का मकसद रखता है। शिक्षा संस्थान आज बड़े कारोबार हो गये है। जो उससे दौलत कमाने का ही मकसद रखते है।

"किसी तरह कैसे दौलत कमाना मकसद।
शिक्षण संस्थान आज बड़े कारोबार हो गये ।।" [२५]

शिक्षा पर व्यंग्य कवि का शैक्षिक व्यवस्था पर कटाक्ष है, जो व्यवस्था की खामियों पर प्रकाश डालता है। शिक्षा का व्यवसायीकरण, गुणवत्ता, व्यावहारिकत्ता और उसके नैतिक मूल्यों पर सवाल उठाता है।

इन मुद्दों के साथ – साथ कवि आतंकवाद, मानवाधिकार, आरक्षण, न्याय व्यवस्था, दग़र दिरंगाई जैसे विषय पर अपनी बेबाक राय प्रस्तुत गजल संग्रह में रखते है। जो आज की व्यवस्था का सजीव दृश्य है।

निष्कर्ष :

कवि बृजेश सिंह का ग़ज़ल संग्रह 'हालत ए वतन' वर्तमान व्यवस्था में व्याप्त विद्रूपताओं को बड़ी कुशलता से उकेरता है। इस ग़ज़ल संग्रह में संकलित सभी सत्तर ग़ज़ले व्यंग्य विधा का प्रतिनिधित्व करते हुए वर्तमान परिदृश्य का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। जनतंत्र, व्यक्तिपूजा, प्रदुषण, सियासत, न्यायव्यवस्था, पैसा, गुनहगार, पत्रकारिता, आरक्षण, भ्रष्टाचार, धार्मिकता, दहशतगर्दी, मानवाधिकार, साहित्यिक चोरी, सूचना का अधिकार इत्यादि प्रायः सभी विषयों पर बृजेश सिंह की कलम जमकर चली है । जो वर्तमान समय की विद्रूपताओं पर करारा व्यंग्य है।

संदर्भ :

१. हालत ए वतन, डॉ. बृजेश सिंह, पृ. सं. १७
२. वही, पृ. सं. १७
३. वही, पृ. सं. १७
४. वही, पृ. सं. १७
५. वही, पृ. सं. १८
६. वही, पृ. सं. १८
७. वही, पृ. सं. १८
८. वही, पृ. सं. १८
९. वही, पृ. सं. १८
१०. वही, पृ. सं. ३३
११. वही, पृ. सं. १९
१२. वही, पृ. सं. १९
१३. वही, पृ. सं. २३
१४. वही, पृ. सं. ३५
१५. वही, पृ. सं. ६४
१६. वही, पृ. सं. ६७
१७. वही, पृ. सं. ८३
१८. वही, पृ. सं. ८३
१९. वही, पृ. सं. ८३
२०. वही, पृ. सं. ३२
२१. वही, पृ. सं. ३२
२२. वही, पृ. सं. ५३
२३. वही, पृ. सं. ५३
२४. वही, पृ. सं. ५३
२५. वही, पृ. सं. ५३

हिंदी फिल्मों में संस्कार संबंधी लोकगीत

प्रोफेसर डॉ. अमोल पालकर
स्नातक एवं स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,
बलभीम महाविद्यालय, बीड

शोध सार:

जन्म से लेकर मृत्यु तक असंख्य संस्कार लोकगीतों की परंपरा प्रचलित है। यह लोकगीत मानव मन की सहज भावनाओं को उद्बोधित करते हैं। जीवन के हर छोटे-बड़े संस्कार से जुड़े इन गीतों में जीवन के अनुभव और स्वाभिवकता के दर्शन होते हैं। वर्तमान जीवन शैली ज्यों-ज्यों आधुनिक होती जा रही है जीवन मूल्य भी बदल रहे हैं। आज इन संस्कारों की महत्ता कम होती जा रही है। लोक जीवन से जुड़े इन गीतों का स्थान आधुनिक संगीत निर्णय लिया है।

बीज शब्द: फिल्म, गीत, संस्कार, लोकगीत

जनसाधारण द्वारा जो परम्परागत गीत गाये जाते है वे लोकगीत है। किसी प्रकार का शास्त्रीय बंधन न होने के कारण ये केवल अनुकरण मात्र से ही सीखे जाते है तथा मौखिक परम्परा में पूर्व वर्तियों से पश्चात् वर्तियों को प्राप्त होते है। लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है जन मानस का गीत, जन-जन का गीत। जन मानस की आत्मा में रचा बसा गीत। अर्थात् जो गीत संपत्ति की तरह विरासत में मिले वही लोकगीत है। जिसमें किसी भी जाति, समुदाय, राष्ट्र की पहचान निहित रहती है। लोकगीतों में समय, स्थान और व्यक्तियों के परिवर्तनों के कारण बाह्य रूप में समानता भले ही ना दिखाई देती हो लेकिन अंतर में समरसता एकता का भाव सदा विद्यमान रहता है। उनमें व्यक्त होने वाली अनुभूति किसी व्यक्तिविशेष की न होकर समस्त लोक की अनुभूति का उमड़ता हुआ सागर होता है। इसलिए सदैव कहा जाता रहा है लोकगीत संपूर्ण जनमानस की चेतन-अचेतन भावनाओं को व्यक्त करने वाले होते हैं।"[1] ओवी को सबसे पुराना मराठी गीत भी माना जाता है। 13वीं शताब्दी से, इसे लिखित कविता में इस्तेमाल किया जाता रहा है।

साहित्य और सिनेमा का आपस में गहरा संबंध है। फिल्मों को सफल बनाने में गीतो का ऐतिहासिक योगदान रहा है। गीत वे तत्त्व होते हैं जो दिल और दिमाग की गहराई में उतर कर व्यक्ति के चिंतन और व्यवहार को संचालित करते हैं। गीतों को सिनेमा का अविभाज्य अंग कहा जा सकता है। यह गीत चाहे सिनेमा के लिए बने हो या साहित्य के लिए लेकिन उनका मूल लोकगीतों में खोजा जा सकता है।

संस्कार गीत लोक गीतों का अभिन्न अंग है। लोकगीत मानवीय मन की सहज अभिव्यक्ति होते हैं। यह साधारण समाज के बहुसंख्यक वर्ग के मनोभावों की अभिव्यक्ति है। लोकगीत अंग्रेजी के 'फोक सॉन्ग' का पर्याय माना जाता है। सामान्यतः फोक का अर्थ सभ्यता से दूर रहने वाली जाति से लिया जाता है। किंतु हिंदी के लोक शब्द का प्रयोग साधारण लोगों के लिए किया जाता है जो सभ्यता से दूर हो। इसलिए लोकगीत उस रचना को कहा जा सकता है जो ग्रामीण जनों के सामान्य भावों को गेय रूप में अभिव्यक्त करें। संगीत और लय लोकगीतों का प्राण होते हैं। लेखिका चंद्रकांता के अनुसार, "मौखिक परंपरा से चले आते लोकगीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहमान होते रहते हैं। इनमें हमारे रीति रस्म, संस्कार, सुख-दुख, प्रेम-विरह, हास्य-व्यंग्य, हृदय के निश्चल उद्गार पहाड़ी झरनों के छहर-बहर आवेग के साथ छलकते हैं। विभिन्न प्रदेशों में भाषायी भिन्नता के बावजूद इनमें मानवीय संवेगों की अद्भुत एकरूपता मिलती हैं।"[2]

लोकगीतों में संस्कार गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदू धर्म में जन्म से मृत्यु तक की अवधि में अनेक संस्कार किए जाते हैं। संस्कारों के अवसर पर समयानुकूल जो गीत गाए जाते हैं वह संस्कार गीत कहलाते हैं। धर्म ग्रंथों में संस्कारों की संख्या 40 तक भी है किंतु सर्वप्रिय मान्यता के अनुसार 16 संस्कार प्रचलित है। सभी भारतीय भाषाओं के लोकगीतों में संस्कार गीत अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। संस्कार मूलतः दैहिक और आत्मिक शुद्धि के लिए किए जाते हैं। प्राचीन साहित्य में संस्कार शब्द शिक्षा, प्रशिक्षण, सौजन्य, पूर्णता, शुद्धि, संस्करण, परिष्करण आदि विविध रूपों में उपर्युक्त हुआ है। संस्कारों का सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक महत्व स्वीकार किया गया है। संस्कार गीतों को विद्वानों ने अपने-अपने मतानुसार परिभाषित किया है जो इस प्रकार है- दीनानाथ साहनी के अनुसार,"संस्कार गीत मनुष्य की वह परछाइयां है जो मनुष्य की उत्पत्ति के समय से ही किसी ना किसी रूप में संघ चली आ रही है।"[3]

विद्यानिवास मिश्र के अनुसार, ''संस्कार गीतों में संस्कृति की पवित्रतम धरोहर सुरक्षित है।इसमें मनुष्य की दृष्टि कितनी विशद और व्यापक है कि राम-सीता, शिव-पार्वती, कृष्ण और राधा सभी का ऐश्वर्य पिघल कर मानवीय बन गया है।''

मानसिक और आध्यात्मिक गुणों की प्राप्ति के लिए हिंदू संस्कारों में प्रतीकवाद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। संस्कार वास्तव में व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की शुचिता और उन्नति के संरक्षक और स्त्रोत थे। भारतीय लोक गीतों में यूं तो सभी संस्कारों के अवसर पर मंगल गीत गाने की प्रथा है परंतु मृत्यु संस्कार पर शोक प्रकट करने के तरीके भिन्न होते हैं। संस्कार गीतों के प्रमुख प्रचलित प्रकारों का परिचय इस प्रकार है-

जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, अन्नप्राशन संस्कार, मुंडन संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, विवाह संस्कार, कर्ण भेद संस्कार, मृत्यु संस्कार आदि।

हिंदू धर्म में संतानोत्पत्ति एक पुण्य कार्य है। इसी के परिणाम स्वरूप जन्म से संबंधित गीत सभी भाषाओं में उपलब्ध है। जन्म संस्कार से संबंधित गीतों को दो भागों में बांटा जाता है- जन्म से पूर्व के गीत और जन्म के बाद के गीत।

अ) जन्म से पूर्व के फ़िल्मी लोक गीत-

गोदभराई लोकगीत-

जन्म से पूर्व के गीतों में मां के शारीरिक एवं मानसिक स्थिति, पुत्र कामना, प्रसव पीड़ा, दाई को नेग देना आदि से संबंधित गीत होते हैं।

हिंदी फिल्मों में भी लोकगीत प्रचलित हैं-

गोदभराई लोकगीत और हिन्दी चित्रपट

हिन्दी फिल्मों में गोदभराई (Baby Shower) के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीतों और उनसे प्रेरित ये गाने न केवल रस्मों की खुशी को दर्शाते हैं, बल्कि पारंपरिक लोक धुनों का आधुनिक रूपांतरण भी पेश करते हैं:

लोकप्रिय गोदभराई लोकगीत और फिल्मी गाने इस प्रकार देखे जा सकते हैं-

रसमे गोद भराई (फिल्म - सावरिया) का यह गीत विशेष रूप से गोदभराई की रस्म के लिए है। यह "मंगल गाओ जी" जैसी पारंपरिक लोक पंक्तियों पर आधारित है, जो सुख और सौभाग्य की कामना करता है।

धिकताना (फिल्म – हम आपके है कौन?) का यह गाना गोदभराई के दौरान परिवार के उत्साह और नए मेहमान के आगमन की खुशी को लोक शैली में दर्शाता है।

सोलह श्रृंगार करके (फिल्म – फ़िलहाल) का यह गाना गोदभराई की रस्म के दौरान एक महिला के सौंदर्य और मातृत्व की भावना को पारंपरिक स्पर्श के साथ पेश करता है।

गोद भराई (फिल्म – बेबी जॉन 2025) का यह गाना आधुनिक होने के साथ-साथ पारंपरिक जज्बात समेटे हुए है, जिसमें "कोई आने वाला है सखी" जैसे बोल लोक परंपराओं की याद दिलाते हैं।

जुग जुग जिए (फिल्म – बधाई हो) का यह गीत पारंपरिक आशीर्वाद देने वाले लोकगीतों पर आधारित है, जो अक्सर गोदभराई और जन्म के उत्सवों पर गाया जाता है।

आ) जन्म के बाद के फ़िल्मी लोक गीत-

1) कर्णभेद संस्कार-

जन्म के बाद संपन्न किए जाने वाले रीति-रिवाजों से संबंधित गीतों को गाने की परंपरा दिखाई देती है। इनमें कर्णभेद एक प्रमुख संस्कार है। कर्णभेद संस्कार (कान छिदवाना) हिंदू धर्म के 16 संस्कारों में से एक है, जिसे बच्चे के स्वास्थ्य और ज्ञान के विकास के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। हिंदी फिल्मों में इस विशिष्ट संस्कार पर केंद्रित स्वतंत्र गाने बहुत कम हैं, लेकिन लोक संगीत की दुनिया में इसके लिए विशेष गीतों की परंपरा है।

कर्णभेद के समय गाए जाने वाले गीतों में बच्चे के साहस की प्रशंसा और उसे दर्द से बचाने के लिए देवी-देवताओं की प्रार्थना की जाती है।

ग्रामीण अंचलों में कर्णभेद के समय महिलाएँ ढोलक पर 'बधाई' और 'सोहर' शैली के गीत गाती हैं। इन गीतों के बोल अक्सर कुछ इस तरह होते हैं:

"सोने की सुई, रेशम का धागा, धीरे से कान्ह छिदाओ रे ललना..."

इन गीतों में अक्सर सुनार (जौहरी) को बुलाया जाता है और उसे कान छेदने के बदले नेग (पुरस्कार) देने का वर्णन होता है।

हिंदी फिल्मों में संदर्भ यद्यपि बॉलीवुड में "कर्णभेद" पर कोई विशेष गाना प्रसिद्ध नहीं है, लेकिन इस रस्म के दौरान निम्नलिखित गानों और धुनों का उपयोग उत्सव के माहौल के लिए किया जाता है: जैसे - फिल्म 'नदिया के पार' का "जुग-जुग जिए सुकुमार" आज भी किसी भी बाल-संस्कार (जैसे मुंडन या कर्णभेद) के दौरान पृष्ठभूमि में बजने वाला सबसे लोकप्रिय गीत है।

2) नामकरण संस्कार गीत-

प्रत्येक समाज में विशेषकर हिमाचल प्रदेश में शिशु जन्म के नवें, 11वें या 13वें दिन नामकरण संस्कार किया जाता है। स्थानीय बोली में इसे हुम, गुंतर या पंजाप भी कहा जाता है। शुद्धि के उपरांत बच्चे की जन्म कुंडली बनाकर उसके नाम का पहला वर्ण निश्चित किया जाता है और उसी वर्ण अनुसार शिशु का नामकरण किया जाता है। घरवाले और अन्य रिश्तेदार इस प्रक्रिया में पूर्ण सहयोगी होते हैं। ननिहाल पक्ष की ओर से नवजात शिशु को उपहार देने की परंपरा लोक प्रसिद्ध है। एक उदाहरण देखिए-

ये रिश्ता क्या कहलाता है धारावाहिक का 'सुझाओ कुछ लल्ला का नाम, लल्ला सब की आँख का तारा, राम कहो चाहे शाम।

3) अन्नप्राशन संस्कार-

प्राय: जन्म के 6 या 8 महीने की अवस्था में बच्चे का अन्नप्राशन संस्कार किया जाता है। इस संस्कार में शिशु को पहली बार अन्न खिलाया जाता है। कांगड़ा जिले में इस संस्कार को खीरपु कहते हैं। बच्चे को पहली बार चांदी के चम्मच या थाली में या फिर चांदी के सिक्के पर अन्न मिलाकर खिलाया जाता है।

अज्ज ता मेरा छोटा जेयां कृष्ण माखन रोटी खाए हो।
चांदी देया चम्मचया थालीयां दे बिच्च माखन रोटी खाए हो।

4) यज्ञोपवीत या उपनयन संस्कार-

सांस्कृतिक दृष्टि से यज्ञोपवीत धारण करने का विशेष महत्व है। इसका अर्थ है उतना या नहीं या निकट ले जाना अर्थात् बालक को शिक्षार्थ आगे ले जाना। पुराण एवं उपनिषदों में भी इस संस्कार की महत्ता को वर्णित किया गया है। वर्तमान में इस संस्कार को विवाह के समय नाममात्र को निभा लिया जाता है। हिन्दी चित्रपटों (सिनेमा) में इस संस्कार पर केंद्रित स्वतंत्र गानों की कमी है, लेकिन लोक संगीत और पौराणिक फिल्मों में इसके लिए अत्यंत समृद्ध परंपरा मिलती है।

क्षेत्रीय स्तर पर, विशेषकर उत्तर प्रदेश (अवध), बिहार (मिथिला) और उत्तराखंड में जनेऊ के समय गाए जाने वाले गीतों को 'उपनयन गीत' या 'बटु गीत' कहा जाता है।

भिक्षाटन गीत: उपनयन में बालक (बटुक) अपनी माँ और रिश्तेदारों से भिक्षा मांगता है। लोकगीतों के बोल कुछ इस तरह होते हैं: "कवन राम हाथे झोली, कवन हाथे सोटा... माई देहु भिक्षा दान।"

कोहबर और मंगल गीत: जनेऊ धारण करते समय महिलाएँ ढोलक पर मंगल गीत गाती हैं, जिसमें बालक को 'ब्रह्मचारी' और 'ज्ञानी' बनने का आशीर्वाद दिया जाता है।

हिन्दी फिल्मों और धारावाहिकों के संदर्भ मुख्यधारा बॉलीवुड में उपनयन संस्कार को अक्सर पारंपरिक उत्सव के एक भाग के रूप में दिखाया गया है।

पौराणिक फिल्में (जैसे संपूर्ण रामायण), पुराने समय की फिल्मों में जब भगवान राम या कृष्ण के गुरुकुल जाने का दृश्य होता था, तब उपनयन संस्कार के वैदिक मंत्रों और लोक धुनों का समावेश किया जाता था।

नदिया के पार (1982): इस फिल्म ने ग्रामीण संस्कारों को जीवंत किया है। इसमें दिखाए गए सोहर और मंगल गीत (जैसे "जुग-जुग जिए सुकुमार") आज भी जनेऊ जैसे संस्कारों के दौरान घरों में बजाए जाते हैं।

5) मुंडन संस्कार-

मुंडन संस्कार को चूड़ाकर्म भी कहा जाता है चूड़ा का अर्थ है, केश गुच्छ या चोटी जो पहली बार केस काटने के बाद सिर्फ रखी जाती है। धर्म शास्त्र के अनुसार इसे जन्म के पहले या तीसरे वर्ष किया जाता है। यह संस्कार पूरे रीति-रिवाज एवं धार्मिक नियमों के अनुसार निभाया जाता है। कांगड़ा में इस संस्कार को जमालु, चंबा में जटु तथा सोलन में पटबाल कहा जाता है।

6) ऋतुमती संस्कार-

हिन्दी फिल्मों में इस विषय को अक्सर वर्जित माना गया है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में 'पीरियड ड्रामा' और महिला प्रधान फिल्मों के माध्यम से इस पर लोक धुनों का उपयोग बढ़ा है।

हिन्दी फिल्मों में मुख्यधारा के बॉलीवुड में इस संस्कार पर समर्पित गानों की कमी है, लेकिन कुछ प्रमुख संदर्भ इस प्रकार हैं:

'यानी यानी लड़की सयानी हो गयी' (फिल्म: पैड मैन, 2018): इस फिल्म में मासिक धर्म (Periods) से जुड़ी वर्जनाओं को तोड़ा गया है। फिल्म के एक दृश्य में दक्षिण भारतीय शैली में लड़की के ऋतुमती होने पर उत्सव और उस दौरान गाए जाने वाले लोक संगीत की झलक दिखाई गई है।

क्षेत्रीय फिल्मों के हिन्दी डब: दक्षिण भारतीय फिल्मों (जैसे बाहुबली या पुष्पा के परिवेश वाली फिल्में) के हिन्दी डब संस्करणों में जब लड़की के बड़े होने का उत्सव दिखाया जाता है, तो वहाँ पारंपरिक लोक वाद्ययंत्रों और मंगल गीतों का प्रयोग होता है।

क्षेत्रीय स्तर पर, विशेषकर दक्षिण भारत और महाराष्ट्र में इस अवसर पर विशेष लोकगीत गाए जाते हैं। लड़की को हल्दी और चंदन से नहलाया जाता है और महिलाएँ उसे आशीर्वाद देते हुए गीत गाती हैं। इन गीतों के बोल अक्सर उसकी उर्वरता, स्वास्थ्य और आने वाले सौभाग्य की कामना करते हैं। लोकगीतों में उसे "कलियों से फूल बनने" और "घर की लक्ष्मी" होने के बिंबों (Metaphors) से नवाजा जाता है।

पहले इन गीतों को केवल घर की महिलाओं तक सीमित रखा जाता था, लेकिन अब 'पैडमैन' जैसी फिल्मों और 'पीरियड. एंड ऑफ सेंटेंस' जैसी डॉक्यूमेंट्रीज़ ने इन संस्कारों और इनसे जुड़े लोक संगीत को एक सामाजिक विमर्श का हिस्सा बनाया है।

7) विवाह संस्कार गीत-

विवाह संबंधी संस्कार गीत पूरे भारतवर्ष में सर्व प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक क्षेत्र की भाषा में यह गीत विवाह की विभिन्न रस्मों के हिसाब से गाए जाते हैं। विवाह संबंधी प्रमुख रस्में इस प्रकार हैं- घोड़ियां, सुहाग, उबटन के गीत, तेल के गीत, नहाने के गीत, सेहरा बंधी के गीत, लेन-देन के गीत, मंडप के गीत, फेरों के गीत, सिठनियां, विदाई गीत, वधू प्रवेश के गीत। घोड़ियां दूल्हे की ओर से आस पड़ोस की महिलाओं द्वारा गाई जाती हैं और सुहाग दुल्हन पक्ष में गाए जाने वाले लोकगीतों को कहा जाता है। विवाह के अवसर पर सा मुहूर्त के समय दोनों पक्षों में उबटन, बटना, बुटना (दही हल्दी का लेप) लगाने की रस्म होती है, इस अवसर पर अनेक गीत गाए जाते हैं जैसे-

i) मेहँदी की रस्म-

भारतीय शादियों का एक अनिवार्य हिस्सा है, जिसे लोकगीतों और हिंदी सिनेमा (बॉलीवुड) दोनों ने बहुत खूबसूरती से संजोया है। मेहँदी के पारंपरिक लोकगीत हमारी सांस्कृतिक जड़ों को दर्शाते हैं। उत्तर भारत (विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान) में गाए जाने वाले कुछ प्रसिद्ध लोकगीत इस प्रकार हैं:

बॉलीवुड फिल्मों में मेहँदी के लोकप्रिय गाने हिंदी सिनेमा ने मेहंदी की रस्म को अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाई है। यहाँ कुछ सदाबहार गाने हैं: "मेहँदी लगा के रखना" (दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे): यह फिल्म जगत का सबसे मशहूर मेहंदी गीत है। "मेहँदी है रचने वाली" (ज़ुबेदा): ए.आर. रहमान का यह संगीत दिल को छू लेने वाला है, जिसमें विदाई का दर्द और नई शुरुआत की खुशी दोनों शामिल हैं। "साजन जी घर आए" (कुछ कुछ होता है): यह गाना भी सगाई और मेहंदी के उत्सवों में बहुत पसंद किया जाता है। "चिट्टा कुक्कड़" (पंजाबी लोकगीत आधारित): कई आधुनिक फिल्मों (जैसे 'बीवी नंबर 1') में इस पारंपरिक पंजाबी गीत का इस्तेमाल किया गया है। "लन्दन ठुमकदा" (क्वीन): यह मेहंदी और संगीत के फंक्शन की जान माना जाता है।

मेहँदी की रस्म को विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के लोकगीतों और हिंदी चित्रपट के गानों ने एक उत्सव का रूप दे दिया है। 2025 में भी इन गानों का क्रेज बरकरार है। विभिन्न भाषाओं के लोकप्रिय क्षेत्रीय लोकगीत शादी के माहौल में पारंपरिक मिठास घोलते हैं: राजस्थानी: "मेहँदी रचन लागी हाथों में" और "मेहँदी राचणी को पेड़ लगा दे रसिया", "मेहँदी लागी" जैसे नए राजस्थानी गीत भी काफी पसंद किए जा रहे हैं। पंजाबी: "मधानिया", "बारी बरसी" जैसे गीत ऊर्जा भर देते हैं। हाल ही में "सजरी" जैसे नए पंजाबी गाने भी ट्रेंड में हैं। भोजपुरी: "मेहँदी लगाओ सखियाँ" जैसे पारंपरिक विवाह गीत आज भी गाँवों और शहरों में समान रूप से लोकप्रिय हैं।

ii) हल्दी लोकगीत-

भारतीय विवाह परंपरा में 'हल्दी' की रस्म का विशेष महत्व है, जिसे लोकगीतों और हिंदी सिनेमा (बॉलीवुड) दोनों में बखूबी दर्शाया गया है। हल्दी के पारंपरिक लोकगीतों में दूल्हा-दुल्हन के सौंदर्य और परिवार के आशीर्वाद का वर्णन होता है।

अवधी और भोजपुरी इन क्षेत्रों में 'बन्ना-बन्नी' और 'गाली' (मजाकिया गीत) गाए जाते हैं। लोकप्रिय पंक्तियाँ जैसे— "तेल चढ़े, मड़वा गड़ो रे..." या "हरदी पीयर होय..." काफी प्रसिद्ध हैं। राजस्थान में 'बन्ना रे' और हल्दी के समय गाए जाने वाले गीतों में केसर और चंदन का उल्लेख मिलता है। पहाड़ी (कुमाऊँनी/गढ़वाली) में हल्दी को 'हाथ-काण' कहा जाता है और पारंपरिक वाद्ययंत्रों के साथ गीत गाए जाते हैं।

बॉलीवुड ने हल्दी की रस्म को भव्य और संगीतमय बनाया है। कुछ प्रमुख हल्दी गीत नवराई माझी : फिल्म इंग्लिश विंग्लिश का यह गाना महाराष्ट्रीयन हल्दी की झलक दिखाता है। चिट्टा कुकड़: फिल्म लवयात्री में इस पंजाबी लोकगीत का आधुनिक संस्करण हल्दी के लिए लोकप्रिय है। कबीरा (Encore): फिल्म ये जवानी है दीवानी का यह गाना हल्दी की रस्म के दौरान एक भावुक और सुंदर माहौल बनाता है। लंदन ठुमकदा: क्वीन फिल्म का यह गाना हल्दी और मेहंदी के जश्न के लिए पसंदीदा है। हल्दी के समय गाए जानेवाले विविध भाषाओ के लोकगीत और हिन्दी चित्रपट हल्दी की रस्म भारतीय विवाह का एक जीवंत हिस्सा है, जिसमें विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों के लोकगीत और आधुनिक हिंदी फिल्म संगीत का अद्भुत मेल देखने को मिलता है। हल्दी का वैज्ञानिक और सांस्कृतिक महत्व है। हल्दी लगाने के बाद दूल्हा-दुल्हन को घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए ताकि वे बुरी नज़र से बचे रहें। हल्दी एक प्राकृतिक एंटीसेप्टिक और एक्सफोलिएंट है, जो शादी के दिन के लिए चेहरे पर प्राकृतिक चमक (Glow) लाती है। हल्दी में मौजूद 'करक्यूमिन' तनाव और घबराहट (Pre-wedding jitters) को कम करने में सहायक माना जाता है।

iii) बिदाई लोकगीत-

बिदाई की रस्म एक बेटी के जीवन का सबसे भावुक क्षण होता है। भारतीय लोक कला और सिनेमा ने इस विछोह के दर्द को बहुत ही मार्मिक ढंग से पिरोया है। 2025 के विवाह आयोजनों में भी इन गीतों का विशेष स्थान है: क्षेत्रीय भाषाएं बिदाई के दर्द को अपनी मिट्टी की सुगंध के साथ व्यक्त करती हैं:

ब्रज और अवधी (उत्तर प्रदेश/बिहार): अमीर खुसरो का गीत "काहे को ब्याही बिदेश" सदियों से बिदाई का सबसे बड़ा प्रतीक रहा है। इसके अलावा "बाबा जिया न डोले" जैसे गीत आज भी गाँवों में गाए जाते हैं।

पंजाबी: "मधानियाँ" पंजाब का सबसे प्रसिद्ध बिदाई गीत है, जो एक बेटी की अपने मायके से जुड़ी यादों को दर्शाता है।

राजस्थानी: राजस्थान में "ओल्यूं" (याद) और "कुण जोवसी थारी बाट" जैसे गीत गाए जाते हैं, जो ऊंटों और रेगिस्तान की पृष्ठभूमि में पिता के विलाप को दिखाते हैं।

मैथिली: विद्यापति के रचित गीत और "कोहबर" के समय गाए जाने वाले बिदाई गीत अपनी मधुरता के लिए जाने जाते हैं।

हिंदी फिल्मों ने बिदाई को एक सिनेमाई पहचान दी है। "बाबुल की दुआएं लेती जा" (नील कमल): मोहम्मद रफी की आवाज में यह गाना 2025 में भी हर भारतीय शादी की अनिवार्य पसंद है। "दिलबरो" (राज़ी): यह आधुनिक युग का सबसे लोकप्रिय बिदाई गीत है। इसके कश्मीरी बोल "मुड़ के न देखो दिलबरो" पिता-पुत्री के अटूट बंधन को दिखाते हैं। "बाबुल जो तुम ने सिखाया" (हम साथ साथ हैं): यह गाना विदाई के समय एक बेटी द्वारा अपने संस्कारों को याद करने के बारे में है। "सादा चिड़ियाँ दा चम्बा" (ताल/अन्य फिल्में): यह मूल रूप से एक लोकगीत है जिसे बॉलीवुड ने कई बार बहुत ही खूबसूरती से फिल्माया है। "लाड़ली" (ए.आर. रहमान): कपिल सिब्बल और रहमान का यह गीत बेटी के प्रति सम्मान और प्रेम को समर्पित है।

8. मृत्यु संस्कार के गीत

जीवन यात्रा का अंतिम पड़ाव है मृत्यु। रामायण महाभारत कथा कालिदास के काव्य में इस तरह के गीत गाए जाते हैं। मृत्यु पर भी लोक गायक शोक गीत लिखता है। सभी सगे संबंधी इस तरह के शोक मनाते पहुंचते हैं। मरण चिर सत्य है। पकी उम्र में जब किसी की मौत होती है तो इस समय भजन चेतावनियां आदि भी गाई जाती है-

इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक असंख्य संस्कार लोकगीतों की परंपरा प्रचलित है। यह लोकगीत मानव मन की सहज भावनाओं को उद्बोधित करते हैं। जीवन के हर छोटे-बड़े संस्कार से जुड़े इन गीतों में जीवन के अनुभव और स्वाभिवकता के दर्शन होते हैं। वर्तमान जीवन शैली ज्यों-ज्यों आधुनिक होती जा रही है जीवन मूल्य भी बदल रहे हैं। आज इन संस्कारों की महत्ता कम होती जा रही है। लोक जीवन से जुड़े इन गीतों का स्थान आधुनिक संगीत निर्णय लिया है। इन वर्णित संस्कारों में से मुख्यतः जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार ही प्रमुख रह गए हैं।

भारत के अलग-अलग प्रांतों में शोक व्यक्त करने की अपनी संगीत परंपराएँ हैं:

राजस्थानी (रुदाली): राजस्थान में शोक के समय पेशेवर विलाप करने वाली महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले गीतों को 'रुदाली' संगीत कहा जाता है। इसमें जीवन की नश्वरता का वर्णन होता है।

भोजपुरी और अवधी (निर्गुण): उत्तर भारत में कबीर के 'निर्गुण' भजन शोक के समय गाए जाते हैं। इनमें शरीर को एक 'पुरानी चादर' और आत्मा को 'हंस' कहा जाता है। "काहे को रोवत है चदरिया झीनी रे झीनी"।। ब्रज (मरसिया): विशेषकर मुहर्रम या शोक के अवसरों पर 'मरसिया' पढ़ने की परंपरा है, जो अत्यंत करुण रस से भरपूर होती है। बंगाली: बंगाल में मृत्यु के बाद 'हरिनाम संकीर्तन' और जीवन की क्षणभंगुरता को दर्शाने वाले लोकगीत गाए जाते हैं।

हिन्दी फिल्मों ने लोक शोक-गीतों को शास्त्रीय और सुगम संगीत के साथ मिलाकर कालजयी रचनाएँ दी हैं: फिल्म 'रुदाली' (1993): इस फिल्म का पूरा संगीत राजस्थानी शोक परंपरा पर आधारित है। "दिल हूम हूम करे" और "झूठी मूठी मितवा" जैसे गीत विलाप और अकेलेपन की लोक धुनों से प्रेरित हैं।

कबीर के निर्गुण भजन: फिल्म 'मसान' का गीत "मन कस्तूरी रे" और "तू किसी रेल सी गुजरती है" जीवन और मृत्यु के दार्शनिक लोक गीतों से प्रेरित हैं। फिल्म 'गंगा जमुना' (1961): इसमें अवधी लोक धुन पर आधारित शोक संगीत का उपयोग किया गया है। फिल्म Raazi का "दिलबरो" (कश्मीरी लोक धुन), जो बिछड़ने के दर्द को दर्शाता है।

इन गीतों में अक्सर सारंगी, इकतारा और डमरू जैसे वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है जो मन में वैराग्य पैदा करते हैं। ये गीत केवल दुःख नहीं जताते, बल्कि यह याद दिलाते हैं कि संसार नश्वर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. कुलदीप, लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन, आगरा,1972, पृष्ठ.346
2. चंद्रकांता, काली बर्फ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996 पृष्ठ 41
3. दीनानाथ साहनी, माँ की लोरियाँ और संस्कार गीत, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 63
4. विद्यानिवास मिश्र, भारतीय संस्कृति के आधार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 30
5. विवेच्च हिंदी फिल्में

*****

'आदमी की तरफ़' संग्रह की गजलों में व्यक्त भाव-भावनाएँ

प्रोफ़ेसर कैप्टन बाबासाहेब माने
अध्यक्ष हिंदी विभाग,
श्री शिव छत्रपति महाविद्यालय, जुन्नर, पुणे
m.babasaheb@yahoo.in
मो. 9890730583

सारांश :-

'आदमी की तरफ़' संग्रह की गजलों में निदा फ़ाजली ने विशेष रूप से दुर्लक्षित मनुष्यों की पीडाओं और उनकी अभावग्रस्तता की ओर समाज और व्यवस्था का ध्यान आकर्षित करने का कार्य किया है। इनमें अभाव और विवशता से ग्रसित व्यक्ति को जीवन के प्रति सकारात्मक तरीके से देखने की दृष्टि व्यक्त हुई है। इनमें तंगहाली से जूझते मानव को प्रेरित करनेवाली अनेकविध भाव-भावनाएँ मिलती हैं। ताकि पीड़ित मानव को जीवन जीने के लिए सहारा मिल सके। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार की प्रथा का जो विघटन हो रहा है, उससे अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन पर भी प्रकाश डाला गया है। ताकि समय रहते समाज एवं व्यवस्था दोनों का इन समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित हो सके और इनका पक्का इलाज हो सके। पर्यावरण को बचाए रखने की भावना और कुल मिलकर मानव कल्याण को साधने की कोशिश इन गजलों की विशिष्ट पहचान प्रतीत होती है। प्रस्तुत संग्रह की गजलों में आवेग, आनंद, उत्साह, प्रेम, चिंता, विषाद, शंका, जुगुप्सा, वत्सल, भय आदि अनेक भावों के दर्शन होते हैं। अतः इन सारी भाव-भावनाओं को प्रस्तुत शोधलेख में विस्तार के साथ देखा जा सकता है।

बीज शब्द : 'आदमी की तरफ़' गजल संग्रह - पीड़ायुक्त भाव- भावनाएँ, सेवा या सहायता परक भाव-भावनाएँ, प्रेरणा परक भाव-भावनाएँ, पारिवारिक टूटन और आपसी वैमनस्य परक भाव- भावनाएँ, वात्सल्य या वत्सलता परक भाव-भावनाएँ, पर्यावरण परक भाव-भावनाएँ।

प्रस्तावना:

गजल की परंपरा काफी पुरानी है। इसका पुराना रूप अरबी साहित्य में एक काव्य प्रकार के रूप में मिलता है। उसके पश्चात यह फारसी से होती हुई उर्दू और हिंदी में आई है। वर्तमान समय में उर्दू और हिंदी साहित्य में गजल काफी प्रचलित एवं लोकप्रिय बन गई है। स्वाभाविक है कि **'गजल'** शब्द अरबी भाषा का शब्द है, जिसका स्थूल अर्थ स्त्री से वार्तालाप करना है। अरबी साहित्य में प्रायः इसी अर्थ में गजल शब्द का प्रयोग नजर आता है। अरबी साहित्य की गजलों में मासूका, इश्क, स्त्री की जवानी का हाल आदि के संदर्भ में विविध भाव व्यक्त होते थे। यह परंपरा फारसी साहित्य में भी बरकरार रही। अर्थात इन दोनों साहित्य परिवेशों में गजल का दायरा प्रेम, स्त्री, उसकी जवानी, उसका वियोग आदि विषयों में ही सीमित था। कुछेक गजलकारों ने इस दायरे की सीमा को तोड़कर अन्य भावों को उजागर करने का प्रयास जरुर किया था। परंतु वह बहुत ही अल्पमात्रा में था। हातिम, वली, अमीर खुसरों, फाइज इत्यादि गजलकारों ने फारसी में गजल विधा को प्रचलित करने का कार्य किया। उर्दू साहित्य में मिर्जा असदुल्लाखां 'ग़ालिब', दाग, जौक, जिगर मुरादाबादी, इकबाल, कमर मुरादाबादी, पंडित ब्रजनारायण चकबस्त, बनवारीलाल 'शोला', फिराक गोरखपुरी, फैज अहमद फैज, साहिर लुधियानवी आदि अनेक गजलकारों ने इसे अधिक प्रचारित एवं लोकप्रिय बनाने का कार्य किया और आज भी उर्दू के अनेक गजलकार गजल विधा को लोकप्रिय बनाने में प्रयासरत दिखाई देते हैं।

उर्दू से हिंदी में जब गजल विधा का आगमन हुआ तो उसका दायरा अरबी-फारसी गजलों की अपेक्षा थोडासा विस्तृत हुआ था। इसमें प्रेम, शराब, प्रिय से मिलने की सीमित तड़प के साथ ही व्यक्तिगत कुंठाओं, अतृप्तियों, विकृतियों, परिवेशगत समस्याएँ, देशप्रेम आदि को स्थान मिल गया था। हिंदी में भारतेंदु युग से ही गजल शैली में लिखी गई कविताओं के दर्शन होते हैं। स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कई गजलें लिखी हैं, जो कथ्य की विवधता से संपृक्त हैं। इनके अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, माधव शुक्ल, बद्रीनारायण भट्ट आदि कवियों ने अपनी कविताओं की कुछेक पंक्तियों में गजल शैली का प्रयोग किया है। द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर', लाला भगवानदीन, जगदंबाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' आदि ने भी इस परंपरा का निर्वहन किया है। आधुनिक युग के हिंदी गजलकारों में शमशेर बहादुर, चंद्रसेन विराट, रामगोपाल परदेसी, रूपनारायण त्रिपाठी, दुष्यंत कुमार, बसीर बद्र इत्यादि अनेक हिंदी गजलकारों ने गजल को अधिक लोकप्रिय बनाया है। इन्होनें गजल को सामाजिकता के साथ जोड़ दिया है। इस सिलसिले में निदा फ़ाजली भी किसी पहचान के मोहताज नहीं हैं। उन्होंने भी गजल क्षेत्र में काफी नाम

कमाया है। उनके द्वारा रचित **"खोया हुआ सा कुछ"** शाइरी संग्रह को सन 1999 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है। उनका **"आदमी की तरफ़"** संग्रह 2010 में प्रकाशित हुआ है। इसमें कविता, दोहे और गजलें समाहित हैं। इसमें लगभग 36 गजलें समाहित हैं। प्रस्तुत संग्रह की गजलें तेरहवीं-चौदहवीं सदी के अमीर खुसरों से बीसवीं सदी के दुआ डिबाइवी तक की गजलों पर लिखी गई हैं। अर्थात इन गजलकारों की शैली पर आधारित गजलों की रचना की गई है। जिनमें विविध विषयों से युक्त अनेक भाव-भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। ये गजलें अतीत बोध के पैमाने में आधुनिक बोध को सम्मिलित करके समाज को नवाचार से परिचित करती हैं। अतः प्रस्तुत शोधालेख में **"आदमी की तरफ़"** संग्रह में समाहित गजलों में व्यक्त भाव-भावनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

पीड़ा युक्त भाव-भावनाएँ :

भाव हृदय की पहचान होते हैं। जहाँ हृदय है, वहाँ भावों का होना निश्चित है। जिस शरीर में हृदय स्थित है, वहाँ किसी-न-किसी रूप में भाव उत्पन्न होते ही हैं। फिर चाहे वह मनुष्य का हृदय हो, प्राणी का हो या फिर पक्षी का। सभी के हृदय में भाव पनपते रहते हैं। इनमें से किसी के भाव शब्दों के माध्यम से मुखर होते हैं, तो किसी के कृति के माध्यम से और किसी के वाणी और व्यवहार दोनों के मिश्रित रूप के माध्यम से प्रदर्शित होते रहते हैं। मनुष्य अन्य प्राणियों से अधिक मुखर है, वह अपने भावों को वाणी, लेखनी और व्यवहार इन तीनों माध्यमों से प्रदर्शित कर सकता है। निदा फ़ाजली एक मनुष्य होने के नाते संवेदना से संपृक्त हैं। उन्होंने अपनी गजलों में विविध विषयों पर समय-समय पर अपने हृदय में उत्पन्न भाव-भावनाओं को सहजता से व्यक्त किया है। निदा फ़ाजली अपने समय को काफी अच्छी तरीके से जानते हैं। इसीलिए वे आम आदमी की पीड़ा को गहराई से समझते हैं। उन्हें पता है कि आम आदमी का दुःख-दर्द अमीर आदमी की अपेक्षा काफी अलग होता है। कुछेक आदमी अपनी पीड़ा एवं दुःख-दर्द को अकेले ही बहलाते रहते हैं। किसी सच्चे साथी से अपनी पीड़ा को साझा नहीं करते। अकेले ही पीड़ा को ढ़ोने के कारण उनका मन अधिक चिंता में डूब जाता है। परिणाम में उनका अधिकांश जीवन खराब हो जाता है। अतः गजलकार उनसे कहते हैं -

"ये तो सच है तन्हा तन्हा गम बहलाना ठीक नहीं
लेकिन हर ऐरे-गैरे से हाथ मिलाना ठीक नहीं
ये तो सच है हर मौसम का अपना इक सच होता है
लेकिन हर मौसम में इस सच को दोहराना ठीक नहीं
ये तो सच है वक्त शहादत को ही अजमत लिखता है
लेकिन हर अजमत को सूली पर लटकाना ठीक नहीं
ये तो सच है किसी-किसी पल सब कुछ अच्छा लगता है
लेकिन ऐसे हर पल की तस्वीर बनाना ठीक नहीं
ये तो सच है कोई अचानक आँखों में बस जाता है
लेकिन दूर के हर मंजर के पास भी जाना ठीक नहीं ।।" [1]

इस संपूर्ण गजल में निहित भावों पर नजर डाले तो स्पष्ट है कि इसमें चिंता, समर्पण, आनंद, उत्साह, प्रेम, शंका इत्यादि अनेक भावों के एक साथ दर्शन होते हैं। और यह सीख भी मिलती है कि पीड़ित व्यक्ति को अपनी पीड़ा अकेले वहन करने की बजाए ऐसे व्यक्ति के पास साझा करनी चाहिए। जो व्यक्ति सचमुच ही उस पीड़ा को समझता हो और उसे दूर करने में सहायता कर सकता हो। ऐरे-गैरे लोगों से पीड़ा साझा करने से नुकसान उठाना पड़ सकता है। वे ऊपरी रूप से सहनुभूति दिखाते हैं, लेकिन पीठ पीछे हमारा मजाक का पात्र बनाते हैं। हमारी विवशता पर हंसते हैं। हमारी मजबूरियों का गलत फायदा उठा सकते हैं। इसीलिए ऐरे-गैरों से अपनी पीड़ा या गम साझा नहीं करना चाहिए।

यहाँ पर यह भी समझना जरुरी है कि समय हमेशा एक-सा नहीं रहता, वह बदलता रहता है। यह सत्य है कि कोई समय कुर्बानी माँगता है, तो हम कुर्बानी दे देते हैं। यहाँ कुर्बानी देने का अर्थ समय, इच्छा-आकांक्षा, ज्ञान, परिश्रम की कुर्बानी से ग्रहण कर सकते हैं। लेकिन हर बार स्वयं ही कुर्बानी देना उचित नहीं होता। समय बदलता है, संकट दूर हो जाते हैं। परेशानियाँ खत्म हो जाती हैं। इसके लिए मनुष्य को साहस, धैर्य और सतत कर्म से काम लेना जरुरी होता है। **"एक-सा रहता नहीं वक्त"** गजल में गजलकार ने इन्हीं भावनाओं को व्यक्त किया है। अंधकार, परेशानी और समस्याओं से घिरे मानव को तसल्ली देते हुए गजलकार लिखते हैं कि वक्त किसी का एक-सा नहीं रहता । वह बदलता रहता है। अगर किसी व्यक्ति के जीवन में बुरा समय चल रहा है। तो

वह भी एक दिन समाप्त जाएगा। लेकिन इसके लिए उस मनुष्य को अपनी आंतरिक प्रेरणा से प्रज्ज्वलित होकर सकारात्मक तरीके से जीवन में उत्पन्न चुनौतियों का सामना करना होगा। यथा-

"एक-सा रहता नहीं वक्त हमेशा सबका
कल हवेली थी जहाँ आज है रस्ता सबका.....
चाँद सूरज भी लिखा करते हैं, लहरों का हिसाब
एक रफ़्तार से बहता नहीं, दरिया सबका ।" [2]

उक्त पंक्तियों में आवेग, उत्साह आदि भावों के दर्शन होते हैं। इन भावों के माध्यम से गजलकार ने समय की गतिशीलता और परिवर्तनवादी उसकी नीयति पर स्पष्टता से प्रकाश डाला है।

सेवा या सहायता परक भाव-भावनाएँ :

दूसरों की सहायता करना, उनके दुःख में शामिल होकर उन्हें सहारा देना, संकट के समय में किसी गरीब की मद्द करना आदि सात्विक कर्म माने जाते हैं। इन विचारों एवं कर्मों के निर्वहन की परंपरा भारतीय समाज में पुरातन काल से चल रही है। भारतीय अध्यात्म तो इन विचारों से भरा पड़ा है। किसी भी समाज एवं देश को संस्कारित एवं सभ्य बनाने लिए इन विचारों को आत्मसात करके उनपर चलने की नितांत आवश्यकता होती है। निदा फ़ाजली भारतीय हैं। उनकी परवरिश भारतीय समाज में हुई है। भारतीय संस्कारों एवं विचारों को वे कैसे भूल सकते हैं ? अतः उन्होंने भारतीय समाज को दूसरों की तंगहाली, परेशानी और दुःख में सहयोग करने की पवित्र अपील की है। वर्तमान में देखा जा सकता है कि अधिकांश मनुष्य सात्विक कर्मों एवं विचारों से दूर जा रहे हैं। वे केवल अपनी स्वार्थसिद्धि में ही लीन होते जा रहे हैं। ऐसे में दूसरों की पीड़ा, उनकी अभावग्रस्त जिंदगी और उनकी समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। उनकी नजर में दान-धर्म, सेवा, सहयोग, करुणा, त्याग, सहानुभूति, उपकार आदि मानवी मूल्य केवल उपदेश देने के साधनमात्र बनकर रह गए हैं। अपना और अपने रिश्ते-नातेदारों का हित साधना और भौतिक सुख-साधनों को जुटाकर उनका उपभोग करना वर्तमान मानव जीवन का उद्देश्य बन गया है। ऊँगली पर गिनने लायक लोग ही दूसरों की सहायता करने में आगे आते हैं। ऐसे में गजलकार प्रत्येक मनुष्य की आंतरिक संवेदना को झकझोरता हुआ, उसे पीड़ित, दलित, मजदूर या सर्वहारा वर्ग की सहायता करने के लिए प्रेरित करता है। यहाँ पर गजलकार के हृदय में उत्पन्न सहायता परक भाव-भावनाओं के स्पष्ट दर्शन होते हैं। वे लिखते हैं-

"गम में किसी के खुद को रुलाना भी है नमाज
मस्जिद में मौलवी की मुनाजात भी है ठीक
मजूदर का थकन के सिवा कौन शहर में
अपना हो कोई साथ तो फुटपात भी है ठीक
ओ जाने वाले भूख को रोटी खिलाता जा
अब तक तो तेरे पाँव भी हैं, हाथ भी है ठीक ।" [3]

उक्त पंक्तियों में अध्यात्म, दान-धर्म, पुण्यकर्म, दीनता, श्रम आदि पर निहित भाव-भावनाएँ नजर आती हैं। यहाँ मजदूरों और भूखे-पीड़ित लोगों की सहायता करने की जो भावना व्यक्त हुई है, वह आज के समाज को दिशानिर्देश करने के लिए जरुरी प्रतीत होती है। **"हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या"** गजल में भी मस्ती में जीते हुए जरूरतमंदों की सेवा करने की बात कही गई है। किसी गरीब के घर में अगर चूल्हा नहीं जल रहा है, तो उसे सहयोग करना मनुष्य का असली धर्म है। केवल चोटी और दाढ़ी बढ़ाकर धर्म का प्रदर्शन करने से धर्म का पालन नहीं होता। जरुरतमंदों की सेवा करना ही मानव धर्म कहलाता है। इसका निर्वहन करना आवश्यक है। यथा – **"किसी घर के, किसी बुझते हुए चूल्हे में ढूँढ़ उसको, जो चोटी और दाढ़ी में रहे वो दीनदारी क्या..."**[4] इन पंक्तियों में सेवा का भाव या पुण्यकर्म वाला भाव अपनी उच्च अहमियत लिए हुए व्यक्त हुआ है। **'वो आँख उठा के नहीं देखते परी की तरफ'** गजल में अंत्योदय के लिए जागृत करनेवाली भावना नजर आती है। यथा-

कोई किसी की तरफ है, कोई किसी तरफ
कहाँ है शहर में अब कोई जिंदगी की तरफ
सभी की नजरों से गायब था जो वो हाजिर था
किसी ने मुड़ के नहीं देखा, आदमी की तरफ ।[5]

यहाँ पर गजलकार दुर्लक्षित आदमी के विकास की ओर ध्यान आकर्षित करने की भावना व्यक्त करता है।

प्रेरणा परक भाव- भावनाएँ :

निदा फ़ाजली मस्ती के शायर हैं। वे मस्ती-मस्ती में ही समाज के दुर्लक्षित तबके के दुखों को उजागर करते हैं। ताकि सभी का ध्यान उपेक्षितों की ओर आकर्षित हो जाए। उनके दुःख दूर हो जाए। अन्य लोगों की तरह वे भी खुशहाली से जीवन जी सके। **"जो यार देखा नैन भर मन की गयी चिंता उतर"** गजल में उन्होंने निराश एवं उदास व्यक्ति को प्रकृति एवं समाज की ओर आशावादी तरीके से देखने की प्रेरणा प्रदान की है। मनुष्य को अपने अन्तर्चक्षुओं खोलकर दुनिया एवं प्रकृति के अलग-अलग रूप-रंगों को सकारात्मक रूप में देखने की बात पर बल दिया है। उनका मानना है कि इधर-उधर भटकने की बजाए व्यक्ति को अपने अंतर्मन में झाँकना चाहिए और सकारात्मक तरीके से समाज एवं दुनिया को देखना चाहिए। तभी उसे दुनिया की सारी सुंदरता नजर आ सकती है। **'यूसुफे गुम सू आगा अब बकिआँ गमन न खाँ'** गजल में निराश एवं दुखी मनुष्य को जीवन के प्रति आशावान बने रहने की प्रेरणा देने वाले भाव व्यक्त हुए हैं। गजलकार की हृदयगत भावना है कि व्यक्ति को जीवनपर्यंत अपने मौसमों पर नजर रखना आवश्यक है। उसके मरने के बाद भी इस धरती पर सुंदरता या फूलों की बाग़ यूँ ही बरक़रार रहेगी। इसीलिए उसे जीवन में कभी दुखी या निराश नहीं रहना चाहिए। उसके जीवन में कितने ही मुश्किल संकट क्यों न आये? कितने ही कठिन प्रसंग क्यों न घटित हो? फिर भी उसे हमेशा आनंदित रहकर उनका सामना करना चाहिए। "**काम जो दुश्वार है होगा वो असान गम न खा, आदमी के खोल से निकलेगा इंसा गम न खा।"**[6] अर्थात मुश्किल लगनेवाले काम भी आसान हो सकते हैं। लेकिन मनुष्य को दुःख नहीं करना चाहिए। यहाँ गजलकार आवेग के माध्यम से मनुष्य को जीवन में आगे बढ़ने की ताकत देते नजर आते हैं। **'दिल है तो दिल के वास्ते दिलबर तलाश कर'** गजल में मनुष्य का उत्साहवर्धन करके उसे पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरित करनेवाली भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। ये भावनाएँ मनुष्य को कर्म करने, उम्मीद रखने और अपने भाग्य को बदलने के लिए तैयार करती हैं।

पारिवारिक टूटन और आपसी वैमनस्य परक भाव-भावनाएँ:

पारिवारिक टूटन की विकृत प्रवृत्ति वर्तमान भारतीय समाज की ज्वलंत वास्तविकता है। भारतीय समाज में अब पहले जैसे संयुक्त परिवार नहीं रहे। नब्बे प्रतिशत से अधिक परिवार विभक्त हो चुके हैं। संयुक्त परिवार प्रथा से अनेक लाभ होते थे। संयुक्त परिवार में सभी सदस्य मिलजुलकर रहते थे। एक-दूसरे का साथ देते थे। बालकों को भी बचपन से ही मिलजुलकर रहने और परस्पर सहयोग करने के संस्कार मिलते थे। सदस्यों में आपस में अपनत्व, प्यार, भरोसा, एकता जैसे गुणों का विकास होता था। परंतु अब यह परिदृश्य बदल गया है। अब व्यक्ति एकल परिवार में ही संयुक्त परिवार वाली भावनाओं का अनुभव करने की झूठी कोशिश करने लगा है। शहरों में तो पहले ही संयुक्त परिवार प्रथा समाप्त हुई है। गांवों में भी यह प्रथा तेजी से समाप्त हो रही है। पहले जैसी रिश्तों की रौनक अब ना गाँव में दिखाई देती है और ना ही घर-परिवार में। सभी ओर एकल परिवार प्रथा ही दृष्टिगोचर हो रही है। परिणाम स्वरुप भारतीय समाज में अनेक तरह की बुराइयाँ फ़ैल रही हैं। जैसे कि लोगों में घुटन, चिंता, संकीर्णता, मानसिक असंतुलन, व्यसनाधीनता, नकारात्मकता, एकाकीपन आदि दुर्गुणों का प्रादुर्भाव बढ़ गया है। इससे घर-परिवार के सदस्यों में आपसी कलह, ईर्ष्या, द्वेष, वैरभाव, धोखाधडी, संकीर्णता और संबंध विच्छेद जैसी समस्याएँ बढ़ गई है। एक ही घर में ही रहने वाले दो भाई के दुसरे के दुश्मन बन रहे हैं। एक स्थान पर काम करनेवाले लोग भी परस्पर हानि पहुंचाने का कार्य कर रहे हैं। यह सारी समस्याएँ किसी भी समाज एवं देश के विकास, शांति, सुरक्षितता, खुशहाली, संस्कारशीलता, सभ्यता और समृद्धि के लिए काफी हानिकारक होती हैं। इस वास्तविकता को गजलकार ने यूँ उद्घाटित किया है –"**घर से बाहर नहीं होती किसी दुश्मन की तलाश, अपने ही आप से टकराते है गुस्सा सबका।"**[7] अर्थात लोग इतने स्वार्थी बन गए हैं कि वे अपनों को ही हानि पहुंचाने लगे हैं। संपूर्ण भारतवर्ष में यह स्थिति सभी प्रांतो में दिखाई देती है। इसीलिए गजलकार पहले जैसी संयुक्त पारिवारिक एवं प्राकृतिक स्थिति पुनः लाने की गुजारिश करते हैं- **"आंगन में पेड़ हैं न परिंदे हैं आस-पास, तक्सीम हो गया है मेरा खानदान क्या। पहली सी वो जमीन न वो असमान है, मेरे लिए उदास है सारा जहान क्या।।"**[8] इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि गजलकार ने भारतीय समाज को संयुक्त परिवार के रिश्ते-नातों में निहित सबंधों और प्राकृतिक परिदृश्य को पुनः स्थापित करने की अपील की है।

वात्सल्य या वत्सलता परक भाव-भावनाएँ :

मानव हृदय में वत्सलता का भाव स्थायी होता है। यह भाव केवल मानव में ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी और प्राणियों में भी रहता है। इस भाव का प्रदर्शन समय-समय पर सभी करते हैं। प्रकृति ने सभी प्राणियों को यह भाव उपहार स्वरुप दिया हुआ है। गजलकार मनुष्य होने के नाते उनके हृदय में वत्सलता का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है। **"जिसे इश्क का तीर कारी लगे"**

गजल में उन्होंने अपनी बेटी के प्रति हृदय में उत्पन्न वात्सल्य परक भाव-भावनाओं को अनोखे अंदाज में व्यक्त किया है। बेटी का लालन-पालन करना, उसके जीवन को सजाना-संवारना और उसे देखकर अपने मन को तृप्त करना किसी भी परिवार, समाज और देश के लिए काफी सुखदायक एवं फायदेमंद होता है। वैसे देखा जाए तो किसी घर में बेटी का जन्म होना उस घर के लिए आनंददाई बात होनी चाहिए। चूँकि वह दो परिवारों को जोड़ने और नई पीढ़ी के निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बेटी अपने जीवन में बहन, बेटी, सहचारिणी, जननी आदि कई प्रकार की भूमिकाएँ निभाती है। इसीलिए प्रत्येक घर में बेटी का होना आवश्यक है। उक्त गजल में गजलकार बेटी के प्रति अपनी वात्सल्य युक्त भावनाओं को यूँ व्यक्त किया है-

"जिसे देखते ही खुमारी लगे, उसे उम्र सारी हमारी लगे
उजाला सा है उसके चारों तरफ़, वो नाजुक बदन पाँव भारी लगे
वो ससुराल से आई है मायके, उसे जितना देखो, प्यारी लगे
हसीं सूरतें और भी हैं मगर, वो सब सैकड़ों में हजारी लगे
उसे देखना शेरगोई का फन, उसे सोचना दीनदारी लगे
चलो इस तरह से सजाएँ इसे ये दुनिया हमारी तुम्हारी लगे।"[9]

उक्त पंक्तियों में वत्सलता का भाव अपने चरम विकसित हुआ दृष्टिगोचर होता है और इससे समाज को बेटी के जीवन को सजाने-संवारने और उसकी सुरक्षा करने की सीख मिलती है।

पर्यावरण परक भाव-भावनाएँ :

पर्यावरण मानव जीवन के साथ ही संपूर्ण जीव सृष्टि के लिए अनिवार्य है। पर्यावरण को सुरक्षित रखना और परिसंस्था के चक्र को अबाधित रखना बुद्धिवादी होने के नाते मनुष्य का परम कर्तव्य है। परंतु मनुष्य ही पर्यावरण की हानि सबसे अधिक मात्रा में कर रहा है। भौतिकवादी दृष्टिकोण के चलते जंगलों की कटाई भारी मात्रा में हो रही है और उनके स्थानों पर बड़े-बड़े उद्योग स्थापित किए जा रहे हैं। विकास की दृष्टि से उद्योग भी जरुरी हैं। परंतु पर्यावरण का ध्यान रखकर उन्हें स्थापित किया जाना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। उद्यमी अक्सर सरकारी कानूनों को पालन पूर्ण रूप से नहीं कर रहे हैं। शहरों का विस्तार भी तेजी बढ़ रहा है। शहरों के लगातार विस्तारीकरण के कारण पेड़-पौधों से युक्त जमीन लुप्त हो रही है और उसकी जगह सीमेंट कंक्रीट के जंगल खड़े हो रहे हैं। आधुनिकता के पहले जिन बस्तियों में प्राकृतिक सुंदरता निहित थी और उससे जो सुकून का अनुभव होता था। वहाँ अब पहले जैसी अनुभूति नहीं मिल रही है। इससे पीड़ित होकर **'एक-सा रहता नहीं वक्त'** गजल में गजलकार ने अपनी व्याकुलता यूँ जाहिर की है – **"बस्तियों में कहाँ गुंजाइशें जंगल जैसी, ये इलाका था कभी पहले बसेरा सबका।"**[10] इन पंक्तियों में ग्लानि एवं विषाद आदि भावों के दर्शन होते हैं। शहरीकरण और बढ़ते औद्योगीकरण से पशु-पक्षी, प्राणी सभी का जीवन खतरे में पड़ रहा है और यह सिलसिला निरंतर जारी है। इस धरती को जिसने बनाया उसे नष्ट करके मानव ने अपनी ओर से कृत्रिम धरती बनाई है। इस संदर्भ में गजलकार ने **'जिसने कदम उठाया उसने निशाँ बनाया'** गजल में अपनी पवित्र भावनाएँ व्यक्त की हैं और यह संदेश देने का प्रयास किया है कि जिस प्रकृति को परमात्मा ने बनाया है। मनुष्य ने उसका अतिदोहन किया है। परिणाम में कई विद्रूपताएँ उत्पन्न हो गई हैं। अब शहर हो या गाँव, आधुनिकता की अंधी दौड़ में अपनी प्राकृतिक सुंदरता खोते जा रहे हैं। पर्यावरण संतुलन निरंतर बिगड़ता जा रहा है। हवा, पानी और जमीन प्रदुषण की समस्या बढ़ने लगी है। दिल्ली, मुंबई जैसे अनेक महानगरों में भारी मात्रा में हवा दूषित हो रही है। इसकी वजह से अनेक तरह की बीमारियाँ फैलने लगी हैं। मानव के साथ सभी का जीवन खतरे में पड़ने लगा है। अतः इस पर समय रहते उपाय तलाशने की आवश्यकता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'आदमी की तरफ़' संग्रह की गजलों में निदा फाजली ने आम आदमी की पीड़ा से लेकर वर्तमान समय के समाज एवं पर्यावरण तक के अनेकविध विषयों पर अपनी भाव-भावनाएँ व्यक्त की हैं। इसके पीछे उनका एकमात्र उद्देश्य यह लक्षित होता है कि मानव जीवन और सृष्टि जीवन अबाधित रहे, स्वस्थ रहे, सकुशल रहे और सुरक्षित रहे। इसके अतिरिक्त उन्होंने निराशा से ग्रसित समाज का उत्साह वर्धन करके उसे प्रेरित करने का स्तुत्य प्रयास भी किया है।

संदर्भ सूची :

1] निदा फाजली : आदमी की तरफ पृ. 55
प्रथम संस्करण : 2010 वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली-110002
2] वही, पृ. 61

3] वही, पृ. 57
4] वही, पृ. 66
5] वही, पृ. 113
6] वही, पृ. 67
7] वही, पृ. 62
8] वही, पृ. 70
9] वही, पृ. 72
10] वही, पृ. 61

*****

हिंदी ग़ज़ल और स्त्री जीवन

डॉ. भरत त्र्यंबक शेणकर
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे
संपर्क – ७९७२५८१५७७
मेल – anilzine97@gmail.com

अनिल भाऊसाहेब झिने (शोधछात्र)
शोधकेंद्र - संगमनेर नगरपालिका कला,
डी.जे. मालपाणी कॉमर्स आणि बी.एन.
सारडा सायन्स कॉलेज,
अहिल्यानगर, महाराष्ट्र – ४२२ ६०५

सारांश :

समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में स्त्री का चित्रण पारंपरिक सौंदर्य और विरह के दायरे से निकलकर अब अस्तित्व, अधिकार और संघर्ष की ओर मुड़ चुका है। आज की स्त्री शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के बल पर पुरुष वर्चस्व को चुनौती दे रही है। ग़ज़लकारों ने सामाजिक भेदभाव और असुरक्षा जैसे कटु यथार्थों को स्वर दिया है। हालाँकि दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव आया है, फिर भी स्त्री को अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने की चुनौती बनी हुई है। अतः वर्तमान ग़ज़ल का मुख्य उत्तरदायित्व नारी के संपूर्ण जीवन-सत्य और उसकी अस्मिता को और अधिक गहराई व संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त करना है।

बीजशब्द –

स्त्री अस्मिता, सामाजिक विसंगतियाँ, पितृसत्तात्मक सोच, नारीवादी चिंतन, त्रासदी, भूमंडलीकरण, आर्थिक आत्मनिर्भरता, पुरुष वर्चस्व, रुमानियत, भोगवादी संस्कृति, मानसिक प्रताड़ना, यौन शोषण, समान अधिकार, सामाजिक रूढ़ियाँ, प्रतिरोध, अत्याचार।

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य में कई प्रवृतियां, वादों एवं विधाओं का विकास हुआ है। साहित्य की हर एक विधा जिसमे कहानी हो या उपन्यास हो या चाहे आधुनिक विधा ग़ज़ल की बात करें इन सभी में स्त्री जीवन का चित्रण एवं स्त्री जीवन की त्रासदी का चित्रांकन रचनाकारों ने किया है। हिन्दी साहित्य में ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों को सामने लाने का सफल प्रयास किया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में 1960 ई. के बाद से चाहे दुष्यंतकुमार हों या फिर जहीर कुरेशी सभी लोगों की ग़ज़लों में स्त्री अस्मिता की झलक बख़ूबी दिखाई देती है। अब ग़ज़ल सिर्फ रुमानियत में सिमटी नहीं रही बल्कि वह स्त्री अस्मिता की एक बुलंद आवाज़ भी बनी हुई दिखाई देती है। हिन्दी ग़ज़ल समकालीनता के विभिन्न आयामों को आत्मसात करती हुई उसे स्त्री जनजीवन के साथ जोड़ देती है और उनके विचार, भावनाएँ तथा वेदना को उजागर करती दिखाई देती है। हिन्दी ग़ज़ल में स्त्री जीवन के हर प्रकार के अस्तित्ववादी और अस्मितावादी पहलू पर बात की जा रही है। हिंदी के प्रमुख ग़ज़लकारों में जहीर कुरेशी, दुष्यंतकुमार, अवधकिशोर सक्सेना, चंद्रसेन विराट, रवींद्र भ्रमर आदी. स्त्री जीवन का त्रासदी को अपनी रचना के माध्यम से मुखाग्नी दे रहें है।

विषयवस्तु:

यह स्वाभाविक है कि वर्तमान में साहित्य चिंतन का मुख्य विषय स्त्री अस्मिता और नारीवादी चिंतन से खाली नहीं हो सकता। हिन्दी ग़ज़ल विधा ने समय के अनुरूप स्त्री के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन किया दिखाई देता है। अब हिंदी ग़ज़लों में नारी के केवल ईश्वरीय तथा सौन्दर्यात्मक रूप का ही वर्णन नहीं किया जाता बल्कि स्त्री जीवन में आनेवाली समस्याओं एवं परिवर्तनों को भी ग़ज़ल में स्थान दिया जाने लगा है। वर्तमान समय में स्त्री जीवन पहले से कहीं अधिक दूभर हो गया है। स्त्री जीवन की त्रासदी को समझते हुए हिंदी साहित्य की प्रतिनिधी महिला ग़ज़लकार रचना शुक्ला कहती हैं –

क्या कहें किसका नाम है औरत ?
दर्द का इंतकाम है औरत।
देश आजाद और आप भी आजाद,
और अब तक गुलाम है औरत।[1]

भूमंडलीकरण के इस दौर में जहाँ नारी को घर की चार दीवारी में बंधकर अपना जीवन जीने के लिए मजबूर किया जाता था, वहीं आज उसे समाज में हर स्तर पर अपनी पहचान बनाने और हर प्रकार के लोगों के साथ व्यवहार करने का अवसर मिला है। भूमंडलीकरण और सामाजिक बदलावों के साथ स्त्री जीवन में कई नई संभावनाएँ खुली हैं। अब वह शिक्षा, रोजगार, राजनीति,

खेल, कला, विज्ञान, और समाज सेवा जैसे क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही है। हालाँकि, स्त्री को अपने से कम समझने वाली मानसिकता अब भी समाज में व्याप्त है। पुरुषवादी सोच के कारण स्त्री को बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता। पुरुष प्रधान समाज में नारी को हमेशा निम्न स्थिति में रखा जाता है और उसे बराबरी का अधिकार देने के बजाय, उसे पीछे धकेलने की कोशिश की जाती है। इसके कारण नारी को अपने अस्तित्व के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ता है। कई बार नारी को शारीरिक और मानसिक रूप से दबाया जाता है, जिससे उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है। ग़ज़लकार रशीदा अयाँ कि ग़ज़ल में इसका चित्रण दिखाई देता है -

बात लाखों की सही पर वो नहीं माने तो,
सच की मीज़ान पे रख कर भी न गर्दाने तो।
देख कर जाते हुए चीख़ रही हूँ बे-सूद,
शख़्सियत को मिरी आ कर भी न पहचाने तो।[2]

भोगवादी संस्कृति का प्रभाव वर्तमान समाज में अत्यधिक बढ़ चुका है, जिसके कारण कई प्रकार की सामाजिक और मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इस संस्कृति के कारण लोग आत्मसंयम और नैतिक मूल्यों को भूलकर केवल भौतिक सुखों की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं के प्रति अत्याचार और भेदभाव में वृद्धि हो रही है। महिलाओं को अब मात्र भोग का साधन समझा जाता है, जिससे उनके मान-सम्मान की कोई कीमत नहीं रह गई है। आजकल के समाज में स्त्री की इज्जत और स्वाभिमान का कोई महत्व नहीं रह गया है। अकेली महिला को तो जैसे जीने का कोई अधिकार ही नहीं रह गया। बलात्कार, शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न जैसी घटनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। यदि कोई महिला इन अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाती है, तो उसे न्याय मिलने में कई बाधाएँ आती हैं। गवाहों का अभाव, पुलिस और न्याय व्यवस्था की लापरवाही, और समाज द्वारा प्रताड़ना की वजह से उसे न्याय नहीं मिल पाता। इस स्थिति में कुछ महिलाएँ मानसिक तनाव और समाज के तिरस्कार के कारण आत्महत्या करने का कदम उठाती हैं, तो कुछ ऐसी परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए देह व्यापार में उतरने को विवश हो जाती हैं। इस संबंध में ग़ज़लकर कहते है –

रूप लुटता था, रूप लुटता है,
लूट का सिलसिला पुराना है।
औरतों के चरित्र को लेकर,
मर्द का सोचना पुराना है।
मौका मिलते ही सिर उठाएगा,
आदमी भेडिया पुराना है।[3]

इस तरह की घटनाएँ समाज के लिए शर्मनाक हैं और इसके लिए जिम्मेदार समाज की भोगवादी मानसिकता है। इसे बदलने के लिए शिक्षा, संवेदनशीलता और महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागरूकता फैलाने की आवश्यकता है, ताकि महिलाओं को सम्मान और सुरक्षा मिल सके।

आधुनिक कहें जानेवाले समाज की विडंबना है कि जिस देश में 'यत्र नार्यस्तु पूजन्ते, रमन्ते तत्र देवता' के सूत्र को महत्वपूर्ण माना जाता है उसी देश में नारी शोषण बढ रहा है। आज भी स्त्री को केवल भोग्य वस्तु के रूप में देखा जा रहा है। स्त्री-शोषण की मुक्ति के लिए भरसक प्रयास भी हुए लेकिन स्त्री जीवन में आज भी कोई बदलाव नहीं दिखाई देता बल्कि आज के भौतिकवादी एवम भोगवादी संस्कृति में स्त्री अत्याचार और भी बढ गये हैं। दहेज की कुप्रथा नारी जीवन के लिए अभिशाप बन गई दिखाई देती है। नारी शोषण एवं अत्याचार को दृष्टि में रखकर हिंदी ग़ज़लकारों का संवेदनशील होना स्वाभाविक है –

क्या कहें अखबारवालों से व्यथा औरत,
यौन-शोषण की युगों लंबी कथा औरत।
अपहरण कर ले गए 'रावण' कभी 'बिल्ला',
कल 'सिया', तो आज 'गीता चोपडा' औरत।
आज भी मामा या सौतेले पिता के हाथ,
बेच दी जाती है 'बूढे' को युवा औरत।[4]

पुरुषवादी संस्कृति में जीवनयापन करनेवाली स्त्री वर्तमान में अपने अधिकारों के प्रति भी सजग बन गई है। आज आवश्यकता तो केवल एक चिंगारी भडकाने की जो उसके अन्दर की सुप्त ज्वालामुखी को जागृत करें जो उसके अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ हो। ग़ज़लकार दुष्यंतकुमार कवि दायित्व निभाते हुए कहते हैं –

मुझमें रहते हैं करोडों लोग चुप कैसे रहूँ,
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।[5]

हिंदी साहित्य में नारी का चित्रण प्राचीन काल से ही विविध रूपों में होता आया है। माँ के रूप में वह त्याग और ममता की प्रतिमूर्ति है, पत्नी के रूप में सहचरी और सहनशील, तथा बहन के रूप में स्नेह और संरक्षण की प्रतीक। इन पारंपरिक रूपों में नारी को प्रायः आदर्शों की सीमाओं में बाँधकर प्रस्तुत किया गया है। किंतु समय के साथ साहित्य की दृष्टि व्यापक हुई और नारी के जीवन के यथार्थ पक्षों पर भी विचार होने लगा। ग़ज़ल के माध्यम से हिंदी ग़ज़लकारों ने नारी की स्वतंत्रता, उसकी पीड़ा, संघर्ष और आत्मसम्मान को अभिव्यक्त करने का सशक्त प्रयास किया है। ग़ज़ल की संक्षिप्त, भावप्रधान और प्रतीकात्मक शैली नारी के अंतर्मन की व्यथा और समाज से उसके टकराव को प्रभावी ढंग से उजागर करती है। हिंदी ग़ज़लों में नारी केवल प्रेमिका या सौंदर्य की वस्तु नहीं, बल्कि अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत एक सजग और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। आधुनिक हिंदी ग़ज़लकारों ने सामाजिक रूढ़ियों, पितृसत्तात्मक सोच और नारी पर हो रहे अत्याचारों को बेबाक शब्दों में अभिव्यक्त किया है। नारी की स्वतंत्र चेतना, उसकी इच्छाएँ और उसके जीवन की वास्तविक समस्याएँ ग़ज़ल को समकालीन संदर्भों से जोड़ती हैं। इस प्रकार हिंदी ग़ज़ल ने नारी के पारंपरिक रूपों से आगे बढ़कर उसके जीवन के यथार्थ और स्वतंत्र अस्तित्व को स्वर दिया है। ग़ज़लकारों ने सदियों से पीडित स्त्री जीवन में क्रान्ति का बीज बोने का कार्य भी किया है। इस संबंध में दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल का शेर प्रासंगिक है –

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।
एक खँडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी,
आदमी की पीर गूँगी ही सही, गाती तो है।[6]

वर्तमान समय में नारी की स्थिति में बहुत बड़ा बदलाव आया है। जहाँ पहले नारी को केवल घर के कामकाजी वातावरण में ही सीमित किया गया था, वहीं अब स्त्री समाज के हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज रही है। स्त्री ने अब अपने अधिकारों को पहचाना है और वह इस बात के प्रति सजग होकर अपने अधिकारों की रक्षा करने में समर्थ हो रहीं है । पहले समाज में उसे केवल पति परमेश्वर की पूजा करने वाली और गुलामी की मानसिकता से बंधी हुई माना जाता था, लेकिन अब नारी ने इस जंजीर को तोड़कर अपने अस्तित्व को नया रूप दिया है। वह अब किसी भी कार्य में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर भागीदारी करती है, और कई बार तो पुरुषों से भी आगे जाकर अपना मकाम हासील करती दिखाई देती है। वह अब अपनी स्वतंत्रता और पहचान के प्रति अधिक सचेत है। उसे अब यह एहसास हुआ है कि वह सिर्फ घर की चार दीवारी तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज के हर पहलू में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। स्त्री अब यह समझ में आ चुकी है कि वह भी पुरुषों के समान हर कार्य में सफलता प्राप्त कर सकती है, और कई बार उसने साबित भी किया है कि वह किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं है। इस बदलाव के परिणामस्वरूप समाज में नारी की स्थिति मजबूत हो रही है। अब वह आत्मनिर्भर और अपने फैसलों की मालिक बनकर समाज में अपना स्थान सुनिश्चित कर रही है। यह समय है कि समाज नारी को पूरी स्वतंत्रता और समानता दे, ताकि वह अपने सपनों को साकार कर सके और समाज में समानता की दिशा में काम कर सके। अब वह केवल दूसरों की इच्छाओं और अपेक्षाओं के अनुसार नहीं जीती, बल्कि अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और भावनाओं को भी महत्व देती दिखाई देती है। आज वह शिक्षा, रोजगार, राजनीति, विज्ञान, खेल और कला जैसे कई क्षेत्रों में अपनी पहचान छाप छोड रही दिखाई देती है। इस संबंध में ग़ज़लकर भावना कहती है –

मुझे घर से निकलना आ गया है।
कठिन राहों पर चलना आ गया है।[7]

निष्कर्ष :

समग्रत: कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में स्त्री का चित्रण पारम्परिक सौन्दर्यात्मक सीमाओं से बाहर निकलकर उसके जीवन के कटु यथार्थ और बहुआयामी अनुभवों तक विस्तृत हुआ है। जहाँ पहले ग़ज़लों में स्त्री मुख्यतः प्रेम,

विरह और सौन्दर्य की प्रतीक के रूप में प्रस्तुत होती थी, वहीं आज वह अपने अधिकारों, अस्मिता और अस्तित्व के प्रश्नों के साथ सामने आती है। समकालीन ग़ज़लकारों ने स्त्री के जीवन में व्याप्त पीड़ा, संघर्ष, असुरक्षा और सामाजिक भेदभाव को संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। आज की स्त्री अपनी अस्मिता की तलाश में पुरुष वर्चस्व को खुली चुनौती दे रही है। वह अब मौन सहनशील नहीं, बल्कि अपने अधिकारों के प्रति सजग और जागरूक है। बदलती सामाजिक परिस्थितियों, शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता ने नारी के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन लाया है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में नारी की स्वतंत्रता, सुरक्षा और उसके अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया गया है। लेखन के माध्यम से समाज को जागरूक करने का प्रयास निरंतर हो रहा है, ताकि स्त्री को समानता और सम्मान का अधिकार मिल सके।

फिर भी यह सत्य है कि नारी को स्वयं पुरुष के साथ अपनी सहधर्मिणी होने की प्रमाणिकता सिद्ध करने की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। ग़ज़लकारों ने दृष्टिकोण अवश्य बदला है, किंतु स्त्री जीवन के अनेक ऐसे पहलू अभी भी हैं जिन्हें व्यापक संवेदना और गहन अनुभूति के साथ प्रस्तुत किया जाना शेष है। समकालीन हिन्दी ग़ज़ल के सामने यह दायित्व है कि वह नारी के संपूर्ण जीवन-सत्य से समाज का साक्षात्कार कराए और उसके अस्तित्ववादी चिंतन को और अधिक सशक्त स्वर प्रदान करे।

संदर्भ :

1. हिंदी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें – सं. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ.30
2. नवीनतम हिंदी ग़ज़ले – सं.डॉ.रोहिताश्व अस्थाना, पृ.55
3. साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल – डॉ. मधु खराटे, पृ. 34
4. चाँदनी का दु:ख – जहीर कुरेशी, पृ. 68
5. साये में धूप – दुष्यंतकुमार,पृ. 47
6. साये में धूप – दुष्यंतकुमार,पृ. 38
7. हिंदी गजल के बढते आयाम – डॉ. भावना, पृ.22

*****

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' के गीतों में मानवीय संवेदना

डॉ. नानासाहेब जावळे
प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
सुभाष बाबुराव कुल कला, वाणिज्य व विज्ञान
महाविद्यालय केडगांव, तालुका- दौंड, जिला - पुणे।
E-mail- jawalenanasaheb@gmail.com
दूरभाष 7588952444

सारांश (Abstract) :

गीत ऐसी साहित्यिक रचना है जिसमें भाव, विचार और अनुभूति को लय और ताल की सहायता से गाया जाता है। गीतकार अपने गीतों के माध्यम से जीवन, प्रेम, प्रकृति और समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है। वह कभी हास्य व्यंग्य के अंदाज़ में, कभी करुणा से दिप्त भावों द्वारा जीवन की विभिन्न छवियों का वर्णन करने की कोशिश करता है। गीतकार कहीं ग्रामीण और कस्बाई जीवन की गरीबी, दरिद्रता एवं अनेक तरह की जटिलताओं पर कलम चलाता है। वह गीतों द्वारा यह धारणा पुष्ट करने की कोशिश करता है कि गति शाश्वत है और समय की कोई धारा उसे समाप्त नहीं कर सकती। गीतकार विभिन्न घटनाओं से व्यथित होकर गीत की रचना करता है, वास्तव में दुःख और संघर्ष ही गीत को जन्म देते हैं। गीत निर्माण के कारणों को लेकर यहां सुमित्रानंदन पंत की कुछ पंक्तियां सार्थक लगती हैं - "वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान। उमड आंखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।" गीतकार गीतों में हमेशा केवल विरह या दुख का ही वर्णन नहीं करता बल्कि कभी कभी अपने आसपास के जीवन में आनंद, उमंग, प्रेम, विरह जैसे भावों को अनुभव करता है तो वह जीवनानुभूति भी काव्य संवेदनाओं में बदल जाती है। स्पष्ट है प्रत्येक रचना रचनाकार के मानस का प्रतिबिंब होती है। गीतकार के शब्द जिस मानस से उभरते हैं, श्रोता या पाठक गीतों द्वारा उस मानस से साक्षात्कार पाते हैं।

बीज शब्द (Key Words) : गीत, गीतकार, मानवता, दुःख, क्लेश, प्रेम, विरह, मिलन।

भूमिका :

गीत में स्वर (ध्वनि) और सुर (लय) दोनों का समन्वय होता है। गीत से कभी दुख से राहत मिलती है तो कभी मन की निराशा छट जाती है। संगीत के माध्यम से मनुष्य के मन को सांत्वना मिलती है, भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है और जीवन के कष्ट कुछ हल्के हो जाते हैं। "संगीतशास्त्र के अनुसार शंकर ने संसार को दुःखाकान्त देखकर सांसारिकों के दुःख-निवारणार्थ गीत और वाद्य प्रकाशित किया है।"[1] अर्थात संगीतशास्त्र की मान्यता के अनुसार शंकर (भगवान शिव) ने जब इस संसार को दुःख, क्लेश और अशांति से व्याप्त देखा, तब उन्होंने मनुष्य के दुःखों को कम करने तथा उसे मानसिक शांति प्रदान करने के उद्देश्य से गीत (गायन) और वाद्य (संगीत-यंत्रों) का प्रादुर्भाव किया। निश्चित ही शंकर द्वारा गीत और वाद्य का प्रकाशन मानव-कल्याण, आनंद और आत्मिक शांति के लिए उपयुक्त रहा है। गीत मानव-मन की गहरी अनुभूति, संवेदना, विचार और सत्य की अभिव्यक्ति है। वह मनुष्य के अन्तःकरण से निकलने वाली सच्ची आवाज है, जिसे किसी भी शक्ति द्वारा स्थायी रूप से दबाया नहीं जा सकता। यदि साहित्य या गीत को दबाने या नष्ट करने का प्रयास किया जाए, तो वह किसी न किसी रूप में फिर प्रकट हो जाता है। अतः साहित्य का अस्तित्व मानवता के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। साहित्य की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए भीष्म सहानी लिखते हैं "साहित्य मानव जाति के अन्तःकरण की आवाज है, वह दबाये नहीं दब सकती, यह मर जायेगी तो इन्सान मर जायेगा।"[2] इस शोधालेख द्वारा हम कवि गोपालदास सक्सेना 'नीरज' के गीतों में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना पर चर्चा करेंगे।

प्रसिद्ध गीतकार नीरज द्वारा लिखित 'आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ' यह गीत सन 1970 में प्रदर्शित 'पहचान' फिल्म के लिए लिखा था। यह गीत मनुष्य को इन्सानियत का पाठ सीखाता है। आज आदमी-आदमी से दूर जा रहा है। रिश्तों के मानदंड बदलने लगे हैं। प्रेम पर धन हावी हो रहा है। लोग अपना स्वार्थ देखकर ही रिश्ते बनाते हैं। दुनिया के बाजार में मनुष्य खिलौना बन रह गया है। खिलौने का काम खत्म होने पर बच्चे जिस तरह उसे कहीं कोने में फेंक देते हैं, उसी प्रकार अपना मतलब पूरा होने पर लोग पीठ दिखाते हैं। फिर भी ऐसे स्वार्थी लोगों के प्रति भी कवि ईर्ष्या नहीं रखना चाहते। दुनिया के इस बाजार में कवि अपनी खुशियाँ बेचकर बदले में लोगों की आँखों का पानी खरीदते हैं। मतलब कवि लोगों का दुःख मिटाना चाहते हैं। लोग मृत्यु के पश्चात स्वर्ग जाने की कल्पना करते हैं। स्वर्ग सुख भोगना चाहते हैं। पर कवि इसी धरती पर स्वर्ग बसाना चाहते हैं। कवि ऐसा नगर बनाना चाहते हैं जहाँ का हर आदमी सुखी हो और लोग एक दूसरे के सुख-दुख को बांट सके।

''मैं बसाना चाहता हूँ स्वर्ग धरती पर
आदमी जिस में रहे बस आदमी बनकर -
उस नगर की हर गली तैय्यार करता हूँ -
आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ...।''[3]

कवि नीरज ने सन 1971 में प्रदर्शित 'तेरे मेरे सपने' फिल्म के लिए राधा-कृष्ण के अमर प्रेम को आधार बनाकर 'जैसे राधा ने माला जपी श्याम की...' इस गीत का सृजन किया है। राधा-कृष्ण के प्रेम में आकर्षण है पर वासना कहीं भी नहीं। प्रेम में समर्पण का होना जितना आवश्यक होता है उतना ही त्याग का होना आवश्यक होता है। प्रस्तुत गीत में प्रेमिका के उदात्त प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमी को पाने के लिए पे्रमिका की छटपटाहट देखने को मिलती है। जिस प्रकार राधा ने श्याम नाम की माला जपी थी उसी प्रकार प्रेमिका प्रेमी के लिए उसके नाम की चुनरिया ओढ़ लेती है। प्रेम दिखाने की चीज नहीं होती, वह अनुभूति का विषय है। प्रेम में दो हृदयों का मिलन होता है। प्रेम बाजार में मिलनेवाली वस्तु नहीं है, न ही उसका तोल मोल किया जाता है। प्रेम में एक प्रकार का उल्लास होता है, मौज होती है। उसे केवल सच्चे प्रेमी ही अनुभव कर सकते हैं। सच्चे प्रेमी प्यार के रंग में डूब जाते हैं। गीत की नायिका भी अपने प्रेमी के रंग में रंगीन हो गयी है। हम जिसे प्रेम करते हैं उसे अपने जीवनसाथी के रूप में पाने पर जो खुशी मिलती है। उसे शब्दों में बताना कठिन है। प्रेमिका बार-बार प्रेमी की पालकी में बैठने की इच्छा व्यक्त करती है।

''पा लिया तुझे
पा लिया तुझे, पाई हर खुशी
चाहूँ बार बार चढूँ तेरी पालकी
सुबह शाम की ये प्यास बड़े काम की।''[4]

नीरज ने 'फूलों के रंग से, दिल की कलम से' गीत सन 1971 में प्रदर्शित फिल्म 'प्रेम पुजारी' के लिए लिखा है। यह गीत एक प्रेमी अपनी प्रेमिका की याद में गाता है। प्रेमी देश सेवा के लिए अपना कर्तव्य निभाने के लिए दूसरे देश गया है। उसे अपनी प्रेमिका की याद सताती है। यह सच है कि प्रेम में जितनी भी दूरियाँ बढ़ती है उतना ही लगाव बढ़ जाता है। मिलन की आस बढ़ जाती है। प्रस्तुत गीत में दूर देश में गया प्रेमी अपनी भावनाओं को व्यक्त कर रहा है। प्रेमिका को वह प्रत्यक्ष न सही कल्पना के माध्यम से हररोज फूलों को रंग और दिल को कलम बनाकर चिट्ठी लिख रहा है। यथा -

''फूलों के रंग से दिल की कलम से
तुझको लिखी रोज पाती
कैसे बताऊँ, किस-किस तरह से
पल-पल मुझे तू सताती
तेरे ही सपने, लेकर के सोया
तेरी ही यादों में जागा
तेरे खयालों में उलझा रहा यूँ...
जैसे की माला में धागा।''[5]

नीरज ने सन 1971 में प्रदर्शित फिल्म शर्मीली के लिए लिखा गीत 'खिलते हैं गुल यहाँ, खिलके बिखरने को' मनुष्य के क्षणभंगुर जीवन पर प्रकाश डालता है। समय किसी के लिए कभी रुकता नहीं है। समय के साथ हर कहीं परिवर्तन होता है। चाहे वह मानवीय जीवन हो, पशु-पक्षियों का हो, पेड-पौधों का हो। हमारा बचपन हो या जवानी बीत जाने पर केवल यादे रहती हैं। गुजरे पल फिर लौट नहीं आते। इसी कारण प्रत्येक क्षण का आनंद उठाना चाहिए। यौवन के दिन गौरव के दिन होते हैं, वह समय अधिक पल्लवीत, पुलकीत और रोमांचित होता है। गीतकार को इन हसीन पलों को प्यार में व्यतीत करने में ही जीवन की सार्थकता लगती है।

प्रस्तुत गीत 'खिलते हैं गुल यहाँ, खिलके बिखरने को' के माध्यम से प्रेमी अपनी प्रेमिका को कई उदाहरण देकर इन पलों को प्यार में गुजारने की बात करता है। जिस प्रकार फूल खिलते हैं, खिलकर बिखर जाते हैं। उसी तरह दिल मिलते हैं, मिलकर एक दिन बिछड़ जाते हैं। इसलिए उन क्षणों का आनंद उठाना चाहिए। प्रेमी कहता है प्यार का भी एक मौसम होता है। वह कल रहे या ना रहे कुछ पता नहीं है। प्रकृति सजी धजी है, बहार सी आयी है। यह बहार कल रूके या ना रूके कोई बता नही सकता। इसलिए

आज जीवन में जो चार पल मिले हैं उन्हें प्यार में गुजार देना चाहिए। नहीं तो ये पल भी हमारे हाथ से छुट जाएंगे। इस संदर्भ में प्रेमी कहता है -

‘कल रहे ना रहे, मौसम ये प्यार का
कल रुके ना रुके, डोला बहार का-
चार पल मिले जो आज, प्यार में गुजार दे।’’[6]

इस प्रकार गीतकार विभिन्न गीतों के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं को उजागर करते हैं। गीतकार कभी इन्सान के हृदय में प्यार जगाकर धरती पर स्वर्ग बनाना चाहते हैं। गीतकार को विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति प्रेम को खरीद नहीं सकता, वह कोई बाजारू चीज नहीं है। गीतकार यह भी संदेश देते हैं कि अपनी व्यक्तिगत भावनाओं, इच्छाओं से देश कई बड़ा होता है। गोपालदास सक्सेना ‘नीरज’ के गीत ही उनके व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। उनकी कविताओं ने हिंदी कविता को एक नया मोड़ दिया है। नीरज जब मंच पर झूमकर कविता का पाठ करते तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे। कई फिल्मों में भी उनके गीत बहुत प्रसिद्ध हुए और आज भी लोग उनके गीत गुणगुणाते हैं। अपने गीत या कविताओं के माध्यम से उन्होंने सामाजिक विषयों को वाणी दी। इसी कारण राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने उन्हें हिंदी की ‘वीणा’ का नाम दिया था।

संदर्भ सूची -

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-१ (पारीभाषिक शब्दावली) सम्पादक मण्डल - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान), पृ. 223
2. इतना ही वरदान बहुत है ... - युगेश चौबे प्रकाशक : श्री ज्ञान-युग प्रकाशन महावीर चौक, मेन रोड बालाघाट 481001, पृ. 5
3. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1 - बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002, पृ. 97
4. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1 - बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002, पृ. 98
5. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1 - बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002, पृ. 99
6. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1 - बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002, पृ. 101

*****

कुँअर बेचैन की ग़ज़लों में बदलतीं समाज मान्यताएँ और समस्याएँ

डॉ. प्रदीप माणिकराव शिंदे,
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
कर्मवीर भाऊराव पाटिल विश्वविद्यालय,सातारा
छत्रपति शिवाजी कॉलेज, सातारा (महाराष्ट्र)
ईमेल: pradeepshinde28@gmail.com
मोबाइल: 7385635505

सारांश :

स्वान्तंत्रोत्तर काल के भारतीय समाज में आए सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्रांतिकारक परिवर्तनों ने परम्परागत जीवन-मूल्यों और सामाजिक मान्यताओं को गम्भीर चुनौती दी है। एकल परिवार का बढ़ता प्रचलन, रिश्तों में आपसी टकराव , धार्मिक संकीर्णता, सांप्रदायिक हिंसाचार, भ्रष्टाचार ने शिष्टाचार का रूप धारण करना , महानगरीय अकेलापन, पाश्चात्य संस्कृति अंधानुकरण तथा नैतिकता का नाश इन सारे मुद्दों को डॉ. कुँअर बेचैन ने अपनी ग़ज़लों में अत्यंत गंभीरता से, तीव्र व्यंग्य और प्रखर यथार्थता के साथ उजागर किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र उनके महावर इन्तज़ारों का, नाव बनता हुआ कागज़, रस्सियाँ पानी की आदि प्रमुख ग़ज़ल-संग्रहों के आधार पर यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार बेचैन जी ने ग़ज़ल को समकालीन सामाजिक यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज़ बनाया और मानवीय मूल्यों के विघटन का पर्दाफाश किया।

बीज-शब्द :

कुँअर बेचैन, हिन्दी ग़ज़ल, सामाजिक परिवर्तन, मूल्य-विनाश, रिश्तों का बाज़ारीकरण, सांप्रदायिकता, महानगरीय अकेलापन, भ्रष्टाचार, पाश्चात्य अंधानुकरण, मानवीय संवेदना, नैतिक, पतन

प्रस्तावना :

हिन्दी ग़ज़ल का विकास उर्दू ग़ज़ल से बाहर निकलकर उसका स्वतंत्र अस्तित्व बनने लगा तो इसमें अनुराग के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों की सशक्त अभिव्यक्ति दिखाई देने लगी। हिंदी के सिद्धहस्त गज़लकार दुष्यंत कुमार ने इसे राजनीतिक विरोध तथा व्यंग्य का साधन बनाया तो कुँअर बेचैन ने इसे समाज विरोधी तत्वों के खिलाफ हथियार बनाया। सन 1960 के उपरांत देश-विदेश तेज़ी से परिवर्तन हो रहा था। औद्योगीक विकास और भूमंडलीकरण की अंधी दौड़ शुरू हो गई। परम्परागत संयुक्त परिवार बिखरने लगे, आपसी रिश्ते ठंडे पड़ने लगे, धर्म की परिभाषा बदलकर वह संकीर्णता का हथियार बना, भ्रष्टाचार ने हर क्षेत्र को अपनी चपेट में ले लिया, महानगरों की चमक-दमक के पीछे गहरा अकेलापन फैल गया और पाश्चात्य जीवन-शैली के अंधानुकरण ने हमारी सांस्कृतिक जड़ों को काटना शुरू कर दिया।

इसी दौर में कुँअर बेचैन ने ग़ज़ल को केवल निजी दर्द का माध्यम नहीं रहने दिया; उन्होंने इसे समाज का आईना बनाया। उनकी ग़ज़लें न तो केवल शिकायत करती हैं और न ही केवल आक्रोश उँडेलती हैं; वे समाज के भीतर चल रहे मूल्य-संकट को बड़ी संवेदनशीलता के साथ उजागर करती हैं और पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती हैं। डॉ. रामदरश मिश्र ठीक ही लिखते हैं, "कुँअर बेचैन की ग़ज़लें आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल की सबसे सशक्त सामाजिक चेतना की ग़ज़लें हैं।"

प्रस्तुत शोध-पत्र में बेचैन की ग़ज़लों के माध्यम से निम्नलिखित प्रमुख बिन्दुओं का विश्लेषण किया है:

1. रिश्तों का बाज़ारीकरण और इंसानियत का लोप:

स्वतंत्रता के बाद जिस तेज़ी से भारतीय समाज में व्यक्तिवाद और भौतिकवाद बढ़ा, उसने रिश्तों की बुनियाद को हिला दिया। समाज में इन्सानियत समाप्त हो रही है और अर्थकेंद्रीत रिश्ते ही समाज में पनप रहे हैं अत: आज का इंसान पैसे को ईश्वर मानकर पैसों का गुलाम हो गया हैं। जहाँ पहले रिश्ते पूजा-घर थे, वहाँ अब बाज़ार सज गया। स्वार्थकेंद्री प्रवृत्ति के कारण आपसी रिश्ते खत्म हो रहे है। बेचैन इसे अपने सबसे प्रसिद्ध शेर में व्यक्त करते हैं :

"प्यार पूजा-घर था पहले, अब तो बस बाज़ार है
जिसको देखो वो ही बिकने के लिए तैयार है।"

यह शेर केवल प्रेम तक सीमित नहीं है; यह समूचे सामाजिक रिश्तों का बाज़ारीकरण है। माता-पिता, भाई-बहन, मित्र – सभी रिश्ते अब लाभ-हानि के गणित में तौले जा रहे हैं। महानगरीय जीवन में तो यह और भी स्पष्ट हो गया है :

"ग़ैर बनकर रह रहा है अब सगों के बीच में

खून बहता है नहीं अपनी रगों के बीच में।"

खून के रिश्ते भी पराए हो गए हैं। रगों में खून की गर्मी नहीं रही। घर सिर्फ़ भौतिक संरचना बनकर रह गया है। नेम-प्लेटें लगी हैं, फर्नीचर है, मगर घर नहीं है, यहाँ बेचैन केवल घर की बात नहीं कर रहे; वे संयुक्त परिवार और समाज की संयुक्तता के खोने की बात कर रहे हैं। आधुनिक सभ्यता ने हमें भौतिक रूप से समृद्ध तो किया, पर भावनात्मक रूप से निर्धन बना दिया।

2. धार्मिक संकीर्णता और सांप्रदायिक हिंसा:

धर्म जो उदारता, सहिष्णुता और मानवता का संदेश देता था, आज संकीर्णता और हिंसा का हथियार बन गया है। धर्म की व्यापकता में संकीर्णता का स्थान नहीं होता परंतु धर्म का उदात्त भाव कमजोर हो रहा हैं। पुरानी परंपराओ ,दकायानुसी विचारों के साथ धर्म के ठेकेदारों ने धर्म का अर्थ बदलकर संकीर्ण एवं विकृत रखने का प्रयास किया हैं धर्म के आड़ में स्वार्थी प्रवृत्ति ढोंग, अनाचार, अन्याय आदि अप्रवृत्तियों को जन्म हुआ है। संप्रदायिकता एक समस्या के रूप में उभरकर सामने आ रही है। धर्म के नाम पर अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग वर्गों में दंगा फसाद होता है। कभी हिन्दू-मुसलमानों में तो कभी हिंद के जाति वर्ग में आपस में टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है। धार्मिक कट्टरता से लोगों की संकीर्णता बढ़ रही है। आज हम अनुभव कर रहे है कि साम्प्रदायिकता के अगारे प्रति दिन बरस रहे है। धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बह रही है। मासूम निष्पाप बच्चों की जान की कोई किंमत नहीं रही है। डॉ. कुँअर बेचैन इसे "अंगारों की सौगात" कहते हैं :

"है दिन भी अंगारों के, हर रात अंगारों की
यह किसने हमें दी है सौगात अंगारों की
मुश्किल है बहुत मुश्किल अब घर से निकल पाना
कागज़ की छतरियाँ हैं बरसात अंगारों की "
शहर जल रहा है और हम ख़ामोश हैं :
जल रहा है शहर सारा और हम ख़ामोश हैं
जर्रा-जर्रा है अंगारा और हम ख़ामोश हैं
चाकुओं की नोंक पर है अब हमारी गर्दनें
गर्दनों पर दुधारा और हम ख़ामोश हैं।

धर्म के नाम पर मासूम बच्चे मारे जा रहे हैं, मगर धर्म के ठेकेदारों को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। यह आग हिन्दू-मुस्लिम दंगों से लेकर जातीय टकराव तक हर जगह दिखाई देती है। यतीन्द्र तिवारी ठीक ही कहते हैं, "सांप्रदायिक हिंसा ने अपने तांडव से मानवता को कँपाया है।"

3. भ्रष्टाचार, बेईमानी और नैतिक पतन:

आज भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गया है। सच बोलना पाप और झूठ बोलना गुण समझा जाता है, आज भ्रष्टाचार ने विकराल रूप धारण किया है। भ्रष्टाचार हर क्षेत्र में मौजूद है। इस पति से सम्पूर्ण देश का वातावरण दुषित हो गया है। आज नैतिकता, मूल्यों का कोई महत्व वहीं रहा है। इसके स्थान पर धनप्रतिष्ठा को महत्व मिल रहा है। दूसरों के सुख दुःख के पति उदासिनता बढ़ रही है। मनुष्य संवेदन हीन बनता चला जा रहा है। इस भाव को केअर 'नाव बनता हुआ कागज' गजल संग्रह से विचार प्रकट करते है-

"जिन्दगी की जेब में क्या-क्या न अब रखते हैं लोग
पहले तो डरते थे सब कुछ भी गलत रखते हुए।"
"हर इक सड़क पे हो रहा इन्सानियत का क़त्ल
पूरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं।"

4. पाश्चात्य अंधानुकरण और सांस्कृतिक संकट:

भारतीय समाज पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हो रहा है। "परंतु मानव को मशीन में परिणत कर देने वाली पश्चिम की जीवन शैली उबाऊ, रस हीन, जीवन और रस के अभाव में (क से एक उत्तेजक गतिविधियों में फंसकर विनाशोन्मुख हुए पश्चिम के लोग हजारों की तादाद वास्तविक जीवन जीने की प्यास लिए भारत आते है। पर भारत पुत्र अपना सर्वतोमुखी विकास का मूल केवल पश्चिम के अन्धानुकरण करने में ही निहित मानकर एक दूसरे से होड करते देखे जाते है। यहाँ भारतीय समाज के कई लोगों पाश्चात्य संस्कृति अधा अनुकरण उस संस्कृति के प्रभाव में विचारों का आदान-प्रदान कर रहा है। भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति की तुलना करते हुए कुँअर बेचैन कहते है कि हम भारतीय लोग जो भी काम करते थे खुले आम करते थे। नहाने के लिए बंद कमरे

की आवश्यकता नहीं थी। भारत जैसे गर्म प्रदेश में ठंडे पानी का अनुभव सुखद होता है। पश्चिम के लोग खुले में स्नान नहीं करते। भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों की तुलना करते हुए राजलकार समझाते है कि हमारी संस्कृति पारदर्शक है तो पाश्चात्य संस्कृति चमक-दमक से निर्माण है, जिसमें नुकसान है। इसलिए कुँअर बेचैन कहते है -

बाथरूमों की नई 'कल्चर' में इतना बंद है
खुल के बारिश में नहाने की अदा जाती रही।
हमने पश्चिम की चमक-दमक को अपनाया,
पर उसकी रिक्तता भी अपना ली।

6. मानवीय संवेदना का ह्रास और आधुनिक सभ्यता की विडम्बना:

वर्तमान समाज ने नई सभ्यता का स्वीकार किया है। किन्तु इस प्रकार की सभ्यता से नुष्य भौतिकवादी बन गया है। इससे जीवन मूल्यों का हास हो रहा है। बेचैन जी के गज़लो में भौतिकवादी सभ्यता को प्रभावी रूप से अभिव्यक्त किया है। नई सभ्यता ने मनुष्य को 'आत्मकेंद्री' बना दिया है। उसके सामाजिक उत्तरदायित्व के भाव कुंठित हो गए है। अकेलापन और अभावग्रस्तता इस सभ्यता के तत्व है। रिश्तों नातों के विषय में कुँअर बेचैन बहते है कि नेम प्लेट लगा देने से घर नहीं बनते उसके लिए परस्पर स्नेह जरूरी है। घर के सदस्यों में तालमेल आवश्यक है। रागात्मक सम्बन्धों से घर स्वर्ग सा बनता है सिर्फ चार दिवारों का घर नहीं होता है। डॉ. कुँअर बेचैन की गजल दृष्टव्य है -

"नाम में अपने लिखा लेने से कब बनते हैं घर
नेमप्लेटों को लगा लेने से कब्र बनते है घर
घर का मतलब है कि घर के लोग मिलजुलकर रहें
चंद चीजों का सजा लेने से कब बनते है घर
घर में इक सुरताल का होना भी जरूरी है बहुत
घर का केवल राग गा लेने से कब बनते है घर। "
आज सपने जल चुके हैं, फिर भी आँखों में धुआँ है,

7. महानगरीय जीवन की विदुपताएँ:

आजादी के बाद देश में औद्योगिक विकास के साथ महानगरों में भी परिवर्तन है। महानगरीय जीवन पर भौतिक विकास का प्रभाव दिखाई देता है। लेकिन महान विदुपता ने उग्र रूप धारण किया है। इस पीड़ादायक स्थितियों का वास्तविक चित्र गजलकारों ने मार्मिकता के साथ किया है। "आज हमारे देश का शहरीकरण बड़ी तेजी रहा है। आजादी के पूर्व महात्मा गांधी ने 'देहातों की और चलो' की घोषणा की थी कि उन्हें मालूम था, यहाँ की आबादी का 75% हिस्सा देहातों में रहता है और उनकी के बदौलत सभी भारतीयों को अनाज मिलता है। किंतु आजादी के बाद परिस्थितियों गई और देश का बड़ी तेजी से नागरीकरण होने लगा।" शहरों में दंगे-फसाद जैसी आम लोगों को प्रभावित करती है। सारा शहर आग से जलता है और लोग तमाशबीना है। इस पर कुँअर बेचैन कहते है -

"जल रहा है शहर सारा और हम खामोश हैं
जर्रा-जर्रा है अंगारा और हम खामोश हैं
चाकुओं की नोंक पर है अब हमारी गर्दनें
गर्दनों पर दुधारा ओर हम खामोश है। "

आज मानव जीवन सुख या दुःख की राह पर नहीं वह नफरत और स्वार्थ में लिप्त है। इसी कारण संघर्ष पैदा होता है आपस में टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है; कुछ समय के लिए शांति स्थापित होती है परंतु शांति तथा सुख के पल बहुत कम होते है। कुँअर बेचैन स्पष्ट रुप से कहते हैं –

"सपनों को जले कितने बरस बीत गये है
आँखो में मगर अब भी धुआँ देख रहा हूँ
ना शोर कहीं है, न किसी दिल में है हलचल"

8. मानवी मूल्यों का विघटन:

एक समय था जब 'मानवता' को सर्वोच्च स्थान था। धन बल से मानवता को श्रेष्ठ समझा जाता था। आज आधुनिकता के दौर में बौद्धिकता के आगे मानवता चरमरा गई है। मानवता का स्थान स्वार्थ, चालाकी, फरेब ने लिया है। आज भारत में मानवीय सम्बन्ध संकट में होने के प्रमाण मिल रहे है। दाम्पत्य जीवन के पारंपारिक मूल्यों का हास हो रहा है। हमे अपनो के बीच कटकर रहना पड़ता हैं। यहा मुसीबत मनुष्यों के रिश्ते ठंडे होने से उत्पन्न हुई हैं। जब रगो में लहू की जगह पानी बहता है तब सगे-साथीयों को मनुष्य मूल जाता है। उसके मानवी मूल्यों का विघटन हो जाता है। "यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि अब सभी रिश्ते, चाहे वे मैत्री के हो, पारिवारिक हों या फिर सामाजिक हो, इस सीमा तक व्यावसायिक हो गए है कि गर्म प्याले से निकलती हुई भाप के अंत तक उसका कोई अस्तित्व ही शेष नहीं रह जाता। यह वर्तमान की सामाजिक विडंबना है। जो जीवन साथी को भी गैर मानने लगते हैं।

आज चारो तरफ प्रेम का बाजार सजा हुआ है। इस बाजार में खुद को बेचने की होड है। आज खुले में आम इन्सानियत का गला दबोचा जा रहा है। सामाजिक मूल्यों का पतन आम बात बन गई है। कुँअर बेचैन कहते है-

"हर इक सड़क पे हो रहा इन्सानियत का कत्ल
पूरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं ।।

9. समाज की बिगडती स्थिति:

समकालिन समाज का निरीक्षण करें तो समाज की स्थिति बिगडी हुई नजर आती है। सामाजिक मूल्यों जैसे कि संवेदना, सहानुभूति, ईमानदारी, सत्य, अहिंसा, निस्वार्थ भावना, प्रेम और मानवता आदि मूल्यों का विघटन हुआ है। समाज की इस बिगडती स्थिति को कुँअर बेचैन ने अपने ग़ज़ल का कथ्य बनाया है। सामाजिक स्थिति बिगड़ती गई है। डॉ. कुँअर बेचैन गजलों के माध्यम से समाज की बिगड़ती स्थिति पर प्रकाश डाला है -

"दो दिलों के दरमियाँ दीवार-सा अन्तर न फेंक।
चहचहाती बुलबुलों पर विष बुझे खंजर न फेंक।
हो सके तो चल किसी की आरजू के साथ-साथ।
मुस्कराती जिंदगी पर मौत का मन्तर न फेंक ।।"

आज की स्थिति में मानवी मूल्यों के विघटन, महानगरीय जीवन का बदलता रूप, भौतिकवादीता के परिणाम स्वरूप आम आदमी असुरक्षित महसूस कर रहा है। साम्प्रदायिक सद्भावना नष्ट हो रही है इस कारण अनेक प्रांतो में दंगे-फसाद लगातार बढ़ते जा रहे हैं। मनुष्य की आत्मकेंद्रीय प्रवृत्ति ने उसे अपने ही नजरों में गिरा दिया है। आज राजनीतिक खिलवाड में आन्दोलन करना, उग्र प्रदर्शन करना, नारे लगाना, अपनी दल की शक्ति दिखाने हेतू जूलूस निकालना यह दिन-प्रति-दिन हो रहा है। परिणाम स्वरूप जगह-जगह आगजनी, धार्मिक स्थानों पर पथराव, लूटमार, महानगरों में से लेकर कस्बों तक कर्फ्यू आदि घटनाओं से आम आदमी डर गया है। संवेदनशील साहित्यकार के मन पर इन घटनाओं का गहरा असर होता है।

कुँअर बेचैन ने अपने ग़ज़लों में आम आदमी का भय तथा आतंक के वातावरण को व्यापक रूप से दिखाने का प्रामाणिक प्रयास किया है। इस बारे में यतींद्र तिवारी कहते हैं-"कविता अपने समय की अनुगुंज है, जिसमें परस्पर विरोधी परिस्थितियों के बीच जी रहे आदमी की अंतर्वेदनाओं और आस्थाओं की ध्वनियाँ समाहित है। हिंसा भारतीय जीवन शैली नहीं है किंतु असंतुष्ट पीढी हिंसा के माध्यम से अपनी समस्याओं का समाधान खोजने में सक्रीय रही है। सांप्रदायिक हिंसा ने अपने तांडव से मानवता को कैंपा दिया है। "59 मानवता का यह सहमा रूप समाज में व्याप्त डर और आतंक का संकेत है। कुँअर बेचैन ने इसे यथार्थ के व्यापक घरातल पर प्रस्तुत किया है। आज के मनुष्य की राक्षसी प्रवृत्ति का वर्णन डॉ. कुँअर बेचैन ने अपनी ग़ज़लों में किया हैं-

"है कौन सा चमन जो बहारों की तरफ हैं
जिसको भी देखिये वो अंगारो की तरफ हैं
निचुडा है, बूँद बूँद खून फूल का मगर
वो कह रहे है, फूल निखारों की तरफ हैं ।।
है घोसलों में शोर मगर यह तो सोचिये।
दिल क्यों सभी का चीख पुकारों तरह है ।।

9. बेईमानी झूठ फरेब:

वर्तमान समय नैतिकता का स्तर गिरता जा रहा है और उसके मापदण्डों में परिवर्तन आया है। चारों तरफ भ्रष्टाचार का बोलबाला है, भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गया हैं। "आज संपूर्ण समाज में चारों तरफ नैतिकता का हास हो रहा है। उसके मानदण्डों में परिवर्तन आ गया है। आज सच बोलना लोग पाप समझते है। जहाँ देखो वहाँ झूठा बेईमानी और फरेब का ही वातावरण परिलक्षित होता है। आज सच पर चलने वाले को ठोकरें मिलती है, झूठ और बेईमानी करने वाला मौज मनाता है।" जो प्रामाणिकता से जीवन यापन कर रहा है उसके जीवन में बहुत अधिक कठिणाइयाँ आ रही है। जीवन के हर क्षेत्र में बेईमानी झूठ और फरेब दृष्टिगोचर होता है। राजनीतिक नेता, दफ्तर का बाबू भ्रष्टाचार को अपना अधिकार समझ रहे हैं। व्यक्ति का व्यक्ति पर से विश्वास टूट गया है। नेता नकाबपोश है अतः जनता की नजर धोखा खाती हैं। डॉ. कुँअर बेचैन जी कहते है -

"बदलता था वो अपने रूप इतने
नजर हर बार धोखा खा रही थी।

आज मनुष्य ने अपने मन मस्तिष्क में धोखा, बेईमानी, झूठ, फरेब जैसी गलत बाते संचित कर रखी है। पहले गलत बातों से आदमी डरता था अब उसे झूठ फरेब की आदत सी हो गई हैं। आज की विडम्बना है कि सत्य और असत्य की पहचान नहीं हो पा रही है क्योंकि मनुष्य का विवेक नष्ट हो गया है-

"जिन्दगी की जेब में क्या-क्या न अब रखते हैं लोग
पहले तो डरते थे सब कुछ भी गलत रखते हुए ॥

निष्कर्ष :

डॉ. कुँअर बेचैन की ग़ज़लें आधुनिक भारतीय समाज का एक जीवंत, करुण और सशक्त दस्तावेज़ हैं। उन्होंने न केवल बदलती सामाजिक मान्यताओं और मूल्य-पतन को दर्ज किया अपितु एक गहरे मानवीय सवाल के साथ समाज को आईना दिखाया। उनकी ग़ज़लें यह चेतावनी देती हैं कि यदि हम इंसानियत, स्नेह, सहानुभूति और नैतिकता को नहीं बचाएँगे तो भले ही हम कितने ही ऊँचे भवन बना लें, कितने भी नेम-प्लेट लगा लें घर नहीं बन पाएँगे, समाज नहीं बन पाएगा। कुँअर बेचैन केवल ग़ज़लकार नहीं, हमारे समय के सबसे सजग सामाजिक चेतना के कवि हैं। उनकी ग़ज़लें आज और भी प्रासंगिक हो गई हैं क्योंकि हम जिस दिशा में जा रहे हैं, उसकी भयावहता को उन्होंने चार-पाँच दशक पहले ही देख लिया था।

संदर्भ ग्रंथ :

1. बेचैन, कुँअर. (1995). महावर इन्तज़ारों का. नई दिल्ली: किताबघर।
2. बेचैन, कुँअर. (2000). नाव बनता हुआ कागज़. नई दिल्ली: किताबघर।
3. बेचैन, कुँअर. (2005). रस्सियाँ पानी की. लखनऊ: हिन्दी साहित्य सम्मेलन।
4. बेचैन, कुँअर. (2010). आग़ोश-ए-तिश्नगी. दिल्ली: बोधि प्रकाशन।
5. बेचैन, कुँअर (1983) शामियाने काँच के, गाजियाबाद , प्रगीत प्रकाशन।
6. श्रीवास्तव, दिनेश्वर. (2016). कुँअर बेचैन: व्यक्तित्व और कृतित्व. दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
7. मिश्र, रामदरश. (2012). हिन्दी ग़ज़ल का विकास. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
8. तिवारी, यतीन्द्र. (2015). "समकालीन हिंदी कविता में हिंसा और प्रतिकार". वागर्थ, कोलकाता।
9. त्रिपाठी, राममूर्ति (सं.). (2017). समकालीन हिन्दी ग़ज़ल: सरोकार और शिल्प.नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
10. शर्मा, गोपेश्वर. (2014). आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल की सामाजिक चेतना. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।

*****

'जहीर कुरेशी की गजलों में सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना'

डॉ.नितीन विठ्ठल पाटील
विठ्ठलराव पाटील महाविद्यालय
(आर्ट्स,कॉमर्स सायन्स) कळे
तहसील-पन्हाळा,जिला-कोल्हापूर
पिन-416205,मोबाइल-9049959282
Email- nitinpatil9282@gmail.com

शोध सारांश-

जहीर कुरैशी की ग़ज़लें समाज के यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। उनके लेखन में पारिवारिक संरचना, सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकता के प्रभाव प्रमुख विषय हैं। विशेषकर संयुक्त परिवार में पीढ़ियों के बीच वैचारिक संघर्ष, संबंधों में बदलाव और सामाजिक संकीर्णताओं का उन्होंने सजीव वर्णन किया है।कवि ने समाज में बेटियों के प्रति भेदभाव, पुत्रहीनता की चिंता, और पारिवारिक अपेक्षाओं को अपनी ग़ज़लों में उजागर किया है। वे आधुनिकता के प्रभाव से जीवन में संवेदनाओं के ह्रास और रिश्तों में दूरी पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके शब्दों में समाज की वास्तविक छवि, संवादहीनता, अहंकार और पारिवारिक मान्यताओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।साथ ही, कुरैशी ने शिक्षा और बेरोज़गारी की समस्याओं को भी समाज की त्रासदी के रूप में प्रस्तुत किया है। युवाओं की असहायता, आत्मनिर्भरता की कमी और समाज में बढ़ती आर्थिक एवं सामाजिक खाई उनके ग़ज़लों में चिन्हित है। समाज में दिखावे और वास्तविकता के बीच अंतर, और योजनाओं की व्यावहारिक अक्षमता उनके लेखन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष है।कुल मिलाकर, जहीर कुरैशी की ग़ज़लें समाजिक यथार्थ की सटीक झलक, मानवीय संवेदनाओं की गहन समझ, और सकारात्मक बदलाव की आशा प्रस्तुत करती हैं। उनका लेखन समाज की विसंगतियों पर प्रकाश डालते हुए चेतना और सुधार की आवश्यकता का संदेश देता है।

बीज शब्द: यथार्थ, संवेदना,आधुनिकता,संस्कृति,भ्रष्टाचार,प्रतीकात्मकता आदि।

प्रस्तावना

हिंदी ग़ज़ल की परंपरा केवल प्रेम, विरह और सौंदर्य-बोध तक सीमित न रहकर समय के साथ सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन चुकी है। विशेषतः समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने समाज के बदलते स्वरूप, टूटते रिश्तों, बढ़ती असमानताओं, नैतिक पतन और मानवीय मूल्यों के क्षरण को अत्यंत प्रभावी ढंग से स्वर प्रदान किया है। इस संदर्भ में जहीर कुरैशी का नाम एक ऐसे ग़ज़लकार के रूप में उभरकर सामने आता है, जिनकी रचनाएँ समाज के भीतर व्याप्त विसंगतियों, संघर्षों और संवेदनात्मक संकटों को गहरी आत्मीयता और निर्भीकता के साथ अभिव्यक्त करती हैं।जहीर कुरैशी की ग़ज़लें सामाजिक यथार्थ की ज़मीन पर खड़ी दिखाई देती हैं। उनके यहाँ संयुक्त परिवारों का विघटन, पीढ़ियों के बीच वैचारिक टकराव, बेटियों के प्रति भेदभाव, बेरोज़गारी, शिक्षा व्यवस्था की विफलता, भ्रष्टाचार, कानून व्यवस्था की संवेदनहीनता तथा आधुनिकता के दुष्परिणाम जैसे विषय प्रमुखता से उभरते हैं। वे केवल समस्याओं का चित्रण नहीं करते, बल्कि उनके पीछे छिपी मानवीय पीड़ा, असहायता और संवेदना के क्षरण को भी गहराई से रेखांकित करते हैं। यही कारण है कि उनकी ग़ज़लें पाठक को भावनात्मक स्तर पर झकझोरने के साथ-साथ सामाजिक चेतना से भी जोड़ती हैं।

जहीर कुरेशी की गजलों में सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना

जहीर कुरैशी जी अपनी रचनाओं में हमारे समाज में संयुक्त परिवार की पद्धति में आ रहे परिवर्तनों का सजीव चित्रण करते हैं। भारतीय समाज की प्रमुख आधारशिला परिवार ही रहा है, जहाँ एक, दो या तीन पीढ़ियों के लोग साथ रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। किंतु समय के साथ समाज की बदलती मानसिकता के कारण परिवार के भीतर वैचारिक भिन्नताएँ उत्पन्न होने लगती हैं। परिणामस्वरूप पुरानी और नई पीढ़ी के बीच संघर्ष आरंभ हो जाता है।विशेष रूप से बेटे के विवाह के पश्चात माँ और बेटे के संबंधों में आने वाला परिवर्तन इन टकरावों को और अधिक गहरा कर देता है। ये वैचारिक द्वंद्व ऐसी परिस्थितियों को जन्म देते हैं, जिनमें जीवन के कई साधारण से प्रतीत होने वाले पहलू मानवीय संवेदनाओं से जुड़ जाते हैं। इन्हीं संवेदनाओं को ग़ज़लकार ने अपनी ग़ज़ल में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।

"कभी जो मां का था शायद हो आज बीवी का
विवाह होते ही बेटा बदल भी सकता है"[1]

इस प्रकार के तथ्यों को उन्होंने समाज के सामने सटीकता से प्रस्तुत किया है ।साथ ही समाज में आज भी कई परिवार ऐसे हैं जो पुत्र प्राप्ति की कामना लेकर जीते हैं। लड़की के जन्म लेते ही परिवार में दुख का माहौल बन जाता है। कुलदीपक के लिए ईश्वर से मिन्नतें मांगते हैं। इस प्रकार की संकीर्णताएँ हमारे समय को हमारे समाज को धुंधला करती हैं। जिसे बताने के लिए समाज का वह यथार्थ प्रस्तुत करने के लिए जहीर कुरैशी कहते हैं-

"लायक हो अथवा नालायक जिंदा है,
गुप्त अंधेरे में 'कुल दीपक' जिंदा है
अनाथालय से ले आए थे जिसको
वह लड़की गिरधर की इज्जत बन गई है"[2]

जीवन में विषय और विचारधाराएँ अपनी-अपनी कसौटी पर खरे उतरने के लिए समन्वयात्मक रूप अपना लेती हैं। फिर भी कुछ तथ्यों को उद्घाटित करने के लिए समाज के उसे यथार्थ की त्रासदी को भी दिखाना पड़ता है। जहां अनेक प्रवृत्तियाँ प्रतीकात्मक होकर सामने आती हैं।समाज वह विरासत है जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक आयामों पर पड़ता है। क्योंकि उसका इतना व्यापक प्रभाव है की सांस्कृतिक विरासत हो या सामाजिक परंपराओं का ध्यान उसमें रखना ही पड़ता है। उचित अनुचित संवेदनहीन तमाम प्रकार की प्रतिष्ठा से युक्त उसे क्षमताओं को देखा जाता है जो अधिक न रहने से एक प्रकार से विडंबनाओ को जन्म देते हैं-

"स्वप्न जिनकी आंख में पाल सितारों से अधिक
डुगडुगी के सामने वे लोग बंदर हो गए "[3]

यह सच है कि हमारे सपने हमारी क्षमताओं से अधिक होते हैं लेकिन हमारी संवेदनाओं में जीवन का इतना व्यापक प्रभाव होता है कि, हम अपने सामाजिक परंपराओं का ध्यान रखकर चल ही नहीं पाते हैं। आज के युग में हम इस प्रकार से आगे बढ़ने में लगे हुए हैं, की उचित अनुचित तो दूर की बात विवेक के साथ संवेदनहीन भी बनते जा रहे हैं। पद-प्रतिष्ठा में हमें इस कदर प्रभावित किया है कि इसके पीछे दौड़ते हुए कई बार हम बेघर भी हो जाते हैं। हमारे सपने हमारी क्षमताओं से अधिक रहने के कारण समाज से टूट जाते हैं । स्वयं हम अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं यह हम नहीं समझ पा रहे हैं । वर्तमान समय की जो परिस्थितियाँ हैं उनके विषय में जहीर कुरैशी की गजलों की यह पंक्तियां प्राय हमें वह आइना दिखाती हैं, जिस आईने को हम अपनी खुली आंखों से देखने में असमर्थ हैं-

"आईने सच बात कहना चाहते हैं किंतु
सामने पत्थर पड़े हैं इसलिए चुप हैं"[4]

इतनी बेबाकी से सच को कहना और समाज की गलत मान्यताओं का मुंह तोड़ जवाब देने का साहस गजलकार ने किया है। हमारी वास्तविक छवि की पहचान परिवार, मित्र तथा समाज द्वारा ही होती है।लेकिन आज मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दकियानूसी बनता जा रहा है।वह परिवार और समाज के प्रति क्या दायित्व है इसको ही भूलता जा रहा है। हमें यह बताया जाता है कि, समाज में हमें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए और यदि हमारे पास यह शिक्षा है तो हम मानवीय संवेदना को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं। समाज के उसे यथार्थ पर अपना जीवन यापन भी कर सकते हैं। किंतु मानवीय संवेदना का मर जाना आज आम बात हो गई है।

आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव का हमारे जीवन पर असर पड़ा है। क्योंकि बदलते परिवेश में जीवन की कठिनाइयों से जूझता हुआ मानव यंत्रवत हो गया है। जहां उसकी मानवता खंडित हो ही चुकी है सहृदयता का स्रोत भी जैसे लुप्त हो गया है। वसुधैव कुटुम्बकम् का सिद्धांत और आज की मानवीय संवेदना का यथार्थ पूरी तरह से अलग है। जिसके चलते हमारे जीवन पर बहुत गहराई तक पड़े हुए असर को भी देखा जा सकता है।

आज रिश्तों-नातों में आई दरारें हमारी तेज़ होती ज़िंदगी, संवाद की कमी और बढ़ती अपेक्षाओं का परिणाम हैं। हम एक-दूसरे के साथ होते हुए भी मन से दूर होते जा रहे हैं, जहाँ सुनने की जगह सिर्फ़ जवाब देने की जल्दी रह गई है। छोटी-छोटी गलतफहमियाँ समय पर सुलझाई न जाएँ तो वे चुपचाप दूरी में बदल जाती हैं और अहंकार उस दूरी को और गहरा कर देता है। फिर भी हर दरार अंत नहीं होती, क्योंकि समझ, संवेदनशीलता और ईमानदार बातचीत से रिश्तों को फिर से जोड़ा जा सकता है—बस ज़रूरत है थोड़ा रुककर अपनों को महसूस करने की।

"अहम तो था ही, थी संवाद हीनता भी वजह,

हमारे आपसी रिश्ते सुधर नहीं पाए
पैर छूना तो याद क्या रखते
शहरी बच्चे प्रणाम भूल गए"[5]

आज भी हमारी सभ्यता में अपनों से बड़ों का सम्मान और उनका आदर करना भारतीय परंपरा का एक अभिन्न हिस्सा है। फिर भी यह समझना कठिन होता जा रहा है कि परिजन एक-दूसरे को किस दृष्टि से देखने लगे हैं। यह सामाजिक यथार्थ इन ग़ज़लों की चंद पंक्तियों में उभरकर सामने आता है, जो बताता है कि हम अच्छी परंपराओं को पीछे छोड़ते हुए ऐसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, जहाँ मानवीय संवेदनाओं का हनन होना लगभग निश्चित है। आधुनिकता का प्रभाव न केवल व्यक्ति की सच्ची भावनाओं पर पड़ रहा है, बल्कि हमारी सामाजिक विरासत को भी प्रभावित कर रहा है।

समाज की वर्तमान स्थिति हमारे सामने एक ऐसे यथार्थ को प्रस्तुत करती है जहाँ अनेक संभावनाओं के होते हुए भी खुशहाल जीवन विभिन्न त्रासदियों से प्रभावित हो जाता है। कहीं-न-कहीं हम औपचारिकताओं के जाल में फँसकर केवल दर्शक बनकर रह जाते हैं। समय से बड़ा कोई सामाजिक संघर्ष नहीं होता, फिर भी बढ़ती महत्वाकांक्षाएँ, स्वार्थी प्रवृत्तियाँ, धन-लाभ की लालसा तथा तथाकथित स्वतंत्र जीवन की चाह ऐसे अनेक माध्यमों और विचारों को जन्म दे रही हैं, जो हमारे वेबीनार जैसे सार्थक प्रयासों को भी क्षति पहुँचा रही हैं।जीवन स्वयं एक निरंतर संघर्ष है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों और चुनौतियों से जूझते हुए आगे बढ़ाना होता है। सामाजिक संघर्ष और समाज का यह यथार्थ हमें जीवन की उन परिस्थितियों से रूबरू कराता है, जिन्हें हम सामान्यतः वैचारिक समन्वय और सामंजस्य की भावना के माध्यम से समझने और स्वीकार करने का प्रयास करते हैं।

"जहां पर देह नारी या पुरुष की गैर हाजिर हो
शहर के लोग ऐसे प्यार की बातें नहीं करते
तन का सौदा था तो फिर तन को परोसा उसने
तन के सौदे में नहीं मन को परोसा जाता"[6]

समाज में अनेक विशेष और अनकहे प्रसंग घटित होते रहते हैं, किंतु उन पर खुलकर चर्चा करना वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में हम शायद उचित रूप से समझ नहीं पाते। परंतु यदि हम निश्चल भाव से मानवीय संवेदनाओं की स्थिति को समझें और उन निकट-अपराध समान कृत्यों पर मुखर होकर बात करें, जो आज समाज की परिभाषा ही बदल रहे हैं, तो निश्चित ही उनके दुष्परिणामों को रोका जा सकता है। ऐसा करने से आज के समय में द्रौपदी जैसे प्रसंगों की पुनरावृत्ति नहीं होगी।

समाज का यथार्थ यह है कि एक ओर लाचारी है, एक व्यवस्था है और उसका वह प्रभाव है जो आधुनिकता के नाम पर पश्चात् जीवन की सभ्यता को अपनाने के लिए विवश करता है। फिर भी इस पर ऐतराज़ क्यों न हो? हम अपने वैचारिक स्वरूप को किसी अन्य पद्धति में ढालने के लिए बाध्य थोड़े ही हैं। आज तो पुरुषार्थ को कुचलने और मसल देने की प्रवृत्तियाँ समाज में दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही हैं। ऐसी प्रकृतियाँ समाज में निरंतर विस्तार पा रही हैं। आज घर से बाहर निकलना कितना मुश्किल हो चुका है।शायद यही सच्चाई है जिसे ग़ज़लकार ने अपने युग और जनमानस के सामने समय-सापेक्ष दृष्टि से प्रस्तुत किया है। उन्होंने सामाजिक यथार्थ के धरातल को सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है और साथ ही आशावादिता की वह दृष्टि भी दी है, जिसकी प्रतीक उनकी लेखनी है। समय के साथ उनकी रचनाएँ अनेक विमर्शों को जन्म देती हैं, जिनमें सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक बेचैनियों के विषय प्रमुखता से उभरते हैं।

सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए अनेक विषय उपलब्ध हैं, जिनमें शिक्षा और बेरोज़गारी का गहरा संबंध है। समाज को सुदृढ़ बनाए रखने, नीतियों में परिवर्तन करने तथा बदलते समय को समझने के लिए पारंपरिक शिक्षा प्रणाली की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। साथ ही, जब समाज के समक्ष भयावह प्रश्न उपस्थित होते हैं, तब उनके उचित उत्तर खोजने की ज़िम्मेदारी भी शिक्षा पर ही आती है। किंतु ग़ज़लों के माध्यम से समाज में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं, मानसिक भ्रष्टाचार और उसकी यथार्थ स्थिति को जिस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है, वह अत्यंत विचारोत्तेजक है। कवि ने शिक्षा प्रणाली की पद्धतियों से गुज़रते हुए संवेदना का ऐसा सशक्त दृश्य निर्मित किया है, जो रोजगार-विमुख युवाओं की स्थिति को सटीकता और मार्मिकता के साथ उजागर करता है।

आज समाज के भीतर यह एक गंभीर समस्या बन चुकी है कि नवयुवक अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद नौकरी की तलाश में भटकता रहता है। वह शिक्षा और आवश्यक योग्यताओं को ही सफलता का एकमात्र साधन मानता है, किंतु जब इन्हीं योग्यताओं के बावजूद उसे अवसर नहीं मिलते, तो वह स्वयं को असहाय और पीड़ित अनुभव करने लगता है। समाज में बढ़ती

आर्थिक और सामाजिक खाई हर पहलू को अपनी गिरफ्त में लेती जा रही है। गरीबी स्वयं अपनी कीमत तय नहीं कर सकती, फिर भी शिक्षा और धर्म जैसे अनुकूलन के साधन बाजार के इस स्वरूप में काबिलियत से अधिक संसाधनों पर निर्भर होते जा रहे हैं।इसी कारण वर्तमान समय में आत्मनिर्भरता का स्वरूप भी बदला-सा प्रतीत होता है। युवाओं में नाराजगी और असंतोष की भावना स्वाभाविक रूप से जन्म लेती है। उनकी संवेदनाएँ निराशा से भर जाती हैं और परिणामस्वरूप जीवन हताशा की ओर बढ़ने लगता है। पढ़-लिखकर भी कुछ न कर पाने की स्थिति उनके लिए अत्यंत भयावह बन जाती है।मानवीय जीवन में संवेदना का विशेष महत्व है, किंतु आज संवेदनाओं का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। शहरी जीवन की आपाधापी में मनुष्य अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर ही नहीं पा रहा। उलझनों और संघर्षों में इतना डूब चुका है कि उसके पास दूसरों के प्रति संवेदना प्रकट करने के लिए समय ही नहीं बचा है।

वर्तमान समय में समाज-व्यवस्था की स्थिति अत्यंत चिंताजनक हो गई है। कानून के रक्षक ही जब कानून को दाग लगाकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने में लग जाएँ, तो व्यवस्था पर से विश्वास उठना स्वाभाविक है। जिन्हें समाज में शांति, न्याय और सौहार्द बनाए रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई है, वही यदि उसे छिन्न-भिन्न करने लगें, तो सामाजिक संतुलन डगमगा जाता है। कानून का निर्माण समाज को सुरक्षित, सुव्यवस्थित और न्यायपूर्ण बनाने के लिए किया गया है, न कि आम नागरिक के जीवन में भय, तनाव और असुरक्षा का वातावरण उत्पन्न करने के लिए।ऐसी प्रवृत्तियाँ सामाजिक यथार्थ के उस भयावह रूप को उजागर करती हैं, जहाँ विषाक्त मानसिकता निरंतर बढ़ती जा रही है। अपराधों की बढ़ती श्रृंखला के बीच जीवन का अधिकार मानो अर्थहीन होता जा रहा है और समाज गहरी चिंता तथा असहजता में डूबा हुआ है। इन्हीं परिस्थितियों पर ग़ज़लकार जहर कुरैशी तीखे सवाल उठाते हैं। वे समाज के इस कटु यथार्थ को मानवीय संवेदना से जोड़ते हुए उन व्यवस्थाओं की ओर संकेत करते हैं, जो अपने मूल उद्देश्य से भटककर संवेदनहीन और स्वार्थपरक बन चुकी हैं।

"भला अब कौन अस्मत को बचाएगा
दरोगा कर रहे हैं 'रेप' थानों में
लोग कानून पढ़ रहे थे इधर
और अपराध कर रहे थे वहां
कानून जिनकी चाकरी करता हुआ मिला
उनके खिलाफ जाने की हिम्मत नहीं हुई"[7]

समाज में परिणाम चाहे हम अतीत की ओर देखें, वर्तमान का अवलोकन करें या भविष्य की कल्पना करें—हर स्थिति में यह स्पष्ट होता है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था के भीतर पनपता भ्रष्टाचार उसे धीरे-धीरे खोखला कर रहा है। यही आज का कटु यथार्थ है। इसका मुख्य कारण यह है कि मान्यताओं और मूल्यों के भीतर से मानवीय संवेदनाओं का निरंतर ह्रास हो रहा है।योजनाओं की सही दिशा में क्रियान्वयन नहीं होता। कार्य फाइलों और कागज़ों तक सीमित रह जाते हैं। चाहे वह कानून व्यवस्था हो, शिक्षा व्यवस्था हो या राजनीतिक व्यवस्था—अधिकांश योजनाएँ केवल नाम मात्र की होती हैं। उनका वास्तविक अस्तित्व धरातल पर दिखाई नहीं देता, बल्कि उनका निर्माण केवल कागज़ों में ही सिमट कर रह जाता है।इसी कारण हमारी स्थितियाँ भयावह होती जा रही है।एक चेहरा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है तो दूसरा समाज को खोखला करने वाला भ्रष्ट इंसान जो बदलती दुनिया के चेहरे पर अपना इतना घिनौना चेहरा लगाता है। जिसमें स्थितियों से अवगत कराने के बावजूद वह विरोध की स्थिति पैदा करता है। जहीर कुरैशी समाज के दिखावटी रूप को उजागर करते हुए लिखते हैं-

"सफल लोगों की दुनिया में मुखोटे ही मुखोटे हैं
इसे तुम भी समझते हो इसे हम भी समझते हैं
फाइलों ने विकास का चेहरा
आंकड़ों की जुबान से देखा"[8]

शासन व्यवस्था और उसके भीतर व्याप्त भ्रष्टाचार को ग़ज़लकार ने अपने शब्दों में इतनी सशक्तता से प्रस्तुत किया है कि इन विकृतियों पर पड़ा हुआ आवरण स्वतः हट जाता है। जो महत्वपूर्ण कार्य होते हुए भी प्रायः मज़ाक का विषय बना दिए जाते हैं, उनकी वास्तविकता यहाँ उजागर होती है। वर्तमान परिस्थितियों को पूर्ण यथार्थता के साथ अभिव्यक्त करने का यह प्रयास ग़ज़लकार को लेखन परंपरा की उस सशक्त कड़ी के रूप में स्थापित करता है, जो निश्चय ही परिवर्तन लाने में सक्षम है।

निष्कर्ष :

जहीर कुरैशी की ग़ज़लें समाज में व्याप्त वास्तविकताओं, जैसे संयुक्त परिवार में पीढ़ियों के बीच वैचारिक संघर्ष, बेटों और माताओं के बदलते रिश्ते, पुत्र और पुत्री के प्रति भेदभाव, बेरोज़गारी और शिक्षा की विफलताएँ आदि का स्पष्ट और मार्मिक चित्रण करती हैं। उन्होंने समाज में घटित होने वाली घटनाओं को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है।उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदना का केंद्र स्थान है। वे समाज में संवेदनाओं के ह्रास, रिश्तों की दूरी, संवादहीनता और अहंकार के बढ़ते प्रभाव को उजागर करते हैं और दर्शाते हैं कि संवेदनशीलता और समझदारी के अभाव में सामाजिक और पारिवारिक संबंध कमजोर हो रहे हैं।कुरैशी ने आधुनिक जीवनशैली, तेज़ गति की ज़िंदगी और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के कारण रिश्तों में आई दरार और सामाजिक मूल्यों के टकराव पर प्रकाश डाला है। उनका दृष्टिकोण बताता है कि आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव से पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं और मानवीय संवेदनाओं में कमी आई है।यद्यपि उनकी ग़ज़लें समाज के कटु यथार्थ को उजागर करती हैं, फिर भी उनमें आशावाद का संदेश निहित है।

संदर्भ सूची-

1.समकालीन साहित्य समाचार, वर्ष 19, अंक 4, अप्रैल 2010,पृष्ठ क्रमांक 44।
2. जहीर कुरैशी - जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर -, पृष्ठ क्रमांक 115।
3. डॉ. सादिक असलम नवाब- साठोत्तरी हिंदी गजल और संवेदना, पृष्ठ क्रमांक 231, अनामिका प्रकाशन, संस्करण 2005।
4. जहीर कुरैशी - बोलता है बीज भी,पृष्ठ क्रमांक 39।
5. समकालीन साहित्य समाचार ,वर्ष 19, अंक 4 ,अप्रैल 2010, पृष्ठ क्रमांक 30।
6. संपादक रवींद्र कालिया - नया ज्ञानोदय, अंक 19, जनवरी 2013 ,पृष्ठ क्रमांक 58।
7. जहीर कुरैशी - रास्तों से रास्ते निकले ,पृष्ठ क्रमांक 82
8. जहीर कुरैशी - जिंदगी से बड़ा जिंदगी का समर - पृष्ठ 45

*****

हिंदी फिल्मों में गीत और गजल का महत्व

प्रो डॉ. संघप्रकाश दुड्डे,
हिंदी विभागाध्यक्ष, संगमेश्वर कॉलेज, सोलापुर।
smdudde@gmail. Com 9766997174

शोध आलेख का सारांश:

हिंदी सिनेमा में गीत और ग़ज़ल ने केवल मनोरंजन का ही माध्यम नहीं बनाया, बल्कि वे फिल्म की आत्मा, चरित्रों के मनोभावों के वाहक, और सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास के दस्तावेज़ बन गए हैं। यह शोध आलेख इसी महत्व की पड़ताल करता है। आलेख में यह दर्शाया गया है कि कैसे हिंदी फिल्मों के गीतों ने भारतीय जनमानस की सामूहिक भावनाओं को स्वर दिया और कैसे ग़ज़ल ने इसके सौंदर्यबोध को शास्त्रीय गंभीरता एवं काव्यात्मक गहराई प्रदान की। फिल्मों के इतिहास को 'टॉकीज' के दौर से लेकर वर्तमान तक यात्रा करते हुए, इसमें प्रमुख संगीतकारों, गीतकारों, गायकों के योगदान और गीत-ग़ज़लों के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। निष्कर्षतः, यह स्थापित किया गया है कि गीत और ग़ज़ल हिंदी सिनेमा की पहचान के अविभाज्य अंग हैं, जो उसे एक विशिष्ट सांस्कृतिक उत्पाद बनाते हैं।

बीज शब्द: हिंदी सिनेमा, फिल्मी गीत, ग़ज़ल, संगीत, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, मनोरंजन, भावनात्मक संप्रेषण, साहित्यिक प्रभाव, सामाजिक प्रतिबिंब, संगीतकार, गीतकार।

प्रस्तावना : हिंदी सिनेमा, जिसे अक्सर 'बॉलीवुड' के नाम से जाना जाता है, विश्व सिनेमा की एक अनूठी घटना है। इसकी अनूठेपन का एक प्रमुख स्तंभ है – इसका संगीत, विशेषकर इसके गीत और ग़ज़लें। भारतीय सिनेमा का जन्म ही 'आलम आरा' (1931) जैसी बोलती फिल्म के साथ हुआ, जिसने पर्दे पर गीतों को जन्म दिया। तब से लेकर आज तक, फिल्मी गीत भारतीय जीवन के ताने-बाने में इस तरह रच-बस गए हैं कि उनके बिना हिंदी फिल्म की कल्पना अधूरी है। ये गीत केवल फिल्म की कथा को आगे नहीं बढ़ाते, बल्कि वे दर्शकों से भावनात्मक स्तर पर जुड़ते हैं, उनकी अपनी खुशी, गम, प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति बन जाते हैं। ग़ज़ल, जो मूलतः फारसी और उर्दू की एक शास्त्रीय काव्य विधा रही है, ने हिंदी सिनेमा में प्रवेश करके इसके सौंदर्यशास्त्र को समृद्ध किया है। यह विधा अपने लयबद्ध शे'र, गहन भावबोध और सूक्ष्म अर्थछवियों के कारण सिनेमा को एक साहित्यिक गरिमा प्रदान करती है। इस शोध आलेख का उद्देश्य हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल के ऐतिहासिक विकास, उनके सांस्कृतिक-सामाजिक महत्व और कलात्मक योगदान का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करना है

शोध आलेख का विश्लेषण

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और विकास यात्रा

हिंदी फिल्म संगीत का प्रारंभिक दौर (1930-40) शास्त्रीय और लोक संगीत की ठोस नींव पर टिका था। संगीतकारों जैसे पंकज मलिक, अनिल बिस्वास और नौशाद ने रागों को फिल्मी धुनों में ढालना शुरू किया। 1950 और 60 का दशक हिंदी फिल्म संगीत का 'स्वर्ण युग' माना जाता है। इस दौरान एस.डी. बर्मन, शंकर-जयकिशन, मदन मोहन, ओ.पी. नैयर जैसे संगीतकारों और शकील बदायूंनी, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुल्तानपुरी, हसरत जयपुरी जैसे गीतकारों ने मिलकर ऐसे गीत रचे जो आज भी अमर हैं। यह वह दौर था जब ग़ज़ल ने फिल्मों में अपनी पैठ बनाई। मदन मोहन को 'ग़ज़लों का जादूगर' कहा गया, जिन्होंने "लग जा गले", "मैं यहाँ से कहाँ" जैसी ग़ज़लों के माध्यम से विरह और दर्द को अभिव्यक्त किया।

1970-80 के दशक में आर.डी. बर्मन ने संगीत में पश्चिमी प्रभावों का अद्भुत समन्वय किया, जबकि ग़ज़ल की परंपरा को जारी रखने का काम खय्याम और मोहम्मद ज़हूर 'खय्याम' ने किया। 1990 के दशक से टेक्नोलॉजी के प्रभाव और पश्चिमी पॉप के आगमन के बाद भी, गीतों का महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि उनका स्वरूप बदला। आज भी ए.आर. रहमान, विशाल-शेखर जैसे संगीतकार फिल्मी गीतों को नई ऊँचाइयाँ दे रहे हैं।

2. गीत का महत्व: भावनाओं का सार्वभौमिक माध्यम

· कथा-विकास एवं चरित्र-चित्रण: फिल्मी गीत 'मोंटाज' के रूप में समय और स्थान का संकुचन करते हैं, कहानी को गति देते हैं। जैसे, "ऐ मेरे वतन के लोगों" (क्रांति) में देशभक्ति का भाव एक क्लाइमेक्स बन जाता है। वहीं, "कहीं दूर जब दिन ढल जाए" (आनंद) चरित्र के अस्तित्ववादी दर्शन को व्यक्त करता है।

· सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिबिंब: फिल्मी गीत अपने समय का दर्पण हैं। भक्ति आंदोलन का प्रभाव "मन तड़पत हरि दर्शन को आज" (बैजू बावरा) में दिखता है, तो नारी अस्मिता की चेतना "चलती का नाम गाड़ी" (मिस्टर नटवरलाल) या "दिल दिया है जान भी देंगे" (कुर्बानी) में मुखर होती है।

· भावनात्मक संप्रेषण एवं स्मृति-निर्माण: गीत दर्शकों की भावनाओं को सीधे संबोधित करते हैं। प्रेम, विरह, विश्वास, निराशा जैसे जटिल भाव एक सरल धुन और मार्मिक शब्दों के जरिए हृदय तक पहुँच जाते हैं। यही कारण है कि शादी, त्योहार, यहाँ तक कि राजनीतिक रैलियों तक में फिल्मी गीतों का प्रयोग होता है।

3. ग़ज़ल का महत्व: सौंदर्यबोध की शास्त्रीय ऊँचाई

• साहित्यिक गरिमा एवं काव्यात्मक गहराई: ग़ज़ल ने फिल्म संगीत में उर्दू शायरी की समृद्ध परंपरा को प्रवेश दिया। साहिर, मजरूह, कैफ़ी आज़मी जैसे गीतकारों ने जहाँ गीतों को सरल बनाया, वहीं ग़ज़लों में शे'रों की बारीकी और दार्शनिकता को बरकरार रखा। "चलो एक बार फिर से" (गुमराह) या "वक्त ने किया क्या हसीं सितम" (कागज के फूल) जैसी ग़ज़लें अपने शब्दचयन और अर्थ-गांभीर्य के कारण स्वतंत्र काव्य की तरह भी प्रतिष्ठित हैं।

· शास्त्रीय संगीत से गहरा नाता: फिल्मी ग़ज़लों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को बड़े पर्दे पर लोकप्रिय बनाया। मदन मोहन, खय्याम, और बाद में जगजीत सिंह (जिन्होंने फिल्मी ग़ज़लों को नया आयाम दिया) ने रागों का ऐसा प्रयोग किया कि ग़ज़ल शास्त्रीयता और लोकप्रियता के बीच सेतु बन गई। लता मंगेशकर, तलत महमूद, मोहम्मद रफी और जगजीत सिंह की आवाज़ ने इन ग़ज़लों को अमर बना दिया।

· गहन भावबोध की अभिव्यक्ति: ग़ज़ल का केंद्रीय भाव 'इश्क' (प्रेम) और 'हसरत' (अभिलाषा) है, जो अक्सर दर्द और विरह के रंग में रंगा होता है। यह विधा उन सूक्ष्म और गहन भावों को व्यक्त करने में सक्षम है, जिन्हें साधारण संवाद या गीत नहीं पकड़ पाते। यह अकेलेपन, अधूरेपन और जीवन की विडंबनाओं को बेहद कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है।

4. गीत और ग़ज़ल: एक समन्वय

दिलचस्प बात यह है कि हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल के बीच की सीमा रेखा हमेशा द्रवित रही है। कई फिल्मी गीतों में ग़ज़ल का मिज़ाज है (जैसे, "कभी कभी मेरे दिल में खयाल आता है") और कई ग़ज़लों में लोकप्रिय गीतों जैसी पहुँच (जैसे, "होठों से छू लो तुम")। यह समन्वय हिंदी सिनेमा की समावेशी प्रकृति को दर्शाता है, जो उच्च कला और लोक कला के बीच का फासला मिटाता है।

निष्कर्ष - हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व केवल संगीत तक सीमित नहीं है; वे भारतीय समाज के सांस्कृतिक-भावनात्मक इतिहास के सजीव दस्तावेज हैं। गीत ने सिनेमा को जन-जन तक पहुँचाया, उसे लोकप्रिय और लोक-सम्पर्की बनाया। वहीं, ग़ज़ल ने इसे सौंदर्य की शास्त्रीय ऊँचाई, भाव की गहराई और साहित्यिक गरिमा प्रदान की। दोनों ने मिलकर हिंदी सिनेमा को एक ऐसा बहुरंगी और बहुआयामी कलात्मक माध्यम बनाया है, जो अपनी सांगीतिक धरोहर पर गर्व करता है। तकनीकी बदलाव और वैश्विक प्रभावों के बावजूद, फिल्मी गीत और ग़ज़ल का जादू आज भी कायम है, क्योंकि वे मनुष्य की मूल भावनाओं – प्रेम, दर्द, आशा और आनंद – का सार्वकालिक और सार्वभौमिक स्वर हैं। भविष्य में भी, यह धरोहर नए रूपों में सिनेमा को समृद्ध करती रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूचि-

1. भट्ट, सुरेश. हिंदी सिनेमा का संगीतिक इतिहास. राजकमल प्रकाशन, 2010.
2. कबीर, नसरीन मुन्नी. गायकों के गायक: किशोर कुमार. पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2005.
3. देसाई, हरि. बॉलीवुड के सुरीले सफर. प्रभात प्रकाशन, 2012.
4. धोती, अशोक. मदन मोहन: द मैन ऑफ़ रोमांस. रूपा पब्लिकेशन्स, 2005.
5. मिश्र, प्रमोद. हिंदी फिल्मों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास. वाणी प्रकाशन, 2008.
6. रंजन, रवि. ग़ज़लों की दुनिया और हिंदी फिल्में. साहित्य भंडार, 2015.
7. वर्मा, रवींद्र. साहिर लुधियानवी: जीवन और सृजन. राजपाल एंड सन्स, 1999.
8. सर्राफ, मीनाक्षी. द म्यूजिक ऑफ़ आर.डी. बर्मन: द मैन, द म्यूजिक. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस इंडिया, 2011.
9. Journal of Arts, Ideas and Aesthetics: "The Evolution of the Ghazal in Indian Cinema", Vol. 12, 2018.
10. Indian Historical Review: "Film Songs as Cultural Memory: A Study of Hindi Cinema", Vol. 45(2), 2019.

जहीर कुरेशी की गजलें : राजनीतिक परिदृश्य

प्रो.डॉ.सरोज पाटील
श्री शहाजी छत्रपति महाविद्यालय, कोल्हापुर.
मो.9921770661
Email-saroj120575@gmail.com
Address : 1808 'A' Brahmeshwar Bag,
Shivaji Peth, Kolhapur 416012

सारांश

गजल को अपने परंपरागत रूप से बाहर निकालकर उसे समकालीन संदर्भों में ढालनेवाले गजलकार जहीर कुरेशी की गजले आजाद भारत की विसंगतियों पर संवेदनशील भाष्य करती है। आजादी के पश्चात मोहभंग से पीडित देश का आम आदमी कुरेशी जी की गजलों के केंद्र में है। अपनी अभिव्यक्ति द्वारा उन्होंने आजाद भारत के आम आदमी की भूख, शोषण, अभाव, त्रासदी, प्रताडना आदि मुद्दों को गहराई से उजागर किया है। आजाद भारत की अधिकांश विषम स्थितियों के लिए वे भ्रष्ट राजव्यवस्था को जिम्मेदार मानते हैं | कवि को इस बात का बेहद खेद है कि देश की राजव्यवस्था जनता को झूठे सपने दिखाने एवं झूठे वादे करने में जूटी है। विषम समाज व्यवस्था एवं राजव्यवस्था पर बात करती कुरेशी जी की गजले समस्याओं को अपना नसीब मानकर उसका मूक स्वीकार करने का विरोध करती हैं। वे अन्याय के विरोध में व्यापक जनसंघर्ष चाहते हैं। अतः वर्तमान राजनीति और व्यवस्था की दुरावस्था पर तीखी टिप्पणी करती कुरेशी जी की गजले सामाजिक प्रतिबद्धता से युक्त है | कुरेशी जी की गजलें जनतंत्र के प्रति अत्यंत जिम्मेदारी के साथ अपना चिंतन व्यक्त करती हैं।

मूलशब्द: समाज, राजनीति, संघर्ष, भ्रष्टाचार, समकालीन

प्रस्तावना -

दुष्यंत कुमार के बाद समकालीन संदर्भों में जिन गजलकारों ने गजल की गरिमा बनाए रखी उन गजलकारों में जहीर कुरेशी का स्थान शीर्ष पर है। अरबी भाषा से अपनी यात्रा आरंभ कर चुकी गजल भारत में लगभग 70 के दशक में प्रतिष्ठित होने लगी। यह गजल प्रेम और सौंदर्य से बाहर निकलकर समकालीन संदर्भों में व्यक्त होने लगी । स्वतंत्र भारत की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विषमता पर टिप्पणी करती यह गजल प्रतिरोध की भाषा भी करने लगी। समकालीन स्थितियों के विरोध में बेबाक अभिव्यक्ति देनेवाले गजलकारों में जहीर कुरेशी शीर्ष स्थान पर हैं।

"किस्से नहीं हैं ये किसी विरहन की पीर के
ये शेर हैं अंधेरों से लड़ते जहीर के।
मैं आम आदमी हूँ, तुम्हारा ही आदमी
तुम काश देख पाते मेरे दिल को चीर के।
सब जानते हैं जिसको सियासत के नाम से |
हम भी कहीं निशाने हैं उस खास तीर के।" (जहीर कुरेशी)

जनवादी चेतना से भरी कुरेशी जी की गजलें समकालीन संदर्भों में पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने की पूरी पूरी क्षमता रखती है। स्वयं कुरेशी जी ने डॉ.मधु शुक्ला को दिए साक्षात्कार में कहा हैं, "समकालीन हिंदी गजल अधिक यथार्थोन्मुख हुई है |" ..... वह जिम्मेदारी के साथ, हमारे वर्तमान के सच को बयान करना चाहती है |" (पृ.328 – जहीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन) उनकी गजलें प्राप्त स्थितियों के प्रति असहमति, असंतोष, आक्रोश और प्रतिरोध की भावना दर्शाती है। यह प्रतिरोध आजाद भारत की विषम सामाजिक व्यवस्था और उससे पीडित आम आदमी के हक के लिए है।

जहीर कुरेशी जी की गजले मुख्य रूप से भारतीय समाज और राजनीति के वास्तव पर भाष्य करती है | उनकी राजनीतिक विषय पर लिखी गजलें निम्नांकित मुद्दों पर चर्चा करती हैं |

चुनावी वादों पर व्यंग्य –

किसी भी देश की जनतांत्रिक व्यवस्था का अहम मुद्दा होता है चुनाव । चुनाव प्रक्रिया से आम आदमी की आशा आकांक्षाएं जुडी होती हैं। जनता चुनाव के माध्यम से ऐसे नेतृत्व को पाना चाहती हैं जो विकास प्रक्रिया में सहयोग दे | जनता का भविष्य सवारने में साथ दे | परंतु यह भारतीय जनतंत्र की सबसे बड़ी विडंबना रही है कि जनता ने जिन्हें विश्वास के साथ सत्ता में

बिठाया वे सत्ताधीश होने पर जनता को भूल गए। स्वार्थ सिद्धि में जुटे रहे। जिससे आजादी के सालों बाद आम आदमी विकास की मुख्य धारा में प्रवेशित नहीं हो पाया। अभाव उसकी जिंदगी से जुडे रहे | लगातार सत्ता में बने रहने के लिए स्वार्थांध राजनेता चुनाव के दरम्यान जनता से झूठे वादें कर उन्हें लुभाने के पूरे पूरे प्रयास में जूटे रहते हैं। इस पर कुरेशी जी कहते हैं,

"चुनाव की धूप में वादों की फसल पनप चली,
हर एक लब पे मोहब्बत की बात चमक चली।" (चुनाव की धूप – जहीर कुरेशी)

बिल्कुल इसीप्रकार,

"चुनाव आया तो वादों की बरसात हो गई,
चुनाव गया तो सडकों पर फिर हालत झोल गई |
जो कह रहे थे बदल देंगे ये देश को,
वही पुरानी कहानी फिर से खोल गई।" (वादा – जहीर कुरेशी)

चुनावी प्रचार दरम्यान उम्मीदवारों के नकली व्यवहार, जनता से झूठी आत्मीयता दर्शाना, उनके चेहरे पर दिखनेवाली झूठी मुहब्बत आदि सब कवि को राजनीतिक षडयंत्र प्रतीत होता है | चुनाव के दरम्यान अनेक सारे वादे करनेवाले नेतागण बहुत जल्दी जनता से किए वादों को भूल जाते हैं। जीत हासिल करने के बाद जनता उनके लिए बेमायने बन जाती है। इस पर कुरेशी जी लिखते हैं,

"विकास की जो बाते थे मंच पर जोश से,
गली मोहल्ले आते ही सब धुएं में धुल गए |" (कुर्सी का खेल – जहीर कुरेशी)

नकली नेताओं के कंधों पर विराजमान देश कवि को बेहद दीन दिखता है, ऐसे नेताओं से जवाब मांगने की हिम्मत कहां है जनता में ? कवि को चिंता है कि सियासत की नकली चालों में घसीटती जा रही जनता बहुत जल्दी धाराशायी हो जाएगी। कुरेशी जी ने पूरी जिम्मेदारी के साथ समकालीन राजनीति के अंतरंग को उजागर करने का प्रयास किया है |

वर्णव्यवस्था आधारित राजनीति -

वर्णव्यवस्था भारतीय संस्कृति की नींव है। समाज के सुनियोजन की परिपूर्ण व्यवस्था इस रूप में वर्णव्यवस्था की ओर देखा गया। परंतु समय के चलते वर्णव्यवस्था चुनिंदा स्वार्थांधों की स्वार्थ सिद्धि में सहयोगी होने लगी | वर्ण आधारित जातिव्यवस्था स्थापित होने लगी। इस व्यवस्था की जमती गई जडों ने समाज को जकड लिया। समाज में संघर्ष की स्थितियां निर्माण होने लगी । ठिक इसी बात का लाभ जनतांत्रिक भारत के राजनेताओं ने उठाना शुरू किया। सत्ता में लगातार बने रहने के लिए राजनेता जाति के नाम पर लोगों को भरमाने लगे | देश में अलग, अलग जाति के गूट बनने लगे | देवी देवता, देश की महान विभूतियां, समाजसेवियों के नामों का आधार लेकर अपने अपने गूटों को ताकदवर बनाने के प्रयास होने पर लगे | जाति के आधार राजनेताओं द्वारा गुमराह बनी जनता आपस में लडती, झगडती, काटती, मरती रही और इन सबको अनदेखा कर राजनेता अपनी जीत, अपनी स्थैर्यता का जश्न मनाते रहे। भारतीय राजनीति के इस वास्तव पर कवि लिखते हैं,

"चुनाव के बाद फिरकों की बातें हवा हुई,
फिर जात पात के मुद्दे पुराने घूम गए।"(कुर्सी का खेल - जहीर कुरेशी)

चुनाव में जीत के लिए आपसी मेल का दिखावा और बाद में जातिभेद के पुराने मुद्दों पर चलनेवाली सियासत इस नीति का भविष्य क्या होगा इस पर विचार करना कवि की दृष्टि में बिल्कुल निरर्थक है | कवि जानता है इसके पीछे की राजनिती को कि धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर भेद पैदा करनेवाले राजनेताओं को डर है कि जिस दिन जनता एक हो जाएगी उस दिन उनका अस्तित्व मिट जाएगा और वे ऐसा होने नहीं देंगे | जातिभेद, दंगे, सांप्रदायिक तणाव, असंतोष ये सारे हथियार हैं जनतंत्र के सिपेसालारों के इन हथियारों की बदौलत वे अब तक जनता के सूत्र कसकर थाम पाए हैं | जिस दिन ये हथियार उनके हाथों से छूट जाएंगे, वे कहीं के नहीं बच पाएंगे | अतः जातिभेद आधारित राजनीति उनके हथकंडे हैं सत्ताधीश बने रहने के लिए | इस वास्तव को कवि ने बेहद भावूकता के साथ रेखांकित किया है।

आम आदमी की पीडा का चित्रण -

आजादी के पश्चात पिछले 79 सालों में देश की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है | सत्ता में आनेवाला हर पक्ष जनकेंद्रित व्यवस्था का वादा करता रहा है परंतु उनके किए वादे कभी हकिकत में नहीं बदल पाए हैं | जिससे समाज का वैचारिक पक्ष लगातार आजाद भारत की विसंगत व्यवस्था पर सवाल उठाता रहा है। कुरेशी जी की अधिकांश गजलें देश की समकालीन

व्यवस्था और उसके लिए जिम्मेदार वर्ग पर टिप्पणी करती रही हैं। इन गजलों के केंद्र में देश के आम आदमी के जीवन का अभाव एवं प्रताडना स्थित है। गरीबी, भूख, शोषण, अपमान, बेरोजगारी बेईमानी, कुंठा, वेदना आदि चिंतित बनाने वाले शब्द आमआदमी का जीवन बन चुके हैं। पर जनकेंद्रित राजनीति के वादे करनेवाले शहनशाहों को थोडी सी भी फिक्र नहीं कि अपनी जुबान से किए वादों पर गौर करें। परिणामतः

"अधूरे काम, अधूरी सडके - कहानी वही,
बदल गई सरकार पर शाम घर नहीं हुई।
हमने ही वोट देकर बनाया था शाह को
पर लौटी जनता की मुश्किलें कमतर नहीं हुई।"(वादों की बारिश – जहीर कुरेशी)

दुर्भाग्य इस बात का है कि आम आदमी की इस व्यथा को पढनेवाला कोई तारणहार देश में नहीं है। हर नेतृत्व को कुर्सी की भूख है। कुर्सी मिली कि फिर जनता को भूल गए। अगले चुनाव तक जनता की किसी को याद नहीं। इस वास्तव पर कुरेशी जी लिखते हैं,

"कुर्सी की भूख में कितने ही लोग बदल गए,
रिश्तों के बीच सियासत के खेल पल गए।
जनता ने सोचा था फिर आएगा नया सवेरा
फिर वही अंधेरे के पत्ते हवाओं में भर गए।" (कुर्सी – जहीर कुरेशी)

हर चुनाव के पहले आम आदमी की आशाओं का पल्लपित होना और चुनाव के बाद टूट जाना एक सूत्र सा बन गया है। जनता इस वास्तव को अब भली प्रकार जान चुकी है। कुरेशी जी अपनी गजलों के माध्यम से बड़ा भावूक सवाल करते हैं कि आजाद भारत में विकास की बाते कितनी लाजमी है जहाँ विकास का लाभ चुनिंदा वर्ग उठा रहा है और आम आदमी भूख से तडप रहा है। यह कैसा जनतंत्र है ?

जनतंत्र और व्यवस्था की खामियां

'जनतंत्र' यह शब्द बडा ताकदवर है परंतु दुर्भाग्यवश भारत में इस शब्द की गरिमा उन्नत नहीं बन पाई है। राजनीति से जनहित की भावना लुप्त होकर राजनिती स्वार्थांध हथकंडों का आखाडा बनती जा रही है। स्थानीय राजनीति में सक्रिय नेता केंद्रिय राजनीति में स्थापित होने का सपना देख रहा हैं। अपनी स्वप्नपूर्ति के लिए वह हर उस कृति का अवलंब कर रहा हैं, जिसे कतई नैतिक नहीं कहा जा सकता। अनैतिक हथकंडों का अवलंब कर चुनावी जीत हासिल की जा रही है। जाति, भाषा, क्षेत्र, वर्ग आदि कई आधारों पर देश को बांटा जा रहा है। सांप्रदायिकता, अलगाववाद, आतंकवाद को अपने स्वार्थ के लिए बढावा दिया जा रहा है। गुंडें सफेद कपडे पहनकर चुनावी आखाडे में उतर रहे हैं। आम आदमी को लालच या भय दिखाकर वोट बटोर रहे हैं। इस पर कवि लिखते हैं,

"जिस दिन से राजनीति ने अपना लिया उन्हें,
उस दिन से वे भी चोर उच्चके नहीं रहें।"(जहीर कुरेशी)

कवी देश की इस स्थिति पर चिंतित है। भारत के जनतंत्र की उपलब्धि क्या है ? यह प्रश्न उन्हें लगातार सताता रहा है। वे लिखते हैं,

"सियासत से ही निकली, ये कथाएं भी,
बिकाऊ चीज है अब आत्माएं भी।
आरोपों की राजनीति चमकाने की खातिर
संसद में भी नोटों को लहराते हैं कुछ लोग।" (सियासत-जहीर कुरेशी)

गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले आज के राजनेताओं का लक्ष्य केवल वोट पाना है। इसलिए जनता से झूठे वादे, विकास की बातें, झूठी हमदर्दी, मदत का ढोंग, नेकी का दिखावा, समाजसेवा का झूठा चित्र बनानेवाले भ्रष्ट राजनेता जनतंत्र को खोखला बना रहे हैं परंतु इस पर उनमें यत्किंचित भी ग्लानि या पश्चाताप की भावना नहीं है। यह देश के आम आदमी के समक्ष उपस्थित सबसे बडी समस्या हैं। आज आम आदमी को सबसे अधिक खतरा सियासत और उसके ठेकेदारों से है। गरीब के सपनों को तोड़ मरोडकर अपने सपनों के महल बनानेवाले देश के ठेकेदार भले ही खुद को जनसेवक के रूप में पेश करें। उसके दम पर वोट बटोरे परंतु ऐसे राजनेताओं के काले चेहरे समाज के वैचारिक वर्ग से बिल्कुल भी नहीं छीपे हैं। कवि को व्यवस्था की खामियां खलती है।

भ्रष्टाचार -

भ्रष्टाचार आधुनिक समाज को लगी दीमक है। आज स्थितियां ऐसी हैं कि देश का हर क्षेत्र भ्रष्टाचार से बाधित है। भ्रष्ट व्यवहार अब अनैतिकता के दायरे में नहीं गिना जाता । राजनीति में भ्रष्टाचार ने अपनी जडे कस कर जमां ली है। हर शासकीय कार्यालय अब भ्रष्ट व्यवहार का केंद्र बन चुका है । देश की लालफिताशाही राजनेताओं के इशारों पर चलनेवाली कठपुतलियां बनी हुई हैं । जिससे जनता को केंद्र में रखकर दिल्ली दरबार में बननेवाली योजनाएं जनता के हाथों तक पहुंचते पहुंचते कही बीच में ही गुम हो जाती हैं या सौ में से बीस प्रतिशत मात्रा में ही आम आदमी के हाथों में पड जाती हैं | इस संदर्भ में कुरेशी जी लिखते हैं,

"पचहत्तर फीसदी वे खा गए तब
हमारे हाथ तक अनुदान आया !" (अनुदान – जहीर कुरेशी)

खेद इस बात का है कि योजनाएं बनानेवाले डंके की चोट पर कहते हैं हम आम आदमी को विकास की मुख्य धारा से जोड रहे हैं पर वास्तव कौन परखें ? अर्थात जनकल्याण हेतु प्राप्त धन एक तो अफसर हडप लेते हैं या नेतागण । अनेकों बार नेतागण अपनी प्रतिष्ठा बढाने के लिए उसका दुरुपयोग भी करते हैं और दूसरी ओर विकास के नारे लगाते हैं । परंतु कितने खोखले होते हैं वे नारे । वस्तुतः आर्थिक विकास तो नेतागणों के परिवार का हो रहा है और आम आदमी मूलभूत जरूरतों के लिए तरस रहा है। भ्रष्ट नेताओं की बदौलत आज देश दिन ब दिन धसता जा रहा है। विकास यह शब्द राजनेताओं के भाषणों का 'अधिकारीक' शब्द बना हुआ है अतः समस्याओं, प्रतिकूलताओं, विध्वंसात्मक प्रश्नों के जरिए भ्रष्ट सत्ताधीश अपने लिए वोटबँक बना रहे हैं। आज राजनीति जनतंत्र की आड में पनप रहा बडा सा षडयंत्र बना हुआ है और उसका शिकार हो रहा है देश का आम आदमी।

निष्कर्ष :-

गजलकार जहीर कुरेशी जी ने राजनीति के भ्रष्ट व्यवहार को अपनी गजलों के केंद्र में रखा है | आजाद भारत की राजनीति के गहरे वास्तव को उन्होंने अत्यंत मार्मिक रूप में रेखांकित किया है। आजाद भारत की जनतांत्रिक व्यवस्था में मूलभूत जरुरतों के लिए तरसता देश का आदमी कवि को बेहद अकेला और असहाय प्रतीत होता है। अतः भारतीय जनतंत्र, भ्रष्ट राजनेता एवं राजनीतिक विद्रुपताएं पाठकों के सामने रखकर उसमें सकारात्मक बदलाव की अपेक्षा रखनेवाले जहीर कुरेशी सामाजिक प्रतिबद्धता से ओतप्रोत है |

ग्रंथ सूची

1) गजल और उसकी संरचना – डॉ.रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1975
2) जहीर कुरेशी - महत्व और मूल्यांकन - संपा. डॉ. विनय मिश्रा, उर्वशीयम् प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2010
3) कुंअर बेचैन की गजलों का चिंतन पक्ष – डॉ.रघुनाथ कश्यप विद्या प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2012
4) आधुनिक हिंदी-उर्दू काव्य का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. रूखसान शेख, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2004

*****

हिंदी फिल्म जगत के प्रसिद्ध गीतकार : गोपालदास 'नीरज'

डॉ. सपना तिवारी
प्रोफेसर (हिंदी)
दा.रा.बा.सिंधु महाविद्यालय
पाँचपावली, नागपुर 440017
मो. 9960606844

सारांश –

हिंदी फ़िल्म संगीत की परंपरा में गीतकार का स्थान केंद्रीय है। गीतकार शब्दों के माध्यम से संगीत को अर्थ,संवेदना और स्मृति देता है। हिंदी साहित्य, फिल्म दोनों में कुछ रचनाकार ऐसे होते हैं, जिनका काव्य स्वर सीधे जनता के मन तक पहुँच जाता है। गोपालदास सक्सेना जिनका साहित्यिक नाम 'नीरज' रहा, उन्हीं गीतकारों और कवियों में से एक हैं जिन्होंने पारंपरिक हिंदी काव्य शैली और लोक स्वर को आधुनिक युग के मंच और सिनेमा के साथ सफलतापूर्वक जोड़ा। हिंदी साहित्य और हिंदी फिल्म संगीत दोनों ही क्षेत्रों में नीरज ने अपनी कविता और गीत को जन संस्कृति से जोड़ा। उनकी कविताओं का शब्द चयन सरल, भावप्रवण और गीतात्मक था।

नीरज ऐसे गीतकार कवि थे,जिनके शब्दों ने प्रेम,विरह जीवन-दर्शन और मानवीय संवेदना को सहज रूप में व्यक्त किया। उनकी पहचान केवल फिल्मी गीतों तक सीमित नहीं रही वे मूलतः एक कवि थे और सिनेमा में उनका प्रवेश काव्यात्मक ईमानदारी के साथ हुआ यही कारण है कि उनके गीत समय की कसौटी पर खरे उतरे और आज भी लोकप्रिय हैं। नीरज की यही विशेषता ने उन्हें कवि सम्मेलनों से लेकर सिनेमा तक विशिष्ट स्थान दिलाया। प्रस्तुत शोध पत्र नीरज के जीवन, उनकी काव्य दृष्टि, उनके फिल्मी गीत लेखन के साथ उनकी साहित्यिक, सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

बीज शब्द - सृजनशीलता, काव्यदृष्टि, संवाहक, मुक्तक, सम्यक।

प्रस्तावना-

हिंदी साहित्य की गद्य और पद्य दो विधाएँ हैं। जहाँ कहानी, एकांकी, नाटक, निबंध, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण जैसी विविध गद्य विधाओं ने गद्य साहित्य को समृद्ध किया है, उसी तरह प्राचीन काल से चली आ रही काव्य परंपरा के अंतर्गत गीतों ने न केवल काव्य साहित्य को नई पहचान दिलाई बल्कि काव्य साहित्य को समृद्ध बनाया है। जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण एवं मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसी प्रकार सिनेमा को अपने जीवन और समाज के अंग के रूप में देख सकते हैं। गीत तो हमारे जीवन का अभिन्न अंग रहे ही हैं साथ ही सिनेमा के सौ वर्षों के इतिहास में यह गीत- संगीत सिनेमा के भी अभिन्न अंग के रूप में उभर कर आते हैं। शुरुआत की कुछ एक फिल्मों में भले ही गीतों का संयोजन न हुआ हो परंतु गीत और संगीत के बगैर हम हिंदी सिनेमा और हिंदी सिनेमा ही क्यों भारत में बनने वाली तमाम भाषाओं की सिनेमा की कल्पना नहीं कर सकते।

गीत कवि की रागात्मक अंतर्चेतना के उदात्त स्वरूप की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो स्वयं में मौलिक एवं विशिष्ट होती है। "प्रकृति ने सृष्टि को संगीतमय बनाया है और गीत प्रकृति से अपरिहार्य रूप से जुड़ा है। अतः गीत का प्रमुख तत्व उसकी गेयता है। प्रकृति, भाव एवं संगीत का यह संगम कल्पना की तरंगों पर शब्द एवं शिल्प की नौका में विहार करता मानवीय मूल्य एवं संवेदनाओं का सक्षम संवाहक है।"[1]

हिंदी फिल्म जगत के गीत और गीतकारों की बात की जाए तो हिंदी फिल्म के इतिहास में ऐसे अनेक गीतकार रहे हैं,जिन्होंने हिंदी साहित्य को अपने लेखनी में तवज्जो दी है। हिंदी फिल्मी गीत को जन सामान्य के हृदय तक पहुँचाने वाले कई महान दिग्गज गीतकार हुए जैसे- शैलेंद्र, गुलजार, आनंद बक्शी,साहिर लुधियानवी, कैफ़ी आज़मी, कवि प्रदीप आदि। गोपालदास 'नीरज' इन्हीं दिग्गज गीतकारों में से एक हैं।

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' का जन्म 4 जनवरी 1925 को उत्तर प्रदेश के इटावा जनपद के पुरावली ग्राम में हुआ। बाल्यावस्था में ही पिता का देहांत हो जाने से जीवन में संघर्ष प्रारंभ हुआ, जिसने उनके काव्य को संवेदनशील बनाया। उन्होंने हिंदी साहित्य में उच्च शिक्षा प्राप्त की और अध्यापन कार्य से जुड़े। अलीगढ़ के धर्म-समाज कॉलेज में हिंदी के प्राध्यापक के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने साहित्यिक अनुशासन और सृजनशीलता दोनों को साधा। कवि सम्मेलन में उनकी सक्रियता ने उन्हें राष्ट्रीय पहचान दिलाई। मंचीय कविता में उनकी लोकप्रियता ने ही उन्हें फ़िल्म जगत तक पहुँचाया।

किसी भी साहित्यकार की लोकप्रियता उसके मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों में ही सन्निहित होती है । इसके लिए रचनाकार का चिंतन मौलिक और अनुभव गहन होना आवश्यक है । कवि नीरज ऐसे ही सशक्त गीतकार हैं, जिन्होंने अपनी निष्ठा ,साधना व लोक कल्याणी भावना से वर्तमान समाज के स्वरूप को उत्तम और मजबूत बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । नीरज जी का काव्य समय और समाज की कसौटी पर कसे उनके अनुभवों का परिणाम है । आचार्य शिवपूजन सहाय के शब्दों में - "वही साहित्य स्थायी और शाश्वत होता है, जिसका रचयिता साधक, सदाचारी, गंभीर चिंतक, स्वाध्याय पारायण, मननशील और लोक कल्याणकारी होता है । श्रद्धा, निष्ठा, साधना लगन सुरुचि, मंगलमयी भावना सब मिलकर साहित्य को अमरत्व देते हैं ।"[2]

हिंदी साहित्य में छायावाद और प्रगतिवाद के बीच की खाई को पाटने का प्रयास करने वाले गीतकार और कवि गोपाल दास नीरज ने मुख्य धारा के साहित्य में कविता, गीत और मुक्तक की विधाओं को अपने अनोखे अंदाज में प्रस्तुत करते हुए जन-जन तक पहुँचाया । सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय समस्याओं को अपनी कविताओं में पिरोते हुए नीरज जी ने साहित्य और लोक जीवन के बीच एक सेतु का निर्माण किया । उन्होंने साहित्य को उस रूप में प्रस्तुत किया जो गहरी विचारशीलता और काव्यात्मक ऊँचाई के साथ-साथ आम जनता के दिलों को छू लेने में सफल रहा । उनकी रचनाओं में आम जीवन की सरलता, समाज के संघर्ष, प्रेम और जीवन मृत्यु के दर्शन की अभिव्यक्ति मिलती है ।

नीरज का प्रथम काव्य संग्रह 'संघर्ष' वर्ष 1944 में प्रकाशित हुआ । इस क्रम से उनके अनेक कविता संग्रह जिसमें - ' अंतर ध्वनि' (1946), विभावरी (1948), प्राण गीत (1950), दर्द दिया है (1956), बदर बरस गई (1957),मुक्तकी (1958), दो गीत (1958), नीरज की पाती (1958), गीत भी अगीत भी (1959), आसावरी (1963), नदी के किनारे (1963), लहर पुकारे (1963), कारवां गुजर गया (1964), फिर दीप जल गया (1970), तुम्हारे लिए (1972), नीरज की गीतिकाएँ (1987) जैसे और भी संग्रह एवं पुस्तकों की एक दीर्घ सूची है । इन पुस्तकों में नीरज ने अपने जीवन अनुभवों से प्रेरित होकर प्रेम, श्रृंगार, मिलन, विरह, प्रकृति, शौर्य, दर्शन, अध्यात्म जैसे अनेक रंगों और कलेवरों से सुसज्जित ढेरों गीत लिखे हैं, जो उनके स्वाभाविक सृजन की एक अभिव्यक्ति के रूप में आज साहित्य जगत की धरोहर बनकर मानव संसार को संपन्न किए हुए है ।

कवि नीरज का काव्य संसार वास्तव में जीवन की धड़कन है,उसमें समाज की प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म परिस्थितियों का विश्लेषण हुआ है । उनके गीतों का जादू ही कुछ ऐसा है कि रोते बिलखते मजबूर इंसान में आशा की नई किरण प्रवाहित हो जाती है ।

"वह मुसाफिर क्या जिसे कुछ, शूल ही पथ के थका दें,
हौसला वह क्या जिसे कुछ, मुश्किलें पीछे हटा दें"[3]

अभिव्यक्ति के हर माध्यम की अपने चरित्र की विशेषता होती है, जिसके द्वारा हमारे संवेदनात्मक ज्ञान को विकसित होने का अवसर मिलता है । जिस तरह साहित्य - सिनेमा द्वारा लेखक और निर्देशक पात्रों एवं चरित्रों का गठन कर व्यक्ति के मनोभावों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है ,उसी तरह गीतकार अपने गीत के माध्यम से व्यक्ति, समाज और देश आदि के मनोभावों को अपने गीतों में प्रकट करता है ।

गीतों का हमारे जीवन से नाभिनाल का नाता है । कहा जाता है कि मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही गीतों की भी उत्पत्ति हुई है । गीत भावों की रसात्मक एकात्मानुभूति है। भले ही हिंदी सिनेमा में गीतों की शुरुआत 1931 में फिल्म 'आलमआरा' से होती है परंतु सदियों से गीत हमारे जीवन का अभिन्न अंग रहे हैं ।

हिंदी फिल्मों में गीतकारों की सेवाएँ लेने का चलन जो 'आलमआरा' फिल्म से आरंभ हुआ, आज जो वर्तमान में एक परंपरा में तब्दील हो चुका है । आर्देशिर ईरानी द्वारा फिल्म की पटकथा में परिस्थितियों के प्रति पात्रों की 'कविताई अभिव्यक्ति' को गीतों के माध्यम से विस्तार मिला । यदि गौर करें तो हम पाते हैं कि हर मिजाज़ के लिए सिनेमा में प्रयोग किए जाने वाले बेहतरीन गीत,गीतकारों की ही रचनात्मकता का नतीजा है । हिंदी भाषा ने सिनेमा को अनेक गीतकार दिए हैं ।

हिंदी फिल्मों की सच्ची पहचान तो उसके गीत - संगीत ही रहे हैं । इसने दुनिया भर में अपनी एक अलग पहचान बनाई है । हिंदी सिनेमा के गीत के संदर्भ में शशांक दुबे लिखते हैं - "हिंदी सिनेमा की आत्मा गीतों में ही बसी है जब दर्शक सिनेमा हॉल से फिल्म देखकर बाहर निकलता है तब न तो उसे कहानी याद रहती है, न संवाद, याद रह जाता है तो फिल्म का गीत - संगीत ।"[4]

एक संवेदनशील गीतकार समाज में अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता । समाज का यथार्थ ,सामाजिक परिस्थितयाँ, विषमताएँ, कुरीतियाँ, सामाजिक हालात उसके कोमल हृदय को प्रभावित करते हैं । अपने सामाजिक अनुभवों की अभिव्यक्ति भी वह अनिवार्य रूप से करता है ।

"ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम, मेरा गीत दिया बन जाए
उनकी लाठी बने लेखनी, जो डगमगा रहे राहों पर
हृदय बने उनका सिंहासन ,देश उठाए जो बाहों पर"[5]

प्रेम जो हमारे जीवन का एक ऐसा हिस्सा है जिसके बिना मानव जीवन की शायद कोई कल्पना नहीं कर सकता । कवि नीरज ने प्रेम के विविध संदर्भों को बड़े ही सुगमता एवं सहजता से अपने गीतों में उकेरा है। प्रेम एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति हमारे अंतर्मन में प्रवेश करने की शक्ति रखता है । प्रेम कई प्रकार के होते हैं । जैसे- माता-पिता का प्रेम ,नायक नायिका का प्रेम ,देश प्रेम आदि नीरज के गीतों में प्रेम के सभी स्वरूपों की झलक दिखाई पड़ती है।

"आज की रात बड़ी शोख बड़ी नटखट है
आज तो तेरे बिना नींद नहीं आएगी"[6]

नीरज के इस प्रेम गीत को 'नई उमर की नई फसल' फ़िल्म में बड़ी खूबसूरती से फिल्माया गया है ।

'नई उमर की नई फसल' 1966 में निर्देशक आर. चंद्रा के निर्देशन में आई । इसके संगीतकार रोशन थे,जिनके संगीत की धूम तब सुरीले और कर्ण प्रिय सरगम का पर्याय माना जाता था । इन्हीं रोशन के संगीत में नीरज के साहित्यिक गीतों को समेटकर फिल्म "नई उमर की नई फसल" में पिरोया गया था । इस फिल्म के सभी गीत नीरज द्वारा लिखे गए थे।

नीरज जी का प्रारंभिक प्रसिद्ध गीत "कारवां गुजर गया" *स्वप्न झरे फूल से, मीत चुभे शूल से, लुट गए सिंगार, सभी बाग के बबुल से* इस गीत के भाव उनकी केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं बल्कि व्यापक सामाजिक संघर्ष का प्रतीक बना । अपनी पहली सिने रचना के रूप में नीरज ने इस गीत को अर्पित किया था, जिसे वे वर्षों पहले लिख चुके थे। इसी गीत ने हिंदी, उर्दू साहित्य में नीरज की प्रसिद्धि शीर्ष पर पहुँचा दी थी । इसी फिल्म का लोक साहित्य के रंग में रंगा नीरज का एक अन्य गीत "*मेरा सैया गुलबिया का फूल, हमारो रंग केसरिया*" एक महत्वपूर्ण गीत साबित हुआ । साथ ही साहित्य के अप्रतिम रंगों से रंगा खूबसूरत प्रेमगीत "*देखते ही रहो आज दर्पण न तुम, प्यार का यह मुहूर्त निकल जाएगा।*" बहुत प्रसिद्ध हुआ और लोगों ने उसे बहुत पसंद किया ।

"कवि नीरज की यह विशेषता रही कि अपने प्रत्येक कवि सम्मेलन में वे एक नई कविता पढ़ते थे ,जो लोगों के अधरों पर स्वत: ही चढ़ जाया करती थी ,जिस कारण से वे सदा सम्यक और प्रासंगिक बने रहते थे । अपनी कालजयी कृति 'कारवां गुजर गया गुबार देखते रहे' को जब पहली बार उन्होंने दर्शकों, श्रोताओं के मध्य पढ़ा था, तब उसकी धूम तत्क्षण ही संपूर्ण भारतवर्ष पर मच गई । इस कविता को नीरज ने पहली बार 1954 में लखनऊ रेडियो स्टेशन से पढ़ा था । किसी भारतीय कवि की यह पहली कविता थी, जिसने भारत की सीमा लाँघकर पाकिस्तान सहित अन्य विदेशी राष्ट्रों तक के साहित्य प्रेमियों को आकर्षित किया था।"[7]

1960–70 के दशक में नीरज का फ़िल्मी गीत लेखन बहुत उभर कर दृष्टिगोचर हुआ। यह दौर हिंदी सिनेमा में साहित्यिक गीतकारों का स्वर्णकाल था। नीरज ने एस. डी. बर्मन, शंकर-जयकिशन जैसे महान संगीतकारों के साथ काम किया। नीरज के गीतों की प्रमुख विशेषता यह थी कि वे दृश्य और कथा की माँग के अनुरूप होते हुए भी काव्यात्मक स्तर बनाए रखते थे। नीरज स्वयं मानते थे कि फ़िल्म उनके लिए साधन थी, साध्य नहीं—उनकी प्राथमिक पहचान कवि की ही रही। नीरज की काव्य-दृष्टि मानवीय अनुभवों पर केंद्रित रही। उनके गीतों में प्रेम, करुणा, आशा-निराशा, जीवन-संघर्ष और आध्यात्मिकता का संतुलित समावेश मिलता है। भाषा के स्तर पर वे सरल, बोलचाल की हिंदी को प्रधानता देते हैं, जिसमें लोक-बिंब और लयात्मकता स्वाभाविक रूप से उपस्थित रहती है।

उनकी कविताएँ न तो दुरूह बौद्धिकता का बोझ उठाती हैं, न ही केवल भावुकता पर टिकती हैं—बल्कि दोनों के बीच संतुलन बनाती हैं। यही संतुलन उन्हें फ़िल्मी गीतों के लिए उपयुक्त बनाता है।

नीरज के कई गीत हिंदी फ़िल्म संगीत के इतिहास में मील का पत्थर माने जाते हैं। जैसे – "रंगीला रे, तेरे रंग में..." (फिल्म,प्रेम पुजारी, 1970) — यह गीत प्रेम की उन्मुक्तता और सौंदर्यबोध का अद्भुत उदाहरण है।

"ऐ भाई, ज़रा देख के चलो..." (फ़िल्म, मेरा नाम जोकर) यह गीत जीवन-दर्शन और अनुभव की सीख देने वाला उत्कृष्ट गीत साबित हुआ । उसी तरह "दिल आज शायर है..." (फ़िल्म, गैम्बलर) के इस गीत में प्रेम और आत्मालाप का संवेदनशील चित्रण हुआ है ।

इन गीतों में नीरज की भाषा सहज है, पर भाव-स्तर गहरा। वे अलंकारों की चकाचौंध से अधिक अनुभूति की सच्चाई पर भरोसा करते हैं। कवि नीरज की भाषा की सबसे बड़ी शक्ति उसकी सादगी है। वे कठिन शब्दों से नहीं, बल्कि सटीक शब्दों से प्रभाव उत्पन्न करते हैं। उनकी शैली ने बाद की पीढ़ी के कई गीतकारों और कवियों को प्रेरित किया। फ़िल्मी गीतों में साहित्यिक गुणवत्ता बनाए रखने की उनकी प्रतिबद्धता आज भी अनुकरणीय है।

गोपालदास 'नीरज' को उनके उत्कृष्ट साहित्य हेतु और फ़िल्म संगीत में अपने मधुर और कथा उपयुक्त गीतों के योगदान के हेतु अनेक सम्मान प्राप्त हुए । उन्हें लगातार तीन वर्षों में फ़िल्मफ़ेयर सर्वश्रेष्ठ गीतकार पुरस्कार प्राप्त हुए । वर्ष 1991 में पद्मश्री तथा 2007 में पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया गया । ये सम्मान उनकी बहुआयामी प्रतिभा और राष्ट्रीय महत्व को रेखांकित करते हैं।

फ़िल्म दुनिया और फिल्मी संगीत में बदलाव के साथ नीरज जी भी धीरे-धीरे सक्रिय फ़िल्मी लेखन से दूर होते गए और अपने साहित्य की ओर लौटे। 19 जुलाई 2018 को 93 वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हो गया । उनके निधन से हिंदी कविता और फ़िल्म संगीत—दोनों को अपूरणीय क्षति हुई।

निष्कर्ष –

गोपालदास 'नीरज' हिन्दी फ़िल्म जगत के ऐसे गीतकार हैं, जिन्होंने कविता और सिनेमा के बीच सेतु का कार्य किया। उनकी कविताएँ मंच पर जितनी प्रभावी रहीं, उतनी ही फिल्मी गीतों में भी। यह गुण बहुत कम कवियों में मिलता है। उनकी रचनाएँ आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि वे मनुष्य के मूल भावों से जुड़ी हैं। नीरज की विरासत हिंदी साहित्य और फ़िल्म संगीत में सदैव जीवित रहेगी।

संदर्भ -

1. अग्रवाल, गिरिराज शरण, (सं.) शोध दिशा, त्रैमासिक शोध पत्रिका, अंक 10, अप्रैल - जून 2010, पृष्ठ 79
2. पुरी, अरुण (सं.) इंडियाटुडे, साहित्य वार्षिकी पत्रिका, डायरी के कुछ पन्ने,1993, पृष्ठ 13
3. सक्सेना, गोपालदास, तुम्हारे लिए, हिंद पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली 2004, पृष्ठ 134
4. सिंह ,महेश सं. 'परिवर्तन' पत्रिका जुलाई - सितंबर, 2016 पांडिचेरी विश्वविद्यालय, पृष्ठ 18
5. सक्सेना, गोपालदास, फिर दीप जलेगा,हिंद पॉकेट बुक्स, नईदिल्ली 2004 पृष्ठ 114
6. सक्सेना, गोपालदास, नीरज की पाती, हिंद पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली 2004 पृष्ठ 16
7. कुलश्रेष्ठ, कमल (सं) "आजकल" भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं कला पत्रिका, जनवरी 25, पृष्ठ 8

*****

हिंदी सिनेमा में गीतकार एवं गजलकारों का योगदान: एक विवेचन

डॉ. अमलपुरे सूर्यकांत विश्वनाथ
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
डॉ. श्री.नानासाहेब धर्माधिकारी महाविद्यालय
गोवे कोलाड,
ता-रोहा, जिला - रायगड (महाराष्ट्र)
मो -9766731470

सारांश :-

भारत में सिनेमा की शुरुआत १८९६ में हो गई थी। जब पहला सिनेमा प्रोग्राम शो का आरंभ हुआ था। १८९३ में पहली बार स्वदेशी लघु फिल्मों को बनाने की शुरुआत कोलकाता के हीरालाल सेन ने की थी। इसके पश्चात महाराष्ट्र के कोलापुर निवासी भारतीय सिनेमा के पितामह ' दादा साहब फाल्के ' ने 'राजा हरिश्चंद्र ' नामक फिल्म बनाई। 8 मई 1913 में प्रदर्षन किया था। आगे चलकर अनेक धार्मिक फिल्म लगातार निर्माण होने लगी। बाबू राम पेंटर ने 1915 में आबकारी पाशा फिल्म बनाई 1929 में प्रमाण फिल्म कंपनी की स्थापना की गई। जिस के संस्थापक सोनाराम थे। आज हिंदी सिनेमा पूरे विश्व में मंडरा रही है। हिंदी फिल्मों को कवि और फिल्मकारों ने अपने गीतों से निश्चित रूप से समृद्ध किया है। गीत और संगीत से आध्यात्मिक तथा भौतिक आनंद मिलता है। लोक भाषा तथा लोक धुनों पर आधारित कुछ फिल्मी गीतों तो इनके अधिक लोकप्रिय हुए और कुछ विशेष पारंपारिक आयोजन पर गाए जाने लगे। 'बाबुल की दुआएं लेती जा' ने गीत आज भी लड़की का विदाई पर सुना जा सकता है। पहले रेडियो फिर फिल्म तथा आज दूरदर्शन की हवाओं पर सवार होकर फिल्मी गीतों ने गांव से शहर सभी के कंठो को फतेह कर लिया है।

कुंजी शब्द:- सिनेमा, अध्यात्म, भौतिकता, जनसंचार, गीतकार, गजल, मनवतावाद, आजादी आदि।

संशोधन पद्धति:- विश्लेषणात्मक संशोधन पद्धति।

संशोधन का उद्देश्य:-

1) हिंदी सिनेमा को जानना।
2) हिंदी गजल को जानना।
3) हिंदी सिनेमा के गीतकारों एवं गजलकारों को जानना।
4) हिंदी के प्रसिद्ध गीतकारों के गीत को देखना।
5) गीतकारों और गजलकारों के योगदान को जानना।

प्रस्तावना:-

गजल मौजूदा दौर में सबसे जादा मशक्कतवाली काव्य विधा है। इसमें सिर्फ प्रतिभा से काम नहीं चल पाता। हमारे सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हिंदी के कई विद्वानो एवं गजलकारों की यह धारणा बनी हुई है कि हिंदी में गजल की अवधारणा उर्दू गजल के प्रभाव के कारण हुई है। कई लोग इसे फारसी मे गजल की अवधारणा हो गई है ऐसे मानते है। हिंदी गजल परंपरा और प्रयोग में डॉ. कुन्दन सिंह लिखते है- " गजल विधा के भारत आगमण के पीछे सातवी सदी हिजरी के आरंभ में ईरान पर हुए मुगल-तैमूर अक्रमण हुए थे जिससे संत्रस्त होकर इरानी विद्वान साहित्य प्रेमी और सुफीसंत अपनी बचीखुची पूंजी लेकर सपरिवार भारत आए और जहां जगह मिली वहां बस गए। भारत आकर ये लोग स्थानिय भाषाओं से धीरे-धीरे परिचीत होने लगे। उनकी अपेक्षा भारत में जनमें उनके बालकों के लिए यहां की बोलियाँ एवं भाषाएँ सीखना जरा सुकर और स्वाभाविक था। इन्ही बालकों में से कुछ ऐसे भी थे जो युवा होकर अपनी पैत्रक भाषा के साथ-साथ भारतीय भाषाओं में भी विनोदार्थ कुछ न कुछ कह लिया करते थे। धिरे धिरे कुछ-कुछ कहने वाले यही लोग हिंदी में बहुत कुछ कहने लगे और फिर दिनों दिन हिंदी के माध्यम से गजल भी कही जाने लगीं। इस तरह से एक सुनिश्चित परमपरा चल पडी।" [1]

हिंदी कविता में गजल के बीज बोने का ऐतिहासीक दायित्व अमीर खुसरो ने निभाया है। हिंदी गजल के जनक के रुप में उनको सदा याद किया जाएगा। गजल राष्ट्र में ही प्रेम और करुणा का भाव अंतनिहित है। सिनेमा में संगीत के महत्व को प्रतिपादित करते हुए डॉ. चंद्र प्रकाश मिश्र लिखते हैं -"संगीत सिनेमा दर्शकों पर प्रत्यक्ष प्रभावित करता है। इसकी भूमिका सिनेमा

में प्रकार्यमूल्क होती है । संगीत को पर्दे पर दिखाए जाने वाले अभिनय को आत्मसात करने में सहायता देता है वह आनंद प्रदान करता है।"[2]

सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जो आम जनता तक पहुंचा है वह सभी वर्ग के लिए बनाया गया है। अमीर, गरीब ,शिक्षित, अशिक्षित, छोटा-बड़ा सब को यह भाता है। सच्चाई यह है कि मजदूर, ठेलेवाले, टाँगेवाले ही खूब देखते है। विश्व में जनमानस पर असर करने वाला सर्वाधिक प्रभावी संचार माध्यम सिनेमा है। इसके संबंध में प्रोफेसर सी. बी. पीटर कहते हैं कि -"भारतीय संस्कृति संदर्भ में सिनेमा शायद सबसे ज्यादा लोकप्रिय और सबसे अधिक शक्तिशाली संचार माध्यम है और हिंदी फिल्में निश्चित रूप से दूसरी भाषाओं की फिल्मों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है। '[3]

हिंदी सिनेमा में गीतकार एवं गजलकारों का योगदान:-

गीत के कारण ही कुछ सिनेमा का स्मरण हमें बार-बार होता है। आज बहुत सी ऐसी फिल्में है जो अपने गीतों के कारण ही जीवित है क्योंकि ऐसी फिल्में मन और मस्तिष्क में अपना घर बना लेती है। फिल्म के गीतों ने ही साहित्यकार की उपस्थिति को आवश्यक बनाया है। 1940 के बाद सिनेमा में गीतों का महत्व बढ़ता गया है। साहित्य में शब्दों के माध्यम से जनता की जुबान पर उतारा। प्रारंभ से ही हिंदी सिनेमा के गीतकारों का वर्णन सुंदर परंपरा रही है। नीरज, प्रदीप, हंसराज, जयपुरी, मजरूह, सुल्तानपुरी, कैफी, आज़मी, शैलेंद्र, बालकवि वैरात्री, साहिर लुधियानवी, समीर और गुलजार आदि गीतकारों ने अपने गीतों के माध्यम से संस्कृति, धर्म, साहित्य, समाज की जनता की जुबान पर उतारा है।

गीतकार नीरज का योगदान:-

हिंदी के जिन साहित्यकारों ने अपने योगदान से अनमोल सिनेमा गीतों में घूम मचाई है उन गीतकारों में नीरज का नाम प्रसिद्ध है। उनका पूरा नाम गोपालदास सक्सेना नीरज है। अपने फिल्मी गीतों के समान जीवन की बगिया महकाई हैं। गीतों के माध्यम से सबको मदहोश कर दिया है। उनके गीतों द्वारा राष्ट्रीय एकता दिखाई देती है। सर्वधर्म समभाव एवं मानवतावाद का संदेश 'मेरा नाम जोकर' में दिखाई देता है-

"कहता है जोकर जग सारा जमाना,
अपने पे हंस के जग को हंसाया ना हिदू ना मुस्लिम,
पूरब न पश्चिम मजहब है अपना हँसना हँसाना,
कहता है जोकर सारा जमाना
आधी हकीकत आधा फसाना । " [4] (मेरा नाम जोकर)

प्रेम और मानवीय संवेदना के कवि नीरज ने 'पहचान' सिनेमा में दिखाने की कोशिश की है। प्यार का मतलब प्यार ही होना चाहिए उसका कोई तोल मोल नहीं हो सकता प्यार खिलौना नहीं कि उसे बेचा जाए। जिंदगी के सफर में हमें प्यार की अधिक आवश्यकता होती है।जैसे –

"बस यही अपराध में हर बार करता हूँ आदमी हूं,
आदमी से प्यार करता हूँ मैं बताना चाहता हूँ,
स्वर्ग धरती पर आदमी जिसने रहे बस आदमी बनकर (पहचान) " [5]

प्रेम के बिरह में प्रियसी अपनी संवेदनशीलता व्यक्त करते हुए एक सिनेमा में नायिका कहती है-

"अपने होठों की बंसी बना लो मुझे,
मेरी सांसों में तेरी सांस घुट जाए ,
लिखे जो खत तुझे वो तेरी याद में,
हजारो रंग के नजारे बन गए,
सवेरा जब हुआ तो फूल बन फूल बन गए,
जो रात आई तो सितारे बन गए (कन्यादान) " [6]

नीरज की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना थी 'कारवां गुजर गया'। इस गीत पर या रचना पर सिनेमा बना। नई उमर की नई फसान इसी के साथ नीरज ने बॉलीवुड इंडस्ट्री में अपना कदम रखा था। आज भी इस सिनेमा का यह गीत लोगों के लबों पर झूमता है। जैसे – "सपन झरे फूल से मीत चुभे शूल से लुट गए,
सिंगार सभी बाण के बंदूक से और हम खड़े-खड़े बहार देखते रहे,

कारवां गुजर गया गुबार देखते रहो।" [7] (नई उमर की नई फसल)

इसी प्रकार कवि नीरज ने अनेकानेक सिनेमा के गीत लिखे हैं जो प्रसिद्ध हो गए हैं। उनके गीतों भरे सिनेमा इस तरह है-' नई उमर की नई फसल, कन्यादान, पहचान, लाल पत्थर, गैंबलर, प्रेम पुजारी, मेरा नाम जोकर, चंदा और बिजली, छुपे रुस्तम, तेरे मेरे सपने, जंगल में मंगल, बेईमान, कल आज और कल, उमंग, पराया धन, धार्मिक, अर्चना, यार मेरा, मुन्नी मता, एक नारी एक ब्रह्मचारी, रेशम की डोरी, रेशमा और शेरा, मझली दीदी, तू ही मेरी जिंदगी, वीर छत्रसाल, पतंगा, दुनिया और शतरंज के मोहरे आदि प्रसिद्ध सिनेमा के लिए उन्होंने गीत लिखे हैं। वे अजत्मर गीतकार 30 से 80 गीत लिखे हैं।

गीतकार गुलजार का योगदान:-

हिंदी सिनेमा के लिए मील का पत्थर सिद्ध हुए कुछ गिने-चुने लोगों में गुलजार का नाम शीर्षक है हिंदी सिनेमा के नामों में सबसे ज्यादा सफल और लोकप्रिय गीतकार रहे हैं। हिंदी सिनेमा गीत परंपरा में उनका बड़ा योगदान है। एक गीतकार के साथ-साथ सिनेमा निर्देशक, निर्माता भी थे। अब तक १५० से ज्यादा सिनेमा के लिए हजारों गीत लिले ही वे शायरी करते थे इसलिए मीना कुमारी और गुलजार की काफी गहरी दोस्ती हो गई थी। उनके बारे में डॉ. महेंद्र मिस्त्ल लिखते हैं- "भले ही किन्ही पूर्व ग्रहो के कारण अचवा साहित्य शास्त्र की बंधी हुई परिपाठी के कारण फिल्म को किसी साहित्यिक विद्या अथवा कला का स्तर प्रदान न किया गया हो किंतु आज इस तथ्य से विमुल नहीं हुआ जा सकता कि फिल्मों ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।" [8] आज हम देखते हैं कि मनोरंजन के क्षेत्र में सॉस्कृतिक शून्यता का पराकाष्ठा हो रहा है। गीतों का माहौल इतना बदल गया है कि रीमिक्स गीत सुनने में डर सा लगने लगा है। गुलजार ने सिनेमा गीत लेखन की शुरुआत १९६१ में 'काबुलीवाला के गंगा आई कहां से' गीत से की है।–

"वो शाम कुछ अजीब थी वो शाम भी अजीब है ,
वो कल भी आसपास थी वो आज भी करीब है" [9] (खामोशी)

राजेश खन्ना और अमिताभ बच्चन की एक फिल्म नमक हराम और ऑधा इन दो सिनेमा के गीत उच्च कोटि के माने जाते हैं गोलमाल सिनेमा के भी गीत प्रसिद्ध हो गए हैं-

"तुमसे नाराज नहीं हूँ परेशान हूँ मैं परेशान हूँ मैं" [10] (गोलमाल)
मेरा कुछ सामान तुम्हारे पास पड़ा है, वो लौटा दो, वो लौटा दो।"[11] (इजाजत)

दूरदर्शन पर गुलजार ने लिखे हैं- जंगल बुक धारावाहिक चलती है उसके गीत भी -

"जंगल जंगल बात चली है पता चला है, चड्डी पहन के फूल खिला है।"[12] (जंगल बुक)

जब तक है जान, सिनेमा में प्रेम और प्रकृति का सौंदर्य गहराई से चित्रित किया है। एक अद्भुत भावविभोर रोमांस में श्रोता बंध जाता है और सहदय को बंध पाव में बहाने में सुकून महसूस करता है इस सिनेमा के यह गीत की पंक्तियां देखे –

"पीली धूप पहन के तुम,
देखो बाग में मत जाना भँवरे तुमको सब छेडेगे,
फूलों में मतजाना मध्यम मध्यम हंस दे फिर से,
सोना सोना फिर से हंस दे सावन भादो सारो तुमसे मौसम- मौसम हंसते रहना ।"[13] (जब तक है जान)

इस तरह गुलजार बहुभाषायी प्रतिभा के धनी है। उनका पूरा नाम संपूर्ण सिंह कालरा गुलजार है लेकिन साहित्य एवं फिल्म जगत में वे गुलजार नाम से ही चर्चित रहे हैं। लगभग 50 सिनेमा की भी पटकथाएं लिखी है और कई सफल फिल्म का भी निर्देशन किया है। उनको अब तक ऑस्कर पुरस्कार, 7 राष्ट्रीय पुरस्कार मिले हैं। उनके गीतों के लिए ग्यारह फिल्म फेयर पुरस्कार मिले हैं। हाल ही में 2013 में दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

गीतकार प्रदीप का योगदान :-

' ऐ मेरे वतन के लोगों ' यह गीत सुनते ही अक्सर हमारे आंखों में पानी आ जाता है। ऐसा ही कुछ ताकत कवि प्रदीप के लेखनी में है। भारतीय हिंदी सिनेमा बिना प्रदीप के अधूरा माना जाता है। उनके द्वारा लिले गए देश भक्ति के गीत आज वह जनगीत बन गए हैं। आज भी वह हमारे दिलों में देशभक्ति का जज्बा कायम रखते हैं। कवि प्रदीप का जन्म 6 फरवरी, 1915 में मध्य प्रदेश के बड़नगर में हुआ था। उनका असली नाम रामचंद्र नारायण द्विवेदी था। बचपन से ही काव्य लेखन करते रहे। काव्य सम्मेलनो में काव्य प्रस्तुत किया करते थे उनके जीवन से प्रभावित होकर निदा फाजली कहते हैं - "प्रदीप जी ने बहुत ही अच्छे राष्ट्रीय गीत लिखे हैं। यूं समझिए कि उन्होंने सिनेमा को जरिया बनाकर आम लोगों के लिए लिखा है।"[14]

हिदी सिनेमा में कवि प्रदीप का आगमन 1930 में हुआ था। सिनेमा 'कंगन' के लिए गीत लिखे। उन गीतों को खुद गाए। इसी तरह सिनेमा जगत को कवि, गीतकार, संगीतकार एक साथ मिला था । 1940 में बंधन, 1943 में किस्मत अजाक, पुर्वमिलन, मषाल, नया संसार, ऐसे दर्जनों फिल्म लगातार निर्माण हो गई और प्रदीप जी एक से बढ़कर एक गीत लिखने लगे। देशभक्ति के गीतों में देखा जा सकता है- "देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान कितना बदल गया इंसान ।" (जागृति)

'आओ बच्चे तुम्हें दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की, इस मिट्टी से तिलक करो यह धरती है बलिदान की (जागृति)

दे दो हमें आजादी, बिना खडक बिना ढाल नवर मती के संत तूने कर दिया कमाल । [15] (जागृति)

'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आंख में भर लो पानी,

जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुर्बानी। '[16] (१९६२चीनी आक्रमण)

ईश्वर के प्रति समर्थन भावना तथा धार्मिक एकता के लिए नारी पूजा एवं नारी सम्मान को लेकर १९७५ में जय संतोषी माता सिनेमा के लिए श्रद्धा भाव के गीत लिखे-

"मैं तो आरती उत्तारू रे संतोषी मां की,

जय जय संतोषी माता जय जय मां । [17] (जय संतोषी मां)

यह गीत जब सिनेमाघरों में गूंजने लगा तो महिलाएं सचमुच आरती के लिए खड़े होकर गाने गुनगुनाती थी। आज भी यह गीत लोकप्रिय है। आरती के समय आज भी गाया जाता है। इस प्रकार कवि प्रदीप जी ने अपने पांच दशक के इस पेरों में लगभग 72 फिल्मों के लिए लगभग 1700 गीत लिखे हैं। इनके गीतों ने सिनेमा के क्षेत्र में अलग इतिहास बनाया है । 1997 में दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किए गए। संगीत नाटक अकादमी सम्मान, बीएफजे सम्मान, कई राष्ट्रीय सम्मान भी मिले ।83 वर्ष की आयु में दिल का दौरा पड़ने से 1998 में चल बसे। मगर आज भी उनकी महक गीतों के माध्यम से ताजा है कवि प्रदीप हिंदी सिनेमा क्षेत्र में हमेशा याद रहेंगे।

गीतकार शैलेंद्र का योगदान :-

शैलेंद्र एक ऐसे ही गीतकार एवं कवि है जिन्होंने अपनी फिल्मी गीतों में जिदगी का सरल व्याख्या बयान की है। उनका जन्म 30 अगस्त 1923 को रावलपिंडी में हुआ। मगर बचपन मथुरा में, मां के मृत्यु के उपरांत घर के हालातों के कारण नौकरी करनी पड़ी। रेलवे में वेल्डर के पद पर कार्य करते समय गीत लिखते रहे। मुंबई में रेलवे कार्यशाला में काम किया। वेदना पीडा और देशभक्ति के गीत लिखते रहें। देश के सुनहरे भविष्य के लिए एक गीत लिखा है - "यह चमन हमारा है इस देश पर हमारा राज है। मत कहो कि सर पर टोपी है, कहो सर पर हमारे ताज है।"

शैलेंद्र के बारे में गुलजार जी ने लिखा है -"विना शक शैलेंद्र को हिंदी सिनेमा का आज तक का सबसे बड़ा लिरिक्सटीक कहा जा सकता है। उनके गीतों को खुरच कर देखे तो आपको सतह के नीचे दब गएअर्थ प्राप्त होंगे। उनके एक ही गीत में न जाने कितने गहरे अर्थ छिपे होते हैं।" [18]

दूर गगन की छांव में इस सिनेमा का यह प्रसिद्ध गीत है।–

"होते हैं मौसम के फेरे रातों के संग है सवेरे,

जाके अगर लौट आती है सांसे लौटेंगे फिर दिन तेरे।

कभी तो मिलेगी तेरी मंजिल, कहीं दूर गगन की छांव में।"[19] (दूर गगन की छांव में)

शैलेंद्र जी ने अधिकतर गीत मानवीय रिश्ते के हर पहलुओं पर लिखा है भाई बहन का रिश्ता हो, पति-पत्नी एवं दोस्तों के रिश्ते, भावनाओ को अंकित किया है। - "कांटों से खीच के ये ऑचल तोड़ के बंधन बांध पायल कोई ना रोके दिल की उडान को दिलबर चला आज फिर जीने की तमन्ना है।"[20] (गाइड)

शैलेंद्र जी ने अपने जीवन के आखिरी दौर में ' तीसरी कसम ' फिल्म का निर्माण किया। यह फिल्म रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफान 'पर बनाई है। इस फिल्म के गीत जीवन के लिए उपयोगी साबित हो गए। राष्ट्रीय पुरस्कार भी इस फिल्म को मिला। मगर कर्जदार बने और। मरने का कारण बन । 45 साल में 1966 में चल बसे। उनका एक गीत देखे-

"सजन रे झूठ मत बोलो खुदा के पास जाना है,

भला कीजिए भला होगा, बुरा कीजिए बुरा होगा I

वहां लिख लिख कर क्या होगा, यही सब कुछ चुकाना है I

ना हाथी है ना घोड़ा है बस पैदल ही जाना है ।" [21] (तीसरी कसम)

इस प्रकार शैलेंद्र हिंदी सिनेमा साहित्यकारों के मुकुटमणि है। उन्होंने 3 मिनट के स्पेस में आनंद मोह का करिश्मा खड़ा कर दिखाया। राजकुमार ने उनकी फिल्मी प्रतिभा का भरपूर उपयोग किया। आवारा सिनेमा में लिखते हैं-

"घरबार नहीं, संसार नहीं, मुझसे किसी को प्यार नहीं,
उस पार किसी से, मिलने का इकरार नहीं ,
अनजान नजर सुनशान डगर का प्यार हूं आवारा हूं' I " [22] (आवारा)

शैलेंद्र ने अपने जीवन काल में सन् 1948 से 1966 तक 17 सालों में लगभग 800 गीतों की रचना की है।

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त विवेचन के अनुरूप हम निष्कर्ष रूप से कर सकते हैं कि हिंदी सिनेमा में कवि एवं गीतकारों तथा गजलाकारो का सबसे बड़ा योगदान रहा है। गीत सिनेमा का महत्वपूर्ण अंग होता है जिसके बिना सिनेमा नीरस बन जाता है। ऐसे अलग-अलग रसो को लेकर गीतकरो ने अपने गीत सिनेमा के लिए लिखे और सिनेमा को आदर्श बनाने का काम किया। गीतकारों में प्रसिद्ध है- कवि प्रदीप, कवि नीरज, कवि गुलजार, कवि शैलेंद्र, साहिर लुधियानवी, बालकवि वैरागी, पंडित नरेंद्र शर्मा, आनंद बक्शी, मजरूह सुल्तानपुरी, रविंद्र जैन, शकिल बदायुनी, जावेद अख्तर और इंदीवर आदि। इस प्रकार फिल्मी दुनिया में गीत और संगीत इन दोनों का ही स्थान सर्वोपरि होता है। गीतों की लोकप्रियता आज बढ़ गई है। इसलिए सिनेमा के अच्छे दिन आ गए हैं। ऐसे हम मानते हैं। भारतीय जनता आज भी अपनी परंपरा से जुड़ी हुई है और उसे वह पसंद भी करती है। उपर्युक्त सभी गीतकारों के गीत आजकल और आने वाले कल के लिए भी प्रेरणा देने वाले है। यह कहना बेशक मेरा हक है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1) डॉ. कुंदन सिंह - हिंदी गजल: परंपरा और प्रयोग पृ. 93
2) डॉ. चंद्रकांत मिश्रा - मीडिया लेखन सिद्धांत और व्यवहार पृ 414
3) अनुपम पांडे - पत्रकारिता की आधुनिक प्रवृतियाँ पृ. 45.
4) मेरा नाम जोकर, सिनेमा से उद्धृत – नीरज
5) पहचान, सिनेमा से उद्धृत - नीरज
6) कन्यादान, सिनेमा से उद्धृत – नीरज
7) नई उमर की नई फसल, सिनेमा से उद्धृत -नीरज
8) भारतीय चलचित्र डॉ. महेंद्र मिसाल. पृ.2
9) खामोशी ,सिनेमा से उद्धृत - गुलजार
10) गोलमाल, सिनेमा से उद्धृत - गुलजार
11) इजाजत, सिनेमा से उद्धृत - गुलजार
12) जंगल बुक, सिनेमा से उद्धृत -गुलजार
13) जब तक है जान , सिनेमा से उद्धृत– गुलजार
14) हिंदी सिनेमा के मील के पत्थर निदा फाज़ली पृ.28
15) जागृति, सिनेमा से उद्धृत - प्रदीप
16) 1962 चीनी आक्रमण का गीत - प्रदीप
17) जय संतोषी मां, सिनेमा से उद्धृत -प्रदीप
18) हंस मासिक फरवरी 2013 हिंदी सिनेमा के सी वर्ष पृ 70
19) दूर गगन की छांव में, सिनेमा से उद्धृत - शैलेंद्र
20) गाइड , सिनेमा से उद्धृत - शैलेंद्र
21) तीसरी कसम सिनेमा से उद्धृत - शैलेंद्र
22) आवारा सिनेमा से उद्धृत – शैलेंद्र

*****

आचार्य अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी की गजल में सामाजिक चेतना और समकालीनता

डॉ. सुषमा मारुती चौगले
महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर
तथा शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
sushama.mandekar@gmail.com
Mo. no. – 7588490540

शोध सार :

समकालीन हिंदी ग़ज़ल परंपरा में आचार्य अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी जी का काव्य–व्यक्तित्व विशेष महत्त्व रखता है। उन के काव्य–संग्रह 'मैं तुम्हारे साथ भी हूँ मैं तुम्हारे पास भी हूँ' की गज़लों में सामाजिक चेतना और समकालीनता गहरे रूप में अभिव्यक्त होती है, क्योंकि ये रचनाएँ कवि के "जिये हुए, भोगे हुए" अनुभवों से प्रसूत हैं और वर्तमान समाज की पीड़ा, विडंबना तथा उम्मीद, तीनों को समेटती हैं। 'गज़ल – बहार' खंड की गज़लों में जहाँ एक ओर भूख, विषमता, अकेलापन, सांस्कृतिक विघटन और मूल्य–संकट के यथार्थ चित्र हैं, वहीं दूसरी ओर मानवीय संवेदना, प्रेम और आध्यात्मिकता के सहारे एक मानवीय भविष्य की संभावना भी दिखाई देती है। देवनागरी में लिखी उर्दू प्रधान भाषा, समकालीन बिंब–प्रतीक, मंच–संवाद की ताज़गी और सामाजिक सरोकार इन गज़लों को आधुनिक हिंदी–उर्दू गज़ल–धारा से जोड़ते हुए विशिष्ट बनाते हैं। यह शोधालेख 'गज़ल – बहार' में संकलित गज़लों के आधार पर सामाजिक चेतना के विविध आयामों — वर्ग–विषमता, शोषण, तन्हाई, समय–चेतना, राष्ट्र–बोध और सांस्कृतिक संकट — का अनुशीलन करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि वाजपेयी जी की गज़लों में समकालीन जीवन–यथार्थ और मानवीय अस्मिता के प्रश्न अत्यंत मार्मिक और कलात्मक ढंग से उभरते हैं।

बीज शब्द : अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी; गज़ल–बहार; सामाजिक चेतना; समकालीनता; वर्ग–विषमता; तन्हाई; राष्ट्र–बोध; हिंदी–उर्दू गज़ल।

प्रस्तावना :

आचार्य अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी जी का काव्य–संग्रह 'मैं तुम्हारे साथ भी हूँ मैं तुम्हारे पास भी हूँ' चार खंडों — मंगलाचरण, मुक्तकांजलि, गीत–व्योम और गज़ल–बहार — में विभाजित है, जिनमें 46 गीतों के साथ 59 गज़लें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनका काव्य–संग्रह "मैं तुम्हारे साथ भी हूँ, मैं तुम्हारे पास भी हूँ" (2023) समकालीन समाज की पीड़ाओं, अंतर्विरोधों और उम्मीदों को स्वर देता है। कवि स्वयं लिखते हैं कि यह संग्रह "लगभग साढ़े चार दशकों की साधना" का परिणाम है और प्रत्येक गीत–गज़ल "मेरे जिये हुए, भोगे हुए, अनुभूत क्षणों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है", इसलिए इन रचनाओं में व्यक्तिगत अनुभव और सामाजिक यथार्थ का घनिष्ठ संबंध स्वाभाविक रूप से दिखाई देता है।

भूमिका में वाजपेयी जी स्पष्ट करते हैं कि गज़लों में "जीवन के विभिन्न पहलुओं" के साथ–साथ "समाज की विभीषिकाओं को भी खूबसूरती से चित्रित किया गया है", जो उनकी गज़लों की सामाजिक चेतना और समकालीनता की दिशा में महत्वपूर्ण संकेत है। प्रस्तुत शोधालेख में गज़ल – बहार खंड की चुनिंदा गज़लों के आधार पर सामाजिक चेतना के विविध आयामों का विश्लेषण किया जा रहा है।

गजल – बहार में सामाजिक दृष्टि :

1. समाज – वेदना और विभीषिकाएँ :

आज की ग़ज़ल केवल प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति न रहकर सामाजिक यथार्थ की मुखर वाणी बन चुकी है। इसी परंपरा में अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी जी का नाम महत्त्वपूर्ण है। वाजपेयी जी की ग़ज़लों में आम जन का दुःख, संघर्ष, विडंबना, नैतिक संकट, राजनीतिक छल, धार्मिक असहिष्णुता, मानवीय रिश्तों का विघटन तथा आशा–विश्वास की पुनर्रचना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। भूमिका में कहा गया है कि इन गज़लों में "समाज की विभीषिकाओं" का चित्रण हुआ है, और आगे यह भी कि रचनाओं में "कहीं तो स्वयं की वेदनाएँ तो कहीं समाज की पीड़ा दोनों का ही समावेश हुआ है।" इस कथन के आलोक में गज़ल–बहार की गज़लों को देखें तो सामाजिक विषमता, शोषण, युद्ध, हिंसा और नैतिक पतन के संकेत अनेक स्थलों पर दिखाई देते हैं।

'हंसते–हंसते रुला रहे हो' शीर्षक गज़ल का एक प्रसिद्ध शेर है —

"ज़मीं पे इंसा भूखा नंगा
गगन पे तुम झिलमिला रहे हो।"[xi]

यहाँ "भूखा नंगा इंसान" शोषित वर्ग, आम जन और वंचित समाज का प्रतीक है, जबकि "गगन पर झिलमिलाना" सत्ताधारी, पूँजी–सम्पन्न और विलासी वर्ग की असंवेदनशील चमक का द्योतक है। यह शेर समकालीन भारत की आर्थिक–सामाजिक असमानता का तीखा व्यंग्यात्मक चित्र बन जाता है और कवि की सामाजिक चेतना का स्पष्ट उद्घोष है।

इसी गज़ल में एक अन्य बिंब है—

"दर्द की धरती अश्क से सींची
ज़ख्म की खेती उगा रहे हो।"[xii]

"दर्द की धरती" और "ज़ख्म की खेती" जैसे रूपक शोषण–प्रधान व्यवस्था की आलोचना करते हैं, जहाँ सामान्य मनुष्य का जीवन लगातार पीड़ा, अन्याय और असुरक्षा से सिंचित हो रहा है। यहाँ खेत और खेती का ग्रामीण प्रतीक आधुनिक शोषण–तंत्र पर व्यंग्य में बदल जाता है।

2. तन्हाई, भीड़ और मनुष्य की दूरी :

समकालीन जीवन की एक बड़ी त्रासदी भीड़ भरे शहरों में मनुष्य की बढ़ती हुई तन्हाई है, जिसे वाजपेयी कई गज़लों में विषय बनाते हैं। 'तनहाइयाँ बहुत' शीर्षक गज़ल में वे लिखते हैं–

"चेहरों पे दिख रही हैं रानाइयाँ बहुत,
लेकिन दिलों में फसुर्दगी हैं खाइयाँ बहुत।"[xiii]

यहाँ बाह्य सौंदर्य (रानाइयाँ) और आंतरिक उदासी (फसुर्दगी की खाइयाँ) के बीच अंतर दिखाकर आधुनिक मनुष्य की भीतर–ही–भीतर टूटती हुई संवेदनशीलता को सामने लाया गया है। आदमी आज "भीड़" का हिस्सा बन चुका है, उसकी व्यक्तिगत पहचान दबती जा रही है। यह समकालीन समाज की गंभीर समस्या है, जिसे कवि ग़ज़ल के माध्यम से उजागर करता है।

इसी गज़ल का दूसरा शेर—

"ज़रा सी गुफ्तगू के वास्ते निकला जो शहर में,
मिले आदमी बहुत, कम परछाइयाँ बहुत।"[xiv]

भीड़ में 'आदमी' का कम और 'परछाइयों' का अधिक होना रिश्तों के खोखलेपन, आत्मकेंद्रितता और संवादहीनता की आधुनिक स्थिति का सशक्त रूपक है। यह स्थिति केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि समकालीन शहरी समाज का सामूहिक संकट है, जो कवि की सामाजिक दृष्टि को रेखांकित करता है।

समकालीनता : समय – चेतना और संदर्भ :

वाजपेयी जी की ग़ज़लें आज के समय से सीधे संवाद करती हैं। राजनीतिक अस्थिरता, नैतिक द्वंद्व, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक विघटन जैसे मुद्दे उनकी ग़ज़लों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपस्थित हैं। वे समय की नब्ज़ पहचानते हैं और ग़ज़ल को वर्तमान का दस्तावेज़ बना देते हैं। यही कारण है कि उनकी ग़ज़लें पाठक को आज के समाज से जोड़ती हैं और उसे सोचने के लिए विवश करती हैं।

1. वर्तमान की संवेदना और भविष्य की संभावना :

अन्तर्मन में वाजपेयी जी लिखते हैं कि उनकी रचनाओं में "भूत का संस्पर्श और वर्तमान की संवेदना" के साथ "भविष्य की संभावनाओं का भी चित्रण" हुआ है और यह कि "जो कुछ भी है सब सहज, स्वाभाविक और आत्म–स्फूर्त" है। इस कथन से स्पष्ट है कि उनकी गज़लों का आधार केवल अतीत चिंतन नहीं, बल्कि वर्तमान समाज के ज्वलंत प्रश्न और भविष्य के प्रति आशावान दृष्टि भी है। उन की ग़ज़लों में करुणा और मानवीय संवेदना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे टूटते रिश्तों, अकेलेपन और भावनात्मक रिक्तता को गहरी संवेदनशीलता से प्रस्तुत करते हैं।

कुछ गज़लें मंच और मित्र–वृत्त में "अभी हाल की लिखी हुई" बताई गई हैं, जबकि कुछ "तीस–चालीस साल पुरानी" हैं, फिर भी कवि के शब्दों में "पाठकों को उनकी तारतम्यता में कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ेगा।" इससे पता चलता है कि उनमें उठाए गए सामाजिक प्रश्न इतने बुनियादी हैं कि विभिन्न दशकों में भी समान रूप से प्रासंगिक बने रहते हैं— यही समकालीनता की एक महत्वपूर्ण कसौटी है।

2. सांस्कृतिक और साहित्यिक संदर्भ – बोध :

वाजपेयी अपनी काव्य–यात्रा को तुलसी, कालिदास, निराला, फिराक, बशीर बद्र, सोम ठाकुर आदि की परंपरा से जोड़ते हैं और लिखते हैं कि ये सभी उनके रचना–धर्म की कसौटियाँ हैं। गज़ल–बहार खंड में 'शहनशाहे–कलम फिराक' जैसी रचना फिराक गोरखपुरी को समर्पित एक समकालीन–स्मारक की तरह है-

"शहनशाहे – कलम फिराक,
गुलशने–जिस्म में खिलते रहेंगे
इश्क के गुंचे जब तक
इस ज़मीं पर फिराक !
चलते रहेंगे तेरे चर्चे तब तक।"[xv]

यहाँ फिराक की शायरी को "नब्ज़–ए–वक्त पर उंगलियाँ" रखने वाली चेतना माना गया है, जो खुद वाजपेयी की समकालीन दृष्टि का मानक भी बनती है। इससे उनकी गज़लों में समय–चेतना, साहित्यिक परंपरा–बोध और समकालीन सांस्कृतिक संदर्भ का त्रिकोण निर्मित होता है।

भाषा, बिंब और सामाजिक संदर्भ :

अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी की भाषा सरल, सहज और संप्रेषणीय है। वे कठिन शब्दावली या जटिल प्रतीकों का सहारा नहीं लेते। उनकी ग़ज़लें आम पाठक तक सीधे पहुँचती हैं। शिल्प की दृष्टि से वे ग़ज़ल की पारंपरिक संरचना को बनाए रखते हुए उसमें आधुनिक भाव–बोध भरते हैं।

1. हिंदी – उर्दू संलयन और जन – संवेदना :

संग्रह की भूमिका के अनुसार, "अधिकांशतः गज़लों की भाषा देवनागरी में लिखी उर्दू और कुछ गज़लें हिंदी की भी हैं", और इनमें "समाज की विभीषिकाओं को खूबसूरती से चित्रित किया गया है।" भाषा–स्तर पर उर्दू के शब्द–भंडार (इबादत, मोहब्बत, तौहीन, फना, खुदी, वफ़ा, जफ़ा आदि) और हिंदी–जन–भाषा (तिनके–तिनके, नदी किनारे, रेत के मन्दिर, खेत, बंसी, खेती) का मेल समकालीन भारतीय समाज की बहुल सांस्कृतिक संरचना को अभिव्यक्त करता है।

'हंसते–हंसते रुला रहे हो' गज़ल में—

"नदी किनारे रेत के मन्दिर
बना–बना कर मिटा रहे हो।"[xvi]

रेत के मन्दिर बार–बार टूटते–बनते सपनों, अस्थिर जीवन–स्थितियों और विकास–मॉडल की नाशवानता का प्रतीक हैं, जो आज के सामाजिक–राजनीतिक परिदृश्य में बार–बार बदलती प्राथमिकताओं का संकेत देते हैं।

2. बिंब – योजना में सामाजिक यथार्थ :

कवि अपने अनुभवों को "भूगोल" और "इतिहास" वाला मानते हैं और लिखते हैं कि प्रत्येक गीत–गज़ल "कई–कई घटनाओं और व्यक्तियों को समेटे हुए है।" इसलिए बिंब–प्रतीकों के पीछे ठोस सामाजिक संदर्भ काम करता है।

उदाहरण के लिए—

"दर्द की धरती" , " जख्म की खेती"[xvii] – शोषित समाज का समूहिक दर्द

"तनहाइयाँ बहुत", "परछाइयाँ बहुत"[xviii] – आधुनिक शहरी जीवन की मानसिक–सामाजिक दूरी।

"वक्त के साथ ख़यालात बदल जाते हैं" जैसी चर्चित पंक्तियाँ (भूमिका में उल्लेखित) समय–परिवर्तन की चेतना को सामाजिक स्तर पर रेखांकित करती हैं।

इन बिंबों के माध्यम से वाजपेयी जी व्यक्तिगत प्रेम–वेदना से आगे बढ़कर सामाजिक–ऐतिहासिक संदर्भों को भी गज़ल के सौंदर्य–विधान में समाहित कर लेते हैं।

निष्कर्ष :

'मैं तुम्हारे साथ भी हूँ मैं तुम्हारे पास भी हूँ' के 'गज़ल–बहार' खंड की गज़लें अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी जी की सामाजिक चेतना और समकालीन दृष्टि की सशक्त अभिव्यक्ति हैं, जिनमें व्यक्तिगत अनुभूति और सामूहिक पीड़ा का विलक्षण समन्वय दिखाई देता है। "ज़मीं पे इंसा भूखा नंगा / गगन पे तुम झिलमिला रहे हो" जैसे शेर वर्ग–विषमता और शोषण का तीखा

प्रतिकार करते हैं, वहीं "चेहरों पे दिख रही हैं रानाइयाँ बहुत / लेकिन दिलों में फसुर्दगी हैं खाइयाँ बहुत" जैसे शेर समकालीन तन्हाई और रिश्तों के खोखलेपन को उजागर करते हैं।

हिंदी–उर्दू के भाषिक संलयन, सूक्ष्म बिंब–योजना, समय–चेतना और मानवीय सरोकारों के कारण वाजपेयी की गज़लें आज के भारतीय समाज की अनेक ज्वलंत समस्याओं और संवेदनात्मक संकटों को कलात्मक रूप में सामने लाती हैं। इस दृष्टि से उनकी गज़ल–रचना न केवल व्यक्तिगत काव्य–यात्रा का प्रमाण है, बल्कि समकालीन हिंदी–उर्दू गज़ल–परंपरा में सामाजिक चेतना से सम्पन्न एक महत्वपूर्ण पड़ाव भी मानी जा सकती है।

संदर्भ :

1. वाजपेयी, अरुण दिवाकर नाथ, मैं तुम्हारे साथ भी हूँ मैं तुम्हारे पास भी हाँ, नयी दिल्लीकिताबवाले :, 2023. पृ.सं. 147
2. वही, पृ.सं. 147
3. वही, पृ.सं. 151
4. वही, पृ.सं. 151
5. वही, पृ.सं. 81
6. वही, पृ.सं. 147
7. वही, पृ.सं. 148
8. वही, पृ.सं. 151

*****

पीयूष मिश्रा द्वारा लिखे गए लोकप्रिय हिंदी फ़िल्मी गीत: सामाजिक परिदृश्य

विद्या शितलकुमार गायकवाड
शोध-छात्रा, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
मोबाईल नंबर- +91-9175597795
v.gaikawad24@gmail.com

सारांश :

यह शोध आलेख समकालीन हिंदी सिनेमा के प्रमुख गीतकार एवं रंगकर्मी पीयूष मिश्रा द्वारा लिखे गए लोकप्रिय फ़िल्मी गीतों का सामाजिक परिदृश्य के संदर्भ में विश्लेषण प्रस्तुत करता है। पीयूष मिश्रा के गीत केवल मनोरंजन तक सीमित न रहकर समाज की विसंगतियों, आम जन की पीड़ा, राजनीतिक चेतना, वर्ग संघर्ष तथा मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। इस अध्ययन में विशेष रूप से "आरंभ है प्रचंड" (फ़िल्म:गुलाल, 2009) और "इक बगल में चाँद होगा" (फ़िल्म: गैंग्स ऑफ़ वासेपुर, 2012) इन चयनित गीतों को आधार बनाकर यह विवेचना की गई है, कि किस प्रकार उनके गीत सामाजिक यथार्थ, प्रतिरोध की भावना और जनसरोकारों को स्वर प्रदान करते हैं।

शोध की पद्धति वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। पीयूष मिश्रा के गीत हिंदी फ़िल्म संगीत को वैचारिक गहराई प्रदान करते हुए समाज के हाशिये पर खड़े वर्गों की आवाज़ बनते हैं तथा आधुनिक भारतीय समाज की जटिलताओं को प्रभावी रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह आलेख साहित्य, सिनेमा और समाज के अंतर्संबंधों को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

बीज शब्द: पीयूष मिश्रा, सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक चेतना, वर्ग संघर्ष, प्रतिरोध की संस्कृति, मानवीय संवेदनाएँ, समकालीन हिंदी सिनेमा आदि।

प्रस्तावना:

समकालीन हिंदी सिनेमा में गीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रह गए हैं, बल्कि वे सामाजिक यथार्थ, वैचारिक चेतना और जनसंघर्षों की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम बन चुके हैं। इस परिवर्तनशील परिदृश्य में पीयूष मिश्रा एक ऐसे सृजनशील कलाकार के रूप में उभरते हैं, जिनकी रचनाएँ साहित्य, रंगमंच और सिनेमा ऐसे तीनों माध्यमों में समान रूप से प्रभावशाली हैं। गीतकार, अभिनेता, रंगकर्मी और चिंतक के रूप में उनकी बहुआयामी रचनात्मकता समकालीन भारतीय समाज की जटिलताओं को गहराई से उद्घाटित करती है।

पीयूष मिश्रा का जन्म 13 जनवरी, 1963 को मध्यप्रदेश के ग्वालियर में हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (NSD), नई दिल्ली से नाट्य प्रशिक्षण प्राप्त किया, जहाँ से उनके वैचारिक और कलात्मक दृष्टिकोण को एक ठोस आधार मिला। रंगमंच से आरंभ हुई उनकी रचनात्मक यात्रा फिल्मों तक पहुँची, किंतु उनकी संवेदनशील दृष्टि और सामाजिक सरोकार सदैव केंद्र में बने रहे। उनके गीतों और संवादों में लोकभाषा की सहजता, विद्रोह की तीव्रता और मानवीय पीड़ा की गहरी अनुभूति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पीयूष मिश्रा के गीत सत्ता, राजनीति, वर्ग संघर्ष और आम आदमी के अस्तित्वगत संकटों को मुखर स्वर देते हैं। वे प्रेम, विरह और सौंदर्य के पारंपरिक दायरे से आगे बढ़कर सामाजिक अन्याय, हाशिये पर खड़े वर्गों की व्यथा और प्रतिरोध की चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। "आरंभ है प्रचंड" जैसे गीत जहाँ राजनीतिक विद्रोह और जनआंदोलन की मानसिकता को स्वर देते हैं, वहीं "इक बगल में चाँद होगा" जैसे गीत आम मनुष्य के सपनों, अभावों और विडंबनाओं को सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत शोध निबंध का उद्देश्य पीयूष मिश्रा के चयनित फ़िल्मी गीतों के माध्यम से यह विश्लेषण करना है कि किस प्रकार उनके रचनात्मक कर्म में सामाजिक यथार्थ, प्रतिरोध की भावना और मानवीय संवेदनाएँ एक-दूसरे से अंतर्संबद्ध हैं। यह अध्ययन न केवल पीयूष मिश्रा के गीतों की वैचारिक गहराई को रेखांकित करता है, बल्कि साहित्य, सिनेमा और समाज के पारस्परिक संबंधों को समझने की दिशा में भी एक सार्थक प्रयास है।

शोध आलेख का विश्लेषण:

पीयूष मिश्रा के गीतों की सबसे प्रमुख विशेषता उनका सामाजिक यथार्थ से गहरा जुड़ाव है। फ़िल्म गुलाल (2009) का गीत "आरंभ है प्रचंड" समकालीन हिंदी फिल्मी गीतों में वीर-रस, संघर्ष-चेतना और राजनीतिक प्रतिरोध का सशक्त काव्यात्मक दस्तावेज़ है। पीयूष मिश्रा ने इस गीत के माध्यम से महाभारतीय युद्ध-दर्शन को आधुनिक सामाजिक तथा राजनीतिक यथार्थ से

जोड़ते हुए कर्तव्य, बलिदान और नैतिक संघर्ष की पुनर्व्याख्या की है। फ़िल्म गैंग्स ऑफ़ वासेपुर (2012) "इक बगल में चाँद होगा" का गीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विमर्श का माध्यम बन जाता है। यह गीत पीयूष मिश्रा की रचनात्मक दृष्टि का सशक्त उदाहरण है, जिसमें सामान्य जनजीवन की अभावग्रस्त वास्तविकता और मानवीय कल्पना की उड़ान एक साथ उपस्थित हैं। शोध की दृष्टि से यह रचना समकालीन हिंदी फ़िल्म संगीत में हाशिये के समाज, वर्गीय संघर्ष और मानवीय संवेदना की सशक्त काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है, जो पीयूष मिश्रा को एक प्रतिबद्ध और वैचारिक गीतकार के रूप में स्थापित करती है।

सामाजिक यथार्थ और जनजीवन की अभिव्यक्ति:

पीयूष मिश्रा के गीतों में समकालीन सामाजिक यथार्थ और आम जनजीवन की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। उनके गीत सत्ता, अन्याय, हिंसा, बेरोज़गारी और हाशिये पर खड़े वर्गों की पीड़ा को सीधे स्वर देते हैं। वे आम आदमी के संघर्ष, असंतोष और प्रतिरोध को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। गीत "आरंभ है प्रचंड" समकालीन समाज में व्याप्त संघर्ष, असंतोष और प्रतिरोध की जनचेतना को अभिव्यक्त करता है। "मस्तकों के झुंड" के माध्यम से कवि आम जनता के सामूहिक आक्रोश और जागरूकता को स्वर देता है, जो सामाजिक अन्याय और दमन के विरुद्ध खड़ी है। यहाँ 'जंग' आम जनजीवन की उस वास्तविक स्थिति का प्रतीक है, जहाँ व्यक्ति को आत्मसम्मान, अस्तित्व और अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। "आन-बाण-शान या कि जान का हो दान" जैसी पंक्तियाँ जनजीवन की उस विडंबना को उजागर करती हैं, जिसमें सामान्य नागरिक को अपने मूल्यों और जीवन के बीच चयन करना पड़ता है। महाभारत के कौरव-पांडव संदर्भ सामाजिक यथार्थ को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य देते हुए बताते हैं कि सत्ता और नैतिकता का संघर्ष आज भी जनजीवन का मूल प्रश्न बना हुआ है। इस प्रकार, यह गीत समाज की यथार्थ परिस्थितियों और जनता की संघर्षशील मानसिकता का सशक्त काव्यात्मक दस्तावेज़ है।

"इक बगल में चाँद होगा" गीत में पीयूष मिश्रा ने आम जनजीवन के संघर्षपूर्ण यथार्थ को अत्यंत कोमल और प्रतीकात्मक भाषा में प्रस्तुत किया है। गीत का मूल भाव अभाव और आकांक्षा के द्वंद्व पर आधारित है। "इक बगल में चाँद होगा, इक बगल में रोटियाँ" यह पंक्ति सीधे-सीधे समाज के उस वर्ग की स्थिति को दर्शाती है, जहाँ सपने और सौंदर्य की कल्पनाएँ (चाँद, लोरियाँ) जीवन की बुनियादी ज़रूरतों (रोटी, नींद) के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती हैं। यहाँ रोटी, गरीबी, भुखमरी और श्रमिक वर्ग के संघर्ष का प्रतीक है, जबकि चाँद आशा और बेहतर जीवन की चाह को रूपायित करता है। "रोटी की चादर डाल कर सो जाना" जनसाधारण की विवशता और अनिश्चित जीवन-स्थितियों को उजागर करता है, जहाँ सुरक्षा और सुख के साधन सीमित हैं। सिसकियाँ सामाजिक पीड़ा, भय और असुरक्षा का संकेत हैं, जिन्हें "गुदगुदी कर बहलाने" की बात आम आदमी की संघर्षों से जूझते हुए भी जीवन को संभालने की क्षमता को दर्शाती है। गीत के अंतिम हिस्से में मौत, होनी-अनहोनी जैसे बिंब आम जन के जीवन में व्याप्त निरंतर अस्थिरता और जोखिम को प्रकट करते हैं। फिर भी "होनी को ठेंगा दिखाना" भाग्य और व्यवस्था के विरुद्ध मौन प्रतिरोध का स्वर बन जाता है। इस प्रकार यह गीत सामाजिक यथार्थ को करुणा, कल्पना और विद्रोह के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

राजनीतिक चेतना और प्रतिरोध की संस्कृति:

पीयूष मिश्रा के गीतों में राजनीतिक चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। "आरंभ है प्रचंड" गीत सत्ता, दमन और अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध का उद्घोष करता है। यह गीत युवाओं में वैचारिक जागरूकता और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को स्वर देता है। उनकी रचनाओं में प्रतिरोध केवल आक्रोश नहीं, बल्कि वैचारिक प्रतिबद्धता के रूप में उपस्थित होता है, जो लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक न्याय की आवश्यकता को रेखांकित करता है। गीत "आरंभ है प्रचंड" राजनीतिक चेतना को जनसमूह की सामूहिक आवाज़ के रूप में प्रस्तुत करता है। "मस्तकों के झुंड" सत्ता के विरुद्ध खड़े जनसमूह का प्रतीक है, जो शासक वर्ग की चुप्पी और दमन के सामने संगठित प्रतिरोध का संकेत देता है। यहाँ 'जंग' सत्ता और जनता के बीच चल रहे वैचारिक संघर्ष का रूपक है। "आन-बाण-शान या कि जान का हो दान" जैसी पंक्तियाँ बताती हैं कि राजनीतिक संघर्ष में नागरिक को आत्मसम्मान और अस्तित्व के लिए निर्णायक विकल्प चुनना पड़ता है। यह लोकतांत्रिक समाज में सक्रिय नागरिकता की चेतना को उजागर करता है। गीत में महाभारत के कौरव-पांडव संदर्भ सत्ता और नैतिकता के द्वंद्व को आधुनिक राजनीतिक संदर्भ में रूपांतरित करते हैं, जहाँ अल्पसंख्यक सत्य बहुसंख्यक शक्ति से टकराता है। "जीत की हवस नहीं" पंक्ति राजनीतिक संघर्ष को सत्ता-प्राप्ति से अलग, नैतिक प्रतिरोध के रूप में स्थापित करती है। यह गीत प्रतिरोध की संस्कृति को भय-मुक्त साहस, वैचारिक स्पष्टता और जनपक्षधरता से जोड़ते हुए राजनीतिक चेतना का प्रभावी काव्यात्मक दस्तावेज़ बन जाता है।

"इक बगल में चाँद होगा" गीत प्रत्यक्ष राजनीतिक नारेबाज़ी नहीं करता, बल्कि सूक्ष्म और सांकेतिक ढंग से राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्त करता है। गीत में रोटी, नींद, सिसकियाँ और मौत जैसे बिंब उस व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं जहाँ आम आदमी का जीवन अभाव, असुरक्षा और भय से घिरा है। यह स्थिति अपने आप में एक राजनीतिक यथार्थ है, जो सत्ता-संरचनाओं और सामाजिक असमानताओं की आलोचना करता है। "रोटी की चादर डाल कर सो जाना" राज्य और व्यवस्था द्वारा नागरिक को दी जाने वाली न्यूनतम सुविधाओं की विफलता को उजागर करता है। यहाँ रोटी जीवन का संघर्ष है, जो राजनीतिक उपेक्षा और वर्गीय शोषण की ओर संकेत करती है। गीत में प्रतिरोध का स्वर हिंसा या विद्रोह के रूप में नहीं, बल्कि मानसिक और वैचारिक प्रतिरोध के रूप में उभरता है। "होनी को ठेंगा दिखाना" नियति, सत्ता और पूर्वनिर्धारित सामाजिक ढाँचों को चुनौती देने का प्रतीक है। यह पंक्ति बताती है कि आम आदमी अपने हालात को अंतिम सत्य मानने से इनकार करता है। मौत को सपना बता कर उठ खड़े होना भय की राजनीति के विरुद्ध प्रतिरोध का संकेत है, जहाँ सत्ता डर के माध्यम से नियंत्रण बनाए रखती है। गीत का पात्र डर को नकारकर जीवन और हँसी को चुनता है, जो प्रतिरोध की सांस्कृतिक रणनीति है। इस प्रकार यह गीत राजनीतिक चेतना को मानवीय अनुभवों के माध्यम से सामने लाता है और यह प्रतिपादित करता है कि सपनों को बचाए रखना, भय से इनकार करना और जीवन के पक्ष में खड़े रहना भी एक सशक्त राजनीतिक प्रतिरोध है।

वर्ग संघर्ष और हाशिये के स्वर:

पीयूष मिश्रा के गीत समाज के हाशिये पर खड़े वर्गों की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। उनके गीतों में श्रमिक वर्ग, बेरोज़गार युवा और सामाजिक रूप से वंचित समुदायों की पीड़ा झलकती है। यह वर्ग संघर्ष केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और वैचारिक स्तर पर भी दिखाई देता है, जो उनके गीतों को सामाजिक विमर्श का महत्वपूर्ण माध्यम बनाता है। गीत "आरंभ है प्रचंड" में वर्ग संघर्ष और हाशिये के स्वर सामूहिक प्रतिरोध के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। "मस्तकों के झुंड" शोषित, वंचित और उपेक्षित वर्गों का प्रतीक है, जो सत्ता और प्रभुत्वशाली वर्ग के विरुद्ध संगठित होकर खड़े होते हैं। "आन-बाण-शान या कि जान का हो दान" जैसी पंक्तियाँ बताती हैं कि हाशिये पर खड़ा वर्ग अपने अस्तित्व, सम्मान और अधिकारों के लिए संघर्ष को विवश है। गीत में 'जंग' आर्थिक-सामाजिक असमानताओं के विरुद्ध चल रहे संघर्ष का रूपक बन जाती है। इस प्रकार यह गीत वर्गीय विषमता, सत्ता-विरोध और हाशिये के लोगों की संघर्षशील चेतना को सशक्त काव्यात्मक अभिव्यक्ति देता है।

"इक बगल में चाँद होगा" गीत में वर्ग संघर्ष प्रत्यक्ष टकराव के रूप में नहीं, बल्कि जीवन की परिस्थितियों और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। रोटी, नींद और सिसकियाँ जैसे शब्द उस वर्ग की पहचान कराते हैं; जो आर्थिक अभाव, असुरक्षा और अनिश्चित भविष्य में जी रहा है। यह वर्ग समाज के हाशिये पर स्थित श्रमिक, गरीब और वंचित जनसमूह का प्रतिनिधित्व करता है। "इक बगल में चाँद... इक बगल में रोटियाँ" पंक्ति सामाजिक असमानता के द्वंद्व को उजागर करती है। एक ओर सपने, सौंदर्य और आकांक्षाएँ हैं, दूसरी ओर जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष। यह द्वंद्व बताता है कि हाशिये पर खड़ा व्यक्ति भी सपने देखता है, किंतु उसकी प्राथमिकताएँ जीविका से बँधी होती हैं। "रोटी की चादर डाल कर सो जाना" वर्गीय विवशता का सशक्त बिंब है, जहाँ सुरक्षा और सुविधा के स्थान पर न्यूनतम संसाधनों से जीवन ढँकना पड़ता है। सिसकियाँ दबे हुए दुःख, शोषण और चुप्पी में झेली गई पीड़ा को संकेतित करती हैं, जो अक्सर प्रभुत्वशाली वर्ग की नज़र से ओझल रहती है। गीत में "होनी को ठेंगा दिखाना" हाशिये के वर्ग की आंतरिक जिजीविषा और प्रतिरोध का प्रतीक है। यह पंक्ति दर्शाती है कि वर्गीय शोषण और नियति-थोपे गए हालात के बावजूद, वंचित वर्ग आत्मसम्मान और आशा को छोड़ने से इनकार करता है। इस प्रकार यह गीत वर्ग संघर्ष को मानवीय अनुभवों, अभाव और स्वप्नों के द्वंद्व के माध्यम से प्रस्तुत करता है और समाज के हाशिये पर खड़े लोगों की मौन लेकिन सशक्त आवाज़ बनकर उभरता है।

मानवीय संवेदनाएँ और अस्तित्वगत प्रश्न:

पीयूष मिश्रा के गीतों में मानवीय संवेदनाओं की गहन अभिव्यक्ति मिलती है। प्रेम, अकेलापन, भय, आशा और असफलता जैसे भाव उनके गीतों में यथार्थवादी रूप में उभरते हैं। यह संवेदनात्मक गहराई उनके गीतों को साहित्यिक ऊँचाई प्रदान करती है और उन्हें सामान्य फ़िल्मी गीतों से अलग करती है। गीत "आरंभ है प्रचंड" में मानवीय संवेदनाएँ और अस्तित्वगत प्रश्न संघर्ष की पृष्ठभूमि में उभरते हैं। "आन-बाण-शान या कि जान का हो दान" और "मौत अंत है नहीं" जैसी पंक्तियाँ जीवन-मृत्यु, भय, साहस और आत्मसम्मान से जुड़े मूल प्रश्नों को सामने लाती हैं। गीत व्यक्ति को यह सोचने के लिए विवश करता है कि संकट की स्थिति में जीवन का अर्थ क्या है-सिर्फ़ जीवित रहना या मूल्यों के लिए संघर्ष करना। इस प्रकार यह गीत मानवीय भावनाओं, नैतिक द्वंद्व और अस्तित्व की चिंता को सशक्त काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

"इक बगल में चाँद होगा" गीत में पीयूष मिश्रा ने मानवीय संवेदनाओं की गहनता और अस्तित्वगत प्रश्नों को अत्यंत सहज, काव्यात्मक भाषा में अभिव्यक्त किया है। गीत का भावनात्मक केंद्र भूख, नींद, भय, आशा और मृत्यु जैसे सार्वभौमिक अनुभवों पर टिका है, जो हर मनुष्य के अस्तित्व से जुड़े मूल प्रश्नों को सामने लाते हैं।

"सिसकियों को गुदगुदी कर बहलाना" मानवीय करुणा और सहानुभूति की अभिव्यक्ति है - यह दिखाता है कि कठिन परिस्थितियों में भी मनुष्य संवेदना, प्रेम और हास्य के सहारे स्वयं को और दूसरों को संभालता है। गीत के अंतिम हिस्से में मौत, होनी और अनहोनी के संदर्भ सीधे अस्तित्वगत अनिश्चितता को उजागर करते हैं। "मौत को सपना बता कर उठ खड़े होना" जीवन के प्रति आग्रह और मृत्यु-भय पर विजय की भावना को प्रकट करता है। यह मनुष्य की उस चेतना को दर्शाता है जो नियति और नश्वरता के सामने भी अर्थ और आशा खोजती है। इस प्रकार यह गीत मानवीय संवेदनाओं को केंद्र में रखकर यह प्रश्न उठाता है कि अभाव, भय और मृत्यु की छाया में भी जीवन को कैसे अर्थपूर्ण बनाया जाए और यही इसे एक गहन अस्तित्ववादी काव्य-रचना के रूप में स्थापित करता है।

निष्कर्ष:

प्रस्तुत शोध निबंध के निष्कर्ष से यह स्पष्ट होता है कि पीयूष मिश्रा के चयनित फ़िल्मी गीत - "आरंभ है प्रचंड" और "इक बगल में चाँद होगा" समकालीन हिंदी सिनेमा में केवल मनोरंजन तक सीमित न रहकर सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक चेतना और जनसंघर्षों की सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं। इन गीतों के विश्लेषण से यह प्रतिपादित होता है कि पीयूष मिश्रा अपने रचनात्मक कर्म के माध्यम से सत्ता, व्यवस्था और वर्गीय असमानताओं पर सूक्ष्म किंतु प्रभावी प्रश्न खड़े करते हैं तथा आम जन की पीड़ा, आशा और जिजीविषा को वैचारिक गहराई प्रदान करते हैं। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि उनके गीतों में प्रतिरोध उग्र या प्रत्यक्ष विद्रोह के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना, सांस्कृतिक चेतना और नैतिक साहस के रूप में उभरता है। प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से वर्ग संघर्ष, हाशिये के स्वर और अस्तित्वगत प्रश्न प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त होते हैं, जो वंचित वर्ग की मौन लेकिन दृढ़ आवाज़ को सामने लाते हैं। अतः भविष्य के शोध में उनके संपूर्ण रचनात्मक अवदान को व्यापक साहित्यिक और सांस्कृतिक संदर्भों में रखकर अध्ययन किए जाने की संभावना बनी रहती है। यह शोध यह स्थापित करता है कि चयनित गीतों के माध्यम से पीयूष मिश्रा ने हिंदी फ़िल्म संगीत को वैचारिक समृद्धि प्रदान की है तथा साहित्य, सिनेमा और समाज के अंतर्संबंधों को समझने के लिए एक सार्थक वैचारिक आधार प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1) मिश्रा, पीयूष. (2009). आरंभ है प्रचंड (गीत). फ़िल्म *गुलाल*. मुंबई: Eros International.
2) मिश्रा, पीयूष. (2012). इक बगल में चाँद होगा (गीत). फ़िल्म *गैंग्स ऑफ़ वासेपुर*. मुंबई: Viacom 18 Motion Pictures.
3) कश्यप, अनुराग (निर्देशक). (2009). *गुलाल* [चलचित्र]. भारत: Eros International.
4) कश्यप, अनुराग (निर्देशक). (2012). *गैंग्स ऑफ़ वासेपुर* [चलचित्र]. भारत: Viacom 18 Motion Pictures.
5) दवे, नरेश. (2015). हिंदी फ़िल्म गीत और सामाजिक यथार्थ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
6) सिंह, रामबचन. (2018). समकालीन हिंदी सिनेमा: वैचारिक विमर्श. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
7) त्रिपाठी, नामवर. (2004). साहित्य और समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
8) मिश्र, शिवकुमार. (2016). समकालीन हिंदी कविता और प्रतिरोध. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

*****

हिन्दी ग़ज़ल साहित्य में चेतना के विभिन्न स्वर

डॉ. विट्ठल शंकर नाईक
अध्यक्ष,हिंदी विभाग
श्रीमती आक्काताई रामगोंडा पाटिल,
कन्या महाविद्यालय,इचलकरंजी
जिला-कोल्हापुर

सारांश :-

हिन्दी गजल किसी परिचय की मोहताज नहीं है, यह युगीन चेतना को प्रकट करने में सर्वाधिक सफल साहित्यिक विधा है। यह युगीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हुई मानव जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को ईमानदारी से व्यक्त करती है। किसी भी साहित्य में अपने युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जड़े देखी जा सकती है। 'समसामयिक शब्द हिन्दी भाषा में 'समकालीन शब्द का विशेषण है, जिसका अर्थ है - वर्तमानकालीक या आज के युग की समझ रखना। समकालीन साहित्य चेतना या जागृति का सशक्त माध्यम है। समाज में नये विचार एवं नयी सोच के प्रस्फुटन से ही नयी चेतना का विकास होता है. इसी कारण साहित्य में चेतना का विशेष महत्व है। चेतना के अनेक विषय और क्षेत्र होते हैं, जिनमें प्रमुख क्षेत्र हैं- सामाजिक चेतना, व्यक्तिवादी चेतना, धार्मिक चेतना, नारी चेतना, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक चेतना, राजनीतिक चेतना, आर्थिक चेतना, मानवीय चेतना। हिन्दी गजल समृद्ध एवं स्वस्थ समाज के निर्माण की संकल्पना के साथ ही समाज में मानवीय मूल्यों की पुनस्थापना का सशक्त एवं सार्थक प्रयास कर रही है। आधुनिक भाय बोध एवं समसामयिक संघर्ष चेतना से अभिप्रेत इन गजलों में वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ लड़ने एवं संघर्ष करने की प्रेरणा भी अभिव्यक्त है। ये गजलें आज के संघर्षरत मानय में आशावादी चेतना का प्रसार करती है।

बीजशब्द :-

संघर्ष, शोषण, पीड़ा, भेदभाव, अत्याचार, दमन, मारपीट, ऊँच-नीच की भावना, छुआछूत, भेदभाव, दलबदल, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, आपसी सौहार्द, प्रेम, अहिंसा, भाईचारा, सत्य, न्याय, सदाचार, नीति, पवित्रता, परोपकार, आस्था, विश्वास, दया, सहयोग, भाईचारा, विश्वास, समर्पण, वसुधैव कुटुम्बकम ।

प्रस्तावना :-

साहित्य में समसामयिक विषयों के लेखन के लिए व्यक्ति, समाज, परिवार, परिवेश, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विषयों की जानकारी होना आवश्यक है। इन्हीं समसामयिक विषयों पर लिखी जा रही हिन्दी ग़ज़ल हमारे शोध का मुख्य विषय है। चेतना शब्द की उत्पत्ति चित् धातु में 'ल्यूट' के आगम तथा 'ई' के गुण होने पर स्त्री लिंगार्थक 'आ' लगाने से मानी जाती है। चित् चित् धातु का अर्थ है- प्रत्यक्ष ज्ञान। यह ज्ञानमूलक मनोवृत्ति होती है। चेतना भाव, विचारों, अनुभूतियों और संकल्पों की आनुषंगिक दशा या क्षमता है। यह आत्मकेन्द्रित होती है, जिसके मूल में जागृति एवं स्मृति छिपी होती है। विकिपीडिया के अनुसार, "चेतना कुछ जीवधारियों में स्वयं के और अपने आस-पास के वातावरण के तत्त्वों का बोध होने, उन्हे समझने तथा उनकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुँचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। इन आवेगों का अर्थ तुरन्त या बाद में लगाया जा सकता है।"1 चेतना का मूल धर्म जागृति या जागरण है। नयी अनुभूतियों के साथ-साथ यह विकसित होती रहती है। व्यक्ति, परिवार, समाज का मार्गदर्शन करते हुए यह चेतना व्यक्तिगत न होकर समष्टिगत बन जाती है। यह भाव, विचारों, सम्बंधों, अनुभवों का समूह होता है, जिससे वर्ग, समूह या समाज नवीन विचारधारा को ग्रहण करते हुए विकास पथ पर अनवरत आगे बढ़ता रहता है। इसके अन्तर्गत वस्तुओं, विषयों तथा व्यवहारों का प्रत्यक्ष ज्ञान ग्रहण किया जाता है। चेतना के विभिन्न क्षेत्र हैI

सामाजिक चेतना :-

अन्याय, अनीति, अत्याचार, शोषण, दमन के विरोध स्वरूप सभ्य समाज की स्थापना के उद्देश्य को लेकर जागृत रहती है। इस चेतना के केन्द्र में समाज होता है। समाज का सर्वांगीण विकास ही इसका मुख्य उद्देश्य होता है। समाज से हर विषय जुड़ा होता है, इसीलिए अधिकतर विषय इसी श्रेणी में आते हैं। सामाजिक चेतना एक साथ चलने एवं चिंतन करने में अभिव्यक्त होती है। जनसमूह या आमजन की ज्ञानमूलक मनोवृत्ति ही सामाजिक चेतना कहलाती है। यह चेतना हमें केवल ज्ञान एवं समझ ही नहीं देती अपितु वह हमें सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए जीवन क्षेत्र में अनवरत आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है। समाज में तीन

वर्ग होते हैं-उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। इन वर्ग के आपसी सम्बंध, स्थिति का ज्ञान हमें सामाजिक चेतना के अन्तर्गत देखने को मिलता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है क्योंकि साहित्य समाज के बीच रहकर सामाजिक स्थितियों, घटनाओं को अपने स अनुभवों के आधार पर साहित्य व्यक्त करता है। मानव समाज से अलग नहीं रह सकता एवं हम मानव रहित समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीलिए समाज में रहने वाले व्यक्तियों के समाज से सम्बंधित विषयों के अनुन का जीवनपयोगी दृष्टिकोण ही सामाजिक चेतना है। इसमें व्यक्ति एवं समाज का अध्ययन होता है। सभ्य समाज की स्थापना ही इसका लक्ष्य होता है। सामाजिक चेतना की उत्पत्ति का मूल कारण सामाजिक विषमतायें, उन-नीच की भावना, छुआछुत, भेदभाव, शोषण, अत्याचार, वैवाहिक समस्याएँ आदि है। समाज में संघर्ष, शोषण, पीडा, पक्षधरता व वर्ग संघर्ष से अव्यवस्था एवं अराजकता फैलती है। सामाजिक चेतना को जागृत करके समाज को इन दोषों से दूर किया जा सकता है। समाज में आडम्बरों, दिखावों, रीति-रिवाजों, प्रथाओं, रुढ़ियों, परम्पराओं, अन्धविश्वासों का बोलबाला होने के साथ-साथ नारी एवं दलित वर्ग की स्थिति सही नहीं होने के कारण वर्ग संघर्ष होता है। सामाजिक चेतना के माध्यम से इस संघर्ष को कम किया जा सकता है। इसके समष्टिवादी होने के कारण यह व्यक्ति के बजाय सम्पूर्ण समाज को एक ईकाई के रूप में देखती है। सामाजिक चेतना सम्पूर्ण समाज को एक सूत्र में पिरोने के साथ-साथ वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना साथ लेकर चलती है। इसके अन्तर्गत समाज में भेदभाव, शोषण, अत्याचार दमन, मारपीट, झगड़े के स्थान पर आपसी सौहार्द, भाईचारा, प्रेम की स्थापना होनी चाहिए। डॉ. कुंअर वैचेन प्रेम व प्यार से अच्छा कोई सांचा नहीं मानते-

"प्यार के सांचे से अच्छा नही सांचा कोई
मोम बनकर इसी सांचे में पिघलते रहिए।"2

व्यक्तिवादी चेतना :-

व्यक्ति समाज का प्रमुख अग होता है एवं समाज के निर्माण में उसका अहम योगदान होता है। यह व्यक्तिवादी चेतना व्यक्ति के भावों एवं विचारों का परिष्कार करते हुए परिवार एवं समाज को समर्पित होती है। इस व्यक्तिवादी चेतना में मनुष्य के हित की कामना की गई है। मनुष्य अपने अस्तित्व, मान-सम्मान, पद, प्रतिष्ठा के लिए जो लडाई लड़ता है वह इसी व्यक्तिवादी चेतना के अन्तर्गत आती है। नारी चेतना, दलित चेतना इसी के प्रकार है। आज व्यक्ति संकीर्ण, स्वार्थी, मतलबी, मौका परस्त होता जा रहा है। ऐसे व्यक्ति को इनसे ऊपर उठकर परोपकार, दया, अहिंसा की भावना जगाने और उसके हृदय में जीवन के आदर्शों को अपनाने की चेतना ही व्यक्तिवादी चेतना है। व्यक्ति को व्यक्ति से रूबरू करना ही इस व्यक्तिवादी चेतना का लक्ष्य है। व्यक्ति स्वयं में ही कहीं खो गया है, लेकिन व्यक्तिवादी चेतना उसे परिवार, समाज, राष्ट्र के प्रति जागरूक करती है। गजलकार राजेश रेड्डी की गजल (आत्मकथ्य) द्रष्टव्य है-

"खुद को बिखरी हुई चीजों में बूँदा, तो मिला
आइने के सारे टूकड़ों को समेटा, तो मिला
ढूँढता फिरता था दुनिया भर में अपने आपको
अपने ही अंदर जरा गहरे में उतरा, तो मिला I"3

नारी चेतना :-

नारी के आत्मसम्मान, स्वाभिमान एवं उत्थान से जुड़े हुए हर पहलू नारी चेतना को व्यक्त करते हैं। पुरातन मान्यताओं एंव सड़ी-गली परम्पराओं के बंधन में जकड़ी हुई नारी को अपने अस्तित्व की पहचान के लिए जो लड़ाई लड़नी पड़ती है, उसके पीछे उसका उत्साह एवं चेतना ही है। नारी की सचेतन स्थिति ही नारी चेतना है। पुत्र-मोह में लोग कन्या को पेट में मार डालते हैं, अर्थात नारी पर जन्म लेने से पहले से ही अत्याचार, दमन्, शोषण शुरु हो जाता है। नारी को समाज में सम्मान से जीने और उसके नैतिक विकास व जीवन स्तर ऊपर उठाने के लिए गजलकार आम जनता में गजल के माध्यम से चेतना जाग्रत कर रहे हैं। गजलकार बल्ली सिंह चीमा ने पद दलित, कमजोर पीड़ित नारी को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का आहवान किया है। इन्होंने अपनी गजलों में मनुष्य का रूप धारण किये भेड़ियों का उल्लेख किया है, जिनसे हर स्त्री को सावधान रहने की जरूरत है:-

"भूखी नजरों से घूरने वालो
मैं भी दिल, आंख कान रखती हूँ।
हर तरफ भेड़ियों की आवाजें
खुद को सावधान रखती हूँ

माँ, बहन, बेटी और बहू बनकर
कैसे जीना है ध्यान रखती हूँ।"4

धार्मिक चेतना :-

धर्म के आधार पर भेदभाव,झगड़े, अत्याचार, अनाचार, हत्या आदि के विरूद्ध विश्व को एकसूत्र में पिरोने के लिए 'सर्वधर्म समभाव' की जागृति का संदेश देने वाली चेतना धार्मिक चेतना' होती है। मानव की चितवृत्तियों के परिष्कार, सुगम व आसान जीवन के लिए ऋषियों एवं महापुरुषों ने अपने-अपने विचारों एवं सिद्धान्तों के माध्यम से धर्म की स्थापना की। धर्म शब्द का अर्थ है- धारण करने योग्य। ऐसी सभी बातें, जिन्हें हमें अपने जीवन में धारण एवं ग्रहण की जानी चाहिए, जिनको हमें अपने चरित्र में उतारना चाहिये, धर्म के अन्तर्गत आती है। सत्य, न्याय, सदाचार, नीति, सदाचरण, पवित्रता, प्रेम, अहिंसा, परोपकार, आस्था, विश्वास इसके प्रमुख अंग है। हिन्दु धर्म, जैन धर्म, इस्लाम धर्म, बौद्ध धर्म, पारसी धर्म, सिक्ख धर्म आदि प्रमुख धर्म है। इन्ही धर्मो में मानवीय मूल्यों के प्रति चेतना प्रकट की गयी है। इन गज़लकारों ने धर्म में इंसान और इंसानीयत को अधिक महत्व दिया है-

"अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।
जिसकी खुश्बू से महक जाए पड़ोसी का भी घर
फूल इस किस्म का हर सिम्त खिलाया जाए।"5

सांस्कृतिक चेतना :-

व्यक्ति एवं समाज की प्रगति में संस्कृति का अहम योगदान होता है। हर प्रान्त एवं राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति होती है। यह किसी संघ, समुदाय, समूह, जाति, धर्म, परिषद की सम्पत्ति नहीं है। हमारे जातीय संस्कार ही हमारी संस्कृति है। हमारी संस्कृति हमारे अतीत का गौरवगान करती है। इस अतीत एवं संस्कृति से जीवित रखने का कार्य हमारा साहित्य करता है। इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण करके आने वाली पीढ़ी में अपनी संस्कृति के प्रति सजगता बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य सांस्कृतिक चेतना करती है। मैथिलीशरण गुप्त जी ने भारत वर्ष की सांस्कृतिक विपन्नता पर गहरी चिन्ता प्रकट करते हुए परमात्मा से सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की स्थापना की कामना की है-

"गोपाल अब यह चैन की बंशी वजेगी कब यहाँ
आलस्य से अविभूत हमको कर्मयोग सिखाइये
वह पूर्व की सम्पन्नता यह वर्तमान विपन्नता
अब तो प्रसन्न भविष्य की आशा यहाँ उपजाइये
यह आर्यभूमि सचेत हो फिर कार्यभूमि बने अहा
वह प्रीति-नीति बढ़े पररपर नीति भाव भगाइये।"6

राष्ट्रीय चेतना :-

राष्ट्र का जिम्मेदार नागरिक होने के नाते देश के व्यक्ति का जीवन एवं विचार राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत होना चाहिये। व्यक्ति को देश के प्रति सम्मान, संस्कृति का अनुसरण और राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना से युक्त होना चाहिये। देश के नागरिक का प्रथम कर्तव्य जाति, धर्म, सम्प्रदाय, संघ आदि को त्यागकर राष्ट्रीयता से युक्त राष्ट्र के कल्याण की भावना को अपनाना है। देश में अनेकों जाति, धर्म, पंथ, संगठन के लोग राष्ट्र के नाम पर एक सूत्र में बंध जाते हैं। मैथिली शरण गुप्त ने गांधीजी को आदर्श मानकर राष्ट्रीय चेतना की भावना से ओत-प्रोत काव्य लिखा जिसके कारण वे राष्ट्रीय कवि कहलाये। राष्ट्र विकास के लिए राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ भौतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का होना भी जरूरी है। एक राष्ट्र में चेतना भरने के लिए व्यक्ति को निजी स्वार्थ का बलिदान करना होता है। उसे निजी हित के बजाय राष्ट्रहित की भावना को ग्रहण करना होता है। इसीलिए दूसरों के हितों को ध्यान में रखकर ही राष्ट्र का हित कर सकते हैं। राष्ट्रीय भावना अपने देश के अगाध प्रेम में, अपनी सभ्यता, संस्कृति, धर्म के प्रति गौरव में, अपने देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक दशाओं के सुधार के प्रयत्न में परिलक्षित होती है। राष्ट्र के प्रति सच्चे एवं ईमानदारी से किया गया समर्पण ही व्यक्ति की राष्ट्रीय चेतना है। गजलकार दुष्यन्त कुमार की गजलें राष्ट्र का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करती हैं-

"कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,

मैनें पुछा नाम तो बोला हिंदुस्तान है।
मुझमें रहते हैं करोड़ो लोग चुप कैसे रहूँ
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।"7

आर्थिक चेतना :-

अर्थ मानव जीवन की धूरी माना जाता है,क्योंकि इसके अभाव में उसका जीवन अधूरा है। 'अर्थ' सब कुछ नहीं है, लेकिन बहुत कुछ है। इसी कारण व्यक्ति की आर्थिक सफलता को लोग व्यक्तिगत सफलता मान लेते हैं एवं ऐसे व्यक्ति का स्तर बहुत ऊँचा माना जाता है। भारत में आर्थिक असमानता है, क्योंकि देश के कुछ लोगों की सम्पत्ति शेष लोगों की सम्पत्ति के बराबर है। इस आर्थिक असमानता की खाई को पाटने का कार्य साहित्य कर रहा है। अनेक व्यक्तियों ने अर्थ को ठुकरा कर भी अपना नाम कमाया है। इसी आर्थिक असमानता की गहरी खाई को समाप्त करके मनुष्यों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण स्थापित करना ही आर्थिक चेतना है। आर्थिक चेतना का प्रबलतम स्वर मार्क्सवादी है क्योंकि इन्होनें ही सर्वप्रथम आर्थिक चेतना सम्बंधी सामाजिक समानता की मांग की। अर्थ के अभाव में आम आदमी का जीना दुश्वार हो गया है, क्योंकि महंगाई बहुत बढ़ गई है। इसी कारण समाज में आर्थिक समानता का होना अति आवश्यक है। इस आर्थिक युग में आम आदमी की स्थिति कुछ इस तरह है-

'हम नहीं खाते हमें बाजार खाता है
आजकल अपना यही चीजों से नाता है।
पेट काटा हो गई खासी बचत में
है कहां चेहरा मुखौटा मुस्कराता है।"8

राजनीतिक चेतना :-

किसी राज्य के नीति-नियम, विधियों तथा जन कल्याणकारी राजनैतिक कार्य का ज्ञान कराने वाली चेतना राजनीतिक चेतना कहलाती है। किसी राष्ट्र की प्रगति उसके राजनैतिक प्रगति से जुडी होती है। वर्तमान में नेता राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थ सिद्धि में लगे हुए हैं या स्वार्थ की राजनीति कर रहे हैं। अपने बोट बैंक के लिए ये नेतागण जनता को जाति, धर्म, पंथ या समुदाय के नाम पर लड़वा रहे हैं। राजनीति का प्रमुख कार्य आमजन के हित में राजकीय सत्ता का निर्माण करना है। व्यक्ति के उत्थान एवं समाज के निर्माण के लिए राजनीति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। वर्तमान में राजनीति एवं नेताओं पर व्यंग्य करती हुई काफी गजले लिखी जा रही है। राजनीति के फेर में पड़कर आपसी सम्बंध खराब करने वाली जनता को प्रेम एवं भाईचारा का संदेश देने वाली चेतना राजनीतिक चेतना ही है। डॉ. अदम गोंडवी ने दलबदल, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि के खिलाफ आम जनता में गज़ल के माध्यम से चेतना प्रकट करते हैं-

"पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें
संसद बदल गई है यहाँ की नखाश में।
जनता के पास एक ही चारा है बगावत
यह बात कह रहा हूँ मैं होशाहवास में।"9

मानवीय चेतना :-

मानवीय चेतना मनुष्य को मानवता, इंसानीयत, ईमान और आदर्श से रूबरू करवाती है। मानवीय चेतना स्वार्थ में डुबे हुए व्यक्ति को प्रेम, परोपकार, दया, सहयोग, भाईचारा, विश्वास, समर्पण, अहिंसा आदि जीवन मूल्यों को अपने जीवन में ग्रहण करने की प्रेरणा देती है। आज का व्यक्ति मानवीय चेतना के अभाव में जातिय, धार्मिक साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार हो रहा है। वर्तमान युग में मनुष्य को गरीबी, बेकारी, भुखमरी, महंगाई, भ्रष्टाचार, शोषण, अहंकार, स्वार्थपन, विलासिता आदि ने संवेदना शून्य बना दिया है। व्यक्ति स्वयं के जीवन को दूसरों के जीवन से जोड़कर देखता है तभी यह सच्चे अर्थों में मानव कहलाने योग्य है। एक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के प्रति मानवता एवं मानवीय जीवन-मूल्यों, आदर्शों की शिक्षा प्रदान करने वाली चेतना "मानवीय चेतना होती है। पूंजीवादी युग में मनुष्य अर्थ के पीछे सब कुछ खोता जा रहा है। आस्था, प्रेम, परोपकार, स्नेह भाव आदि मानवीय मूल्य मनुष्य की स्वार्थ भावना के आगे समाप्त हो रहे है। समकालीन युग में व्यक्ति एवं व्यक्ति के मध्य टूटते रिश्तों, प्रेम सम्बंधों को फिर से जोड़ने का प्रयास गजलकार कर रहे है। आज के युग में मानवता के अंत और मानवीय मूल्यों के ह्रास एवं क्षरण की स्थिति चिंताजनक है। हिन्दी गजलकारों ने मानव में मानवीय चेतना जागृत करने का प्रयास किया है ताकि मनुष्य आपस में प्रेम, स्नेह, भाईचारे से जीवन यापन कर सके

"जिसमें इन्सान के दिल की न हो घड़कन 'नीरज'
शायरी तो है वह अखबार के कतरन की तरह I"10

निष्कर्ष :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि चेतना के माध्यम से हम विभिन्न क्षेत्रों में जागरूक एवं सजग रहते है। चेतना भविष्योन्मुखी एवं सकारात्मक होती है। साहित्य की चेतना किसी कुर्सी, गद्दी या सम्प्रदाय से बंधी हुई नहीं है. खास तौर से आज के जमाने में। साहित्य समाज का दर्पण होता है क्योंकि यह समाज का यथार्थ चित्रण करता है। समाज में अन्याय का विरोध तथा भलाई, अच्छाई का समर्थन करना ही हमारी चेतना है। इसीलिए मनुष्य के केन्द्र में उसकी चेतना ही होती है। हिन्दी गजल ने समसामयिक विषयों को आत्मसात करते हुए भारतीय समाज एवं परिवेश की जटिलताओं का चेतनापरक यथार्थवादी चित्रण किया है। समकालीन हिन्दी गजल में रोमानियत के साथ प्रगतिवादी दृष्टिकोण एवं चेतनापरक अभिव्यक्ति है। इन गजलों में सामाजिक विदुपताओं एवं बुराईयों के स्थान पर सामाजिक एवं नैतिक मानवीय जीवन मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया गया है। समकालीन हिन्दी गजल मानव जीवन के हर पहलू को पूर्ण सच्चाई एवं ईमानदारी से व्यक्त करती है। इन गजलों में वर्तमान समाज की विसंगतियों, विदुपताओं एवं विडम्बनाओं के यथार्थ चित्रण के साथ ही आम आदमी के संघर्षमय जीवन की सहज अभिव्यक्षित है। हिन्दी गज़लें हताश मनुष्य को जीवन में गतिशील रहने का संदेश देती हुई सामाजिक परिवर्तन का आह्वान करती है।

सन्दर्भ सूचि :-

1. hi.wikipedia.org से
2. गोपालदास 'नीरज, 'हिन्दी के लोकप्रिय गजलकार, हिन्द पॉकेट बुक्स, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, पृ. सं. 43
3. संपादक गौरीनाथ, हिन्दी की चुनिंदा गज़लें, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद (उ.प्र.) पृ. सं. 56
4. डॉ. रोहिताश अस्थाना, हिन्दी गजल उद्भव और विकास, सुनील साहित्य सदन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. सं. 340
5. शेरजंग गर्ग, 'हिन्दी गज़ल शतक, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 25
6. रवीन्द्र कालिया, हिन्दी की बेहतरीन गज़लें, भारतीयज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली,पृ. सं. 16
7. दुष्यन्त कुमार, साये में धूप, राधा-कृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. सं. 57
8. सरदार मुजावर, 'हिन्दी गज़ल का वर्तमान दशक', वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. सं. 26
9. अदम गोंडवी, 'समय से मुठभेड, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. सं. 71
10. गोपालदास 'नीरज' 'कारवाँ गुजर गया', हिन्द पॉकेट बुक्स, जोरबाग लेन, नई दिल्ली, पृ. सं. 147

*****

हिंदी फिल्मी गीतकार और ग़ज़लकार

प्रा. व्ही. एच. वाघमारे
हिंदी विभागाध्यक्ष,
सी.बी. खेडगीज महाविद्यालय,
अक्कलकोट.
मो.नं.93 56 98 32 41

शोध सार:

हिंदी फिल्मों में बहुत सारे गीतकार और ग़ज़लकार, ने उच्च कोटी के गीत तथा गजल लिखे है। अपने गीत तथा ग़ज़ल के माध्यम से हिंदी फिल्म को समाज के लिए प्रेरित किया है। महान संत अमीर खुसरों जी, संत कबीर जी, गुलजारी जी शैलेंद्र जी,जावेद अख्तर जी, सुलतान पुरी जी,प्रसून जोशी जी या अन्य बहुत सारे हिंदी के रचनाकार हिंदी फिल्म में गीत, गझल लिखकर हिंदी फिल्म को समृद्ध करने में बडा योगदान दिया है।

बीज शब्द: ग़ज़लकार, गीतकार, साहित्य, समाज

प्रस्तावना:

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता हैं क्यों कि साहित्य में समाज का प्रतिबिंब दिखाई देता है। कवी, गीतकार, ग़ज़लकार, साहित्यकार काफी महान होते हैं। समाज को एक नया रास्ता दिखाने का प्रयास करते है। इसलिये कहा गया है कि, "जो न देखे रवी, वह देखे कवि।" कवि को सुरज से भी महान कहा गया है। क्यों कि सुरज की किरणे पृथ्वी के हर स्थान पर पहूंच जाते है। लेकिन जहाँ सुरज की किरणे नहीं पहूंचते है वहा कविओं के विचार पहूंच जाते है। इन महान रचनाकारों के प्रती कहा जाता है कि,

" शूर -शूर तुलसी शशी, उडगन केशवदास
अब के कवि खद्दोत सम जहाँ तहा करत प्रकाश।"

इस तरह से कवी, गझलकार, गीतकार अंधेरे समाज को आज्ञान रूपि प्रकाश देकर ज्ञानी बनाते है। ऐसे महान साहित्य को सिनेमा समाज तक पहूंचाने का महत्वपूर्ण काम करता है। समाज को आगे बढाने में, समाज के विकास में सिनेमा का बहुत बडा योगदान रहा है। कहा जाता है कि, समय और समाज फिल्म में प्रतिबिंबित होते है या समय और समाज से प्रभावित होता है और संस्कृति को आकार देता है। समाज में परिवर्तन लाने में फिल्म में अद्वितीय क्षमता होती है।

भारतीय हिंदी फिल्म के शुरूआत में ऐतिहासिक और पौराणिक विषय पर बनी फिल्मों में भारतीय संस्कृति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। राष्ट्रप्रेम, देशभक्ती, संत महात्मा आदि विषयों पर बनी फिल्में समाज को मध्यनजर रखते हुए बनाई गई थी। जैसे डॉ. महादेव चिंतामणी खोत लिखते है की, "19 वीं शताब्दी में सिनेमा 1914 में अमेरिका से होता हुआ भारत में आया। "इंडियन सिनेमा" के लेखक ऐरिक बरनौ व एस कृष्णास्वामी के शब्दों में- सिनेमा का इतिहास भारतीय सिनेमा और पाश्चात्य सिनेमा का मिश्रित स्वरूप है और इसे किसी भी प्रकार से नकार नहीं जा सकता है। भारतीय जनमानस में पौराणिकता का विशेष महत्त्व है और भारतीय सिनेमा में भी इसका एक विशिष्ट स्थान है। इसका उदाहरण है फिल्म "राजा हरिश्चंद्र" जिसका निर्माण एवं निर्देशन दादा साहब फाल्के ने किया। धार्मिक और पौराणिक आख्यान पर आधारित होने के कारण इस फिल्म ने भारतीय जनमानस पर गहरी छाप छोडी।"1

भारतीय फिल्म को समृद्ध और विकसनशील करने में साहित्य का बडा योगदान रहा है। साहित्य के माध्यम से ही उच्च कोटी के फिल्म बने गये। फिल्म निर्माता साहित्य का आधार लेकर उच्च कोटी के फिल्म बनाने के लिये जी तोड मेहनत करते है। साहित्य के आधार पर ही कुछ अंतरराष्ट्रीय फिल्मों का निर्माण हुआ। डॉ. सुनील बापू बनसोडे लिखते है कि, "विभूती-नारायण बंधोपाध्याय के उपन्यास 'पाथेर पांचली' पर सन 1955 में सत्यजित रे ने बनाई फिल्म अंतरराष्ट्रीय ख्याती प्राप्त की थी। विमल राय ने रवींद्रनाथ टैगोर की कविता से कथानख लेकर 'दो बिघा जमीन', शरतचंद्र के उपन्यासों पर 'परिणीता', 'देवदास' और सुबोध गोष के सुजाता उपन्यास पर बंदिनी जैसे सफल फिल्मों का निर्माण किया है। राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त मृणाल सेन निर्देशित फिल्म 'भुवन शोम' जो प्रसिद्ध कहानीकार वनफूल की कृती पर आधारित थी, का फिल्म इतिहास में उल्लेखनीय योगदान रहा है।"2 इस तरह से भारत मे अनेक प्रसिद्ध फिल्म का निर्माण हुआ और भारतीय जनमानस पर फिल्म का काफी प्रभाव पडा।

भारत में फिल्म का उद्भव एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती थी। इस काल में छोटी- छोटी फिल्मों का निर्माण करके दर्शकों का मनोरंजन करना तथा उनमें नए-नए विचार प्रस्थापित करना यह एक महान कार्य फिल्म निर्माता करते थे। डॉ.महादेव चिंतामणी खोत लिखते है कि, " भारत में फिल्मों का जन्म 7 जुलाई, 1896 भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक अमर दीन था। इसी दिन 'ल्युमीयर' 'ब्रदर्स' नामक दो फ्रान्सिसी अपनी फिल्में लेकर भारत आये। इन्होने छ: लघु चलचित्रों का प्रदर्शन किया। उस रोज मुंबई के वाटकिंस थियेटर में उनका प्रीमियर हुआ। प्रीमियर करीब 200 लोगों ने देखा। उस समय टिकट दर थी 2 रु. प्रति व्यक्ती। यह उन दिनों एक बडी रक्कम थी। इन छोटी-छोटी फिल्मों ने ध्वनी होने के बावजूद दर्शकों का मनोरंजन किया था।"3

हिंदी फिल्म में अनेक प्रसिद्ध गीतकारों ने प्रसिद्ध गीतों का निर्माण किया है। जिसमें देशभक्तीपर, राष्ट्रभक्तीपर गीत लिखे जाते है। प्रस्तुत गीत के माध्यम से समाज मे देशभक्ती, राष्ट्रभक्ती को प्रस्थापित करने का सराहनीय कार्य फिल्मी गीतकार करते है। गीत एक ऐसा माध्यम है जो अनफड भी गा सकता है, सुन सकता है। उसके दिलो दिमाग पर भी काफी प्रभाव पडता है। हर गीत को गजल बना सकते है, लेकिन हर गझल गीत नहीं होता। क्यूं कि गझल में विशिष्ट छंद होते है। गीत छंद युक्त या छंद मुक्त हो सकते है। लेकिन गीत में राग होना काफी जरुरी है।

गझल काव्य पर आधारित है। उसकी जडे अरबी काव्य में मिलती है। काव्य से इसका नाथा काफी घनिष्ठ है। यह प्रेम पर आधारित होते है। इसमें सच्चाई, प्रेम, इश्क, मुहब्बत जैसे शब्द सामने आ जाते है। डॉ. गिरीश ज. त्रिवेदी लिखते है कि, "गजल में प्रेम भावनाओं का चित्रण होता है। गझल का शाब्दिक अर्थ नारियों के प्रेम की बातें करना है। अंत: अच्छी गझल वही समझी जाती है, जिसमें इश्को- मुहब्बत की बाते सच्चाई और असर के साथ लिखी जायें। यह बात तभी पैदा होती है, जब उसे ऐसी सरल और मिठी बोली में लिखा जाय कि दिल में घर कर जाय।"4

गजल के कुछ अंग होते है। मिसरा, शेर, मतला आदि। गजल के अंग के बारे में डॉ. किशोर लिखते है कि, "मिसरा, शेर, काफिया, रफीद, मतला और मक्ता आदि गझल के अंग होते है। गजल की प्रत्येक पंक्ति को मिसरा कहा जाता है। दो मिसरों का जोड शेर कहलाता है। गजल की पंक्तियों की तुक को काफिया कहते है। यह तुक पंक्तियों के अंतिम अक्षरों से पहले के शब्दों की रहती है। काफिए के बाद आनेवाली अंतिम तुकबंदी को रफीद कहा जाता है। गझल का आरंभिक शेर मतला कहलाता है।"5

हिंदी गजल आम आदमी की पीडा का चित्रण करते हुए जनचेतना को प्रधानता देकर उसका सत्य अंकन करने का सफल प्रयास किया है। प्रा. सुश्री लता गुरव लिखते है कि," हिंदी गझल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है जीवन यथार्थ का चित्रण। हिंदी गझल ने आम आदमी की पीडा का चित्रण किया है। उसने जनचेतना को प्रधानता देकर उसका यथार्थ चित्रण किया है। समाज से उसका गहरा रिश्ता रहा है।"6 हिंदी गीतकार और गजलकार के रूप में गुलजार जी का नाम सुविख्यात है। वे सिनेमा निर्देशक तथा निर्माता है। गुलजार जी एक संवेदनशील और नवमतवादी है। अब तक गुलजार जी ने 150 से ज्यादा फिल्मों के लिये हजारों गीत लिखे पर गुलजार जी ठोक भाव में गीत लिखने वालों में से नहीं है। मूलत: वे एक शायर है और अपने गीतों में एक अलग पहचान रखी है। गुलजार जी के गीतों में एक नया पन है, विविधताएं है। अशोककुमार और नूतन की एक फिल्म है 'बंदिनी' जिसमें गुलजार जी ने पहला गीत लीखा-

" गोरा गोरा अंग लै ले, मोहे श्याम रंग दै दे।"7

गुलजार जी ने सभी संगीतकारों के साथ गीत लिखे है। हिंदी फिल्मों में कुछ गिने -चुने गितकारों में गुलजार जी का नाम आगे है। हिंदी फिल्म क्षेत्र के सबसे ज्यादा सफल और लोकप्रिय गीतकार रहे है। उनके फिल्म गीतों ने फिल्म गीत परंपरा में नये मानदंड स्थापित किए है। गुलजार जी के महान कार्य को देखकर अनेक पुरस्कार से सन्मानित किया गया। भारत सरकार के ओर से सर्वोच्च पुरस्कार पद्मभूषण, एक ऑस्कर, पाच राष्ट्रीय पुरस्कार और 20 फिल्म फेअर। गुलजार जी अपने वतन और उसकी मिट्टी से प्यार करने वाले गीतकार है। जैसे वह लिखते है की -

"हम तो प्यार के सौदागर हैं।
सौदा सच्चा करते है
पर आप जैसे लोग हो खरीददार
तो हम मुफ्त में भी जाया करते है।"8

शैलेंद्र हिंदी फिल्म गीत में प्रसिद्ध गीतकार के रूप मे सामने आ जाते है। वे उन गीतकारों में रहे जिनके गीत सामाजिक यथार्थ और अपनी अंतरिक पीडा के कारण पहचाने जाते हैं । समकालीन सामाजिक समस्याओं को अपने गीतों में केंद्रीत किया। इस काल में नेहरू युग की अशाओं और आकांक्षाओं से समाज का मोहभंग होने लगा था। शैलेंद्र जि ने अपने गीत के माध्यम से दो वक्त की रोटी के लिये दर-दर भटकने वाले आदमी की भूख की वेदना का विवरण किया है-

" छोटे से घर में गरीब का बेटा,
मैं भी हूं मां के नशीब का बेटा
रंजा गम बचपन के साथी
आंधियो में जले दीपक बाती
भूख ने है बडे प्यार से प्याला।"9

भारतीय स्वातंत्र्य के बाद भी आम आदमी की भूख प्रमुख समस्या रही है। शैलेंद्र के अनेक गीतों में प्रस्तुत समस्या का चित्रण मिलता है। शैलेंद्र आम आदमी की पीडा को अपने अनेक गीतों में व्यक्त करने का प्रयास किया है। जैसे-

" हडताल हमारा नारा है
तुमने मांगे ठुकराई हैं
तुमने तोडा है हर वादा
छीना हमसे अनाज सस्ता
जून छटनी पर हो आमादा
तो अपनी भी तैय्यारी है।"10

हिंदी साहित्य में गजल की एक दीर्घ परंपरा रह चुकी है। हिंदी में गजल का आरंभ अमीर खुसरों से माना जाता है। आज हिंदी मे गजलों की जो धूम मची हुई है उसके पीछे अमीर खुसरों की प्रेरणा ही कार्य कर रही है।

खुसरों के अनंतर कबीर ने भी गजल लिखी है। जैसे-

" हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या,
रहे आजाद या जग में हमन दुनिया से सारी क्या
कबीरा इश्का का माता दुई को दूर कर दिल से
ये चलना राह नाजूक है, हमन सिर बोज भारी क्या।"11

निष्कर्ष:

निष्कर्ष के रूप में कह सकते है की हिंदी फिल्मों में बहुत सारे गीतकार और गझलकार ने उच्च कोटी के गीत तथा गजल लिखे है। अपने गीत तथा गजल के माध्यम से हिंदी फिल्म को समाज के लिए प्रेरित किया है। महान संत अमीर खुसरों जी, संत कबीर जी, गुलजारी जी शैलेंद्र जी,जावेद अख्तर जी, सुलतान पुरी जी,प्रसून जोशी जी या अन्य बहुत सारे हिंदी के रचनाकार हिंदी फिल्म में गीत, गझल लिखकर हिंदी फिल्म को समृद्ध करने में बडा योगदान दिया है।

संदर्भ:

1. हिंदी साहित्य एवं सिनेमा- डॉ. महादेव चिंतामणी खोत, पृष्ठ-10
2. साहित्य, समाज और हिंदी सिनेमा- डॉ. सुनील बापू बनसोडे, पृष्ठ- 52
3. हिंदी साहित्य एवं सिनेमा-डॉ.महादेव चिंतामणी खोत, पृष्ठ- 12
4. दुष्यंतकुमार व्यक्तित्व एवं कृतित्व-डॉ.गिरीश ज. त्रिवेदी,पृष्ठ- 115
5. रचनाकार दुष्यंत कुमार-डा ॅ. किशोर, पृष्ठ- 112
6. आधुनिकी हिंदी कविता में गजल (सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ में) समाज -डॉ.सुश्री लता गुरव, पृष्ठ-40
7. साहित्य, समाज और संस्कृती-डॉ. सुनील बापू बनसोडे, पृष्ठ- 226
8. वहीं, पृष्ठ- 228
9. वहीं, पृष्ठ- 254, 255
10. वहीं, पृष्ठ-255
11. रचनाकार दुष्यंत कुमार-डॉ. किशोर, पृष्ठ -112

हिंदी गीत, गजल और दलित परिदृश्य

प्रो.डॉ. साताप्पा शामराव सावंत.
प्रभारी प्राचार्य तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग
विलीगडन कॉलेज, सांगली (स्वायत्त)

आलेख सारांश -

प्रस्तुत शोध निबंध अपने आप में एक नितांत मौलिक तथा सर्वथा अलग प्रकार का विषय रहा है। हिंदी गीत और गजल परंपरा को दलित परिदृश्य के अतंर्गत पिरो देने का कार्य किया गया है। गीत और गजल की परंपरा में सामयिक जो परिवर्तन तथा बदलाव हुए है, उनका लेखा -जोखा प्रस्तुत शोध निबंध के अंतर्गत किया गया है। दलित साहित्य में प्रतिरोध, आत्मसम्मान, समता और मानवता का परिदृश्य नजर आता है। आधुनिक काल के कवियों में सामाजिक न्याय तथा परिवर्तन को महत्त्व प्रदान किया है। दलित साहित्य में पीडा और अन्याय की अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

बीज शब्द- प्रस्तुत शोध निबंध में निम्नलिखित बीज शब्दों का प्रयोग हुआ है। वे इस प्रकार है- दलित, हाशिए, प्रतिरोध, पीडा, गीत, गजल, सुधार, यथार्थता, शोषण, उत्पीडन, संघर्ष आदि

प्रस्तावना-

हिंदी साहित्य में गीत तथा गजल एक ऐसी शैलियॉ रही है, जो मानव संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं सामाजिक प्रतिबध्दता, यथार्थ को अत्यंत प्रभावशाली रुप में अभिव्यक्त करती है। परंपरा के परिप्रेक्ष्य में गीत-गजल प्रेम,प्रकृति, विषाद तथा जीवन-दर्शन के विषयों पर केंद्रित रहती दिखाई देती है, लेकिन आधुनिक काल में इन विधाओं ने अस्मिता-विमर्श, राजनीतिक और सामाजिक आयामों से खुद का रिश्ता-नाता जोड दिया है। इस परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य ने हिंदी गीत-गजल को नई दृष्टि,नई संवेदना तथा नए कथ्य बहाल किए है।

दलित परिदृश्य भारतीय समाज व्यवस्था की अपनी अलग पहचान प्रस्तुत करनेवाली एक अलग मिसाल रही है। जिस में सामाजिक उत्पीडन, विषमता, प्रताडना के इतिहास के साथ-साथ आत्मसम्मान, प्रतिरोध तथा मुक्ति की आकांक्षा से निर्मित होता है। हिंदी गीत-गजल में प्रस्तुत परिदृश्य की उपस्थिति साहित्य के लोकतंत्रीकरण की दिशा में एक नया आयाम प्रदान करता है।

दलित साहित्य से तात्पर्य-

दलित साहित्य की जन्मभूमि महाराष्ट्र रही है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के महापरिनिर्वाण के बाद मराठी में दलित साहित्य का उदय हुआ। सदियों से हाशिए पर रहनेवाले समाज की व्यथा-वेदना को वाणी देने का प्रयास दलित साहित्य के माध्यम से किया गया है। जो आगे चलकर विश्व साहित्य में भी अपनी अलग पहचान कायम बना चुका है। दलित साहित्य के जन्मदाता तथा निर्माता डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर रहे है। डॉ. रघुवीर सिंह ने दलित साहित्य के निर्माता जननायक डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर के बारे में लिखा है-" डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर इक्कीसवीं सदी में उन क्रांतिकारियों की दीपशिखा है, जो सही अर्थो में भारत में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के लोक तांत्रिक मूल्यों को संजोकर रखना चाहते हैं, उन मूल्यों का फैलाव उन तक करना चाहते हैं, जो उँच-नीच, भेदभाव, गरीबी, भूखमरी की त्रासदी झेल रहे हैं, जो जातिवाद अस्पृश्यता से आज भी पीडित हैा 1 "दलित साहित्य का मूल स्वर प्रतिरोध, आत्मसम्मान और समता तथा मानवता से संबंधित है। दलित साहित्य में कविता, कहानी, आत्मकथा, उपन्यास के साथ-साथ गीत-गजल भी व्यापक स्तर पर लिखे गए है।

हिंदी गीत -गजल की परंपरा तथा सामयिक सुधार-

गीत और गजल प्रमुख रुपसे कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति का प्रभावी और लोकप्रिय माध्यम कहा जाता है। गीत गजल में कुछ प्रमुख बदलाव हुए जिनको निम्नलिखित प्रकार से देखा जा सकता है। वे इस प्रकार है-

1. व्यक्तिगत भावनाओं से आगे बढकर सामाजिक वास्तविकता का चित्रण गीत गजलों में किया गया है।
2. गीत गजलों के माध्यम से सदियों से हाषिए के वर्ग की आवाज को प्रातिनिधिक स्वरुप प्राप्त हुआ है। जिसका यथार्थवादी चित्रण गीत,गजलों में पाया जाता है।
3. गीत, गजलों की भाषा में सरलता, स्पष्टता और लोक-स्वर का प्रवेश दिखाई देता है।
4. गीत, गजलों के कथ्य में संघर्ष, समानता, तथा आत्मसम्मान की प्रधानता प्रमुख रुपसे पाई जाती है।

दलित परिदृश्य का गीत-गजल में प्रवेश -

हिंदी गीत-गजल में दलित परिदृश्य कई रुपों में दिखाई देता है- वे आयाम निम्नलिखित प्रकार से है। अ.पीडा तथा अन्याय की अभिव्यक्ति

सदियों से हाशिए पर रहने वाले समाज की व्यथा-वेदना को अपने मन की बात बेबाकी के साथ अभिव्यक्ति का कोई माध्यम नहीं मिला था। लेकिन सन् 1960 ई. के बाद बेबाकी के साथ दलित जीवन की व्यथा वेदना को अभिव्यक्ति का आयाम प्राप्त हुआ। दलित जीवन पर आधारित गीत-गजल में जातीय उत्पीडन, अपमान, भेदभाव, श्रम शोषण आदि मानव निर्मित समस्याओं के प्रति मार्मिक चित्रण का चित्रण हुआ है। हिंदी दलित कवि डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने दलित समाज की पीडा तथा अन्याय के अभिव्यक्ति पक्ष पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि-"मेरे लोग, आज भी गुलाम हैं,/ बेगार ढोते हैं,गुलामी करते हैं समाज में/ तुम समृध्द जनों की/ कुछ धन-संपन्न हो गए तो क्या हुआ?/ मेरे लोग, आज भी चौबीस घंटे/ तुम्हारी तीमारदारी करने के बावजूद/ एक जून भूखे सोते है"2

प्रतिरोध और संघर्ष का चित्रण-

दलित गीत और गजल में प्रतिरोध और संघर्ष का चित्रण मिलता है। धार्मिक सत्ता विरोध के दमन में झुकने के बजाय संघर्ष का प्रभावी स्वर पाया जाता है। समता स्वतंत्रता की मांग करते हुए दलित गीत और गजल में सम्मान और बराबरी के अधिकार की मांग प्रबलता के साथ की है। भारतीय समाज व्यवस्था के अंतर्गत मानव निर्मित सामाजिक ढॉचे के विरोध में सबलता के साथ उसके विरोध में आवाज उठाई गई है। दलित साहित्य के बारे में डॉ. इंद्र बहादुर सिंह ने इसकी विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि-" दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है, जो सभी तरह की वर्ण व्यवस्था, जाति-पॉत, ऊंच-नीच के भेदभाव से परे है। इसे धर्म, भाषा रंग, नस्ल, प्रांत व देश की सीमाओं नहीं बांधा जा सकताा यह तो प्राकृतिक उपादानों-रोशनी, जल, वायु और अन्य संशाधनों की तरह बंधनरहित, स्वातंत्र और सबका है। इसके सुख-दुख का संवाहक दलित-साहित्य बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की भावना से प्रेरित है।"3 इसमें किसी भी प्रकार का जीवन विरोधी तत्त्व नहीं है। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने इस पक्ष प्रकाश डालते हुए अपनी कविता में लिखा है कि,-"तुम मानव अधिकार की बातें करते हो यार/ तो फिर मानव व अधिकार की/ परिभाषा से क्यों डरते हो यार?/ क्या "दलित"मानव नहीं है? / हजारों सालों से छले जाते रहे हैं "इस प्रकार प्रतिरोध और संघर्ष का चित्रण प्राप्त होता है।"4

दलित गीत और गजलों में भारतीय समाज व्यवस्था की परंपरागत तथ्यों और मान्यताओं को ठुकराने का कार्य प्रबलता के साथ किया गया है। साथ ही साथ उस व्यवस्था की कटु शब्दों में आलोचना की गई है। नई समाज व्यवस्था की मांग यह समाज करता है, जिसका प्रतिबिंब दलित गीत और गजल में मिलता है। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने परंपरा की आलोचना करते हुए उसके बारे में अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि,-"दलित साहित्य दलितोत्थान यानी दलितों, पीडितों, शोषितों, उपेक्षितों और असहाय-वर्ग को उत्थान और नव विकास के लिए प्रेरित करता है। यह वह साहित्य है, जो धरती से जुडे लोगों को, उनकी समस्या और दुर्दशा से अवगत कराते हुए उनके निराकरण और समाधान के उपाय बताता है।"5 इसी अपनी कलम चलाते हुए इंद्र बहादुर सिंह ने लिखा है कि-"कहो,कैसे आउं तुम्हारे धर्म में?/ मैं पराजित,/ तुम विजयी/ मैं दास,/ तुम मालिक/ बेचते-मॉ-बहनों,/ बीवी बच्चों को कौडियों के मोल।"6

आत्मसम्मान और पहचान की खोज-

दलित गीत और गजल में दलित कवि अपनी अलग पहचान और मानवीय अधिकारों को पुनः स्थापित करते हैं। डॉ. विनयकुमार पाठक ने दलित साहित्य के बारे में लिखा है कि,-"दलित साहित्य प्रधानतः"स्वतंत्रता" की खोज-खबर लेनेवाला और उसकी अभिव्यक्ति करनेवाला साहित्य है स्वतंत्रता के सभी रुपों और अंतरंगों की अभिव्यक्ति उसमें होती है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि, स्वतंत्रता की कल्पना अथवा विचार के राजनीतिक, आार्थिक, सामाजिक, और नैतिक पहलू के समान ही सौंदर्य-शास्त्रीय पहलू भी होते हैं। स्वतंत्रता की भावना दलित-साहित्य का प्राण-तत्त्व तो है ही, पर वह उसमें सौंदर्य-तत्त्व के रुप में भी स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्याय इन चारों जीवन-मूल्यों को दलित साहित्य के सौंदर्य-तत्त्व मान सकते है।"7

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का प्रभाव-

मूलतः दलित साहित्य का प्रेरणास्त्रोत डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर रहे हैं। सहजता से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों का गहन और गहरा प्रभाव दलित साहित्य पर दिखाई देता है। दलित गीत और गजलों में प्रायःआंबेडकरी विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया गया है। शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो का संदेश दिया गया है। इस विचारधारा में समता और

मानवता का स्वर प्रबलता से साथ समर्थनार्थ रहा है। आंबेडकरी विचारधारा के बारे में मराठी के विदवान डॉ. गंगाधर पानतावणे ने लिखा है कि,-"डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर यानी विचार कृति का समन्वय है आंबेडकर यानी संघर्ष, आंबेडकर यानी प्रगतिशीलता, आंबेडकर यानी विद्रोह, आंबेडकर यानी नए जीवन का अविष्कार है।"8 दलित जीवन का भाष्यकार और उनके जीवन में प्रकाश लानेवाला प्रज्ञासूर्य यानी डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर है।

मुख दलित गीत-गजल कवि-

हिंदी में कई नई कवियों ने गीत-गजल के माध्यम से दलित चिंतन स्वर को प्रज्वलित किया है। उनमें प्रमुख निम्नलिखित प्रकार से हैं- हीरालाल राजस्थनी, प्रमोद रंजन, शिवराम, कुसूम मेघवाल, मंगलेश डबराल, यशस्वी त्रिलोचन, कांचा इलैया आदि शायरों की गजलों की गजलों में दलित जीवन की व्यथा वेदनाओं का प्रभावी चित्रण पाया जाता है।

भाषा तथा शैलीगत विशेषता -

दलित गीत-गजल की भाषा सरल, लोकजीवन से जुडी होते हुए सीधी साधी दिखाई देती है। इस भाषा की अपनी विशेषता दिखाई देती है। दलित गीत गजल की भाषा में बोली-बानी का प्रयोग दिखाई देता है। इसमें समाज जीवन के प्रत्यक्ष प्रश्न और तेवर का दर्शन होता है। इसमें भारतीय समाज जीवन में सदियों से भोगा हुआ यथार्थ उन्होंने अपने साहित्य, काव्य के माध्यम से उतारने का कार्य किया है। दलित गजल और काव्य में अनुभूति, संघर्ष तथा सामाजिक यथार्थ की विशेषता पाई जाती है। दलित गजल और काव्य में अनुभव की प्रामाणिकता की जबरदस्त परख दिखाई देती है। उसमें सौंदर्य का आधार कल्पना नहीं है। बल्कि वहॉ पर भोगा हुआ यथार्थ दिखाई देता है। कवि अपनी निजी जीवन की व्यथा और सामूहिक अनुभव की आत्मा को स्थान देता है। दलित कवि और गजल में यथार्थ का आग्रह मिलता है। मानवीय गरिमा और आत्मसम्मान का सुंदर समन्वय वहॉ पर मिलता है। विद्रोह और प्रतिरोध चेतना के दर्शन काव्य और गजल में दिखाई देता है। वहॉ पर करुणा और संघर्ष की भावना नजर आती है। भाषा की सादगी और तीखापन के कारण उसकी अलग मिठास रही है। सामूहिक चेतना और नैतिक तथा सामाजिक उद्देश्य को सामाजिक परिवर्तन का एक स्वर उसे विश्व स्तर पर ले जाता है।

गीत-गजल में दलित परिदृश्य का महत्त्व-

इसके अंतर्गत साहित्य का लोकतंत्रीकरण दिखाई देता है। जो हाशिए के आवाज को मुख्यधारा में स्थान ग्रहण करा देता है। सामाजिक परिवर्तन के कारण अन्याय तथा भेदभाव के विरुध्द चेतना का स्वर प्रभावी रुप से पाया जाता है। समता संदेश दलित गजल का प्राण है, जो मानवता आधारित समाज की ओर संकेत करते हुए विश्व मानवता के धरातल पर ले जाता है। इसमें विविधता का विस्तार हुआ है, जिसके कारण गीत-गजल के सौंदर्य में अभिवृध्दि हुई है।

समन्वित निष्कर्ष-

हिंदी गीत-गजल में दलित परिदृश्य का उदय भारतीय समाज तथा साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का प्रतीक रहा है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि, साहित्य केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक जागरुकता, संवेदना तथा परिवर्तन का जरिया रहा है। दलित गीत-गजलें भारतीय लोकतंत्र, समता, तथा मानवाधिकार की वैचारिकी को संबल तथा बलिष्ठ बनाने का कार्य करती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि, दलित साहित्य का यह स्वर आने वाली पीढियों के लिए न केवल प्रेरणा है, बल्कि एक न्यायपूर्ण समाज की कल्पना का दस्तावेज कहा जा सकता है।

संदर्भस्त्रोत-

1.बुध्द, जराथुस्त्र तथा लाओत्से- डॉ.रघुवीर सिंह- पृ.290.
2.अब नहीं रहेंगे हाशिए पर-डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर-पृ.18
3.रिश्तो की पहचान- डॉ. इंद्रबहादुर सिंह-पृ.10
4. अब नहीं रहेंगे हाशिए पर-डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर-पृ.24.
5.हिंदी काव्य में दलित काव्य धारा- डॉ सोहनपाल सुमनाक्षर-पृ.154
6.रिश्तो की पहचान- डॉ. इंद्रबहादुर सिंह-पृ.10
7.आंबेडकरवादी सौंदर्यशास्त्र और दलित आदिवासी-जनजातीय-विमर्श- डॉ. विनयकुमार पाठक -पृ.345
8.दलित साहित्य वैचारिक वाडमय- डॉ.गंगाधर पानतावणे पृ.25.

"हिंदी गीत ग़ज़ल में सामाजिक परिदृश्य"

माधुरी संजय शिंदे (चव्हाण)
सहायक प्राध्यापक
महावीर महाविद्यालय ,कोल्हापुर
दूरभाष – 7972342621
madhurishinde90823@gmail.com

सारांश-

हिंदी साहित्य की विधाओं में गीत - गज़ल बस एक मनोरंजन का माध्यम नहीं , बल्कि वर्तमान समय में एक अलग काव्य विधा के रूप में ग़ज़ल का एक महत्वपूर्ण स्थान बन चुका है। और गजल को अपना यह स्थान बनाने के लिए बड़ा लंबा सफर तय करना पड़ा , बहुत संघर्ष करना पड़ा। एक काव्य विधा के रूप में गजल इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वर्तमान में गजल प्रेम, श्रृंगार जैसी भावनाओं से हटकर जीवन के संघर्ष, सामाजिक चेतना पर अपने विचार व्यक्त करती है। अपनी एक अलग वैचारिक सोच को सर्जनता और मौलिकता से जोड़ देती है। तो दूसरी ओर वर्तमान के बिकट स्थिति, घटती मानवीयता तथा समाज का घटता स्तर, उसके भविष्य पर हो रहे दूरगामी परिणामों का तटस्थ आकलन करती है। लोग व्यवस्था का मुखौटा पहन कर सच्चाई का ढोंग रचाकर मानव को छल रहे हैं। उस मानव की मुक्ति का मनुष्य की उन्नति का सत्य, अहिंसा और नीतिपरक मूल्यों का चित्रण करती है। आजकल की गजल का ध्येय बस मनोरंजन करना, या प्रेम का वर्णन करना नहीं रहा। उसमें समाज में व्याप्त विडंबनाओं का, समाज की असमानता का, बाजारवाद का, किसान समस्याओं का, आर्थिक शोषण, नारी शोषण का गहन एवं सूक्ष्म चित्रण प्राप्त होता है। यह विधा अपनी संवेदनशीलता के कारण इस समाज के यथार्थ को बड़े प्रभावशाली ढंग से हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

बीज शब्द: सामाजिक, ग़ज़ल, संघर्ष. प्रेम, गीत

प्रस्तावना-

गज़ल एक उर्दू की विधा होते हुए भी, हिंदी में अपना अलग स्थान बनाए रखी है। गजल का उद्भव ही मनुष्य के अनुभवों की गहराइयों से हो चुका है। हिंदी में गीत - गज़ल हमारे समाज की स्थिति, वर्ग संघर्ष, संवेदना और अपेक्षाओं के विभिन्न रूप प्रकट करती है। गज़ल का मुख्य काम समाज की वास्तविकताओं को मूर्त रूप में हमारे सामने प्रकट करना है। गज़ल मनुष्य के सूक्ष्म संवेदनाओं को काव्यात्मक रूप में प्रकट करने का सशक्त माध्यम है। हिंदी गीत ग़ज़ल का विकास बस एक कला या साहित्य का विकास नहीं बल्कि भारत के सामाजिक इतिहास का, मानव की बदलती मानवीयता का, बदलती सामाजिक, वैचारिक स्थिति के विकास या अपकर्ष का महत्वपूर्ण दस्तावेज बन चुका है। हिंदी गज़ल भले ही उर्दू से प्रभावित रहा हो, परंतु उसकी अपनी एक अलग भाषा, अलग संवेदना और सामाजिक चेतना है। हिंदी गज़ल के कुछ प्रमुख गज़लाकार है, जिन्होंने अपनी गज़लों के माध्यम से समाज की वास्तविक स्थिति को हमारे सामने प्रकट करने की कोशिश की है। जिसके अंतर्गत अदम गोंडवी जी ने जातिगत और आर्थिक शोषण जैसे विषयों को अपने लेखन का माध्यम बनाया, तो दुष्यंत कुमार जी ने - राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना को गज़ल के माध्यम से व्यक्त किया। निदा फ़ाज़ली जी ने मानवी मूल्य के संरक्षण को महत्व दिया तो कुँवर बेचैन ने अपने लेखन से प्रेम और व्यथा को व्यक्त किया। ऐसे कई गज़लकार है, जिन्होंने गज़ल के माध्यम से बस मनोरंजन ही नहीं किया बल्कि आर्थिक असमानता, स्त्री की सामाजिक स्थिति, वर्ग संघर्ष, संस्कृती, राष्ट्रीय अस्मिता, आधुनिकीकरण, घटती मानवीयता, राजनीति, भ्रष्टाचार, सामाजिक शोषण जैसे एक नहीं अनेक समस्याओं को अपनी गज़ल के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया।

हिंदी साहित्य के इतिहास में नई कविता जैसे चर्चा का विषय बन गई थी , उसी तरह आज गज़ल भी चर्चा का विषय बन चुकी है। उर्दू से अलग निकलकर हिंदी गज़ल ने अपना एक अलग स्तर, अलग स्थान बना लिया है। हिंदी का प्रथम गज़लकार अमीर खुसरो को ही माना जाता है। अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में गज़लें लिखी थी, उनकी गज़लों का जो संग्रह है उनकी संख्या 1000 के आसपास मानी गई है। इसके बाद कबीर जी के एक पद 'हमन है इश्क मस्ताना' को गजल के रूप में पेश किया जाता है। अमीर खुसरो से लेकर दुष्यंत कुमार तक हिंदी गज़ल काव्य विधा का एक लंबा इतिहास रहा है। यदि हिंदी खड़ी बोली के आदि कवि अमीर खुसरो को माना जाता है तो अमीर खुसरो से लेकर कबीर (सन 1398 से 1518), भारतेंदु सन (सन 1850 से),बद्रीनारायण प्रेमघन (सन 1855 से 1933), प्रताप नारायण मिश्र (सन 1856 से 1894), गया प्रसाद शुक्ल सनेही

(सन 1833 से 1962), मैथिलीशरण गुप्त (सन 1826 से 1964), निराला (सन 1897 से 1962), शमशेर बहादुर सिंह (सन 1910) दुष्यंत कुमार (सन 1933 से 1975) तथा उसके बाद हिंदी गजलकारों कि लंबी परंपरा रही। इस परंपरा को जानने से पहले गज़ल को समझना जरूरी है।

गजल शब्द की उत्पत्ति/अर्थ-

गज़ल मूलतः अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है स्त्री से वार्तालाप करना। यह भी कहा जाता है की, गज़ल एक फारशी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है 'मृगनयनी '। फारसी में यह बात भी मशहूर है कि, 'वाजनान गुफ्तगू करदन' तथा अंग्रेजी में भी यह कहा जाता है कि, 'The conversation with woman'निशात ओड्स के अनुसार 'The word Ghazal comes from Mugzhalat, to make love।' अर्थात यह कहा जा सकता है की, गज़ल शब्द का अर्थ है- औरत से प्यार भरी बातचीत करना। तो हिंदी शब्दकोश में ग़ज़ल का अर्थ भारतीय उर्दू में "सौंदर्य के वर्णन से प्रेमयुक्त कविता लिया जाता है"। इससे यह स्पष्ट होता है की, ग़ज़ल का मतलब ही प्राण, शरीर, मन सब कुछ है। गालिब ने भी कहा है कि-

' इश्क से तबीयत ने जिस्त का मजा पाया,
दर्द की दवा पाई , दर्द बे दबा पाया ||'

परिभाषा- "मन के भावों को, शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कला का नाम है गज़ल"। जिस रचना में मतला, रदीफ़, काफिया और मक्ता का सफल निर्वाह किया जाता है, उस रचना को भी गज़ल कहा जाता है। गज़ल शेरों से बनती है। एक ग़ज़ल में कम से कम पाँच शेर होते हैं। इस तरह एक ग़ज़ल में सात,नौ, ग्यारह के क्रम से शेर पाए जाते हैं। गज़ल के लिए छंदों का बंधन अनिवार्य होता है। बादल और बिजली, चंदन और पानी, जान और जिस्म का जो रिश्ता होता है वही, गज़ल और संगीत का रिश्ता होता है। गजलें दादरा, बागेश्री आदि रागों में गाई जाती है। गज़ल को संगीतात्मकता में बाँधकर अपनी गायिकी से लोकप्रिय बनाने में बेगम अख्तर, मेहंदी हसन, मलिक पुखराज और गुलाम अली का विशेष योगदान रहा है।

वर्तमान समय की गज़ल प्रेम, श्रृंगार, दर्द ,यातना आदि विषयों तक मर्यादित नहीं है। उनका विषय प्रियतम या प्रेमी से प्रेम भरी बातें करना, रूठना, मनाना, उदासीनता, वियोग, प्रणय निवेदन तक न रहकर, समय के साथ बदल गया है। गज़लों की अभिव्यक्ति का माध्यम बदला, उसके विषय बदले अब गजले रूमानी विचारों की अभिव्यक्ति से दूर हटकर सामाजिक धरातल पर अपने विचार व्यक्त करती है। गज़ल ने पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर, अपना क्षेत्र और अधिक विस्तृत बना दिया है। आजकल 'गज़ल' प्रेम करने तक सीमित न रहकर एकात्मक, प्रेरणात्मक बन गई है। जिसमें देश प्रेम, सांस्कृतिक चेतना का उद्घोष किया गया है।

आम आदमी के संघर्ष में जन्मी आज की यह गज़ल परंपरा समाज में व्याप्त सत्ता, संघर्ष, अत्याचार, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती है। इसलिए गज़ल एक विधा या गीत ना रहकर , वह आम आदमी के संघर्ष की गाथा बन चुकी है। गज़ल एक नई सोच है, जो जीवन को दिशा देने के लिए, समाज की सामाजिक स्थिति को हमारे सामने लाने की, उससे लड़ने की प्रेरणा देती है। हिंदी ग़ज़ल की अपनी एक अलग अहमियत भी इसलिए है कि, समकालीन काव्य जहाँ प्रणय प्रसंगों, प्रकृति चित्रण से जुड़े हैं, वहाँ हिंदी ग़ज़ल आम आदमी की अस्मिता, उसके जीवन मूल्य, नैतिकता उसके सपनों से जुड़ी है। गज़ल का जन्म ही समाज में फैली विसंगतियों के कारण हुआ है। समाज में व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्था कैसे आम आदमी का शोषण करती है। समाज के हर स्तर पर भ्रष्टाचार कैसे फैला है ऐसी एक नहीं अनेक स्थितियों का विरोध गज़ल अपने लेखन के माध्यम से करती है। साथ ही गज़ल अपने लेखन से दबे, कुचले लोगों में एकता, प्रेम की भावना का विकास करने में अग्रसर रहती है। शिक्षा, अशिक्षा, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार पर आवाज उठाकर समाज को जागृत कर सचेत बनाती है। पिछड़े हुए समाज को सफलता की रोशनी में लाने का काम करती है। गज़ल ने हमेशा सामाजिक सरोकार, उनके मूल्यों पर अपनी चर्चा की है। आधुनिक गजल ने 'इश्क - ए - मिजाजी' अथवा 'इश्क -ए – हकीकी' की अपेक्षा 'इश्के इंसानियत' को पहला स्थान दिया है। इसलिए गज़ल में अब वासना, प्रेम जैसी पारंपरिक गज़ल के तत्वों को नकारा और समाज के विसंगतियों का यथार्थ हमें दिखाने की कोशिश की। वास्तव में दर्द ही जीवन की सच्ची पहचान है, और यही दर्द उस गज़ल का प्राण होता हैं। गज़ल ने हमेशा व्यक्तिगत दर्द की अपेक्षा सामाजिक दर्द को अधिक प्रभावित किया है। इसलिए आधुनिक गजलकारों ने व्यक्तिगत दर्द के साथ सामाजिक यथार्थ को भी अपनी वाणी दी। आधुनिक युग बदल गया, समस्याएँ बदल गई, मानवता बदल गई, पाश्च्यात सभ्यता के प्रभाव से जीवन के मूल्य भी बदल गए। ऐसे माहौल में गजलकार पर एक दबाव है, जिससे मुक्त होने के परिणाम स्वरूप आज की ग़ज़ल का निर्माण

हुआ है । गालिब अपने युग के एक महान गजलकार थे । उन्होंने रूढ़ियों में लिपटी सामाजिकता का, धर्म का झूठा ढिंढोरा पीटनेवालों का पर्दा उठाकर अपनी नई गज़ले लिखी । इसलिए उन्हें कहा जाता है कि-

"होगा कोई ऐसा भी कि ग़ालिब को न जाने,
शायर तो वह अच्छा है, पै बदनाम बहुत है"।

जिगर मुरादाबादी - जिगर जी ने जहाँ गुलों - बुलबुल, इश्क - हक़ीक़ी, रिंदों - मैखाना पर गजलें कहीं । तो दूसरी ओर उनकी गज़लों ने अब रूमानी भावों की अभिव्यक्ति खत्म कर सामाजिक अभिव्यक्ति का नया रूप ले लिया । उन्होने सामाजिक , राजनीतिक विषयों पर राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत गज़लें भी लिखी ।

"न जाने आह कि उन आसुओं पै क्या गुजरी
जो दिल से आँख तक आए मिजह तक आ न सके,
नया जमाना बनाने चले थे दीवाने,
नई जमीन, नया आसमाँ बना ना सके" ।

डॉ. मोहम्मद इकबाल – इकबाल जी ने समसामयिक परिस्थितियों को देखा और उन्होने उससे प्रभावित होकर अपनी गज़लें लिखी । इनकी गज़लों का प्रारंभिक स्वर रवीन्द्रनाथ ठाकुर जी की तरह था । वे कहते थे , देश की दरिद्रता का कारण देश के साधनों की कमी नहीं बल्कि विदेशी शासकों की शोषण नीति, पूंजीवादी व्यवस्था और साम्राज्यवादी दृष्टिकोण है,उनकी भारत प्रेम की भावना उनकी देश के प्रति विरक्ति और आक्रोश में बदल जाती है , इसलिए वे लिखते हैं कि-

"सारे जहां से अच्छा हिंदोस्ता हमारा,
हम बुलबुले है इसके ,ये गुलिस्ता हमारा,
गुर्वत में हो अगर हम ,रहता है दिल वतन में,
समझो वहीं हमें भी दिल हो जहाँ हमारा" ।

फिराक गोरखपुरी- श्री रघुपति सहाय फिराक के पिता भी शायर थे जिसकी वजह से शायरी उन्हें वसीयत में मिली थी । उन्हें बचपन से ही गज़लें लिखने का शौक था । उन्होंने धार्मिक रूढ़िवादियों पर व्यंग्य करने के लिए मुल्ला, मस्जिद, मंदिर आदि शब्दों को उन्होंने अपने शेर में प्रतीक के रूप में अपनाया था । कुछ लोग फिराक जी को आधुनिक गज़लकारों में सबसे बड़ा गज़लाकार मानते है । उनकी गज़लें समाज के बीच की गज़लें है इसलिए समाज में व्याप्त विकृतियों को विभिन्न कोनों से उन्होने अपनी गज़ल में उतारा है –

"वो चमन परस्त भी है जिन्हें ये खबर हुई न आज तक,
कि गुलों की जिससे है परवरिश रंगे - रबार में है वही लहू,
कई लाख फूलों ने पैरहन सरे बाग हँस के उड़ा दिए,
जहे फ़स्ते गुल वो हवा चली कि चमन की ले उडी आबरू" ।

साहिर लुधियानवी - इनका प्रारंभिक जीवन प्रेम और असफल आंदोलनों तथा कॉलेज से निष्कासित होने की वजह से निराशा में बीता था । साहिर फिल्म जगत के भी प्रसिद्ध गज़लाकार रहे । साहिर की गज़लों का मुख्य स्वर उनकी स्वयं की पीड़ा रहा है । फिर भी उन्होने हमारे समाज की सामाजिक,धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्रों की असलियत अपने गज़लों के माध्यम से व्यक्त की । समाज के वास्तविक स्थिति का चित्रण साहिर ने अपने गज़ल में ऐसे किया है-

"ये ऊंचे - ऊंचे मकानों की ड्योढ़ियों के तले,
हर एक गम के भूखे भिखारियों की सदा,
ये कारखानों में लोहे का शोरगुल जिसमें,
है दफन लाखों गरीबों की रूह का नग्मा" ।

दुष्यंत कुमार - दुष्यंत जी के 'साये में धूप' इस पहली गज़ल में ही सामाजिक यथार्थ बोध के दर्शन होते हैं । उन्होने अपने इस गज़ल संग्रह में आपात काल के स्थिति की पूर्व दशाओं का विशद चित्र प्रस्तुत किया । कालाबाजारी, भ्रष्टाचार, बिखरी शासन व्यवस्था अपने देश की बिकट परिस्थिति को व्यक्त करती है ।इसलिए वे लिखते हैं कि-

" गिड़गिड़ाने का यहाँ कोई असर होता नहीं ,
पेट भरकर गलियाँ दो आह भरकर बद-दुआ" ।

दुष्यंत जी इस ग़ज़ल के माध्यम से देश के लोगों की सहनशीलता पर व्यंग करते हैं। शहर की संस्कृती कैसे इंसानियत खो रही है। मनुष्य कैसे आत्मकेंद्रित बन रहा है। यह उनकी इस ग़ज़ल से दिखाई पड़ता है।

‘ इस शहर में वह कोई बारात हो या वारदात ,
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ।

तत्कालीन गज़लकारों ने हिंदू मुसलमान की एकता को, परंपरागत चले आ रहे विरोध, वैमनस्य की भावना को लोगों के दिमाग से निकलाने का भी प्रयास किया। समाज में जो बड़ी-बड़ी जाति भेद की दीवारें खड़ी हो चुकी है। समाज की जो दयनीय अवस्था हो चुकी है ,उसे वे इस तरह व्यक्त करते हैं -

“ हमारे हाथ तो काटे गए थे,
हमारे पाँव भी छीले हुए हैं,
हमारा कद सिमट कर घट गया है,
हमारे पैरहन झूले हुए हैं”।

चंद्रसेन विराट- आधुनिक हिंदी गज़ल कारों में प्रसिद्ध और उल्लेखनीय विराट जी की गज़लों की भाव - भूमि व्यक्तिगत और सामयिक थी। विराटा जी को आधुनिक हिंदी गज़ल के शलाका - पुरुष कहा जाता है। उनकी गज़लों की पीड़ा केवल हृदय की पीड़ा नहीं बल्कि किसी वर्ग विशेष की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती है। मौजूदा समाज की वास्तविक स्थिति का सटीक चित्रण मतलब चंद्रसेन विराटा जी की गज़लें –

“हम नीवों में दबे हमारी करवट से,
कब हिला सिंहासन हमें मालूम नहीं,
लहू सींचते ही रह गए चमन में हम,
कब मुरझाया खिला हमें मालूम नहीं”।

कुंवर बैचैन- बैचेन जी ग्रामीण जीवन कि विषमताओं को हमारे सामने प्रस्तुत करते है। बताते हैं कि आज के जमाने में गरीबों की कोई कीमत नहीं होती, पैसा ही सर्वश्रेष्ठ होता है। उन्होने पेट कि आग बुझाने के लिए लोगों कि चल रही लढाई का वर्णन किया। वर्तमान व्यवस्था रोटी के लिए जूझते हुए इंसान को कैसे सिर से लेकर पैर तक कैसे जलाती है यह दिखाने कि कोशिश की। आज-कल इंसान की कोई कीमत ही नहीं है इस बात को अपनी ग़ज़ल में वे इस तरह व्यक्त करते हैं कि-

“जहां इंसान की औकात से दौलत बड़ी होगी ,
महल तनकर खड़े होंगे, झुकी हर झोपड़ी होगी”।

गालिब - गालिब अपने युग के महान शायर थे। उन्होंने उस समय कि रूढ़ियों मे लिपटी समाजिकता का विरोध किया। उनके गज़लें हमारे दिल के तार छेड़ देती है। उनकी भाषा गहरी है जो सीधे दिल को छु जाती है। गालिब जी अपनी गज़लों में हिंदू धर्म के दर्शन में,धर्म के पाखंड में लिखते हैं कि-

“जबकि तुझ बिन नहीं कोई मौजूद
फिर यह हंगामा ए खुदा क्या है”।

जावेद अख्तर - जमाने में कितने गम है, और लोगों को उसकी कीमत कैसे चुकानी पड़ती है, इसके बारे में जावेद अख्तर जी ऐसे लिखते हैं कि-

“ गम होते हैं जहां जहानत होती है ,
दुनिया में हर शय की कीमत होती है”।

रामकुमार कृषक - आम आदमी की जड़ता, विद्रोह की भावना का समाज की विसंगतियों का वर्णन कृषक जी अपनी गजलों में बखूबी करते है। सारा समाज कैसे जाति भेद में बट चुका है। हर जगह जाती-भेद के नाम पर दंगे- फसाद होते हैं, मनुष्य, मनुष्यता भूलकर जातिभेद में अटक गया है। सांप्रदायिकता आपसी तनाव बढ़ा रही है। जाती , संप्रदाय अपना- अपना रंग कैसे दिखाते है ,इसे कृषक जी ऐसे व्यक्त करते हैं-

“आज फिर कुछ लोग अपनी बात बताने लगे
आदमी से भिन्नतर औकात बतलाने लगे”।

धर्म के नाम पर भी बहुत सारे कर्मकांड किए जाते हैं। हमारे समाज की सबसे ज्वलंत समस्या धर्म ही है। यही जाति व्यवस्था, धर्म व्यवस्था हमारी राष्ट्रीय एकता को सुरंग लगा देती हैं। कृषक जी अपनी इस ग़ज़ल के माध्यम से इसे इस तरह व्यक्त करते हैं कि –

" कौन सा धर्म इबादत ये कौन- सी कहिए,
खून से जिसके हिफाजत में हर बशर है यहां"।

जहिर कुरेशी - कुरेशी जी की तुलना चर्चित गज़लकारों में की जाती है। समाज के यथार्थ का वास्तविक चित्रण वे अपनी गज़लों के माध्यम से करते हैं। कुरेशी जी सर्वहारा इंसान का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आजकल मनुष्य कैसे किश्तो में बट चुका है, सर से पाँव तक कर्जे में डूबा है | अपनी गरीबी और बेकारी की वजह से वे कहते हैं कि-

" विष असर कर रहा है किश्तों में ,
आदमी मर रहा है किश्तों में,
उसने इकमुश्त के लिया था ऋण
ब्याज को भर रहा है किश्तों में"।

इसतरह गिरिधर दास , बदरीनारायण चौधरी'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त, नारायण प्रसाद 'बेताब', रामप्रसाद 'बिस्मिल्ल', हरिकृष्ण प्रेमी, नरेंद्र शर्मा, बालस्वरूप राही, जहीर कुरैशी, शेरगंज गर्ग, बेकल उत्साही जैसे और भी अनेकों गजलकारों ने सामाजिक समस्याओं को अपने गजल का माध्यम बनाया। आज का युग भलेही विज्ञान का युग है। इस युग में मनुष्य के बुद्धि का विकास बहुत हुआ। लेकिन दुख की बात यह है की बुद्धि जितनी विकसित हुई वृत्ति उतनीही संकुचित बनी।आधुनिक समाज की सभ्यता कैसे मानवता खोती जा रही है। समाज कि इस विपरीत परिस्थिति को हमारे सामने गजलों के माध्यम से खड़ा किया गया। समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं को अपनी गज़ल के माध्यम से प्रकाश में लाने की कोशिश तत्कालीन गज़लकारों ने कुछ इस तरह से की -

नारी शोषण एवं अत्याचार का चित्रण -

हर जगह पर नारी को बस एक भोग - विलास का साधन माना जाता है। उसका एक अलग व्यक्तित्व है,अस्तित्व है उसे नकारा जाता है | जिस भारत देश में ' यत्र नार्यस्तु पुजन्ते, रमन्ते तत्र देवता' के सूत्र का पालन किया जाता था ,उसी भारत देश में नारी आज विडंबना भरी जिंदगी जी रही है। अनमेल विवाह की कुप्रथा, बाल विवाह, भोगवादी संस्कृति के बढ़ते उस पर हो रहे अन्याय , अत्याचार की घटनाएँ बढ़ रही है। जिन पर उसकी सुरक्षा का दायित्व होता है वही इंसान उसे नोच - नोच कर खाता है। इन सब अत्याचारों के बावजूद कोई नारी अन्याय के खिलाफ अपना आवाज उठाती है, तो उसकी आवाज को दबा दिया जाता है।

" एक औरत अकेली मिली जगह
मर्द होने लगे जंगली जानवर।
' उस सुहागन की व्यथा आप भला क्या समझे,
जिसके तपते हुए यौवन को मिला तन बूढ़ा'
" रेप के केस में गवाह बिना
'कोर्ट' का फैसला पुराना है।
यौन - अपराध को हवा देता
'काम' का देवता पुराना है"।

घटती मानवीयता –

आजकल मनुष्य जानवरों से भी गया गुजरा हो गया है। जानवर भी इंसान से जादा वफादार दिखाई देते है। मनुष्य जहा पर अपना फायदा दिखता है बस वहिपर जुड़ता है। किसिके दर्द ,तकलीफ से उसे कोई लेना देना नहीं रहा। गलतियाँ करना जैसे मनुष्य का धर्म ही बन चुका है। उन्हें ऐसे ही आदमी से प्यार होता है, जो उसका काम करता है उसके दिए दर्द चुपचाप सहता है। घटती मनुष्यता के कारण जंगल से जादा खतरा तो आज - कल शहरों में दिखाई देता है।

" कितना हैरान – परेशान जानवर है यहाँ
उसके जंगल से खतरनाक अब शहर है यहाँ"

समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार -

वर्तमान युग में हर जगह भ्रष्टाचार फैला हुआ है। अब यह भ्रष्टाचार भी आम बात हो चुकी है, जिसमें आम आदमी, सामान्य जनता पिसती जाती है। देश की व्यवस्था कैसे भ्रष्ट हो चुकी है, जो योजनाएँ गरीबों के लिए बनती तो है, लेकिन उन तक पहुँचती भी नहीं।

" यहां तक आते-आते सूख जाती है कहीं नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा"।

आतंकवाद -

आतंकवाद की मानसिक विकृति देश को अंदर से खोखला कर देती है ।आतंकवाद की घातक प्रवृत्ति देश के विकास में, देश की एकता में, अखंडता में बाधा बनती है। आतंकवाद से दंगे- फसाद होते हैं, जनता को हानि पहुँचती है। निर्दोष लोगों की हत्या होती है। दहशत का वातावरण फैल जाता है। इसलिए अवध किशोर सक्सेना बस इस स्थिति का वर्णन ही नहीं करते, बल्कि आतंकवादियों को अपनी गज़ल के माध्यम से समझाते हैं कि –

"आतंक से तो शांति का बनता नहीं है रास्ता,
जान लेना है जहालत किसी की भी बेखता,
आतंक से बढ़ी सदा नफरत,घृणा की भावना ,
पंजाब है इसका उदाहरण एक जीता जागता,
तनावों में गिरी बेहद जिंदगानी चीखती,
जहां देखो, जहां जाओ, हर डगर पर भय खड़ा।

समाज की बिगड़ती स्थिति –

घटती मानवीयता , असहानुभूति, मूल्यों का हो रहा विघटन, हिंसा जैसी समस्याओं को आजकल की गजल में लेखन का माध्यम बनाया गया। समाज में अन्याय - अत्याचार को खामोशी से बर्दाश्त करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। समाज गूंगा - बहरा बनकर सब सहन कर लेता है। इस बीमार समाज का वर्णन चंद्रसेन विराट जी अपने गजलों में कुछ इस तरह करते हैं-

"सख्त, बीमार है बस्ती
बहुत लाचार है बस्ती,
बिकाऊ है यहाँ सब कुछ,
खुला बाजार है बस्ती।

इस तरह कहा जा सकता है कि हिंदी गज़लकारों ने बड़ी व्यापकता और गहनता से सामाजिकता का चित्रण किया है। इन सारी समस्याओं के साथ इन्हीं गज़लकारों ने आम आदमी की पीड़ा, नई सभ्यता और फैशन , बेईमानी, झूठ और फरेब , भय का वातावरण, महानगरीय जीवन की विद्रूपताएँ , आर्थिक असमानता, वर्ग संघर्ष, जागतिक संकीर्णता, सामाजिक शोषण, स्वतंत्रता आंदोलन, औद्योगिकरण, शहरीकरण, मूल्य परिवर्तन, मजदूर आंदोलन, भ्रष्टाचार, राजनीति सामाजिक विषमता, जातिगत शोषण, शहर और गांव की बदलती स्थिति, स्वतंत्रता और लोकतंत्र के संकट इस तरह कितनी सारी सामाजिक परेशानियों की विसंगतियों को गज़लकारों ने अपनी गज़लों में सटीक वर्णित कर उस पर आवाज उठाने की कोशिश की।

निष्कर्ष –

हिंदी गद्य साहित्य में गजल ने एक नया आयाम दिया। मनोरंजन, श्रृंगार, प्रेम भावनाओं से हटकर अपनी गज़लों के माध्यम से सामाजिक विपरीत परिस्थितियों पर अपनी आवाज उठाई। अपनी अलग सोच के चलते इन गज़लकारों ने समाज को एक नई रोशनी दी। बढ़ता भोगवाद, सामाजिक असमानता, भ्रष्टाचार, अन्याय किसान की समस्या, नारी शोषण जैसे विषयों पर अपने विचार निर्भरता से चित्रित किए। समाज की वास्तविकता का यथार्थ चित्रण करने की कोशिश की। प्रेम संबंध, यौवन का जोश जैसी चीजों से हटकर सामाजिक यथार्थ बोध को जनता के सामने लाकर प्रस्तुत किया। जिस समाज में मानव को सर्वश्रेष्ठ समझ कर पूजा की जाती थी, वहीं पर आज मानवता के मूल्यों का पतन हो रहा है। इस स्थिति को हम बदल तो नहीं सकते थे लेकिन तत्कालीन गजलकारों ने हर बार अपनी गजलों के माध्यम से इन सारी समस्याओं के ऊपर आवाज उठाने की कोशिश की। इन गजलों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक यथार्थ बोध से समाज को अवगत कराने की कोशिश की।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1) हिंदी गजल गजलकारों के नजरों में - डॉ . सरदार मुजावर ,वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली , 2001 , पृ. क्र.15 से 22, 51 से 99
2) आधुनिक हिंदी कविता में गजल - प्रा. सुश्री लता गुरव,विनय प्रकाशन ,कानपुर , पृ. क्र.51 से 75
3) साठोत्तरी हिंदी गजल – डॉ . मधु खराटे ,विद्या प्रकाशन ,कानपुर , 2002, पृ. क्र. 75 से 83
4) हिंदी गजल संदर्भ और सार्थकता - डॉ.वेदप्रकाश अमिताभ , डॉ. बादामसिंह रावत, गिरनार प्रकाशन,गुजरात 1995,पृ. क्र.9 से 16
5) गजल एक यात्रा, सूर्यप्रकाश शर्मा , विश्व भारती प्रकाशन ,नागपुर ,1988, पृ. क्र.2 से 29
6) ग़ालिब व्यक्तित्व और कृतित्व- ,नूरनबी अब्बासी। डॉ.नुरुलहसन नक़वी , शब्दकार प्रकाशन ,दिल्ली , 2000, पृ. क्र.129
7) तरकश -जावेद अख्तर,राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली ,1995, पृ. क्र.85

*****

रामदरश मिश्र की ग़ज़लों में सामाजिक परिदृश्य

डॉ. अनिल विठ्ठल मकर
सहा. प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर।
मो. नं- 9673417920
anilmakar70@gmail.com

शोधालेख का सार (Abtract):

बहुमुखी प्रतिभा के धनी शताब्दी के साहित्यकार रामदरश मिश्र जी की ग़ज़लों में वर्तमान सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता हैं। उन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से वर्तमान समाज की स्थिति, गंदी राजनीति, भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था, व्यापारियों द्वारा किसानों की जानेवाली लूट तथा इसी वजह से लोगों भुगतनी पड़नेवाली यातनाएँ, दिनों-दिन बढ़ता पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, पर्यावरण की गंभीर समस्या, मनुष्य की बढ़ती स्वार्थी प्रवृत्ति जैसी अनेक बातों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इसके माध्यम से आज का समाज किस दिशा की ओर जा रहा है, इसका बोध होता है।

बीज शब्द (Key-Word): रामदरश मिश्र की ग़ज़लों में सामाजिक यथार्थ, रामदरश मिश्र और ग़ज़ल, मिश्र जी के साहित्य में सामाजिक यथार्थ।

प्रस्तावना:

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में घटित घटनाओं का प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देता है। इसके लिए वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र जी भी अपवाद नहीं हैं। उनके साहित्य में भी समाज जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण मिलता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी रामदरश मिश्र जी का जन्म 15 अगस्त, 1924 को तो मृत्यु हाल ही में 31 अक्तूबर, 2025 को हुआ है। करीबन 101 सालों से अधिक जिये मिश्र जी ने अपनी पूरी जिंदगी साहित्य सेवा में लगाई है। उन्होंने नाटक छोड़ साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है और इसके माध्यम से सामाजिक यथार्थ समाज के सामने लाने का प्रयास किया है।

मिश्र जी के लेखन की खास विशेषता यह है कि उन्होंने अपना समग्र लेखन साहित्यिक खेमेबाजी से दूर रहकर लेखन किया है। इसका खामियाजा भी उन्हें भुगतना पड़ा है। इसी वजह प्रारंभिक काल में वे बड़े-बड़े साहित्यिक पुरस्कारों से भी वंचित रहे दिखाई देते हैं। जिंदगी के अंतिम पड़ाव में साहित्य अकादमी तथा जून, 2025 में उन्हें भारत सरकार की ओर से 'पद्मश्री' पुरस्कार से नवाजा गया। अगर वे किसी साहित्यिक खेमे से जुड़कर लेखन करते तो उन्हें इसके पहले ही साहित्य क्षेत्र के बड़े-बड़े पुरस्कारों से सम्मानित किया जाता। इसलिए तो साहित्य क्षेत्र की गुटबाजी के संदर्भ में हरिशंकर राठी लिखते हैं- "जब कोई जुगाड़ नहीं चलता तो गिराने का जुगाड़ चल ही जाता है। किसी को उठाना जरूरी हो न हो, गिराना जरूरी होता है। जो किसी को गिरा नहीं सकता वह साहित्य-समाज का मठाधीश हो ही नहीं सकता। जो किसी को गिरा नहीं सकता, उसे तेज चलना पडता है। अपनी तीव्र गति के बल पर ही आगे निकलना होता है।"[1] मिश्र जी साहित्य क्षेत्र की गिराने-उठाने की राजनीति के बजाय अपनी साहित्य-सेवा के बल पर आगे बढ़े हुए हैं। उनके साहित्य का समाज के साथ गहरा सरोकार दिखाई देता है। उनका सन 1986 में प्रकाशित 'बाजार को निकले हैं लोग' ग़ज़ल-संग्रह इन्हीं में से एक है। इस संग्रह की ज्यादातर ग़ज़लों में सामाजिक यथार्थ को चित्रित किया है। इस ग़ज़ल-संग्रह में 54 गजलें हैं। इसमें वर्तमान गंदी राजनीति, भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, लोगों में बढ़ती संकुचित मानसिकता तथा आम आदमी की पीड़ा जैसी अनेक बातों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। प्यार-इश्क की उर्दू ग़ज़लों की तुलना में ये गजलें बिल्कुल अलग हैं। हिंदी ग़ज़ल के संदर्भ में लक्ष्मी शंकर वाजपेयी लिखते हैं- "हिंदी ग़ज़ल की पहचान ही यही है कि उसने आम आदमी के दुख-दर्द से स्वयं को जोड़ा है। उर्दू ग़ज़ल के सीमित कथ्य एवं गिनीचुनी उपमाओं, बिंबो, प्रतीकों को असीमित विस्तार दिया है।"[2] रामदरश मिश्र की ग़ज़लों में जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण मिलता है।

'बाजार को निकले हैं लोग' ग़ज़ल-संग्रह की पहली ग़ज़ल में मिश्र जी ने आम आदमी की पीड़ा को चित्रित किया है। हमारे देश में किसान और मजदूरों की हालत बहुत गंभीर है। उनकी हालत परकटे पंछी की तरह हो गई है। इसके लिए वर्तमान व्यवस्था जिम्मेदार है। बड़े-बड़े लोग हमेशा कर्मरत रहने का संदेश देते हैं लेकिन किसान और मजदूर निरंतर कर्मरत होने के बावजूद उनके हाथ कुछ नहीं लगता। उनकी हालत जस-की-तस दिखाई देती है। इस संदर्भ में मिश्र जी लिखते हैं-

"कहते हैं वे कि रुकिये नहीं, चलते जाइये

चलते तो हम हैं, चल के मगर जाएँ किधर को।"[3]

प्रस्तुत ग़ज़ल के शेर के माध्यम से उचित राजनीतिक नेतृत्व के कारण समाज किस प्रकार दिशाहीन हो गया है, इसका चित्रण किया है।

रामदरश मिश्र ने ग़ज़ल क्र.3 में सच्चाई और झुठाई के फर्क को प्रस्तुत किया है। आज बाजार में हर जगह सच्चाई नहीं चलती है। कितना भी बड़ा आदमी हो, उसके पीछे कुछ-न-कुछ बुराई छिपी होती ही है। मिश्र जी जैसे गीने-चुने लोग ही है जो सच्चाई का रास्ता अपनाकर अपनी ऊँची मंजिल तक पहुँचते हैं। आज चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला दिखाई देता है। भ्रष्टाचार के माध्यम से नेता लोग, सरकारी अफसर, कल-कारखानदार, ठेकेदार रातों-रात अमीर हो जाते हैं लेकिन दिन-रात मेहनत करके आम आदमी हालत जस-की-तस रह जा जाती है। किसान-मजदूर दिन-रात मेहनत करने के बावजूद उसका उचित दाम उन्हें नहीं मिलता। किसानों के माल का दाम व्यापारी तय करते हैं। किसानों को अपने माल की कीमत तय करने का अधिकार नहीं हैं। जब फसल बड़े पैमाने पर आती है, तब उसे कौड़ी मोल दाम से लिया जाता है। इस संदर्भ में मिश्र जी लिखते हैं-

"हाथ कुछ आया न; तू फसले उगाता रह गया
चर गये पशु खेत, तू पंछी उड़ाता रह गया।"[4]

वर्तमान समय में राजनीतिक क्षेत्र और न्याय व्यवस्था में काफी बदलाव आया है। राजनीति के क्षेत्र गुंडागर्दी इतनी बढ़ गई है कि आम आदमी को धमकाया जाता है। आम जनता को बुनियादी सुविधाएँ मिलना तो दूर की बात लेकिन इस संदर्भ में वे आवाज भी नहीं उठा सकते। ये नेता लोग जनता के वोटों पर ही चुनकर आते हैं लेकिन उनकी समस्याओं पर ध्यान नहीं देते। जनता को अपने काम के लिए उनके सामने झुकना पड़ता है। इस ओर संकेत करते हुए मिश्र जी लिखते हैं-

"वे जा रहे तो कहीं रास्ता रुका होगा
वे उठ रहे हैं तो कोई कहीं झुका होगा।"[5]

राजनीति की तरह ही अव्यवस्था न्याय क्षेत्र में आयी दिखाई देती है। कई जगहों पर पैसों के बल पर फैसले बदले जाते हैं। गरीबों को न्याय मिलेगा या नहीं इसका कोई भरोसा नहीं है। पैसों के बल पर न्याय-व्यवस्था को खरीदा जा रहा है। इस संदर्भ मिश्र जी लिखते हैं-

"सबूत लेके कहाँ जा रहा है तू साथी
तेरे बिना ही तेरा न्याय हो चुका होगा।"[6]

इस प्रकार वर्तमान न्याय-व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य मिश्र जी ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से किया है। आज दिन-दहाड़े रास्ते पर हत्याएँ होती हैं, लेकिन उसे कोई रोक नहीं सकता। यह सबको मालूम होने के बावजूद अदालत में मुकदमा चलाया जाता है। कई सालों तक यह मुकदमा चलता रहता है। इस न्याय-व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हुए रामदरश मिश्र जी लिखते हैं-

"यों हुआ है कत्ल सबके सामने
पर अदालत के लिए यह राज है।"[7]

रामदरश मिश्र जी ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से मनुष्य की अर्थ केंद्रित जिंदगी पर भी प्रकाश डाला है। मनुष्य के जीवन में अर्थ याने पैसे को महत्त्वपूर्ण स्थान है लेकिन आदमी अब जरूरत से ज्यादा पैसों को महत्त्व देने लगा है। पैसा मनुष्य जीवन का साधन है लेकिन वह आज साध्य बनता जा रहा है। अर्थ-केंद्रित जिंदगी के कारण बौद्धिकता को गौण स्थान दिया जा रहा है। अर्थ ने संपूर्ण जीवन को ही प्रभावित कर दिया है। पैसों के कारण लोगों के रिश्तों में दरार आने लगी है। इस संदर्भ में चित्रण 'बाजार को निकले हैं लोग' ग़ज़ल-संग्रह की कई ग़ज़लों में मिलता है। जब आदमी के पास पैसा नहीं होता तब समाज में उसे कोई स्थान नहीं दिया जाता। इस संदर्भ में मिश्र जी लिखते हैं-

"फटी जेबों में हाथ डाले हुए गाने लगा
कहीं मजबूरियों में खिलके हँसा है कोई।"[8]

रामदरश मिश्र की ग़ज़लों में पाश्चात्यों से प्रभावित संस्कृति का भी चित्रण मिलता है। आज की बाजारवादी संस्कृति पाश्चात्यों की देन है। आज लोग खुद की औकात देखे बगैरे समाज में बड़ा साबित करने के लिए कुछ खरीदते हैं। इससे समाज में झूठी दिखावें की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इससे आदमी ज्यादा ही विपत्ति में फँसता जा रहा है। इसके बारे में देश के बड़े-बड़े विद्वान भी चिंतीत हैं। पश्चिमी संस्कृति के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. अमन सिंह वधान लिखते हैं- "पश्चिमी

वैचारिकता और उपभोक्तावादी संस्कृति हमारे लिए शत्रु है। बहुत सुंदर तालाब संगमरवर का हो, लेकिन उसमें पानी न हो तो वह हमारे लिए निरर्थक है।"[9] पाश्चात्यों का अंधानुकरण हमारे देश को गलत दिशा की ओर ले जा रहा है। इस संदर्भ में चिंता व्यक्त करते हुए रामदरश मिश्र जी लिखते हैं-

"बाजार को निकलें हैं लोग बेच के घर को
क्या हो गया है जाने आज मेरे शहर को।"[10]

इसप्रकार मिश्रजी आज की बाजारवादी संस्कृति के बारे में चिंता व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं।

आज पर्यावरण की बड़े पैमाने पर हानी हो गई है। आदमी असली जंगलों को उजाड़कर सीमेंट जंगल बना रहा है। सीमेंट के जंगल में जल, वायू, भू-प्रदूषण के कारण आदमी का जीना हराम हो गया है। देहात का आदमी शहर के आकर्षण के कारण जब शहर आकर बसता तब उसे गाँव की तरह शुद्ध हवा, पानी नहीं मिलता है। शहर के इस कृत्रिम जीवन में आदमी का जी उब जाता है। बचपन में प्रकृति के गोद में पल-बढ़े रामदरश मिश्र जी का भी इस शहर जीवन में जी ऊब जाता है। इसलिए एक ग़ज़ल में वे कहते हैं-

"हो गया वनवास सा है घर शहर के बीचों बीच
चलो कहीं घर बना लें, फिर वहीं वनवास में"[11]

प्रेम में आयी व्यावसायिकता का भी चित्रण रामदरश मिश्र ने अपनी ग़ज़लों में किया है। दिनों-दिन यह समस्या विकृत रूप धारण कर रही है। आज सच्चे प्रेमियों को ढूँढना मुश्किल हो गया है। आज कई लोग प्यार का अर्थ खाना-पीना, ऐश करना और भोग-विलास तक सीमित मानते हैं। लेकिन सच्चे प्रेमी के साथ ऐसा हुआ तो उसकी पूरी जिंदगी बर्बाद हो जाती है। ग़ज़ल के एक शेर में इस संदर्भ में सचेत करते हुए मिश्र जी लिखते हैं-

"मुस्कानें भी नाप-तौल कर जिस बाजार में बिकती हैं
लूटा जा रहा कहकहे फकीरा वहीं अजब हैरानी है"

प्रस्तुत ग़ज़ल में मिश्र जी झूठे प्रेमी के सावधान रहने के लिए कहते हैं।[12]

शहरों में कई जगहों पर आदमी की स्थिति जानवरों से बदत्तर दिखाई देती है। कई लोग फूटपाथ पर अपनी जिंदगी गुजारते हैं। आर्थिक अभाव के कारण मजबूरन उन्हें ऐसा जीना पड़ता है। उनकी भी अपनी खुद की आशा-आकांक्षाएँ होगी लेकिन वे अभावग्रस्त जिंदगी के कारण उसे पूरा नहीं कर सकते। उनके दुख को व्यक्त करते हुए रामदरश मिश्र जी लिखते हैं-

"खत्म फूटपाथ का सफर होता
मेरा अपना भी कोई घर होता।"[13]

प्रस्तुत ग़ज़ल के शेर के माध्यम से मिश्र जी ने फूटपाथ रहनेवाले आम लोगों की आशा-आकांक्षाओं को व्यक्त किया है। रामदरश मिश्र जी का साहित्य हमेशा आम आदमी पक्षधर रहा है। इस संदर्भ में 'अमर उजाला' में लिखा है- "मिश्र की रचनाएं आम आदमी के जीवन, संघर्ष और संवेदना को बखूबी उकेरती हैं।"[14] मिश्र जी के लेखन आम आदमी ही हमेशा केंद्र रहा है।

लोगों की संकुचित मानसिकता का भी चित्रण मिश्र जी अपनी ग़ज़लों में किया है। लोगों की संकुचित मानसिकता दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। आज का आदमी खुद और खुद के परिवार तक ही सीमित सोचता है। रामदरश मिश्र जी इस संकुचित मानसिकता से बाहर आकर विचार करने का संदेश देते हुए लिखते हैं-

"तोड़ दो शीशा कहीं, आयें हवाएँ
बंद कमरे में घुटन छाने लगी है"[15]

इस प्रकार रामदरश मिश्र जी की गजलों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है।

निष्कर्ष:

अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वरिष्ठ साहित्यकार रामदरश मिश्र जी के ग़ज़लों में वर्तमान सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता हैं। इसमें वर्तमान समाज की स्थिति, गंदी राजनीति, भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था, व्यापारियों द्वारा किसानों की लूट इसी वजह से लोगों भुगतनी पड़नेवाली यातनाएँ, दिनों-दिन बढ़ता पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, दिनों-दिन गंभीर होती पर्यावरण की समस्या, मनुष्य की बढ़ती स्वार्थी तथा संकुचित प्रवृत्ति, प्यार में आयी व्यावसायिकता तथा व्यावहारिकता आदि बातों का चित्रण रामदरश मिश्र की ग़ज़लों में मिलता है।

संदर्भ:

1. सं. उपेंद्र कुमार मिश्र, समकालीन अभिव्यक्ति, जनवरी-जून 2021, पृ. 57
2. वही, पृ.12
3. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, ग़ज़ल क्र.1, विकास पेपर बैक्स, गांधीनगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1986, पृ. 07
4. वही, ग़ज़ल क्र.6, पृ. 12
5. वही, ग़ज़ल क्र.4, पृ. 10
6. वही, पृ.10
7. वही, ग़ज़ल क्र.23, पृ. 29
8. वही, ग़ज़ल क्र.14, पृ. 20
9. सं. अजित गुप्ता, मधुमती, सितंबर, 2007, अंक 9, पृ. 16
10. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, ग़ज़ल क्र.1, पृ.07
11. वही, ग़ज़ल क्र.18, पृ. 24
12. वही, ग़ज़ल क्र.16, पृ. 22
13. वही, ग़ज़ल क्र.36, पृ. 42
14. https://www.amarujala.com/kavya/sahitya/ramdarash-mishra-obituary-not-yet-sun-set-poetry-without-big-words-devotion-to-life-always-been-beyond-doubt-2025-11-01?page=3
15. वही, ग़ज़ल क्र.45, पृ. 51

*****

हिन्दी गजल साहित्य: सामाजिक परिदृश्य

प्रा. डॉ. हबीरराव मारुती चौगले
सहयोगी प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
स.का पाटील सिंधुदुर्ग महाविद्यालय मालवण,
जिला-सिंधुदुर्ग
मोबाईल- 9404388118
hambirraochougale1982@gmail.com

प्रपत्र सार-

हिन्दी साहित्य में गजल को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह हिन्दी साहित्य की एक सशक्त और अत्यन्त लोकप्रिय काव्य विधा है। हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है, कि हिन्दी काव्य में अनेक आन्दोलन आये और चले गये। नयी कविता, अकविता, विचार कविता आदि| आन्दोलन एक समय से हिन्दी काव्याकाश पर छाये रहे है। किंतु यह समस्त आन्दोलन लयहीनता अतिबौद्धिकता एवं व्यापक उद्देश्य के अभाव के कारण जनमानस पर अपना शाश्वत प्रभाव स्थापित नहीं कर सके। गीतात्मक काव्य में आज नवगीत के अतिरिक्त केवल गजल ही एक विशिष्ट तेवर के साथ हिन्दी में प्रचलित है। यह युगीन दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हुई मानव जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को ईमानदारी के साथ व्यक्त करती है। हिंदी गजल सदियों से इसान की सोच का अहम हिस्सा रही है। यह हमेशा ही इसान की भावनाओं, उसकी सांसारिक सोच की ऊंचाइयों, गहराईयों और सुख-दुख की सच्ची रही है। दरअसल साहित्य का काम ही सामाजिक विसंगतियों के विरोध में खड़ा होना है। या यूं कहें कि जनता के दिल से सीधे जुड़ने के लिये उनकी समस्याओं से भी खुद को जोडना होगा। तभी हम ईमानदार लेखन की कसौटी पर खरे उतर सकते हैं। ऐसा नहीं है कि सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध बिगुल फुकने का काम सिर्फ दुष्यत, अदम गोंडवी इत्यादि मजलकारों ने ही किया है बल्कि यह काम पूर्ववर्ती शायरों ने भी बखूबी किया है। इसमें कोई शक नहीं कि दुष्यंत ने गजल को आम आदमी की समस्याओं से जोड़कर उसकी धड़कन को अपने शब्दों में पिरोकर नया जीवन दिया एवं उसे लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा दिया। समय अपना रास्ता स्वय निर्धारित करता है। जिस काल का जैसा समय होता है. साहित्य भी स्वतः वही रूप ले लेता है। रचनाकार अपने परिवेश को देखकर जो अनुभव करता है, उसे शब्दों में पिरोकर समाज को अर्पित करता है।

बीज शब्द- समकालीन हिंदी गझल, भ्रष्टाचार, गरीब, बेरोजगारी, महंगाई, आतंकवाद, वंचित समाज- किसान, मजदूर, स्त्री, पर्यावरण, दलित, आदिवासी।

शोध प्रविधि-

प्रस्तुत आलेख की प्रविधि विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। दुष्यंत कुमार के सम्बधित रचनाओं से एवं अन्य सम्बद्ध ग्रन्थों से सामग्री का संकलन, चयन, वर्गीकरण, विवेचन, विश्लेषण एवं निष्कर्ष स्थापन क्रमशः सम्पन्न किया गया है।

उद्देश-

हिन्दी गजल का चेहरा सामाजिक सरोकारों से ही बनता है। इन सरोकारों में घर-परिवार, रिशते नाते, शोषण, त्रासद-विसंगतियों, राजनीतिक छल, आतंक और पर्यावरण पर आसन्न संकट जैसे कितने ही मुद्दे दिखाई देते हैं। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र शायद बचा हो, जहाँ हिन्दी गजलकारों की दृष्टि न गयी हो। हिन्दी गजल अपने सामाजिक सरोकारों की प्रतिबद्धता के चलते ही समाज के साथ संवाद की स्थिति को नितंतर सुदृढ़ किया है। आज हिंदी गजल का उद्देश्य केवल प्रेम और विरह जनित पीडा को व्यक्त करना नहीं है बल्कि यह समाज की पीड़ा और उसकी अभिव्यकित का माध्यम बनना भी है।

विषय विवेचन-

साहित्य और समाज दोनों का उद्देश्य एक ही है। साहित्य व्यष्टि और समष्टि के कल्याण को प्रमुखता देता है। क्योंकि उसमें 'सहित' का भाव निहित है। साहित्यकार के समक्ष व्यक्ति नहीं समाज होता है, वह जनसामान्य से अधिक संवेदनशील एवं प्रतिभाशाली होने के कारण समाज की परिस्थितियों से निरंतर प्रभावित होता है और उसे सहित्य में अभिव्यक्ति करता है। हिन्दी गजलकारों ने सामाजिक स्थितियों का गहराई से अध्ययन किया है। समग्र गजलकारों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि उनकी काव्य चेतना का विकास प्रायः उनकी जीवन यात्रा की गति के अनुरूप ही हुआ है। यथार्थ का चित्रण रचनाधर्मिता का मूल उद्देश्य है इसी कारण इन गजलकारों ने सामाजिक जीवन के संपूर्ण यथार्थ को अपनी गजल में मुखरित किया है। उनकी गजलें जीवन का गीत है जिनमे भावों की आर्द्रता, विचारों की तरलता और कल्पना की सप्रमाणता का ऐसा त्रिवेणी संगम है जो बार-बार चिंतन के

लिये विवश करता है। इसी कारण हिंदी गजलों में समाज में व्याप्त विकृतियाँ, विसंगतियाँ, आम आदमी की पीडा, शोषण की वेदना और नारी जीवन का भयावह यथार्थ वर्णित हुआ है जो इस प्रकार है-

गरीबी-

समाज में बढ़ती हुई खाई सभी को अपने लपेट में लेने को आतुर हैंI अमीर अहीं और अमीर होते जा रहे है, गरीब की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई हैI गजल का मुख्य स्वर जनसाधारण की ओर अभिमुख होता है। जनसाधारण का पक्ष लेना ही साहित्य का एक मात्र धर्म है। सामाजिक सरोकारों को अपने केंद्र में रखने वाले सुप्रसिद्ध गजलकार अनिरुद्ध सिन्हा कहते हैं-

"गरीबी जब कभी हालात से रिश्ता निभाती है
मेरे कच्चे मकानों से कोई आवाज आती है"

गजलकार का यह शेर वर्तमान समय के सच को बयां करता है। कि किस प्रकार समाज में असमानता की खाई दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है।

नारी-

महिला सशक्तिकरण की आज खूब बाते की जा रही है। सशक्तिकरण का मतलब होता है कि व्यक्ति को अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी जाय। पर अब तक कितने प्रतिशत महिलाएँ परिवार और समाज के बन्धनों से मुक्त होकर अपने निर्णय स्वय लेने में सक्षम है। सच तो यह है कि भारतीय संविधान में पुरुषों की तरह महिलाओं को बराबर के अधिकार देने के कानूनी प्रावधानों के बावजूद स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं है। स्त्री की इसी दशा को देखते हुये गजलकार भी अपने हक के लिये आवाज उठाने से नहीं चूकती, अपनी आवाज को मुखर करते हुये मीनाक्षी जिजीविषा कहती है-

"अब तो दो तुम उसको जायज हक उसका
घर की तख्ती के इस पत्थर से आगे"

दहेज-

दहेज आज भी नारी की सबसे बड़ी समस्या है। दहेज के इस महादानव का नाश जब तक नहीं होगा, तब तक समानता का सपना अधूरा ही रहेगा। आज भी कई कस्बों और शहरों में स्त्रियां दहेज के लिये जिंदा जला दी जाती है। इस विषय पर गजलकार 'दिनेश' प्रभात जी लिखते हैं-

"वहाँ तुम नारियों को पूजने की बात करते हो
जहाँ जिंदा जलाने की प्रथाएँ साथ चलती हैं"

अकेलापन-

उपभोक्तावादी संस्कृति, सामाजिक विकास की एकाकी विकास पद्धति को जन्म देती है। आजकल पारिवारिक या सामाजिक सम्बध टूटते बिखरते जा रहे हैं। परिवार में दादी-दादा, नाना-नानी की भूमिका गौण हो गयी है। दुनिया सुविधा के पीछे इस कदर पागल हो गयी है कि रिश्तों के मायने ही नहीं रहे। अगर कुछ रिश्ते बचे भी है तो केवल यथार्थ के लिये, बेटा-बहू जब काम पर जाते है तो बच्चे की जिम्मेदारी दादा-दादी पर डाल जाते हैं। माँ घर की रखवाली के लिये होती है उनकी हालत ताले जैसी है। इन बुजुर्गों की देखभाल नहीं होती, इनका इस्तेमाल किया जाता है इस विषय पर गजलकार ने कहा है-

"इस तरह निश्चिन्त दफ्तर को गये बेटा-बहू
घर में माँ ताले की सूरत और बच्चे चाबियां"

पर्यावरण-

आज के इस दौर में हमारा पर्यावरण ही सबसे ज्यादा असुरक्षित हो गया है। दरअसल पर्यावरण सभी भौतिक रासायनिक एवं जैविक कारकों की इकाई है जो किसी जीवधानी परतन्त्रिय आबादी को प्रभावित करता है। ये ही उसके रूप, जीवन व जीविका को तय करता है। तकनीकी मानव द्वारा आर्थिक और जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रकृति के साथ व्यापक छेडछाड की जा रही है। ऐसे में प्राकृतिक व्यवस्था व प्रणाली पर संकट उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसे वरिष्ठ गजलकार ध्रुव गुप्त के इस शेर में देखा जा सकता है-

"बची रहे ये सर पर छांव, हवा और बारिश
बचा सकें तो बचा ले ये कुछ दरख्त अभी"

दलित-

भारतीय समाज में दलित जातियों के साथ हुये अत्याचार और अन्याय का एक लंबा इतिहास है, जिसे झुठलाया जाना संभव नहीं है। अब भी यदा-कदा देश के लगभग हर हिस्से में दलित शोषण की अमानवीय घटनाएँ सामने आती रहती हैं। समकालीन गजल में यद्यपि दलित विमर्श की तरह कोई स्वतंत्र साहित्यिक धारा तो अस्तित्व में नहीं है लेकिन एक आत्मचेतस गजलकारों ने समाज के इस विद्रुप यथार्थ को भी अपनी गजलों में व्यक्त करते हुये हर प्रकार के शोषण और विभेदकारी मानसिकता के प्रति अपना विरोध जताया है। गजलकार किशर तिवारी ने जाति-मजहब-रंग आदि सभी आधारों पर किये जाने वाले भेदभाव को नकारते हुये लिखा है-

"आपको मुझसे शिकायत है या मेरी जात से
नाम, मजहब, रंग से तुमने चुना चेहरा मेरा"

किसान-

भारत एक कृषि प्रधान देश है लेकिन भारत का किसान कभी भी अपने लिये बेहतर जीवन नहीं गढ़ पाया है। किसानों की समस्याओं को दूर करने के लिये देश में जो-जो योजनायें बनी है उनसे चाहे किसी का भला हुआ हो लेकिन किसान के जीवन में कोई सकारात्मक परिवर्तन उपस्थित नहीं हुआ है। हिंदी गजल के सशक्त हस्ताक्षर विनय मिश्र किसान जीवन की विडंबना को व्यक्त करते हुये कहते हैं-

उड़ी पुरखों की वो पगड़ी हवा में खानदारी भी.
था खाली पेट पहले ही गई खेती किसानी भी"

भ्रष्टाचार-

भ्रष्टाचार की दीमक ने हमारे राजनीतिक-प्रशासनिक तंत्र में गहराई से घर कर लिया है। यह राष्ट्र के विकास की नींव को निरंतर खोखला कर रही है। देश की मेहनतकश आम जनता के खून पसीने की कमाई एवं मध्यमवर्ग के टैक्स के पैसे से चलने वाली विकास योजनाओं का एक बहुत बड़ा हिस्सा राजनीतिक-प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं रिश्वत की भेंट चढ़ जाता है तथा बहुत कम अंश ही लक्षित आमजन एवं लक्षित जगहों तक पहुंच पाता है। इसी तरह हिंदी गजलकार जहीर कुरेशी विकास योजनाओं की आमजन तक पहुंचने वाली राशि को 25 प्रतिशत तथा भ्रष्टाचार में भोग होने वाली राशि को 75 फीसदी बताते हुये अपने एक शेर में कहते है-

"पचहत्तर फीसदी वे खा गए
हमारे हाथ तब अनुदान आया"

आतंकवाद-

आतंकवाद आज हमारे देश की ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के लिये एक बहुत बड़ी चुनौती बन गयी है। फिर भी हमारे लिये यह कहीं ज्यादा गंभीर समस्या एवं चुनौती है क्योंकि हमारा देश आजादी के बाद से ही पडोसी देश द्वारा प्रायोजित आतंकवाद से जूझ रहा है।

"आतंक युद्ध, भूख ने इतने सितम किये
किसको गले लागायेगी इक्कीसवीं सदी
बारूद सर पे लादकर बारूद ओढ़कर
बारूद ही बिछायेगी इक्कीसवीं सदी।"

अतः हम कह सकहते हैं कि हिन्दी में आकर गजल को जो नया संस्कार तेवर मिला उसे साहित्य संस्कार में अब प्रमुखता से अनुभव किया जा रहा है। गजलें अब सामाजिक परिवर्तन में क्रांतिकारी भूमिका निभाने का सशक्त माध्यम बन गई है।

निष्कर्ष-

संक्षेप में कहा जाय तो हिंदी गजल साहित्य सामाजिक परिदृश्य का एक जीवंत और प्रमाणिक दस्तावेज है, जो समाज की विसंगतियों को चित्रित करते हुये उसे बेहतर बनाने की दिशा में एक सशक्त माध्यम बनी है।

संदर्भ-

1. रचनाकार दुष्यंत कुमार- विनय प्रकाशन, कानपुर
2. हिन्दी गजल की विकास यात्रा- ज्ञान प्रकाश विवेक, पृ. 214. 121
3. दुष्यंत कुमार, साए में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ 23.57.59
4 हिन्दी गजल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 178,213
5. दुश्यंत कुमार की गजलो में आगमन की पीड़ा, विद्या प्रकाशन, कानपुर पृ 127
6. हिन्दी गजल का परिदृश्य, विद्या प्रकाशन, कानपुर
7 हिन्दी गजल में स्त्री-विमर्श, देशबंधु ई पेपर
8. हिन्दी गजल: जन-पक्षधर जीवानानुभवों का ताप विद्या प्रकाशन, कानपुर, 118
9. हिन्दी में समकालीन गजलकारी की मूल संवेदना- अक्षरवार्ता इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल, मई 2008
10. एक टुकडा धूप, विद्या प्रकाशन कानपुर पृ. 17

*****

आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष और प्रतिरोध का दस्तावेज़ हैं - 'साये में धूप'

डॉ. प्रकाश भगवानराव शिंदे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
पानसरे महाविद्यालय अर्जापूर,
तहसील बिलोली जनपद नांदेड़ (महाराष्ट्र)
चलभाष – 9960785146
drshindepb@gmail.com

शोधा-लेख का सारांश -

हिंदी ग़ज़ल परंपरा के सशक्त हस्ताक्षर दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल को दरबारी और प्रेम-परक सीमाओं से निकालकर जन-सरोकारों से जोड़ा है। उन्होंने आम आदमी की पीड़ा एवं संघर्ष को अभिव्यक्त करने के लिए ग़ज़ल जैसे सशक्त विधा का प्रयोग किया है। इनका प्रसिद्ध ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप' स्वातंत्र्योत्तर आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष, सामाजिक यथार्थ एवं राजनीतिक विडंबना का प्रमाणिक दस्तावेज हैं। दुष्यंत कुमार ने 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह के माध्यम से न केवल आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है बल्कि आम आदमी किस तरह से लोकतंत्र के खोखलेपन, भ्रष्टाचारी व्यवस्था में पिसता जा रहा है इसे भी अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष एवं प्रतिरोध के दस्तावेज को स्पष्ट करता है।

बीज शब्द -

ग़ज़ल, आम आदमी, यथार्थ, संवेदना, प्रतिरोध, दस्तावेज, पीड़ा, चिराग, मयस्सर।

शोध का उद्देश्य -

- 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह का सामान्य परिचय प्रस्तुत करना।
- संग्रह में अभिव्यक्त आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष के चित्रण को रेखांकित करना।
- सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विडंबना एवं आम आदमी की घुटन, पीड़ा तथा संघर्ष की संवेदना को प्रस्तुत करना।
- दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों की भाषा-शिल्प का परिचय देना।

प्रस्तावना -

ग़ज़ल मूलतः फ़ारसी-अरबी काव्य परंपरा की एक सशक्त और संवेदनशील विधा है। ग़ज़ल ने उर्दू साहित्य में अपनी जड़े मज़बूत कर परिपक्व पहचान बनाई है। समय के साथ बदलाव अथवा परिवर्तन का स्वीकार करना विकास का मूल कारण होता है। समय के साथ ग़ज़ल ने भी भाषाई सीमाओं को लांघते हुए उर्दू एवं फ़ारसी के साथ हिंदी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। हिंदी ग़ज़ल केवल उर्दू ग़ज़ल का अनुवाद या अनुकरण नहीं है बल्कि भारतीय सामाजिक, राजनीतिक एवं आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष एवं संवेदना को अभिव्यक्ति देने वाली सशक्त विधा के रूप में उभर कर आयी है।

ग़ज़ल मूलतः फ़ारसी-अरबी भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है- 'प्रेमिका से वार्तालाप करना', अर्थात ग़ज़ल का केंद्रीय विषय 'प्रेम' है। ग़ज़ल की उत्पत्ति की दृष्टि से विद्वानों में मतैक्यता नहीं है। उत्पत्ति को लेकर अनेक मत सामने आए हैं जैसे- किसी ने इसे 'ग़ज़ला' शब्द से उत्पन्न बताया जिसका अर्थ है- 'हिरण की आंखों की नजाकत और सौंदर्य', अर्थात हिरण की आंखों में जो नज़ाकत और सौंदर्य होता है वही सौंदर्य और नज़ाकत ग़ज़ल के भावों में होती हैं अतः कोमल और नाजुक भावों को अभिव्यक्त करने वाली विधा ग़ज़ल है। कुछ विद्वानों का कहना है कि अरब में 'ग़ज़ल' नामक एक व्यक्ति था जिसकी पूरी उम्र इश्क और मुहब्बत में गुजरी और वह हमेशा प्रेम एवं मस्ती की बातें करता था, इसलिए उसके के नाम पर इस विधा को ग़ज़ल कहा गया है, अर्थात प्रेम, सौंदर्य और नज़ाकत का काव्य ही ग़ज़ल है। नालंदा विशाल शब्दसागर में "फ़ारसी और उर्दू में श्रृंगार रस की कविता को ग़ज़ल कहा है।"1 वहीं डॉ. अर्शद जमाल ने ग़ज़ल को परिभाषित करते हुए कहां है- "ग़ज़ल का मतलब है औरतों से अथवा औरतों के बारे में बातचीत करना.....या माशूक से बातचीत करने का माध्यम।"2 ग़ज़ल के संदर्भ में अयोध्याप्रसाद गोगलिया जी का मत है- "ग़ज़ल का अर्थ है इश्किया या अशआर कहना, औरतों का वर्णन करना यानी वह कविता जिसमें मिलन-विरह, प्रेम-चाहत, कामना और आशा तथा निराशा का वर्णन हो।"3 ग़ज़ल के शाब्दिक अर्थ एवं परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि ग़ज़ल अर्थात सौंदर्य, नजाकत, प्रेम, विरह का वर्णन करने वाला काव्य।

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ग़ज़ल विधा के लिए भी कुछ अंग या तत्व अनिवार्य है। ग़ज़ल की सफलता का भवन छः तत्वों पर खड़ा होता है। ग़ज़ल की संरचना मुलत: शेरों पर आधारित है, जिसमें 'मिसरा'- ग़ज़ल की प्रत्येक पंक्ति, 'शेर'-

दो मिसरों से बनी हुई पंक्तियां, 'काफिया'- ग़ज़ल में पाई जाने वाली तुक या रदिफ से पहले आने वाला शब्द, 'रदिफ'- काफिया के बाद आने वाला स्थायी शब्द, 'मतला'- ग़ज़ल का पहला शेर जिसके दोनों मिसरों में रदिफ और क़ाफिया होता है। 'मक्ता'- ग़ज़ल का आखरी शेर। इन छः तत्व या अंगों पर आधारित ग़ज़ल का सौंदर्य एवं उसकी नज़ाकत होती है।

शोध-आलेख का विश्लेषण -

ग़ज़ल का प्रत्येक शेर अपने आप में पूर्ण अर्थ लिए होता है किंतु संपूर्ण ग़ज़ल एक भावात्मक प्रवाह निर्माण करती है। पारंपरिक रूप से देखा जाए तो ग़ज़ल प्रेम, सौंदर्य, विरह, आध्यात्मिक-अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है परंतु आधुनिक काल में ग़ज़ल का विषय-क्षेत्र व्यापक होकर वह सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विडंबना, आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष की संवेदना के साथ जुड़ गया है। हिंदी के प्रमुख ग़ज़लकारों या कवियों में नागार्जुन, कुंवर नारायण, शमशेर बहादुर सिंह, केदारनाथ सिंह, ने ग़ज़ल की भाव भूमि को समृद्ध किया किंतु ग़ज़ल को साहित्यिक विधा तथा आम आदमी एवं जनसंघर्ष की आवाज़ बनाने का महत्वपूर्ण कार्य दुष्यंत कुमार त्यागी जी ने किया है अर्थात दुष्यंत कुमार रचनात्मक परिवर्तन के पक्षधर के रूप में हिंदी ग़ज़ल साहित्य में उभर कर आए हैं।

हिंदी ग़ज़ल का क्रांतिकारी स्वर दुष्यंत कुमार का जन्म उत्तर प्रदेश के बिजनौर जिले में स्थित राजपुर कस्बे के समीप 'नवादा' नामक गांव में एक भूमिधर ब्राह्मण परिवार में 1 सितंबर 1933 को हुआ। दुष्यंत कुमार त्यागी हिंदी साहित्य में कवि, नाटककार, उपन्यासकार, तथा ग़ज़लकार के रूप में सुपरिचित हैं। उनके प्रमुख काव्य संग्रहों में 'सूर्य का स्वागत' (1957), 'आवाजों के घेरे' (1963), 'जलते हुए वन का वसंत' (1975), 'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह (1975) उल्लेखनीय रचनाएं हैं। 1975 में प्रकाशित उनका चर्चित ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप' में कुल 52 ग़ज़ल संग्रहित है जो जन सामान्य की पीड़ा एवं संघर्ष को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने में समर्थ है। 'साये में धूप' एक प्रतीकात्मक ग़ज़ल संग्रह है। 'साया' सामान्यतः सुरक्षा, शीतलता और आश्रय का बोध कराता है जबकि 'धूप' संघर्ष का संकेत है। ग़ज़ल संग्रह के माध्यम से दुष्यंत कुमार ने यह दर्शाया है कि आम आदमी किस तरह आश्रय के भीतर भी भूख, पीड़ा, दर्द, एवं सामाजिक तथा राजनीतिक विडंबना में पिसता जा रहा है। यही कारण है कि दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें प्रेम, सौंदर्य, विरह तथा राज दरबारों के श्रृंगारिक वर्णन से अलग जन सामान्य की पीड़ा को अभिव्यक्त करने वाली सशक्त ग़ज़लें है।

'साये में धूप' ग़ज़ल संग्रह में संकलित ग़ज़लें दुष्यंत कुमार की वैयक्तिक पीड़ा से उभरकर सामने नहीं आयी तो उसमें समाज के आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। यह पीड़ा सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विडंबना, भ्रष्टाचार तथा राजनीतिक छल और जनमानस के आर्थिक अभाव से उभर कर आयी है। संग्रह की पहली ही गजल निराशा, उदासी, घुटन, बेचैनी की भावनाओं के साथ आम आदमी की विवशता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं-

"तेरा निजाम है सिल, सिल दे ज़ुबां शायर को,
ये एहतियात ज़रूरी है, इस बहर के लिए।"4

आज की व्यवस्था के कारण समाज में चारों ओर अन्याय, अत्याचार और शोषण हो रहा है फिर भी सामान्य आदमी हो या शायर इस व्यवस्था में सच बोलता है तो वह अपराध के समान है। इस वास्तविक स्थिति को संग्रह के पहले ही ग़ज़ल के माध्यम से निर्भिडता के साथ दुष्यंत जी ने उजागर किया है। यहां राजेश जोशी की कविता 'मारे जाएंगे' की याद आती है।

भारतीय स्वतंत्रता के बाद भारत की तस्वीर बदलेगी ऐसी आस लगाए बैठे सामान्य लोगों के साथ दुष्यंत कुमार की भी यही सोच थी। स्वातंत्र्योत्तर भारत में कोई भूखा नहीं रहेगा, सभी को समान अधिकार मिलेंगे, राष्ट्र समृद्ध और संपन्न होगा, एकता प्रस्थापित होगी, राष्ट्र का विकास होगा, संस्कृति में बढ़ोत्तरी होगी, ऐसी चमचमाती तस्वीर सबों के आंखों में थी किंतु स्वतंत्र भारत की वास्तविक तस्वीर कुछ अलग ही नज़र आने लगी। यह वास्तविक स्थिति देखकर दुष्यंत कुमार भी संतुष्ट नहीं है क्योंकि स्वतंत्र भारत की वास्तविक तस्वीर में सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक अराजकता, असंतोष और अशांति चारों ओर फैली हुई है। इस नई सभ्यता में आम आदमी सुरक्षित नहीं है। वह अपने अधिकारों से परे जा रहा है। इस बदलती स्थिति का चित्रण उनके इस ग़ज़ल के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है-

"अब नयी तहजीब के पेशे-नज़र हम,
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं।"[5]

उनकी ग़ज़लें हमेशा ही आम आदमी की बेचैनी को व्यक्त करने वाली रही हैं। उन्हें पता है चिखने चिल्लाने से कुछ नहीं होगा फिर भी अपनी बात कहने के लिए वह सदा बेचैन रहते हैं। दुष्यंत जी मानवता के लिए जिये। मानवता के विरुद्ध कुछ होता देखकर वह अपने आप को शांत नहीं रख सकते थे उन्होंने कहा-

"ये ज़ुबां हमसे सी नहीं जाती,
जिन्दगी है कि जी नहीं जाती।"6

ग़ज़लकार की यही अभिलाषा रही है कि समाज में स्थित अन्याय, अत्याचार और आम आदमी का शोषण रुकना चाहिए।

दुष्यंत कुमार का काव्य केवल विरोध या शोर मचाने के लिए नहीं है वे रचनात्मक परिवर्तन के पक्षधर है। कवि के अनुसार वास्तविक क्रांति वह है जो व्यवस्था में बदलाव की दमखम रखता हो और जीवन की परिस्थितियों में सकारात्मक बदलाव लाता हो। अन्याय, अत्याचार, शोषण के कारण आम आदमी त्रस्त है जिसकी सूरत बदलने की चाह वह रखते हैं। उनकी प्रसिद्ध ग़ज़ल जो सबके ज़ुबां पर रहती है-

"सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए।"7

कवि लोकतंत्र को केवल सत्ता परिवर्तन का साधन नहीं मानते बल्कि उसे जनता की भागीदारी से जोड़ते हैं। उन्होंने अपने ग़ज़ल के माध्यम से हमेशा यही प्रयास किया है कि आम लोगों के जीवन में आने वाली समस्याएं सत्ताधारियों तक पहुंचनी चाहिए। उनका काव्य आम लोगों की दीन-हीन दशा का चित्रण करने वाला काव्य है। उन्होंने अभाव से लड़ने वाला वर्ग, उनकी व्यवस्था तथा सत्ताधारियों की खामोशी का तीव्रता के व्यंग्यात्मक शैली में करारा विरोध करते हुए कहा है-

"भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में है, जेरे बहस ये मुद्दआ।"8

वास्तविकता यह है कि सत्ताधारियों का पहला कार्य समाज में स्थित दीन-हीन, गरीब तथा आम लोगों की समस्याओं का समाधान करना। बावजूद इसके वह ऐसा न करते हुए निरंतर इसके विपरीत दिशा में आगे बढ़ते हैं । यह देखकर संवेदनशील साहित्यकार दुष्यंत कुमार जी बेचैन हो जाते है।

दुष्यंत कुमार की गजलों में प्रायः आम आदमी के जीवन में आने वाली समस्याओं को ही अभिव्यक्ति नहीं मिली अपितु उन समस्याओं का समाधान भी उन्होंने वर्णित किया है। उनकी ग़ज़ल आम आदमी की वेदना, पीड़ा, कसक, टीस तथा जनमानस के संपूर्ण जीवन की व्याख्या को प्रस्तुत करती है। उन्होंने वर्तमान समय में सत्ताधारियों का ध्यान जन-सामान्य की और आकृष्ट भी किया हैं। वे लिखते हैं-

"जिन्दगी एक खेत है,
और सांसें जरीब है।"9

दुष्यंत कुमार की यह ग़ज़ल मनुष्य के जीवन की व्याख्या करती हैं चाहे वह आम आदमी हो या सत्ताधारी हर किसी को अपने-अपने कर्तव्य के अनुसार काम करने की सीख देती है। दुष्यंत कुमार की कई ग़ज़लें जीवन की नश्वरता को तथा क्षणभंगुरता और सीमाबद्धता को व्यक्त करने वाली है क्योंकि समय की चेतावनी और कर्म की जिम्मेदारी को उनकी ग़ज़ल अत्यंत सघन और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है।

भाषा-शिल्प की दृष्टि से यदि देखें तो दुष्यंत कुमार की ग़ज़लें अत्यंत सरल, प्रभावशाली और संप्रेषणीय शैली में लिखी गई है। उन्होंने उर्दू ग़ज़ल के शिल्प को बनाए रखते हुए उर्दू-हिंदी मिश्रित भाषा के माध्यम से छोटे-छोटे शेरों द्वारा गहरी संवेदना को अभिव्यक्त किया है।

निष्कर्ष -

निष्कर्ष रूप में यही कहा जाएगा कि दुष्यंत कुमार की रचना 'साये में धूप' केवल ग़ज़ल संग्रह नहीं बल्कि समकालीन भारतीय समाज में स्थित आम आदमी की पीड़ा, दर्द, संत्रास एवं संघर्ष और उम्मीद का जीवंत दस्तावेज है। उनकी ग़ज़लें सीधा-सीधा सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विडंबना में भ्रष्टाचार के बीच पिसते हुए आम आदमी की समस्याओं को, न केवल उजागर करती है बल्कि उसके समाधान का मार्ग भी प्रशस्त करती है। दुष्यंत कुमार का यह ग़ज़ल संग्रह आम आदमी की पीड़ा के प्रतिरोध का स्वर है। अंततः उनकी ग़ज़ल हमें यह सिख देती हैं कि आम आदमी पीड़ित जरूर है पर पराजित नहीं।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. मधू खराटे, साठोत्तरी हिंदी ग़ज़ल, विद्या प्रकाशन, गुजैनी, कानपुर, पृ.सं. 10
2. डॉ. जयराम सूर्यवंशी, समय से संवाद, लोकमित्र प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली, पृ.सं. 113
3. डॉ. अविनाश वसंतराव कसांडे, ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार, समता प्रकाशन, रूरा, कानपुर, पृ.सं. 169
4. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ.सं. 13
5. वहीं, पृ. सं. 14
6. वहीं, पृ. सं. 45
7. वहीं, पृ. सं. 30
8. वहीं, पृ. सं. 21
9. वहीं, पृ. सं. 37

*****

हिन्दी गज़ल का सामाजिक परिदृश्य

प्रा डॉ मंगल मिलिंद कांबळे
विद्या प्रतिष्ठान का,
कला , विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय
विद्यानगरी, बारामती, जिला - पुणे 413133
Email - mksasane72@gmail.com
Mobile No – 9370125102

शोधालेख का सारांश :

आज की हिन्दी गजलों में सामाजिक संकीर्णता, सांप्रदायिकता, अंधविश्वास, अलगाववाद, सामजिंक व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर, सामाजिक मूल्यों का विघटन तथा सामाजिक होते हुए भी मनुष्य के एकाकीपन को अभिव्यक्त किया गया है। भौतिकवाद के पीछे दौड़ता आज का समाज संवेदनाहीन होता जा रहा है। उनकी संवेदनाएँ मृत हो चुकी है। भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण टूटते- बिखेरते रिश्ते और विश्वास आज के समाज का कटु सत्य है, जिन्हें नकारा नहीं जा सकता।

आज का मनुष्य समाज की चिंता न करते हुए सिर्फ अपने लिए जीता है। आज सामाजिक जीवन मूल्य गिरते जा रहे है। परिवारों का विघटन हो चुका है, मनुष्य मनुष्य से दूर जा रहा है। रिश्तों में बिखराव है, ऐसी स्थिति में आज के हिन्दी गजलकार अपना उत्तरदायित्व बखूबी निभा रहे है। आज की गजलें समाज का सच्चा दर्पण है, जो उसकी समस्याओं को उजागर कर मानवीय मूल्यों और बेहतर समाज के निर्माण का संदेश देती हैं।

बीज शब्द : गज़ल, सामाजिक यथार्थ, जीवन-मूल्य,जन-चेतना, सामाजिक विसंगति, विद्रोह का स्वर, सामाजिक मूल्य, अंध:विश्वास, अलगाववाद आदि।

प्रस्तावना :

गज़ल परंपरागत रूप से अरबी-फारसी की देन हो, लेकिन गज़ल आज हिन्दी साहित्य की एक सशक्त विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है। पिछले कुछ दशकों में हिन्दी गज़ल ने काव्य-जगत में अपनी अच्छी ख़ासी पहचान बनाई है। गज़ल का जन्म चाहे ईरान में हुआ हो लेकिन वह पोषित हिंदुस्तान में ही हुई। हिन्दी गज़ल की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसने समसामयिक कथ्यों को स्वीकार किया है और वह महफिलों से निकलकर जन-चेतना से जुड़ गई है। इसमें वर्तमान में जी रहे आदमी की पीड़ा और समस्याओं को स्वर मिला है। हिन्दी गज़ल आज के जन-जीवन को सही अभिव्यक्ति देने का माध्यम बन गई है। आज हिन्दी गजल प्रेम और वासना जैसे परंपरागत तत्वों को नकारते हुए समाज,राजनीति ,आर्थिक, संस्कृतिक, धर्म, शासन तथा सर्वहारा समाज की विसंगतियों का यथार्थ स्वरूप प्रतीकों और बिंबों के माध्यम से प्रस्तुत करती हुई दिखाई देती है। आज के गजल के स्वरूप पर डॉ.रतन कुमार पाण्डेय लिखते है- "मनुष्य के मस्तिष्क की कोई सीमा नहीं है। जनता से लेकर सम्पूर्ण समाज एवं देश की स्थितियों तक की प्रत्येक विसंगति को हिन्दी गजलों में अभिव्यक्ति मिली है। वैयक्तिक, सामाजिक,राजनीतिक,आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक विसंगतियों के अतिरिक्त हिन्दी गजलकारों ने जीवन के विविध आयामों पर कलम चलाई है"।[1]

गज़ल उर्दू काव्य का सर्वश्रेष्ठ अनूठा और सशक्त काव्य रूप है। "इसका जन्म फारसी भाषा में हुआ। फिर उर्दूवालों नें इसको अपनाया और इसने हमारे देश में आकर अपने रचनात्मक स्वरूप के शिखर बिन्दुओं को छुआ"।[2] हिन्दी गज़ल का उद्भव हिन्दी साहित्य के आदिकाल में हुआ और इसका आरंभ अमीर खुसरो ने किया ऐसा माना जाता है। अमीर खुसरो के बाद हिन्दी गज़ल के विकास की दृष्टि से एक अंधकारमय युग रहा। भारतेन्दु तथा बाद में गजल काव्य रूप का विकास हुआ। उसका सृजन 1960 ई. के बाद से ही आरंभ हुआ। शमशेर से ही प्रभावित होकर दुष्यंतकुमार ने गज़ल के क्षेत्र में पदार्पण किया। दुष्यंतकुमार के बाद हिन्दी गज़ल के विकास में कई गजलकारों ने अपना योगदान दिय, उनमें त्रिलोचन, भवानीशंकर, चंद्रसेन 'विराट', कुँवर बेचैन, गोपालदास सक्सेना, नीरज, रामवतार त्यागी, राजकुमार कृषक,डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल, जहीर कुरैशी आदि उल्लेखनीय है।

शोधालेख का विश्लेषण :

आज का मानव अपनी संस्कृति, सभ्यता को भूलकर दिखावे को अपना वैभव मानकर बैठ गया है। वह गाँव की मिट्टी को छोड़ शहर की गंदगी में अपना अस्तित्त्व खोज रहा है। "आदमी की सरलता, सहजता, निश्चलता महानगरीय विद्रूपताओं में विलीन होती जा रही है। कंक्रीट के उगते जंगलों में मानवीय रिश्ते जंगली जानवरों जैसी प्रवृत्तियों में बदलते जा रहे है।, दोस्ती और

भाईचारे के प्राचीन अर्थ खंडित हो रहे है। छल,प्रपंच, स्वार्थ और विश्वासघात के किटाणु वातावरण में फैल रहे है। खोखली मुस्कान, भौतिक आकर्षण, विषक्त वातवरण ,भीड़-भाड़ और बढ़ते हंगामे के बीच अपनी पहचान खोता जा रहा है आदमी"।[3]
इस संबध में डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल कहते है –

"खेत खाली पड़े हुए है यार
आदमीयत में आदमी बो दो"[4]

आज की हिन्दी गजलों में सामाजिक यथार्थ का सर्वांगीण चित्रण हो रहा है। आज हमारे समाज में बिखराव की स्थिति निर्माण हुई है। मानवीय संबन्धों में टकराव देखने को मिल रहा है। आज का मनुष्य सुख की चाह में निरंतर दौड़ रहा है। आज रिश्ते तो बन रहे है परंतु उयांमेन भी शिकायतें हैं –

"इतना हुआ कि आ गई सच्चाई सामने
रिश्ते शिकायतों में गँवाएँ तो क्या हुआ"।[5]

सन 1975 में प्रकाशित दुष्यंत कुमार का गज़ल संग्रह 'सायेँ में धूप' इसकी काफी चर्चा रही है। इसमें उनकी बावन गजलें संकलित है। दुष्यंत कुमार ने इस संग्रह में हिन्दी और उर्दू को निकट लाने का सफल प्रयास किया, जिसे वे इस प्रकार स्वीकारते है, "मैं स्वीकार करता हूँ कि उर्दू और हिन्दी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती है तो उनमें फर्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नियत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा-से-ज्यादा करीब ला सकूँ। इसलिए ये गजलें उस भाषा में कही गई है, जिसे मैं बोलता हूँ"।[6]

दुष्यंत कुमार जब सामान्य जनता को लाचारी,बेबसी और निरीहता में पड़ा हुआ देखते है तो उनकी पीड़ा को वे भली-भांति समझते भी है। ऐसे समाज का चित्रण भी उनकी गजलों में हुआ है –

"यहाँ तो सिर्फ गूंगे और बहरे लोग बस्ते है
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा"।[7]

दुष्यंत कुमार सामाजिक परिस्थितियों और आम आदमियों के यथार्थ से जुड़े विषयों पर लेखनी चलाते है जो समाज में भयावह रूप ले रही है। संवेदनाहीन और मानवीय संवेदनाओं के ह्रास पर मुखर होकर कहते है। यहाँ जनता भूख से त्रस्त है, रोटी के लिए गुहार लगा रही है। अपना हक और अधिकार मांग रहा है मगर सत्ता में बैठे शासक को कोई परवाह नहीं है वे सिर्फ दिल्ली में बहस चला रहे है,या कर रहे है शायद दिखाने के लिए ही उसकी बहस है बल्कि उसका कोई तत्काल उपाय नहीं कर रहा है। यह सब हालात देखकर त्रस्त होकर दुष्यंत कुमार कहते है –

"हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि यह सूरत बदलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग,लेकिन आग जलनी चाहिए"।[8]

आज की हिन्दी गजलों में सामाजिक संकीर्णता, सांप्रदायिकता, अंधविश्वास, अलगाववाद, सामजिंक व्यवस्था के प्रति विद्रोह का स्वर, सामाजिक मूल्यों का विघटन तथा सामाजिक होते हुए भी मनुष्य के एकाकीपन को अभिव्यक्त किया गया है। भौतिकवाद के पीछे दौड़ता आज का समाज संवेदनाहीन होता जा रहा है। उनकी संवेदनाएँ मृत हो चुकी है। भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण टूटते- बिखेरते रिश्ते और विश्वास आज के समाज का कटु सत्य है, जिन्हें नकारा नहीं जा सकता। आज का मनुष्य समाज की चिंता न करते हुए सिर्फ अपने लिए जीता है। आज का मनुष्य सामाजिक संबन्धो को भूल चुका हैं, वह पत्थर हो चुका है। इस संबंध में डॉ. अग्रवाल की गजल के यह शेर देखिए –

"रोगी विश्वासों की दुनिया अनुमानों पर निर्भर है,
भौतिकता के नागपाश में कीमत क्या मुस्कानों की"।[9]
"यहाँ साधनों पर सफलता है निर्भर,
न हो तेल तो दीप जलता नहीं है"।[10]

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि आज की हिन्दी गजलों में सामाजिकता का पूरा अंकन हुआ हम देखते है। समाज में व्याप्त विषमता, गरीबी, अन्याय तथा अत्याचार, उत्पीड़न और अभाव में जी रहा आज का समाज आज की हिन्दी गजलों के केंद्र में है। आज सामाजिक जीवन मूल्य गिरते जा रहे है। परिवारों का विघटन हो चुका है, मनुष्य मनुष्य से दूर जा रहा है। रिश्तों में बिखराव है, ऐसी स्थिति में आज के हिन्दी गजलकार अपना उत्तरदायित्व बखूबी निभा रहे है। धर्म तथा धर्म के नाम पर अपना पेट पालनेवाले धर्म के ठेकेदार, भ्रष्टाचार, महंगाई,और सत्ता में मदमस्त नेताओं पर भी आज की गजल प्रहार करती है।

समाज में अनेक कुप्रथाएँ प्रचलित है, जिनमें दहेज, शोषण इन पर भी आज का गजलकार अपनी कलम चला रहा है। आज आवश्यकता है सामाजिक एकता तथा मानवता की। समाज में व्याप्त गरीबी तथा अभावग्रस्तता को अनेक गजलकारों ने अपनी गजलों के माध्यम से वाणी दी है। सामाजिक विसंगतियाँ, गरीब और वंचित सामज की आवाज नारी चेतना, पर्यावरण तथा आधुनिक चुनौतियों को आज की हिन्दी गजलों में हम देखते है। संक्षेप में आज की गजलें समाज का सच्चा दर्पण है, जो उसकी समस्याओं को उजागर कर मानवीय मूल्यों और बेहतर समाज के निर्माण का संदेश देती हैं।

संदर्भ सूची –

1. हिन्दी गजल और गजलकार, डॉ. मधु खराटे, पृ-19
2. हिन्दी गजल,डॉ.रोहिताश्व अस्थाना, पृ- 19
3. आदमी है कहाँ, डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ- 6
4. भीतर शोर बहुत है, डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ- 34
5. रोशनी बनकर जिओ, डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ- 23
6. सायेँ में धूप, दुष्यंत कुमार त्यागी,पृ-7
7. सायेँ में धूप, दुष्यंत कुमार त्यागी,पृ-15
8. सायेँ में धूप, दुष्यंत कुमार त्यागी, पृ-30
9. शिकायत न करो तुम,डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ- 29
10. सन्नाटे में गूँज, डॉ.गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ- 43

*****

लोकगीत और संस्कृति का समन्वय

डॉ. प्रिया ए.
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कैथलिकेट कॉलेज पत्तनंतिट्टा, केरल-689645
मोबाईल: 9946318613
E-mail: priyauday111@gmail.com

शोधसार

भारत का सांस्कृतिक परिदृश्य जितना विशाल है, उतना ही विविध भी। इस विविधता का सबसे सुंदर और जीवंत आयाम है - लोकगीत। ये ऐसे संगीत–रूप हैं जो किसी समुदाय की सामूहिक स्मृति, अनुभव, भावनाओं और परंपराओं का सहज, जीवंत और मौखिक अभिव्यक्ति-पथ हैं। लोकगीत मात्र गीत नहीं होते, बल्कि वे एक संपूर्ण सांस्कृतिक इतिहास, सामाजिक संरचना, मान्यताओं और जीवन-शैली को अपने भीतर समेटे हुए होते हैं। किसी समाज को समझने के लिए वहाँ प्रचलित लोकसंगीत को सुनना और आस्वादन करना आवश्यक हैं। क्योंकि लोकगीतों में उस समाज की धड़कनें, उसकी खुशियाँ, दुख, संघर्ष, प्रेम और विश्वास सब सुनाई देते हैं। मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसकी भावनाएँ, अनुभव, विश्वास और जीवन-दृष्टि भी विकसित होती गई। इन्हीं अनुभवों की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति से लोकसाहित्य का जन्म हुआ। लोकगीत लोकसाहित्य की सबसे सशक्त और जीवंत विधा हैं। ये गीत किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं होते, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी सामूहिक स्मृति और अनुभव से जन्म लेते हैं। लोकगीतों में किसी समाज की संस्कृति, परंपराएँ, रीति-रिवाज, सुख-दुःख, आस्था, संघर्ष और जीवन-दर्शन संपूर्णता में अभिव्यक्त होते हैं। इस प्रकार लोकगीत और संस्कृति का संबंध अत्यंत गहरा और अविच्छिन्न है। संस्कृति किसी समाज की आत्मा होती है, और लोकगीत उस आत्मा की स्वर-लहरियाँ हैं। जहाँ शास्त्रीय साहित्य शिक्षित वर्ग तक सीमित रहता है, वहीं लोकगीत जनसामान्य की वाणी होते हैं। वे खेतों में काम करते किसान के होठों पर, झूला झूलती स्त्रियों की किलकारियों में, विवाह और पर्व-त्योहारों की रौनक में तथा जीवन के हर मोड़ पर गूंजते हैं।

बीज शब्द: लोकगीत, संस्कृति, परंपरा, संरक्षण, लोकजीवन, सामूहिकता, मनोरंजन।

शोध आलेख:

'लोक' का अर्थ है - जनसामान्य, और 'गीत' का अर्थ है - गायन। इस प्रकार लोकगीत वे गीत हैं जो सामान्य जनता द्वारा रचे, गाए और संरक्षित किए जाते हैं। इनका रचनाकार अज्ञात होता है। लोकगीतों की भाषा सरल, सहज और भावप्रधान होती है। इनमें अलंकारों या कठिन शब्दावली का आग्रह नहीं होता, बल्कि भावों की सच्चाई और अनुभूति की गहराई प्रमुख होती है। लोकगीतों की विशेषता यह है कि वे लिखित रूप में नहीं, बल्कि मौखिक परंपरा से जीवित रहते हैं। समय और स्थान के अनुसार इनमें परिवर्तन भी होता रहता है, जिससे वे सदा जीवंत बने रहते हैं।

संस्कृति किसी समाज की जीवन-शैली, आचार-विचार, विश्वास, कला, साहित्य, भाषा, धर्म और परंपराओं का समग्र रूप होती है। यह वह ढांचा है जो मनुष्य के सामाजिक व्यवहार को दिशा देता है। संस्कृति स्थिर नहीं होती; यह समय, परिस्थितियों और सामाजिक परिवर्तनों के साथ विकसित होती रहती है। लोकगीत संस्कृति के संवाहक होते हैं। वे समाज की सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखते हैं और अगली पीढ़ी तक पहुँचाते हैं। बिना किसी औपचारिक शिक्षा के भी लोकगीत संस्कृति का ज्ञान प्रदान करते हैं। लोकगीत और संस्कृति का परस्पर संबंध अटूट है। लोकगीत और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। संस्कृति लोकगीतों को जन्म देती है और लोकगीत संस्कृति को जीवित रखते हैं। किसी भी क्षेत्र के लोकगीतों को सुनकर वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियाँ, सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति और धार्मिक विश्वासों का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

लोकगीत वे गीत हैं जो किसी क्षेत्र, समुदाय या जाति के लोगों द्वारा अपनी दैनिक जीवन स्थितियों, उत्सवों, रीति-रिवाजों, ऋतुओं और भावनात्मक अनुभवों को व्यक्त करने के लिए रचे जाते हैं। लोकगीत की विशेषता है कि मौखिक परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी संचरित होना। सरल भाषा और सहज लय के साथ इसे गाया जाता है। किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि सामूहिक रचना को इसमें सम्मिलित किया जाता है। इन गीतों में संस्कारों और सामाजिक रीतियों से गहरा जुड़ाव होता है। लोकगीतों की उत्पत्ति मानव सभ्यता की आरंभिक अवस्थाओं में ही हो गई थी, जब मनुष्य प्रकृति के निकट रहता था और अपनी भावनाएँ गीतों द्वारा व्यक्त करता था। जानवरों की आवाज़ें, नदी की छल-छल, हवा की सरसराहट - सबने मिलकर मनुष्य के भीतर संगीत का बीज बोया।

धीरे-धीरे कृषि आधारित समाजों के विकसित होने पर फसल कटाई, वर्षा, मेले, विवाह, जन्म आदि जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर गीत गाए जाने लगे। यही धीरे-धीरे लोकगीतों का रूप लेने लगे।

लोकगीत किसी समाज की *सांस्कृतिक विरासत का आधार* हैं। लोक संस्कृति में भाषा, कला, परंपरा, विश्वास, उत्सव, व्यवहार और मूल्य सम्मिलित होते हैं। जो लोकगीतों के माध्यम से जीवित रहती है। इनके माध्यम से संस्कृति का संरक्षण ही नहीं, बल्कि उसका निरंतर पुनर्सृजन भी होता है। **लोकगीतों के द्वारा परंपराओं का संरक्षण होता है। जैसे -** पहाड़ी क्षेत्रों के लोकगीतों में प्रकृति, नदियों, पर्वतों और विरह की भावना अधिक मिलती है। राजस्थान के लोकगीतों में वीरता, शौर्य और मरुस्थलीय जीवन की झलक दिखाई देती है। बिहार और पूर्वांचल के लोकगीतों में कृषि, पारिवारिक संबंध और सामाजिक संघर्ष प्रमुख हैं।

लोकगीतों के प्रकार

1. संस्कार गीत

संस्कार गीत जीवन के विभिन्न संस्कारों से जुड़े होते हैं - जन्म, मुंडन, विवाह और मृत्यु। विवाह गीत जैसे सोहर, कजरी, मंगल गीत आदि भारतीय संस्कृति की पारिवारिक संरचना और सामाजिक मूल्यों को दर्शाते हैं।

2. ऋतु गीत

ऋतु गीत प्रकृति और ऋतुओं से जुड़े होते हैं। फाग, होरी, सावन के गीत आदि में वर्षा, प्रेम, उल्लास और प्रकृति का सुंदर चित्रण मिलता है। ये गीत मानव और प्रकृति के गहरे संबंध को प्रकट करते हैं।

3. श्रम गीत

खेतों, जंगलों, खदानों और समुद्र में काम करने वाले श्रमिकों द्वारा गाए जाने वाले गीत श्रम गीत कहलाते हैं। ये गीत सामूहिक श्रम को आनंददायक बनाते हैं और श्रमिक संस्कृति को उजागर करते हैं।

4. धार्मिक और भक्ति लोकगीत

भजन, कीर्तन, देवी-देवताओं से जुड़े लोकगीत लोगों की धार्मिक आस्था और आध्यात्मिक संस्कृति को व्यक्त करते हैं। इनमें लोकधर्म और लोकआस्था की झलक मिलती है।

5. वीर और ऐतिहासिक लोकगीत

इन गीतों में लोकनायकों, स्वतंत्रता सेनानियों और ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन होता है। आल्हा, पाबूजी की फड़ जैसे गीत लोकइतिहास को संरक्षित करते हैं।

लोकगीत समाज का दर्पण होते हैं। इनमें स्त्री-पुरुष संबंध, पारिवारिक संरचना, जाति व्यवस्था, गरीबी-अमीरी, शोषण और संघर्ष जैसे विषय स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। विशेष रूप से स्त्रियों के लोकगीत उनके मनोभावों, पीड़ा, आशा और संघर्ष को अत्यंत सजीव रूप में प्रस्तुत करते हैं। ससुराल की कठिनाइयाँ, मायके की याद, पति का परदेश जाना - ये सभी भाव लोकगीतों में सहजता से व्यक्त होते हैं। इस प्रकार लोकगीत सामाजिक यथार्थ का सशक्त दस्तावेज हैं।

लोकगीतों में स्त्रियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अधिकांश लोकगीत स्त्रियों द्वारा ही रचे और गाए गए हैं। ये गीत स्त्री जीवन के अनुभवों, भावनाओं और संघर्षों की अभिव्यक्ति हैं। स्त्रियों के लोकगीतों में जहाँ एक ओर प्रेम, सौंदर्य और उल्लास है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक बंधन, पीड़ा और असमानता की मार्मिक अभिव्यक्ति भी है। इस दृष्टि से लोकगीत स्त्री संस्कृति के सशक्त माध्यम हैं। इनमें जीवन के प्रत्येक संस्कार का चित्रण मिलता है - जन्म के समय सोहर या लोरियाँ, विवाह में मंगलगीत, फसल कटाई पर कजरी, फगुआ और गीदड़, नदियों, पर्वतों और पेड़ों से जुड़े गीत ये गीत परंपराओं को जीवित रखते हैं और नई पीढ़ी को अपने सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ते हैं।

लोकगीत सामूहिक पहचान का प्रतीक होते हैं। हर क्षेत्र, हर भाषा और हर समुदाय के अपने लोकगीत होते हैं - इन गीतों से क्षेत्रीय संस्कृति और पहचान स्पष्ट होती है। सामाजिक जीवन का चित्रण भी इसमें होता है। लोकगीतों में इतिहास का संरक्षण होता है। इनमें ऐतिहासिक घटनाएँ भी दर्ज हैं। मध्य भारत की आल्हा-उदल गाथाएँ, पंजाब के युद्ध गीत, असम के बिहू गीत - इन सबमें इतिहास का लोक स्वरूप सुरक्षित है। ये गीत इतिहास का वह रूप दिखाते हैं जो आम लोगों की दृष्टि से जन्मा है। लोकगीत सामाजिक मूल्यों **के** प्रतिबिंब हैं। लोकगीतों में समाज के मूल्य, नैतिकता, संबंधों की मर्यादाएँ, प्रेम, त्याग, संघर्ष आदि बड़े सुंदर

ढंग से व्यक्त होते हैं। इन गीतों से पता चलता है कि एक समाज किन बातों को आदर्श मानता था - जैसे नारी की मर्यादा, पुत्र-विरह, दाम्पत्य प्रेम, त्याग, श्रम, एकता और प्रकृति सम्मान।

भारतीय संस्कृति में लोकगीतों की अहम भूमिका होती हैं। लोकगीत के माध्यम से भाषा और बोलियों का संरक्षण होता है। लोकगीत विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं को जीवित रखते हैं। बोली-विशेष की अनूठी ध्वनियाँ और शब्दावली लोकगीतों के कारण पीढ़ियों तक संरक्षित होती हैं। इसमें सामूहिकता की भावना निहित है। लोकगीतों का गान प्रायः समूह में होता है। इससे सामाजिक एकता, सहयोग और सामूहिक सौहार्द बढ़ता है। इनमें सांस्कृतिक विविधता और एकता का तत्व विद्यमान है। भारत की 'विविधता में एकता' की अवधारणा को लोकगीतों से बेहतर कोई नहीं समझा सकता। हर क्षेत्र की अपनी धुन है, अपना अंदाज़ है - फिर भी सभी गीत भारतीय संस्कृति की एक धार में बहते दिखाई देते हैं। लोकगीत मनोरंजन का माध्यम भी बनते हैं। प्राचीन काल में जब मनोरंजन के साधन सीमित थे, तब लोकगीत ही लोगों को आनंद देते थे। आज भी ग्रामीण जीवन में लोकगीत सामूहिक मनोरंजन का प्रमुख माध्यम हैं। लोकगीत शिक्षात्मक भूमिका भी निभाते हैं। कई लोकगीत जीवन-मूल्यों की शिक्षा देते हैं - सहनशीलता, साहस, प्रेम, भाईचारा, त्याग, प्रकृति-प्रेम, श्रम, संतोष आदि।

शोध आलेख का विश्लेषण:

आज के युग में जहाँ तकनीक और ग्लोबल संस्कृति का प्रभाव बढ़ रहा है, वहाँ लोकगीत कई चुनौतियों से जूझ रहे हैं। लोकगीत और आधुनिक संगीत का मेल आज दिखाई देता है। कई कलाकार लोकधुनों को आधुनिक संगीत के साथ मिलाकर नए रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। लोकसंगीत की लोकप्रियता वैश्विक मंच पर भी पहुँच गई हैं। आज डिजिटल प्लेटफार्मों - यूट्यूब, स्पोटिफै, सोशल मीडिया - पर लोकगीतों के नए श्रोता बन रहे हैं।

निष्कर्ष:

लोकगीत हमारी सांस्कृतिक नींव हैं, लेकिन इनके संरक्षण की आवश्यकता जरूरी है। आधुनिक संगीत का बढ़ता प्रभाव, युवाओं का पारंपरिक कला रूपों से दूर होना, मौखिक परंपरा का धीरे-धीरे समाप्त होना, स्थानीय कलाकारों का आर्थिक संघर्ष आदि। चुनौतियाँ पारंपरिक लोकगीतों के सम्मुख उपस्थित है। लोकगीत मानव जीवन की मनोवैज्ञानिक गहराइयों को समझने का साधन भी हैं। लोकगीत किसी भी समाज की जीवंत संस्कृति का वह स्वरूप हैं जो युगों से मनुष्यों के हृदय को स्पंदित करते आए हैं। वे हमारी पहचान हैं, हमारी जड़ें हैं और हमारे इतिहास के संगीतात्मक प्रस्तुति है। लोकगीतों में न सिर्फ भावनाएँ हैं, बल्कि संस्कृति का सार भी छिपा है - भाषा, परंपरा, आदर्श, उत्सव, संघर्ष, प्रेम, प्रकृति और जीवन। आज जब आधुनिकता तेजी से फैल रही है, तब लोकगीत हमें यह याद दिलाते हैं कि हमारी असली शक्ति हमारी जड़ों में है। इन गीतों का संरक्षण करना सिर्फ सांस्कृतिक जिम्मेदारी नहीं, हमारे अस्तित्व की भी आवश्यकता है। लोकगीत संस्कृति की वह नदियाँ हैं, जिनसे हम सभी पीढ़ियाँ निरंतर ऊर्जा और पहचान पाती रही हैं और पाती रहेंगी।

संदर्भ

1. डॉ. दिनेश्वर प्रसाद - लोक साहित्य और संस्कृति - जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद - द्वि.सं. 2018
2. डॉ. रामनरेश त्रिपाठी - लोक गीत - राजकमल प्रकाशन - प्र.सं. 1981
3. डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी - हिंदी लोक गीत - वाणी प्रकाशन, दिल्ली - द्वि.सं. 1978
4. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय - लोक साहित्य का विवेचन - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - प्र.सं. 1985
5. डॉ. सत्येन्द्र - लोक गीत और लोक जीवन - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - प्र.सं. 1980
6. डॉ. स्यामसुंदर दास - लोक संस्कृति और लोक साहित्य - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - प्र.सं. 1983
7. डॉ. शिवकुमार मिश्र - लोक साहित्य परंपरा और प्रवृत्ति - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - प्र.सं. 1992

*****

आसमान से आगे की बहरती सोच- राजेश रेड्डी के ग़ज़लों के संदर्भ में....

डॉ.आरिफ गफ़ुर जमादार
यु. ई. एस. महिला महविद्यालय,
सोलापुर

शोधालेख का सार -

साहित्य अपने पथ की अखंडित रौशनी है। साहित्य का महासागर अनेक विद्यानुमा साहित्य अपने पथ की अखंडित रौशनी मा बूंदों का रेड्डी का ग़ज़ल संग्रह आसमान से आगे उसी एकांद बिंदू के मानीद है जिसमें मनुष्य जीवन की रहबरी छिपी हुई है। मनुष्य जीवन का संचय उनकी भावनाओं, व्यवहार और उसके उस कर्म जीवनी की व्याख्या होती है जो बिने हुए पथ के चित्रों से उस पथ पर आने वाले राहगीर को उसके सही-मा-गलत होने का प्रमाण दे सके। साहित्य को पढ़ना बस! जीवन के कतार में खड़े होना होता है और उसे संमअना कतार से अलग होकर अपनी जगह बनाना। वर्तमान के समान व्यवहार में बँटवारे के मिजाज को रोकने का काम साहित्य की वाणी ही कर सकती है। इसी तथ्य को 'देखन में छोटे लगे घाव करे गंभीरा'ग़ज़ल के दो पंक्तियों में सफलतम देखा जा सकता है। इसी जीवन रिश्तों को समझाने का प्रयत्न गजलकार राजेश रेड्डी ने अपने इस कृति में किया है।

बीज शब्द: ग़ज़ल, सोच, प्रेम, समाज, आसमान।

शोध विषय विस्तार -

साहित्य को समाज व्यवहार की व्याख्या कहा जाता है। साहित्य की वाणी समय के प्रभाव में अपने आपको परिवर्तित करती हुई हर समय दिखाई देती है। अगर हम साहित्य को मनुष्य जीवन व्यवहार के आदर्श या फिर पथ दर्शिका माने तो जब से मनुष्य है तब से प्रकृति ने किसी-न-किसी वावणी में मनुष्य जीवन व्यवहार की व्याख्या करते हुए दिखाई देती है।

साहित्य का निर्माण हित' के उद्देश्य को लेकर ही हुआ है। इस आधार पर किसी भी व्यवहार की वाणी को साहित्य का नाम देना औचित्य लगता है। बस, वाणी में फर्क तब आता है जब हितार्थवाणी विधात्मक रूप नेकर नियमों में बंदिश्त होने लगती है। 'ग़ज़ल' उसी विधात्मक रूप का आकार है। वैसे ग़ज़ल के व्युत्पत्ति के संदर्भ में अनेक तर्कों का प्रयोग होता है, जैसे "ग़ज़ल मूलतः फारसी भाषा की काव्यगत शैली है तथा महोब्बत के जज्बातोंं की अभिव्यक्ति है। महोब्बत का अर्थ केवल इंसानी प्रेम से ही नहीं है बल्कि सर्वशक्तिमान ईश्वर जो इस सृष्टि के पालनकर्ता है उनके प्रति असीम प्रेम भी है। यहाँ फारसी साहित्य की यह बात पुष्टि करती है कि, फारसी साहित्य में 'इश्के-ए- हकीकी आलौकिक प्रेम के नाम से जाना जाता है। वही 'इश्के-ए-मजाजी' को लौकिक प्रेम के नाम से जाना जाता है। ग़ज़ल एक फारसी भाषा की काव्यगत शैली है जिसका प्रयोग लौकिक व पारलौकिक दोनों ही प्रेम को दर्शाने के लिए किया गया है।"[1]

प्रेम मानव जीवन का अमर तत्व है। अगर हम प्रकृति के अन्य जिवों की तुलना मानव जीवन के उसके नायबीयत से करें तो हमें इस बात का संदर्भ मिलता है कि, 'प्रेम ही वह तत्व है जिससे मनुष्य अपने अमर होने का प्रमाण ढूंढ सकता है"-

किसको रोक सकी है धरती
सब हैं राही दूर गगन के
दोस्त लिपटते है यूँ हमसे
पेड़ हो जैसे हम चन्दन के" [2]

यकीनन जब मनुष्य को उसे छूकर चलने वाली हवा अपने में प्रेम, मोहब्बत, उल्फत, अपनापन आदि आत्मीयता की बातें लेकर चलती है-तो मरी-निर्जीव जमीं को भी फिर-से हरी-भरी कर गुजरती है-

" जब अपने गुनाहों का खयाल आता है मुझको,
लगता है हर एक शख्स फरिश्ता मेरे आगे
कुछ देर तो हँस लेने दे ऐ जिंदगी मुझको
अब छोड़ भी ये रोज का रोना मेरे आगे।" [3]

राजेश रेड्डी के ग़ज़लो में परम्परागत महबूब से बगावत है। उनके ग़ज़लो में घर-आँगन की वह जिंदगी है जो आम चलते राहों में दिखाई देती है। आज प्रेम वह है जो इन्सानी काया में इन्सानी माया को बढ़ावा दे सके, यह प्रेम जाति से, पंथ से, वर्ग

से, लिंग से, तबके से, स्तर से, समय से, वर्ण से, आयु से, रंग से, रूप से, कद-काठी से, संस्कृति से अलग होकर बस! मनुष्य के प्रतिबिम्ब का रहे। यही चाहत ग़ज़लकार के लब्जों में वर्णित होती हुई दिखाई देती है।

ग़ज़ल का निर्माण 'इराण की जमीं से फारस की नींव पर खड़ी हुई दिखाई देती है। जिसका मूल उद्देश्य इश्क से परमात्मा के अंश से एक साथ होना है।' इक्कीसवीं सदी के प्रभाव में और समय के परिवर्तन में ग़ज़ल ने भी अपना आईना बदला हुआ नज़र आता है। ऐसे में राजेश रेड्डी के ग़ज़लों में समय के मिजाज पर समाज के व्यवहार को दर्शाने का प्रयत्न है- इसमें वह पुराना ताक नहीं जिसमें 'इश्के-ए-हकीकी' से 'इश्क़-ए-मीजाजी' का रास्ता ढूंढा जाए बल्कि, इसमें जीवन की वास्तविकता को भावशब्दों का सहारा बनाया गया है; जिसमें बँटती हर शब्द सीरत को देखा जा सकता है-

" दुआ मरने की माँगी जीस्त की ख़्वाहिश निकल आयी
न जाने कैसे तपती धूप में, बारिश निकल आयी
समझते थे हम अपनी मौत को इक हादसा अब-तक
मगर तफ्तीश में वो कत्ल की साजिश निकल आयी।" [4]

यकीनन गज़लकार राजेश रेड्डी के गज़लों में वर्तमान जीवनियों की वह फिक्र नज़र जाती है, जिसमें 'कलम जीवन की सहोदर' वाली कहावत नजर आती है।

प्राकृतिक जीव शक्ति में जब हम नजरें दौड़ाते है तो हमें देखने को मिलता है कि, 'जहाँ दो-चार अनाज के दाने पड़े होते है वहाँ प्यासे-भूखे पक्षियों का हुजूम नजर आता है लेकिन, ऐसे कुछ पंक्षी उससे अलग ही होते है जो अपने-आप में आसमान की उड़ान ले-के चलते है, उनकी दुनिया पाबंदियों से मुक्त होती है; उनकी अपनी निजी पांबदी आसमान की हद होती है- वे आसमान को अपना खजाना मानते है उनकी रफ्तार मुकद्दर को परास्त करने वाली होती है-

है फिक्र नहीं मुझको ठुकरा दे अगर दुनिया
रहती है हमेशा ही दुनिया मेरी ठोकर में।" [5]

------×------

"निकलता तो है आदत के मुताबिक रोज ही सूरज
नये दिन का मगर चेहरा कहाँ कुछ और होता है,
फ़क़त दो-चार तिनको से बसेरा अब नहीं बनता
परिन्दों के लिए अब आशियाँ कुछ और होता है
समझ पाना किसी इन्सान के सच को है नामुमकीन
अयाँ कुछ और होता है, निहाँ कुछ और होता है।" [6]

साहित्य की वाणी को हम जब-तक परिवर्तन या क्रांति के रूप सून-समझ नहीं पाएगें तब-तक जलधार के उपज को प्रमाणित नहीं कर पाएंगे।

इतिहास में अगर हम साहित्य से परिवर्तन के प्रमाण खोजते है तब हमें सबसे बड़ा प्रमाण 'संत तुलसीदास' और 'रत्नावली' का प्राप्त होता है। मगर 'रत्नावली' की वाणी को 'संत तुलसीदास' आत्मबोध परिवर्तन के शक्ल में न लेते तो 'रामचरितमानस' का आदर्श आज हमारे व्यवहार में पथदर्शक न बनता। इस प्रमाण से हम साहित्य को परिवर्तन का सामर्थिक माने तो गलत न होगा-

"हम बुरे लगते है आईने को
हम को लगता है बुरा आईना
आप अपने को बदलने के बजाय
लोग ले आये नया आईना।" [7]

राजेश रेड्डी की ग़ज़लाभिव्यक्ति सूफियाना की तरफ झुकाव वाले नजर आते है। उनके ग़ज़लों में जीवन के टकराव से जन्मी अभिव्यक्ति है, उनका केंद्रीय विचार मनुष्य के व्यवहार से जन्मी समयदर्शिता के साथ भविष्य की व्याख्या करते हुए दिखाई देता है। मनुष्य के चहल-कदमी में जब तक आपसी लगाव,ज़िंदा-दिली, अपनत्व, ममत्व न हो वह पूरी तरह अर्थ-हिन अलगाव और नकारता को जन्म देती हुई बनती है। जिस ख्वाब से प्रकृति ने इस ज़मीं को सजाया या संजोया होगा वह आज स्वंय प्रश्नांकित होगी-

"निकले अपने तमाम ख्वाब ग़लत
जिंदगी का हुआ हिसाब ग़लत
जो भी नाकाम है जमाने में
उनके लगते है कायमाब गलत
ठीक अब वो है जो दिमाग़ कहे
दिल में रक्खी हुई किताब गलत
फिर जमाना वहीं पे लौट आया
हो गये सारे इन्कलाब गलत।" [8]

राजेश रेड्डी के ग़ज़लों को समझने के लिए ज़ेहन की विशालता आवश्यक है। जहॉं पर बंदिश गलियों का मोड़ आता है वहॉं पर ग़ज़लकार की आवाज टकराहटें लेने लगती है। वे अक्सर इन्सान के वजूद पर ही प्रश्न खड़ा करते हैं। सदियों से जिसे सुनाया-दिखाया और समझाया गया रिश्ता ग़ज़लकार के नजर में बस; खोखला 'बांस' है। वे कहते भी है-

"दिल भी इक बच्चे की मानिंद अड़ा है ज़िद पर
या तो सब कुछ ही इसे चाहिये या कुछ भी नहीं।" [9]

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि, राजेश रेड्डी ने अपने ग़जलों में सामाजिक व्यवहार पर अपनी नजर फैलाते हुए मनुष्य के व्यवहार को जांचा-परखा है और उस पर अपना क्रोध प्रकट किया है। और यह स्पष्ट किया है कि 'अब नहीं, अगर प्रकृति को अनवरत बहराना और संवारना है तो अपने परछाई को खुद के काया से बाट्ना रोकना होगा।'

संदर्भ

1.मिश्र शिवप्रसाद 'रुद्र काशिकेय' - ग़जलिका, पृ.3
2.रेड्डी राजेश, आसमान से आगे -पृ. 103
3. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे - पृ.71
4. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे - पृ.37
5. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे - पृ.33
6. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे - पृ.34
7. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे -पृ.73
8. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे -पृ.57
9. रेड्डी राजेश, आसमान से आगे -प्रास्ताविक

*****

राजेश रेड्डी जी की ग़ज़लें और पीयूष मिश्रा जी के गीतों में प्रतिरोधी स्वर

अबेद उल्लाह सय्यद बाबर अली बशारत अली
पीएच.डी.शोधार्थी, हिंदी विभाग,
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय,पुणे
दूरभाष - 7875481834
ईमेल- babars.0104@gmail.com

शोध सारांश -

समाज में जो कुछ भी घटित होता है, उसका प्रभाव किसी न किसी रूप में साहित्य में दिखाई देता है। हिंदी कविता की प्रमुख विधाएँ गीत और ग़ज़ल भी इससे अलग नहीं हैं। यह विधाएँ केवल प्रेम, विरह और सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं करतीं, बल्कि समाज में फैले अन्याय, शोषण, असमानता और भय के विरुद्ध आवाज़ भी उठाती हैं। इसी कारण गीत और ग़ज़ल समय के साथ प्रतिरोध का सशक्त माध्यम बन गई हैं। इनका प्रतिरोध शोर या हिंसा में नहीं, बल्कि संवेदना, प्रश्न और नैतिक साहस में दिखाई देता है।

यह शोध-आलेख हिंदी गीत और ग़ज़ल में उपस्थित इसी प्रतिरोधी स्वर को समझने का प्रयास है। इसमें विशेष रूप से राजेश रेड्डी की ग़ज़लों और पीयूष मिश्रा के गीतों का अध्ययन किया गया है। दोनों रचनाकार अपने-अपने माध्यम से आम आदमी के जीवन, उसकी पीड़ा, डर और उम्मीद को सामने रखते हैं।

राजेश रेड्डी की ग़ज़लें सरल भाषा में गहरी बातें कहती हैं। वे सत्ता, राजनीति, धार्मिक पाखंड और नैतिक पतन पर सवाल उठाते हैं। उनका प्रतिरोध शांत और संयमित है। वे ऊँची आवाज़ में नहीं बोलते, बल्कि पाठक को सोचने पर मजबूर करते हैं। उनकी ग़ज़लों में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि समाज की असली समस्या धर्म नहीं, बल्कि मनुष्य की संकीर्ण सोच, स्वार्थ और भय है। उनकी रचनाओं में मानवता, ईमानदारी और आत्मसम्मान को विशेष महत्व दिया गया है।

पीयूष मिश्रा के गीत आज के समय की बेचैनी और संघर्ष को सीधे शब्दों में व्यक्त करते हैं। उनके गीत जीवन के अनुभवों से जन्म लेते हैं। वे डर और चुप्पी को तोड़ने की बात करते हैं। उनके गीत मनुष्य को उसकी जिम्मेदारी का एहसास कराते हैं और उसे निडर होकर जीने की प्रेरणा देते हैं। उनके गीत केवल सुनने के लिए नहीं, बल्कि महसूस करने के लिए होते हैं।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राजेश रेड्डी और पीयूष मिश्रा दोनों ही गीत और ग़ज़ल को समाज से जोड़ते हैं। उनकी रचनाएँ केवल मनोरंजन नहीं करतीं, बल्कि जागरूक भी करती हैं। इनमें प्रतिरोध का स्वर साफ़ दिखाई देता है, जो मनुष्य को सोचने, सवाल करने और बेहतर समाज की कल्पना करने की प्रेरणा देता है। इसलिए हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोधी स्वर का अध्ययन आज के सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए बहुत आवश्यक है।

बीज शब्द - ग़ज़ल, गीत, प्रतिरोध के स्वर - राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, मानवी मूल्य आदि।

प्रस्तावना -

साहित्य समाज को दर्शाता है, चाहे फिर वह साहित्य की कोई भी विधा हो। उसमें समाज में होनेवाली हर बात का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। हिंदी कविता की दो अत्यंत लोकप्रिय विधाएँ गीत और ग़ज़ल भी इससे अछूती नहीं हैं। ग़ज़ल और गीत सिर्फ़ भावों की कोमल लहरें नहीं, बल्कि समय की माँग और समाज की बदलती परिस्थितियों का जीवंत दस्तावेज़ भी रही हैं। इन विधाओं ने जितना प्रेम, विरह और सौंदर्य को स्वर दिया है, उतनी ही ताक़त से अन्याय, असमानता, शोषण और मनुष्य की गरिमा पर होने वाले आघातों के विरुद्ध भी आवाज़ उठाया है। यही वह बिंदु है जहाँ गीत और ग़ज़ल अपनी पारंपरिक भावभूमि से आगे बढ़कर प्रतिरोध के साहित्य में रूपांतरित हो जाती हैं। प्रतिरोध का स्वर हमेशा तलवार की धार नहीं होता, कभी वह एक धीमी, उदास आह में छिपा होता है, जैसे साहिर का यह शेर "पोंछकर अश्क़ अपनी आँखों से, मुस्कुराओ तो कोई बात बने। सर झुकाने से कुछ नहीं होता, सर उठाओ तो कोई बात बने।"[1] या कभी किसी मासूम प्रश्न के रूप में भी प्रतिरोध का स्वर उभरता है जैसे ओमप्रकाश वाल्मीकि की के पूछे यह प्रश्न "फिर अपना क्या? गाँव? शहर? देश ?"[2] या प्रेमचंद द्वारा किए गए कथन "कैसा बुरा रिवाज़ है कि जिसे जीते जी तन ढाकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।"[3] इन तमाम बातों से प्रतिरोध का स्वर अधिक मुखर होता है।

साहित्य का प्रतिरोध या गीत, ग़ज़ल का प्रतिरोध हथियारों की भाषा में नहीं, बल्कि संवेदना, प्रश्न, व्यंग्य, और नैतिक शक्ति की भाषा में सामने आता है। साहित्य का प्रतिरोध केवल पाठक या सत्ता से टकराव नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की

गरिमा, स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा की चेतना है, हथियार है। यह जनता के मन की सच्चाई को शब्दों में ढालकर उन ताक़तों के सामने खड़ा करता है, जो मनुष्य की स्वतंत्रता को नियंत्रित करना चाहती हैं। इसीलिए प्रतिरोधी गीत और ग़ज़ल सिर्फ़ साहित्यिक रचनाएँ नहीं हैं, वे समाज में चेतना और परिवर्तन के वाहक हैं। आज के समय में,जब सामाजिक संरचनाएँ और राजनीतिक स्थितियाँ निरंतर बदल रही हैं, प्रतिरोधी आवाज़ों की आवश्यकता ओर भी बढ़ गई है। जब पक्षधर कोई विरोधी नहीं चाहता या विरोध को ही जब धीरे-धीरे हर तरीके से ख़त्म करने का प्रयास शुरू है, उनकी आवाजों को दबाया जा रहा है, वहाँ गीत और ग़ज़ल ने इस आवाज़ को और अधिक तीव्र करने का प्रयास किया है। हिंदी गीत और ग़ज़ल इस आवश्यकता को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से पूरा करते हुए हमारे समय की बेचैनी, उम्मीद और प्रतिरोध की ऊर्जा को जीवित रखते हैं। अतः 'हिंदी गीत और ग़ज़ल में प्रतिरोधी स्वर' का अध्ययन न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने की दृष्टि से भी अत्यंत आवश्यक है।

हिंदी गीत की परंपरा लोकजीवन से गहराई से जुड़ी रही है। लोकगीतों में किसान, मजदूर, स्त्री और वंचित वर्ग की पीड़ा सहज रूप से व्यक्त हुई है। यही लोकपरंपरा आगे चलकर आधुनिक हिंदी गीत में प्रतिरोधी चेतना का आधार बनी। हिंदी गीतों में गोपालदास नीरज, साहिर, हरिवंश राय बच्चन, आनंद बक्शी, मजरूह सुल्तानपुरी, शैलेंद्र, गुलजार, कैफ़ी आज़मी, जावेद अख़्तर, पीयूष मिश्रा जैसे मशहूर गीतकारों ने अपने शब्दों का लोहा मनवाया है। उन्होंने अपनी रचनाओं से हिंदी गीत-संगीत और साहित्य को समृद्ध किया है, जिनमें से कई फ़िल्मी, गैर-फ़िल्मी गीतों के लिए, कविताओं, ग़ज़लों के लिए जाने जाते हैं। इन्होंने जन-संघर्ष, वर्गीय असमानता और अन्याय के विरुद्ध अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रतिरोध का स्वर हमेशा शुरू रखा। जिसमें गरीबी, स्त्री पीड़ा, शोषण, पूँजीवाद, युद्ध, धार्मिक पाखंडता, राजनैतिक शोषण आदि तमाम बिंदुओं को गीतों के माध्यम से हमारे सामने रखने का प्रयास किया। जिस कारण हिंदी गीतों ने श्रोताओं के दिलों में, दिमाग़ में, समाज में प्रबोधन का कार्य किया। वहीं हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी, हनुमंत नायडू, डॉ.कुंवर बेचैन, ज्ञानप्रकाश विवेक, जहीर कुरैशी, निदा फाजली, बशीर बद्र, मुनव्वर राणा, वसिम बरेलवी, राजेश रेड्डी और समकालीन युवा शायरों ने ग़ज़ल को उसके सिमित दायरे से मुक्त कर उसे खुला आसमान दिया। ग़ज़ल ने राजनीति, सत्ता, भ्रष्टाचार, मानवीय मूल्य, मजदूरों के हक़ की बात, टूटते रिश्तों की बात, सत्ता के दंभ की बात, राजनेताओं की चालाखियाँ आदि छोटे से छोटी बात से लेकर बड़े से बड़े शास्त्र तक को ग़ज़ल ने अपने दायरे में लिया है।

प्रस्तुत शोधालेख में हम राजेश रेड्डी जी की ग़ज़लें और पीयूष मिश्रा जी के गीतों पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

हिंदी ग़ज़ल के समकालीन परिदृश्य में राजेश रेड्डी जी का नाम एक ऐसे शायर के रूप में सम्मानपूर्वक लिया जाता है, जिन्होंने ग़ज़ल को केवल प्रेम और निजी भावनाओं तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे समाज, राजनीति और आम आदमी की पीड़ा से जोड़ा। उनकी ग़ज़लें सादगी, सहजता और गहरी मानवीय संवेदना के कारण पाठक और श्रोता दोनों के हृदय तक पहुँचती हैं। राजेश रेड्डी जी की ग़ज़लें दिखावटी शिल्प या जटिल भाषा की मोहताज नहीं हैं। वे सीधे जीवन से उठे हुए अनुभवों को अपनी ग़ज़लों में पिरोंते हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में आम आदमी का दर्द, उसकी उम्मीदें, उसका आक्रोश और उसकी पीड़ा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनका शायराना अंदाज़ न तो अत्यधिक उग्र है और न ही पलायनवादी है, वे एक सजग नागरिक की दृष्टि से समाज को देखते हैं और शांति, गरिमा तथा नैतिक साहस के साथ एक आशा के किरण की बात करते हैं।

उदाहरण -

"ज़मीर बेचके दुनिया ख़रीदकर ख़ुश हैं
ये लोग अपनी तबाही पे किस क़दर ख़ुश हैं" [4]

इस शेर में राजेश रेड्डी जी उस समाज की ओर संकेत करते हैं, जहाँ लोग धन, पद और सुविधा के लिए अपनी अंतरात्मा को गिरवी रख देते हैं। 'ज़मीर बेचने' का अर्थ है - सच, ईमानदारी और नैतिकता से कोसों दूर जाना। ऐसे लोग बाहरी रूप से सफलता पा लेने पर स्वयं को बहुत प्रसन्न मानते हैं, लेकिन वास्तव में वे अपनी आत्मिक तबाही का उत्सव मना रहे होते हैं। आज का मनुष्य हर चीज़ को खरीदने की होड़ में लगा है, जैसे- सुख, प्रतिष्ठा, पहचान। इस दौड़ में वह यह भूल जाता है कि कुछ चीज़ें बिकने या बेचने के लिए नहीं होतीं, जैसे ज़मीर। राजेश रेड्डी जी व्यंग्य के माध्यम से यह बता रहे हैं कि लोग अपनी मूल मानवीय संवेदनाएँ खोकर भी स्वयं को सफल और खुश समझ रहे हैं। यह खुशी दरअसल एक झूठी तसल्ली है, जो उन्हें भीतर से खोखला बना रही है। यहाँ 'ज़मीर बेचने' से आशय उन लोगों से भी है, जो सत्ता, लाभ या स्वार्थ के लिए सच का साथ छोड़ देते

हैं। ऐसे लोग समाज को नुकसान पहुँचाते हैं, फिर भी अपनी स्थिति और उपलब्धियों पर प्रसन्न रहते हैं। इस प्रकार की विडंबनाओं को रेड्डी साहब ने अपनी ग़ज़लों में काफ़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है।

राजेश रेड्डी जी की ग़ज़लों में सत्ता, राजनीति और सामाजिक पाखंड के प्रति गहरा असंतोष दिखाई देता है, किंतु यह असंतोष कटुता में नहीं बदलता। वे प्रश्न करते हैं, संकेत देते हैं और पाठक को सोचने पर विवश करते हैं। उनका प्रतिरोध ऊँची आवाज़ में नहीं, बल्कि मर्यादित और प्रभावशाली शब्दों के माध्यम से सामने आता है। यही उनकी ग़ज़ल की विशेषता है।

उदाहरण -

"सारी बस्ती पे ख़ौफ़ तारी है
आज क्या जाने किसकी की बारी है
उसके हाथों में तीर है न कमान
वो जो सबसे बड़ा शिकारी है" [5]

इस शेर में रेड्डी जी ने वर्तमान समय की तस्वीर खींचकर हमारे सामने रखी है, जो हमें काफ़ी कुछ सोचने पर मजबूर करती है। जब पूरे समाज पर डर का साया छाया हुआ है, लोग अनिश्चितता में जी रहे हैं, किसे, कब और क्यों निशाना बनाया जाएगा, कोई नहीं जानता। आज उमर ख़ालिद, सलमान रश्दी, गौरी लंकेश, वरवरा राव जैसे लोग अनिश्चितता में जी रहें हैं और कुछ तो मारे भी गए। देश में या दुनिया में मनुष्य खुद को हर समय असुरक्षित महसूस कर रहा है। सबसे गंभीर बात यह है कि जो सबसे बड़ा शिकारी है, उसके पास न तीर है और न कमान, फिर भी वह सबसे खतरनाक है। इसका अर्थ यह है कि उसकी शक्ति हथियारों में नहीं, बल्कि सत्ता, अधिकार और भय फैलाने की क्षमता में छिपी है। 'सारी बस्ती पर ख़ौफ़' उस मानसिक डर का प्रतीक है, जो धीरे-धीरे समाज के भीतर घर कर रहा है। 'किसकी बारी है' कहना यह दर्शाता है कि लोग स्वयं को असहाय और असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। यहाँ शिकारी एक सोच, एक माहौल या एक डर भी हो सकता है, जो बिना प्रत्यक्ष हथियारों के लोगों को भीतर से तोड़ देता है। जैसे एन.आर. सी. कानून, भीमा कोरेगांव दंगे, रौंदा हुआ किसान आंदोलन, जे. एन. यू. में छात्रों पर किया हमला, आदि। धर्म की आड़ में, वर्णभेद की आड़ में, नस्लभेद के आड़ में, स्त्री- पुरुष असमानता के आड़ में, ऊँच -नीचता के आड़ में आज पूरी दुनिया में यहीं सब शुरू है। इस शेर में राजेश रेड्डी जी मानवीय मूल्यों के पतन पर चिंता व्यक्त कर रहे हैं और संकेत दे रहे हैं कि जब मनुष्य अपने भीतर का विवेक खो देता है, तब वही सबसे खतरनाक शिकारी बन जाता है।

"तेरे मेरे दीन का मसअला नहीं,मसअला कोई और है
न तेरा ख़ुदा कोई और है न मेरा ख़ुदा कोई और है" [6]

दार्शनिक स्तर पर यह शेर ईश्वर की एकता और मानव आत्मा की समानता की ओर इशारा करता है। शायर मानता है कि ईश्वर तक पहुँचने के रास्ते अलग हो सकते हैं, नाम अलग हो सकते हैं, लेकिन सत्य एक ही है। इसलिए आपसी टकराव का कारण धर्म नहीं, बल्कि अहंकार, अज्ञान, राजनीती, सत्ता आदि बातें हैं। धर्म के नाम पर जो झगड़े खड़े किए जाते हैं, वे स्वार्थ से उपजते हैं। इस शेर में रेड्डी साहब साफ़ तौर पर कहते हैं कि मनुष्यों के बीच जो टकराव और तनाव दिखाई देता है, उसकी जड़ धर्म नहीं है। दीन(धर्म) की बात करना एक भ्रम है, क्योंकि ईश्वर अलग-अलग नहीं हैं। राजेश रेड्डी जी यह संकेत देते हैं कि मनुष्य को बाँटने वाली दीवारें धर्म ने नहीं, बल्कि मनुष्य की संकीर्ण सोच ने खड़ी की हैं। असली समस्या कहीं और है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'नाख़ून क्यों बढ़ते हैं' इस निबंध में एक प्रश्न पूछते हैं, 'मनुष्य किस और बढ़ रहा है? नाख़ून काटने की ओर या नाख़ून बढ़ाने की ओर?' इस निबंध में नाख़ून मनुष्य के पाशवी प्रवृत्ति का प्रतिक है और आज मनुष्य नाख़ून बढ़ाने की ओर ही अग्रेसर होता हुआ दिखाई दे रहा है। आज समाज में इस प्रकार का माहौल निर्माण किया जा रहा है, उससे यह साफ़ दिखाई देता है कि मनुष्य को सत्ता चाहिए। वह सत्ता केवल अपने धर्म की, बस अपने ही लोगों की, स्वयं के जाति की होनी चाहिए और उसके लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है। इसी अंधेपन ने आज दुनिया की तमाम बस्तियां वीरान की हैं। लोगों को उन्हीं के घरों से खदेड़ा जा रहा है। चारों और अशांति फ़ैली हुई है। जिसका उदाहरण देखिए -

"खाली न हो गई हो जो अम्नो-अमान से
नक़्शे में ऐसी एक भी बस्ती नहीं मिली" [7]

इस शेर में रेड्डी जी दुनिया की उस कड़वी सच्चाई की ओर ध्यान दिलाते हैं, जहाँ शांति और सुरक्षा धीरे-धीरे हर जगह से गायब होती जा रही है। यह केवल किसी एक देश या क्षेत्र की बात नहीं है, बल्कि पूरी दुनिया में भय, हिंसा और अस्थिरता

फैल चुकी है। यह शेर आज के वैश्विक माहौल में युद्ध, आतंक और असुरक्षा से जूझती मानवता की सामूहिक पीड़ा को व्यक्त करता है। यहाँ 'अम्नो-अमान से खाली बस्ती' उन समाजों का प्रतीक है, जो सत्ता की भूख, युद्ध की राजनीति और ताक़त की प्रतिस्पर्धा का शिकार बन गए हैं। बड़ी ताक़तों के टकराव में आम लोग सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। आज ईरान, इराक .... जैसे देशों को देखकर हमें यह प्रतिरोध का स्वर अधिक प्रासंगिक लगता है।

"मिली बस चार दिन की जिंदगानी
हमें इतनी सी मोहलत ने बिगाड़ा" [8]

राजेश रेड्डी जी इस शेर में हमें जिंदगी का सही अर्थ बता रहे हैं कि ज़िंदगी तो बस चार दिन की है, यानी बहुत छोटी और सीमित है। लेकिन इसी थोड़े-से समय ने हमें बिगाड़ दिया है यानी अहंकार, वासनाओं, और इच्छाओं में डूबो दिया। मनुष्य भूल जाता है कि यह जीवन एक अवसर है, स्थायी ठिकाना नहीं है। समय की थोड़ी-सी मोहलत उसे विनम्र और सजग बना सकती थी, लेकिन वही उसे भोग-विलास, स्पर्धा और दिखावे की दौड़ में ले जाती है। यह शेर हमें आत्मनिरीक्षण के लिए प्रेरित करता है।

भाषा के स्तर पर राजेश रेड्डी जी बहुत अद्भुत ग़ज़लकार हैं। उनके हिंदी और उर्दू के संतुलित प्रयोग से अपनी ग़ज़लों को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाते हैं। उनकी भाषा न तो बोझिल है और न ही कृत्रिम है। उसमें जीवन की सच्चाई और अनुभव की सादगी है। उनकी ग़ज़लों में काफ़ी सरलता और सहजता है। यही कारण है कि उनकी ग़ज़लें पढ़ते या सुनते समय ऐसा लगता है मानो कोई अपने ही मन की बात कह रहा हो। यह अत्यंत सुंदर शेर है। जिसे राजेश जी ने बड़े भावनात्मक, प्रतीकात्मक और सरल भाषा में रचा है। यह हर किसी का सच है। जैसे यह शेर देखिए -

"मिरे दिल के किसी कोने में इक मासूम-सा बच्चा
बड़ों की देखकर दुनिया बड़ा होने से डरता है" [9]

राजेश रेड्डी जी की रचनाओं में मानवीय मूल्य केंद्रीय स्थान रखते हैं। वे मनुष्य की गरिमा, ईमानदारी और आत्मसम्मान के पक्षधर शायर हैं। उनकी ग़ज़लें समाज के उस चेहरे को सामने लाती हैं, जिसे अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है। जहाँ आदमी व्यवस्था से थका हुआ है, लेकिन उम्मीद अभी भी पूरी तरह मरी नहीं है।

"रिदा ए ज़ीस्त में रहे हमारी ख्वाहिशों के पाँव
वो और थे जिन्हे तलब थी सारी कायनात की"[10]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजेश रेड्डी जी हिंदी ग़ज़ल के उन रचनाकारों में हैं, जिन्होंने परंपरा और समकालीनता के बीच संतुलन बनाते हुए ग़ज़ल को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है। उनकी ग़ज़लें केवल साहित्यिक रचनाएँ नहीं, बल्कि समय, समाज और मनुष्य के रिश्तों पर एक संवेदनशील टिप्पणी हैं। हिंदी ग़ज़ल की प्रतिरोधी और मानवीय परंपरा में उनका योगदान उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण है।

पीयूष मिश्रा जी आज के समय के बहुत ही शानदार गीतकार हैं। यह बात केवल उनके प्रशंसकों की भावना नहीं, बल्कि हिंदी सिनेमा और समकालीन साहित्य का सच्चा आकलन भी है। जिस तरह का जीवन उन्होंने भोगा है बिलकुल वहीं उनके गीतों में दिखाई देता है। पीयूष मिश्रा जी की लेखनी में वह गहराई, विद्रोह, प्रेम और दर्शन का संगम है, जो उन्हें इस युग के सबसे मौलिक रचनाकारों में स्थान देता है। वे अपनी आरम्भ है प्रचंड इस गीत-संग्रह के पहले पृष्ठ पर लिखते हैं कि "परिचय मुमकिन नहीं, न ही उन्हें पसंद है। दोस्तों में 'पीयूष भाई' छात्रों में 'सर'। 1983 से 2003 तक दिल्ली में थिएटर किया। आजकल मुंबई सिनेमा नगरी में व्यस्त हैं, इस उम्मीद के साथ की बदलाव वहाँ भी होगा। इस बात से हमें उनके स्वभाव एवं मिजाज का पता चलता है। पीयूष मिश्रा आज के समय के इसलिए शानदार गीतकार हैं, क्योंकि उनके गीत आम आदमी की धड़कन से जन्म लेते हैं। वे शब्दों को सजाने के लिए नहीं, बल्कि सच कहने के लिए शब्द चुनते हैं। उनकी पंक्तियों में शहर की भागदौड़, गाँव की मिट्टी, बेरोज़गारी की टीस और प्रेम की सादगी, सब एक साथ सांस लेते हैं। उनके गीत सुनते हुए लगता है कि कोई मंच से नहीं, बल्कि हमारे ही भीतर से बोल रहा है। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ मनोरंजन से आगे बढ़कर संवेदना का दस्तावेज़ बन जाती हैं। उनकी गीतों को प्रस्तुत करने की शैली भी काफ़ी बढ़िया है। जिससे उनको सुनते वक़्त श्रोता उनके शब्दों में डूब जाता है। पीयूष मिश्रा का गीतकार होना दरअसल समय से संवाद करना है। वे अपने गीतों में वर्तमान की बेचैनी, सत्ता की चालाकी और समाज की चुप्पी को सबके सामने बड़े बेबाकी से रखते हैं। उनके गीत आज हर व्यक्ति के दिलों पर, दिमाग पर छाए हुए हैं। उदहारण के

लिए कुछ गीत प्रतुत हैं- इक बगल में चाँद होगा, ओ री दुनिया, आरम्भ है प्रचंड, जब शहर हमारा सोता है, हुस्ना, चव्वनी आदि तमाम गीतों में हमें प्रतिरोध का स्वर दिखाई है। जिसे हम विस्तार से समझते हैं।

फ़िल्म -गुलाल,गीत -ओ री दुनिया

गीतांश-

"आलिम ये कहता है
वहाँ ईश्वर है
फ़ाज़िल यह कहता है वहाँ अल्लाह है
काबिल ये कहता वहाँ ईसा है
मंज़िल ये कहती तब इंसान से कि
तुम्हारी है तुम ही संभालो ये दुनिया
ये बुझते हुए चंद बासी चराग़ों
तुम्हारे ये काले इरादों की दुनिया
ओ री दुनिया..... ओ री दुनिया.....
ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है....."[11]

इस गीत में पीयूष मिश्रा जी ने मनुष्य धर्म पर सवाल उठाया है। धर्मों के आपसी मतभेदों से आगे जाकर मनुष्य की ज़िम्मेदारी पर सवाल उठाया है। कोई ईश्वर कहता है, कोई अल्लाह, कोई ईसा कहता है, तो कोई कुछ पर मंज़िल स्वयं इंसान से कहती है कि यह दुनिया तुम्हारी है, तुम्ही इसके वारिस हो। इसे तुम्हें ही संभालना है। यहाँ ईश्वर को बाहर खोजने के बजाय मनुष्य के भीतर नैतिकता और विवेक खोजने की बात की गई है। बुझते हुए चराग़ इस बात का संकेत हैं कि इंसान ने अपने धर्म, लालच और स्वार्थ से दुनिया को आख़री पायदान पर ला खड़ा किया है। गीत के अंत में मिश्रा जी पूछते है या हमें बताते हैं कि अगर ऐसी दुनिया मिल भी जाए, तो उसका क्या मूल्य है? यह गीत धर्मों के नाम पर चलने वाले संघर्षों पर गहरी चोट करता है। आलिम, फ़ाज़िल और क़ाबिल (धर्म के ठेकेदार)तीनों अपने-अपने विश्वास की बात करते हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि दुनिया की हालत इंसान के कर्मों से तय होती है, किसी धर्म-परिभाषा से नहीं। तुम्हारी है, तुम ही संभालो ये दुनिया, यह पंक्ति मनुष्य को कटघरे में खड़ा कर देती है। यह गीत कहता है कि जब इरादे काले हों, तो ईश्वर का नाम लेना भी व्यर्थ हो जाता है। ऐसी दुनिया, जो हिंसा और स्वार्थ से भरी हो, मिल भी जाए तो बेकार है। ऐसी दुनिया की वे कल्पना ही नहीं करते हैं।

फ़िल्म -गैंग्स ऑफ वासेपुर,गीत - इक बगल में चाँद होगा

गीतांश-

"होनी और अनहोनी की परवाह किसे है मेरी जाँ
हद से ज़्यादा ये ही होगा कि यहीं मर जाएँगे
हम मौत को सपना बताकर
उठ खड़े होंगे वहीं
और होनी को ठेंगा दिखाकर
खिलखिलाते जाएँगे "[12]

इस गीत में एक गहरा जीवन-दर्शन छिपा है। आज के समय में जब मनुष्य हर परिस्थिति से भागता दिखाई देता है। ख़ुदकुशी का प्रमाण आज दिन-ब-दिन बढ़ रहा है, वहाँ यह गीत मनुष्य का आधार है। मौत को सपना बताना दरअसल मृत्यु के भय को छोटा करना है। जब इंसान मृत्यु से डरना छोड़ देता है, तब जीवन अपने पूरे रंग में सामने आता है। यह गीत कहता है कि जीवन की सार्थकता लंबाई में नहीं, बल्कि निडरता में है। जो इंसान हर पल को खुलकर जीता है, वही सच्चे अर्थों में विजयी है, चाहे हालात कितने ही कठोर क्यों न हों।

फ़िल्म -गुलाल, गीत - आरम्भ है प्रचंड

गीतांश -

"जिस कवी कि कल्पना में
ज़िन्दगी हो प्रेमगीत,

उस कवी को आज तुम नकार दो,
भीगती मसों में आज, फूलती नसों में आज,
आग की लपट का तुम बघार दो..... आरम्भ है प्रचंड"[13]

आरम्भ है प्रचंड यह गीत किसी शांति भरे आरंभ की बात नहीं करता, बल्कि एक ऐसे उबाल की घोषणा है, जो भीतर लंबे समय से सुलग रहा है। यह गीत बताता है कि जब अन्याय और झूठ अपनी सीमा पार कर लेते हैं, तब परिवर्तन का जन्म होता है। इस गीत में पीयूष जी सत्ता के विरुद्ध सीधी चुनौती देते हैं। इस गीतांश में कवि उस कविता को नकारने की बात करता है, जो केवल प्रेम और सौंदर्य में उलझी रह जाती है। यहाँ प्रेम का विरोध नहीं है, बल्कि उस निष्क्रियता का विरोध है, जो अन्याय के समय भी मौन बनी रहती है। केवल प्रेमगीत लिखना आज पर्याप्त नहीं है। जब समाज के भीतर आग सुलग रही हो, तब शब्दों में भी आग होनी चाहिए यही समय की माँग है।

फ़िल्म -ब्लैक फ्राइडे, गीत - रात हिंडोले पे

गीतांश -

"रात हिंडोले पे बैठा एक
बंदा रोता झूल गया
पढ़ ली आज क़ुरान मगर मैं
आयतों को भूल गया"[14]

इस गीत में इंसान के जीवन को दर्शाया है। जीवन की अस्थिरता को व्यक्त करता यह गीत मनुष्य के अज्ञान की बात करता है। इंसान के जीवन को मकड़ी की उपमा दी गयी है। उसके जीवन में भी मकड़ी के जाले के जैसे बहुत सारे जाल दिखाई देते हैं और उससे वह बहुत अधिक परेशान है। जो भीतर से टूटा हुआ है। गीत का सबसे सशक्त भाव यह है कि ईश्वर को इमारतों और प्रतीकों में ढूँढना व्यर्थ है। मकड़ी के जाले शब्द यह संकेत देता है कि हमने आस्था को जटिल और जकड़न भरा बना दिया है। ईश्वर अलग-अलग धर्म, अलग-अलग ईश्वरों के नामों में नहीं, बल्कि इंसान के भीतर बसे भाव में है। क़ुरान पढ़कर आयतें भूल जाना इस बात का प्रतीक है कि हमने धर्म को कर्म से अलग कर दिया है। गीत पूछता है क्या केवल धर्म-ग्रंथों को पढ़ लेना काफ़ी है, या उसे जीना भी ज़रूरी है? रोता हुआ आदमी दरअसल पूरी मानवता का रूपक है, जो ईश्वर को बाहर ढूँढती है, जबकि उत्तर भीतर ही मौजूद है। धर्म के नाम पर आज मनुष्य और अधिक अंधा, बेबस और जानवर दिखाई दे रहा है इसलिए यह गीत उनके लिए उत्तर है जो मंदिर-मस्जिद करते हैं,हिन्दू-मुस्लिम करते हैं।

पीयूष मिश्रा के गीत आज के समय में मनुष्य, समाज और सत्ता से सीधा संवाद करते हैं। उनके गीत हमें धर्म, डर और चुप्पी से बाहर निकलकर जिम्मेदारी, साहस और मानवीयता की ओर ले जाते हैं। वे दिखाते हैं कि सच्चा गीत वही है जो केवल सुनाया नहीं जाता, बल्कि भीतर तक महसूस कराया जाता है। उनके गीतों में प्रतिरोध भी है, करुणा भी और जीवन को निडर होकर जीने की प्रेरणा भी। इसी कारण पीयूष मिश्रा आज के समय के एक अत्यंत महत्वपूर्ण गीतकार हैं।

निष्कर्ष -

राजेश रेड्डी और पीयूष मिश्रा दोनों ही समकालीन दौर के ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने ग़ज़ल और गीत को समाज से जोड़ा है। राजेश रेड्डी की ग़ज़लें शांति और गरिमा के साथ सवाल उठाती हैं, जबकि पीयूष मिश्रा के गीत तीखे और सीधे स्वर में समय से टकराते हैं। दोनों का उद्देश्य केवल कला या मनोरंजन नहीं, बल्कि मनुष्य को जागरूक करना है। राजेश रेड्डी की ग़ज़लें व्यवस्था, सत्ता और नैतिक पतन पर गहरी दृष्टि डालती हैं, वहीं पीयूष मिश्रा के गीत समय की बेचैनी और प्रतिरोध को स्वर देते हैं। दोनों रचनाकार धर्म, राजनीति और सत्ता के नाम पर फैले भ्रम से ऊपर उठकर मनुष्य की जिम्मेदारी को केंद्र में रखते हैं। उनकी रचनाएँ पाठक और श्रोता को केवल भावुक नहीं बनातीं, बल्कि सोचने के लिए मजबूर करती हैं। उनकी रचनाओं में आम आदमी का दर्द, डर और उम्मीद साफ दिखाई देती है। इसलिए कहा जा सकता है कि इन दोनों का साहित्य मनुष्य और समाज की सच्ची तस्वीर सामने रखता है। जिसमें प्रतिरोधी स्वर साफ़ साफ़ दिखाई देते हैं ,जो आज के समाज के लिए पोषक हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. प्रभात आशा, साहिर समग्र, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पहला संस्करण 2016, पृष्ठ -380
2. रविकान्त, ओमप्रकाश वाल्मीकि - सम्पूर्ण कविताएँ, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पहला संस्करण 2024,पृष्ठ -23
3. https://www.hindwi.org/story/kafan-munshi-premchand-story
4. रेड्डी राजेश, वुजूद,वाणी प्रकाशन दिल्ली, पहला संस्करण 2011, पृष्ठ -61
5. रेड्डी राजेश, ये जो ज़िन्दगी की किताब है ,रेख़्ता पब्लिकेशन, पहला संस्करण 2023, पृष्ठ -142
6. निश्चल ओम, कुछ सन्नाटे बोलनेवाले होते हैं, राजेश रेड्डी की गज़लें , सर्वभाषा प्रकाशन दिल्ली, पहला संस्करण 2023, पृष्ठ -86
7. रेड्डी राजेश, वुजूद,वाणी प्रकाशन दिल्ली, पहला संस्करण 2011, पृष्ठ -131
8. वहीं पृष्ठ - 144
9. वहीं पृष्ठ - 23
10. वहीं पृष्ठ - 54
11. मिश्रा पीयूष, आरम्भ है प्रचण्ड, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पहला संस्करण 2018, पृष्ठ -13
12. वहीं पृष्ठ - 36
13. वहीं पृष्ठ - 15
14. वहीं पृष्ठ - 34

*****

राजनीतिक बगावत : अदम गोंडवी की गजल

अविनाश दिलीप कांबळे
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर।
ई-मेल : shabdavi421@gmail.com
मोबा. 8766771873

शोध सारांश :

गजल अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। कम शब्दों में अधिक जानकारी देना गजल की विशेषता है। साठोत्तरी दशक के बाद दुष्यंत कुमार ने गजल के माध्यम से राजनीति के ऊपर प्रहार किया। दुष्यंत कुमार के कार्य को अदम गोंडवी ने संभालकर नव्वद के दशक में किसान, मजदूर और आम जनता की आवाज बनकर राजनीति व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाकर आगे बढ़ाया। वर्तमान राजनीति में आम जनता का उपयोग सिर्फ नेता लोग वोटों के लिए करते हैं। एक बार चुनाव जीतकर सत्ता में आते हैं तो वह आम जनता की सेवा करने के बजाय उनपर अधिकार जमाते हैं। पैसों और कुर्सी की लालच से आज की राजनीति भ्रष्ट बन चुकी है। अदम गोंडवी ने अपनी गजलों के माध्यम से इसी भ्रष्ट व्यवस्था, पूंजीवाद, अमीर-गरीब के बीच की आर्थिक दूरी आदि को उजागर किया है। प्रस्थापित व्यवस्था की परंपरा को तोड़ने का काम और उसके विरुद्ध बगावत की जंग छेड़ी है। उनकी गजलें शासकों और व्यवस्था के पाखंड को सामने लाती हैं। उन्होंने कुर्सी और काले धन के खेल और सत्ता की होड को दर्शाया है। अदम गोंडवी के राजनीति व्यवस्था विरोधी स्वर आज प्रासंगिक हैं। वह आम जनता की आवाज बनकर इस भ्रष्ट व्यवस्था का विद्रोह करते हैं।

बीज शब्द : राजनीति भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता, पूंजीवाद, संघर्ष, मूल्य विघटन, विसंगति।

उद्देश्य :

१. अदम गोंडवी की गजलों को समझना।
२. अदम गोंडवी की गजलों में चित्रित राजनीतिक विद्रोह को उजागर करना।
३. अदम गोंडवी की गजलों में राजनीतिक विद्रोह की प्रासंगिकता को जानना।

प्रस्तावना :

हिंदी कविता के क्षेत्र में गजल के आगमन के साथ गजल का स्वरूप बदलता गया। गजल काव्य अरबी से फारसी, फारसी से उर्दू और उर्दू से हिंदी में आया है। गजल का विकास और स्वरूप आदिकाल के कवि अमीर खुसरो से आरंभ होकर भारतेंदु, जयशंकर प्रसाद, निराला, दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी तक बदलता आया हैं। वर्तमान में भी समय के साथ उसके उद्देश्य बदल रहें है। "गजल एक ऐसी काव्यविधा है जिसमें अनेक विषयों पर टुकड़े टुकड़े बातचीत की जाती है जिसके हर शेर में एक स्वतंत्र चिंतन प्रक्रिया होती है।"[1] गजल काव्यविधा है, इसका प्रमाण हमें गजलकार जहीर कुरेशी के कथन से स्पष्ट होता है। अदम गोंडवी ने दुष्यंत कुमार के बाद अपने समकालीन व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की जंग छेड़ी थी। साठोत्तरी काल से गजल में नारी की सुंदरता और भोग से हटकर व्यवस्था विरोधी स्वर दिखाई देते हैं। अदम गोंडवी समकालीन राजनीतिक व्यवस्था के प्रति सतर्क थे। उनकी गजलें राजकीय चेतना से परिपूर्ण है। राजनीतिक घटनाओं के परिवेश में आम आदमी की बुरी हालत को अदम गोंडवी राजनीति को जिम्मेदार मानते हैं। भ्रष्टाचार, स्वार्थी नेता, झूठी उम्मीदें और वादों का विरोध करके व्यवस्था के खिलाफ बगावत करते हैं। अपनी गजलों में किसान, मजदूरों की पीड़ा और आम जनता के जीवन संघर्ष का यथार्थ उजागर करते हैं।

आर्थिक असमानता :

भारत स्वतंत्र होने के बाद भी समाज की आर्थिक परिस्थिति असमान है। इस आर्थिक परिस्थिति में गरीब, वंचित समाज आज भी बुरी हालत में अपना जीवन यापन कर रह है। गरीब आदमी गरीब और अमीर आदमी अमीर बनता जा रहा है। आर्थिक असमानता आज बहुत बढ़ गई है। गरीब लोग पेट भरने के लिए तरस रहें हैं और अमीर लोग पार्टियों में भरपेट खाकर बीमार पड रहे हैं। गरीब आदमी को आज रहने के लिए खुद का घर नहीं है। वह अपना जीवन यापन के लिए संघर्ष कर रहा है फिर भी उसकी आर्थिक समस्याएं जो की त्यों हैं। इसी आर्थिक परिस्थिति को अदम गोंडवी अपनी कलम से उजागर करते हैं।

"तुम्हारी मेज चाँदी की, तुम्हारे जाम सोने के,
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है।"[2]

अदम गोंडवी अपनी गजल के माध्यम से अमीर और गरीब के बीच के आर्थिक परिस्थिति को लेकर आज की व्यवस्था के ऊपर प्रहार करते हैं। वह अमीर लोगों के प्रतीक चाँदी की मेज और सोने का जाम के माध्यम से उच्चवर्गीय लोगों की सच्चाई को प्रस्तुत करते हैं। रोजगार न होने के कारण आम आदमी की आर्थिक हालत कमजोर हुई है। अस्पताल जैसे बड़े खर्च वह उठा भी नहीं सकता। अमीर लोग उनकी मदत करने का नाटक करके शोहरत हासिल करते हैं। परंपरा से ही गरीब आदमी मेहनत करता आया है और अमीर आदमी उनके श्रम को खा रहे हैं। ऐसी व्यवस्था जो आर्थिक असमानता को बढ़ावा देती है उनके प्रतिरोध में अदम जी आम जनता को सतर्क करते हैं। भविष्य में आने वाले संकट को उजागर करते हैं। विकास और लोकतंत्र की बातें अमीरों तक रह जाती हैं और गरीब भूख, बीमारी, कर्ज, अशिक्षा की पीड़ा सहन करता है। अमीर लोगों की तुलना में गरीब की उम्मीदें, स्वाभिमान, विश्वास, टूट चुका है। अदम गोंडवी गरीब जनता की आवाज बनकर व्यवस्था के ऊपर आवाज उठाते हैं। किसी भी सभ्य समाज का सच गरीब जनता की हालत है, अमीरों का दिखावा नहीं। यही आज की प्रासंगिकता भी है।

भ्रष्टाचार :

उच्चवर्गीय समाज के लोग शोहरत को ज्यादा महत्व देते है। खुद को प्रसिद्ध करने के लिए वह कौन सा भी कदम उठा सकते हैं। लोकतंत्र का चौथा स्तंभ मीडिया एवं समाचार पत्र भी उनके शोहरत में बढ़ावा देने का काम कर रहे है। बढ़ते राजनीतिक घोटाले, शेयर बाजार के घपले, आम जनता के पैसों की लूट जैसे बहुत सी समस्या समाज में मौजूद है। अखबार वाले उनके निजी संबंधी बन चुके हैं जो इनका असली चेहरा आम जनता के सामने नहीं लातें बल्कि उनके शोहरत को बढ़ावा देते हैं। गरीब जनता की भूख की पीड़ा उन्हें दिखाई नहीं देती। आज के भ्रष्ट नेता भी जनता के असली परिस्थिति को अनदेखा करते है। भ्रष्ट नेताओं को आम गरीब जनता के भविष्य की चिंता नहीं है। उन्हें सिर्फ प्रसिद्धि हासिल करनी है। वह अच्छे काम करे न करे उनकी अच्छी तस्वीर समाज के सामने अखबार वाले लातें हैं।

"तालिब-ए-शोहरत हैं, कैसे भी मिले मिलती रहे,
आए दिन अखबार में प्रतिभूति घोटाला रहे।"[3]

समाज में बढ़ते भ्रष्टाचार की स्वीकृति और संवेदनहीनता को अदम गोंडवी सामने लाते हैं। देखा जाए तो सत्ता चलाने वाले सभी लोग जनता के नौकर होते हैं। उन्हें समाज के विकास के लिए प्रयास करना चाहिये। परंतु वहीं सत्ता चलाने वाले लोग जनता का संसाधन लूटकर अखबारों में झलकना चाहते हैं। उनके लिए भ्रष्टाचार एक आम बात है। समाज के नैतिक मूल्यों का विघटन हुआ है। घोटाला होने की खबर भी शोहरत बनी है। प्रसिद्धि पाना ही उनका मकसद बना है। जनता का नुकसान उनके लिए मायने नहीं है। यही परिस्थिति आज भी मौजूद है। यही परिस्थिति समाज में प्रासंगिक है।

विसंगत राजनीति :

देश को विकसित बनाना सत्ता में रहनेवाले नेताओं का लक्ष्य बना है। समाज में मौजूद बेरोजगारी की समस्या का हल, शिक्षा की समस्या को दूर करना, सभी को कपड़े-खाना-मकान उपलब्ध करना यहीं लक्ष्य है। समाज के लोगों को यहाँ पर विचार करना आवश्यक है कि सही में आज की व्यवस्था ने इस समस्याओं को हल किया है? अमीर लोगों के मकान और उनकी तरक्की को देखकर देश के विकास की बातें की जाती है। आज भी बहुत से ग्रामीण इलाकों में जनता को रहने के लिए मकान नहीं है। अपने जीवन गुजारा करने के लिए रोजगार नहीं है। ग्रामीण भागों से शहर आकर वह फुटपाथ पर रहकर कुछ काम करके अपने परिवार को संभाल रहें है। यही विकसित भारत होने की सच्चाई है। आज आम जनता के लिए बहुत सी सरकार द्वारा योजनाएं बनाई गई है पर वह सारी योजनाएं कागजों में ही रही है। अविकसित इलाकों में अशिक्षा के कारण वहाँ पर रहने वाले लोग लाभ नहीं उठा पाते।

"कोठियों से मुल्क के मेआर को मत आँकिए,
असली हिंदुस्तान तो फुटपाथ पर आबाद है।"[4]

आज देश स्वतंत्र होकर छहत्तर साल पूरे हुए फिर भी बड़े-बड़े शहरों में आम जनता फुटपाथ पर नजर आती है। देश विकसित होने की राह पर चल रहा है परंतु सिर्फ अमीर लोगों के विकास और तरक्की से देश विकसित नहीं हो सकता, देश में गरीब जनता भी मौजूद है उन्हें भी साथ लेकर चलना चाहिए। गांधी जी ने कहा था कि ग्रामीण भागों से देश के विकास की शुरुआत करनी है। ग्रामीण इलाकों को जोड़कर उनका विकास करके देश खुद विकसित हो जाएगा। परंतु ग्रामीण भागों में रोजगार के अवसर नहीं है। खेती करने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। आधुनिकता की दौड़ में ग्रामीण भाग आज भी पीछे ही रहा है। आधुनिक मशीन, आधुनिक तकनीक का ज्ञान ग्रामीण भागों में नहीं पहुँचा है। ग्रामीण भागों का किसान वहीं पारंपारिक पद्धति से खेती कर

रहा है। गरीब आदमी खेती से परिवार नहीं चला सकने के कारण ग्रामीण भागों से शहर में आ जाते हैं और फुटपाथ पर रहकर अपना जीवन गुजारा करते हैं।

मूल्य विघटन :

अदम जी राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य कसते हैं। गांधीजी के आदर्शों पर चलने का नाटक करने वाले कुछ स्वार्थी भ्रष्ट नेताओं को आम जनता की पीड़ा नहीं दिखाई देती, आम जनता के संघर्षों की आवाज सुनाई नहीं देती और आम जनता को बार-बार झूठे वादों में फँसातें आ रहे हैं। गांधी के प्रसिद्ध तीन बंदर बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो और बुरा मत बोलो प्रतीक हैं। इन्हीं प्रतीकों का उपयोग करके अदम गोंडवी राजनीतिक नेताओं के ऊपर व्यंग्यात्मक प्रहार करते हैं। बदलते मूल्यों को सामने लाते हैं।

"देखना-सुनना और सच कहना जिन्हें भाता नहीं,
कुर्सियों पर फिर वही बापू के बंदर आ गए।"[5]

सत्ता और कुर्सी की लालच आज के नेताओं को बहुत है। गांधी जी के नैतिक मूल्यों को नष्ट करके आम जनता को कुर्सी पाने की लालच से झुठी उम्मीदें दिखातें है। उनको आम जनता के भविष्य और देश के विकास की कुछ पड़ी नहीं है। उनको बस खुद का विकास और खुद की तरक्की पसंद है। आम लोगों को सत्ता के नेताओं से उम्मीदें थी की वहीं उनको समझ सकते हैं। उनको रोजगार देकर उन्हें आत्मनिर्भर बना सकते हैं। परंतु यही उम्मीदें सपना बनकर रही है। सपनों को सच करने का प्रयास करने वाले स्वाभिमान नेताओं को भी भ्रष्ट नेता अपने साथ लेकर भ्रष्ट बनाते है। भ्रष्ट नेताओं के बीच बाघ बनने के सपने देखने वाली आम जनता बिल्ली बनकर रह जाती है।

पूंजीवादी व्यवस्था :

पूंजीवाद खत्म हुआ कहने वाले लोग आज नजर नहीं आतें। समाज में पूंजीवाद का आज भी मजबूत पकड़ दिखाई देता हैं। गरीब किसान, मजदूर का शोषण आज के पूंजीवादी का समर्थन करने वाले नेता और अमीर वर्ग के लोग कर रहें हैं। भारत को कृषिप्रधान देश माना जाता है। किसान ही देश के रीढ़ की हड्डी है। किसानों को राजनीति का मुद्दा बनाकर आज बहुत से नेता अपनी कुर्सी संभाले हुए है। आज किसानों के लिए आधुनिक तंत्रज्ञान के आधारपर खेती करने की नई तकनीक विकसित की गई है। फिर भी किसान को खेती से कुछ हासिल नहीं होता। खेती के लिए लिया हुआ कर्जा समय पर न चुकाने के कारण उनके खेत भी गिरवी है। बहुत से गरीब लोग गाँव के मुखिया के खेतों में रोजगार करने के लिए जाते हैं। उनके रोजगार का दाम भी नहीं दिया जाता। जबरन उनसे काम कराया जाता है। आज किसान के आत्महत्या का आंकड़ा भी बड़ा हुआ है। इसका यही कारण है कि आज के नेताओं ने किसानों का विकास करने के बजाय उनका राजनीति में इस्तेमाल किया है। आज बहुत से किसानों को बेघर होना पड़ा है। इसी सच्चाई को सामने लाते हुए अदम गोंडवी लिखते हैं,

"बंद कल को क्या किया मुखिया के खेतों में बेगार,
अगले दिन ही एक होरी और बेघर हो गया।"[6]

अदम गोंडवी प्रेमचंदजी के उपन्यास गोदान का किसान होरी के जीवन से आज के किसान के जीवन की वास्तविकता को उजागर करते हैं। आज भी गरीब लोगों से गाँव के उच्चवर्गीय लोग जबरन मजदूरी कराते हैं। उनको उसके बदले में सिर्फ अत्याचार ही भुगतना पड़ता है। बहुत से होरी समाज में जन्म लेते है और मर भी जाते हैं। होरी के मौत का दु:ख सिर्फ उसका परिवार जानता है। सत्ता की लालच रखनेवाले नेता सिर्फ शोहरत के लिए उसके दु:ख में शामिल होते हैं। आज आधुनिक दौर चल रहा है और उसमें होरी की जगह आम वंचित किसान है। अन्याय अत्याचार शोषण किसान का होता ही रहा है सिर्फ समय बदला है परंतु बदलते समय के साथ किसान की पीड़ा वैसे ही मौजूद है। आज समाज में रोज एक होरी जन्म लेता है और बेघर भी होता है।

व्यवस्था से संघर्ष :

देश के लोकतंत्र में युवाओं को सतर्क होना आवश्यक है। बदलते विचारों और अन्याय, अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करना जरूरी है। गांधीजी के आदर्शों पर चलने का झूठा नाटक करने वाले भ्रष्ट नेताओं को शिक्षा के बल पर जवाब देना आवश्यक है। अदम गोंडवी गाँधीवाद और नक्सलवाद का रास्ता दिखाते हुए युवाओं को निर्णय लेने को कहते है। गांधीजी के अहिंसा, सत्याग्रह, नैतिकता के रास्ते संघर्ष करना है या फिर अन्याय के खिलाफ कठोर नक्सलवादी रास्ता चुनना है इसका निर्णय आज के युवाओं पर है।

"ये नई पीढ़ी पे निर्भर है वही जजमेंट दे,

फ़लसफ़ा गाँधी का मौजूँ है कि नक्सलवाद है।"[7]

अदम गोंडवी नई पीढ़ी को अपनी समझ और विवेक को तय करने को कहते हैं। समाज की सही दिशा क्या है? कौन-से विचार आज के समय प्रासंगिक है और कौन-सा रास्ता देश और समाज को न्याय दे सकता है? गाँधीजी के शांत मार्ग को अपनाएं या नक्सलवाद का उग्र प्रतिरोध करें यह आज के युवाओं पर निर्भर है।

अदम गोंडवी आम जनता की विवशता को पहचानते हैं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अन्याय और व्यवस्था के प्रति प्रहार करते हैं। भारत स्वतंत्रता के बाद भी आम जनता स्वतंत्र नहीं है। उनके अधिकार आज के स्वार्थी भ्रष्ट नेताओं के मुट्ठी में कैद है। लोकतंत्र में अपना अधिकार हासिल करने के लिए आम जनता को संघर्ष करना जरूरी है। शोषण, भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी, शिक्षा आदि समस्याओं के समाधान के लिए सत्ता पक्ष और व्यवस्था कुछ प्रयास नहीं करती है तो जनता को रोटी, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी जरूरतें पूरी करने के लिए बगावत करने का अंतिम रास्ता ही चुनना आवश्यक है। अदम गोंडवी लिखते हैं,

"जनता के पास ही चारा है बगावत,
ये बात कह रहा हूँ मैं होश-ओ-हवास में।"[8]

बगावत हिंसा का समर्थन नहीं करता बल्कि जागरूकता प्रतिरोध और अपने अधिकारों की माँग का नेतृत्व करता है। विद्रोह करना आम जनता की मजबूरी नहीं बल्कि अनिवार्यता बन जाती है। जब न्याय नहीं मिलता तब जनता का यहीं प्रतिरोध इतिहास बन जाता है।

निष्कर्ष :

अदम गोंडवी वर्तमान के सशक्त गजलकार रहें। उनकी गजल का स्वर राजनीति के खिलाफ हैं। अपने गजल के माध्यम से आम जनता की आवाज बनकर राजनीति व्यवस्था के विरुद्ध जंग छेड़ते हैं। अमीरी-गरीबी की बढ़ती खायी से लेकर अमीरों द्वारा गरीबों का शोषण अदम गोंडवी उजागर करते हैं। भ्रष्ट व्यवस्था में तड़पती आम जनता को संघर्ष का रास्ता दिखाते है। देश के विकास में किसान का महत्व बहुत बड़ा है। फिर भी किसान बेघर हो रहा है। किसान, आम जनता के दयनीय परिस्थिति का जिम्मेदार अदम गोंडवी आज के राजनीति को मानते हैं। आज के युवाओं को वह गाँधीवादी और नक्सलवादी रास्तों में कौन-सा रास्ता अपनाना योग्य है, उनपर ही छोड़ते हैं। आज के समय क्या प्रासंगिक है और देश के विकास के लिए कौन-सा रास्ता योग्य है इसकी पहचान कराते हैं। अदम गोंडवी के गजल आज के समय प्रासंगिक है। राजनीतिक व्यवस्था के विद्रोही स्वरों को सामने लाया है। उनकी गजल और गजल के उद्देश्य आज प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची :

1. सरदार मुजावर, हिंदी गजल गजलकारों की नजर में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ 41
2. अदम गोंडवी, समय के मुठभेड, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 50
3. अदम गोंडवी, धरती की सतह पर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 23
4. अदम गोंडवी, समय के मुठभेड, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 69
5. वहीं, पृष्ठ 31
6. वहीं, पृष्ठ 61
7. वहीं, पृष्ठ 69
8. अदम गोंडवी, धरती की सतह पर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 25

*****

हिंदी साहित्य में नवगीत का विकास और प्रवृतियाँ

डॉ. छाया माळी,
सह-आचार्या, हिंदी विभाग,
यशवंतराव चव्हाण (के.एम.सी) महाविदयालय,
कोल्हापुर।
E-mail-chhayamali99@gmail.com

शोध आलेख सारांश :

हिंदी नवगीत, गीत काव्य की अंत्यत महत्वपूर्ण विधा है। हिंदी साहित्य में अन्य विधा के चलते नवगीत' काव्य विधा के रूप में अलग महत्व रखती है। छायावाद के उत्तरकाल के बाद प्रगतिवाद में'नवगीत' के बीज पाए जाते हैं। नवगीत 'तारसप्तक' और केदारनाथ अग्रवाल की पुस्तक 'युग की गंगा में नवगीत की बीजवस्तुएं दिखाई देती हैं। समकालीन गीत ही 'नवगीत' है। नवगीत वह यथार्थवादी गीत है जिसमें नये बिंब, युगबोध, लय, नवबोध, यथार्थवाद, नया शिल्प, नये मुहावरें है। जिसमें जीवन का जीवनदर्शन है जो यथार्थवादी धरातल पर प्रासंगिक है। समकालीन कवियों में कुंवर बेचैन, शंभुनाथ सिंह, केदारनाथ अग्रवाल, डॉ माणिक विश्वकर्मा, चित्तरंजन कर, देवेंद्र शर्मा इंद्र आदि कवियों ने नवगीत की रचना करके जीवन के अनेक रंगों को एक नई परिभाषा देकर नयी कल्पना देकर अपनी कलम की ताकत दिखाई है। नवगीत लिखने का मुख्य कारण रहा है युगबोध क्योंकि नवगीत युगबोध की संकलना को साकार करता है। नया अर्थ प्रदान करता है। नवगीत समय सापेक्ष है। अपने समय का समग्र मूल्यांकन करता है। नवगीत व्यष्टि और समष्टि से जुड़ा हुआ है। अपने समय का समग्र मूल्यांकन करके नयी मानवचेतना से रूबरू करताहै। नवगीत वह गीत है जो जीवन की विसंगति को स्पष्ट करता है। समाज की विद्रुपताओं को उकेरता है नवीन जीवन से जुड़ा वह गीत है जो संपूर्ण जीवनदर्शन को अपने में समेटकर नयी चेतना, नयी दृष्टि और समाज का नयापन सामने लाने का भरपूर प्रयास करता है।नवगीत हिंदी साहित्य उभरती वह विधा है जो 1960 में ही पनपी है। परंतु अपने अस्तित्व को बनाये रखने में आज भी संघर्षरत है। नवगीत् में गेयता, समाजविमुखता, लोकजीवन से जुड़ाव प्रेम, सौदर्य और सामाजिक चेतना,लय, बिम्ब, प्रतीकों का प्रयोग, सहज सरल भाषा आदि विशेषताएँ पायी जाती है।

बीज शब्द : नवगीत, जीवनदर्शन, लोकजीवन, युगबोध, व्यष्टि और समष्टि, मानवचेतना, गेयता, बिम्ब और प्रतीक और लोकधर्मी

प्रस्तावना :

हिंदी काव्य जगत में नवगीत एक समकालीन विधा है। आधुनिक जीवन की पीड़ा, संत्रास, वेदना, सामाजिक विसंगति,. विद्रोह इन मानवीय जीवन पर अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करती है। यह विधा अपनी विषयवस्तु को विशिष्ट रूप में व्यक्त करता आ रही है। नयी कविता की तरह गीतों ने भी सामाजिक भाव-भंगिमा को प्रस्तुत किया है। नये प्रतीक, नये बिम्ब, नये कहावतें जीवनवर्शन, गेयता, सहज और सरल भाषा आदि विशेषताओं को रेखांकित करते हुए, नवगीत आम आदमी के जीवनदर्शन और युगबोध का प्रतीक बन गया। यह भाष्य या गीत समसामयिक परिवर्तन की विधा है। गेयता इसका मुख्य लक्षण है। नवगीत युगीन संदर्भ को परिभाषित करता है। नवगीत पढ़ने में सहज और अर्थगहन में सरल होतेहैं। गेयता होने के कारण लयात्मकता, भी होती है। इसप्रकार नवगीत अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण विधा है।

नवगीत की परिभाषा:

नवगीत के पुरोधा देवेंद्र शर्मा 'इंद्र'कहते हैं, " हर नवगीत, गीत होता है लेकिन हर गीत नवगीत नहीं होता।"[1] नवगीत के बारे में ब्रहमस्वरूप शर्मा त्रिखते हैं" वास्तव में गीत, प्रगीत में कोई सैधांतिक अंतर नहीं है। नया शब्द जोड़ने से प्रगतिशीलता का ही अर्थ होता है।"[2]

इसप्रकार नवगीत गीत औरप्रगीत में कोई अंतर नहीं। नवगीत भी उसी प्रकार भावाभिव्यक्ति कर रहे हैं जैसे गीत या प्रगीत करते आ रहे हैं।

नवगीत का इतिहास :

ब्रहमस्वरूप शर्मा अपनी किताब आधुनिक हिन्दी साहित्य में नवगीत का साहित्य में प्रस्फुटन के संदर्भ में लिखते हैं, "आठवें दशक के बाद गीतों के साथ. नवगीत, संता से अभिहित गीत भी लिखे गये। वास्तव में गीत, प्रगीत और नवगीत में कोई अंतर नहीं है। नया शब्द जोड़ने से प्रगतिशीलता का बोध होता है। 'नया' 'नव' को जब वाद' का रूप दे दिया जाता है लब प्रगति

शिथिल हो जाती है। नवगीत भी उसी प्रकार भावाभिव्यक्ति करते हैं जिस प्रकार गीत या प्रगीत करते आ रहे हैं। ओम प्रभाकर, नईम शलभ, श्रीरामसिंह, चंद्रमोलि उपाध्याय, देवेन्द्र कुमार, शंभुनाथ सिंह मणिमधुकर, माहेश्वर तिवारी, रमेश रंजक बालस्वरूप राही नवगीत के प्रसिद्ध गीतकार कहे जाते हैं।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि समकालीन गीत ही नवगीत है।

नवगीत का बीजारोपन छायावाद के उत्तरकाल में दिखाई देता है। उस समय के तारसप्तक और केदारनाथ अग्रवाल की पुस्तक 'युग की गंगा' मे नवगीत का नामोल्लेख दिखाई दिया। राजेंद्र गौतम के अनुसार सन 1947 में अज्ञेय द्वारा संपादितप्रतीक' पत्रिका निकली थी इसमें और निराला जीद्वारा जो गीत लिखे जा रहे थे उसमें भी नवगीत' की बीजवस्तु दिखाई पड़ती है। 1950 के आस पास उसमें भी नवगीत की बीज वस्तु दिखाई पड़ती है। 1950 मेंराजेन्द्र प्रसाद सिंह की 'व्यूमिका34' इस किताब में भी नवगीत की बीज वस्तु पायी जाती है। नवगीत का नामकरण 1958 में राजेंद्रप्रसाद सिंह का गीतसंग्रह 'गितांगण' की भूमिका मेंकिया था। और इसके साथ-साथ नवगीत के बुनियादी तत्व भी बताये ये - जिसमें जीवन दर्शन, आत्मनिष्ठा, व्यक्तित्वबोध, परिसंचय, गीतितत्व। नवगीत की विस्तृत चर्चा 1964 में राजस्थान से पत्रिका में नवगीत संग्रह आया 'कविता न्य' इस नाम से उसमें पाई जाती है। जिसके अंतर्गत नवगीत का शिल्प और कथ्य के बारे में विस्तार से चर्चा की गई नवगीत को आगे बढ़ाने में शंभूनाथ सिंह का बड़ा योगदान रहा है। इसको और संदर्भिन इस समय नगील का आन्दोलन भी चल निकला । यो वो हिंदी में गीत चिखने की परंपरा पुरानी है लेकिन नयी कविता आन्दोलन के समय सामान्यतः कवियों ने गीत चिखना छोड़ दिया। किन्तु नयी कविता के वजन पर नवगीत नाम से इसे जिलाये रखने की कोशिश की गयी। यह कार्य मुख्य वय से शंभूनाथ में किया। शंभुनाथ जी ने अच्छे गीत लिखे हैं। जगदीश गुप्ज, ठाकुरप्रसाद सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, रामदरश भिमश्र, श्रीकृष्ण तिवारी आदि।"[4]नवगीत का आगाज करनेवाले शंभुनाथ जी ने अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर नवगीत की परंपरा को आगे बढ़ाया है।

समकालीन गीत ही नवगीत है। नवगीत अपने समय का समग्र मूल्यांकन करती है। इन नवगीतकारों ने लोक-जीवन की वस्तुचेतना को पकड़ा है। समकालीन नवगीतकारों में मुख्य रूप से इन रचनाकारों ने नवगीत का सृजन किया है "अज्ञेय के 'हरी घास पर क्षणभर; 'बावरा अहेरी' इन काव्यसंग्रहो में, गिरिजाकुमार माथुर 'नाश और निर्माण"धूप के धाम' धर्मवीर भारती ने 'ठंडा लोहा' तथा 'सात गीत वर्ष में, नरेश मेहता ने 'धनपारखी चुनो' में, शंभूनाथ सिंह ने समय की शिला पर' में रामदरश मिश्र ने 'बेरंग बेनाम चिड़िया में, 'धक गयी धूप में शब्दसंग्रह में, केदारनाथ सिंह ने अभी बिलकुल अभी' में राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 'अभी खुली बयार' में चंद्रदेव सिंह व्दारा संपादित 'पाँच जोड़ बाँसुरी' नये गीतों का विशिष्ट संग्रह हैं। इनके अतिरिक्त महेंद्र शंकर, रामनरेश पाठक, उमाकान्त मालवीय इनके गीत भी आते हैं।"[5]

इन समकालीन कवियों ने समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाते हुए नवगीत को नया मोड़ देकर सामाजिक विसंगति, विद्रुपता और असंगति को दृष्टिगत किया है। डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय लिखते हैं,"कवि का कर्तव्य है कि वह समाज, व्यवस्था की दुरावस्था, विसंगति पर टिप्पणी करे, करे मारक प्रहार कि जग जाएँ मुर्दे भी। कारण जिस समाज ने उसे समर्थ बनाया, साहित्यकार बनाया, उसके प्रति उसका उत्तरदायित्व बनता है।"[6] इस प्रकार समकालीन कवियोंनेनवगीत में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस तरह नवगीत का विकास हम देख सकते हैं। नवगीत की गेयता महत्वपूर्ण विशेषता है।

काव्यरूप में नवगीत :

गीत इसका मूल काव्यरूप है। नवगीत जनसाधारण जनता के सुख-दुःख को अपने गीतों में अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। नवगीतकार केवल कोरी कल्पना को लेकर नहीं चलता, बल्कि समाज के साथ अनुभूति के स्तर पर अपना गहरा संबंध बनाकर अभि-व्यक्त होता है। जीवन की आशा-निराशा, हर्ष उल्लास, उतार-चढ़ाव को गहराई से व्यक्त करता है। छायावाद वैयक्तिकता के स्वर को उजागर करता है वही नवगीत सामाजिक स्तर को प्रस्फुटीत करता है। छायावादी कवियों ने कल्पना के रंगों से रंगकर काव्य रचना की है। रहस्यवाद को उजागर किया है। वहीं नव-गीतकारों ने सामाजिक यथार्थवादी, वास्तववादी भाव-भंगिमा को अनुभूति के स्तर पर उजागर किया है। नवगीतकार मानव जीवन की अनुभूति को ज्यों कि त्यों रचने की क्षमता रखता है। नवगीत मानव जीवन का मंतव्य है। इसमें मानव जीवन की उखड़ते हुए क्षण और टूटती हुई साँसों को जोड़ने का कार्य किया है। मानव विकास इन गीतों में हुआ है। दुखियों का क्रंदन, किसान, मजदूर आदि इस नवगीतों के विषय है।

नवगीत काव्यरूप में सचही अपना अलग स्थान रखता है। नवगीत में कल्पना की आड़ में सच्चाई नहीं है। चालक समाज जीवन की, मानव जीवन की गहरी पकड़ है। जो अपने नवगीतों में उजागर हुई है। इसलिए नवगीत जीवनदर्शन तथा युगबोध के गीत कहे जाते हैं।

नवगीत की प्रवृत्तियाँ:

डॉ. नगेन्द्र जी ने नवगीत की प्रवृत्तियों स्पष्ट करते हुए बहुत ही सटीक स्पष्टीकरण दिया है वे लिखते हैं, "इन गीतों की एक सामान्य भूमि है। अनुभूतिकीसच्चाई, अतएव अनुभूति की अपनी-अपनी विशिष्टता, नवीन सौन्दर्यबोध, आकार-लघुता नवीन बिम्ब, प्रतीक योजना, उपमान योजनासे अंतर्दीप्त मालूम पड़ते हैं। इन सभी गीतों में लोक-जीवन का रस इनकी सामान्य विशिष्टता है। अतएव ये गीत प्रभाव की अन्विति से दूध-बताशा, पनघट, बंसवट, चुनरिया, ओढ़नियां आदि अनेक शब्द लिये है, बल्कि इस अर्थ में है कि उन्होंने लोकजीवन की वस्तु रचनाको पकड़ा है।" डॉ. नगेंन्द्र जी ने नवगीत की विशेषताओं पर गहराई से दृष्टी डालकर हमे बताने का प्रयास किया है कि नवगीत संघर्ष का गीत है।

प्रकृति चित्रण :

नवगीतकारों के गीतों में प्राकृतिक सौंदर्यका बहुत ही सुंदर अवलोकन हुआ है। प्रकृति के माध्यम से नवगीतकारोंने अपनी संवेदना को अभिव्यक्ति दी है। नदी, पर्वत, पहाड़, झरने, इरन, काली, बूँदे, बारिश, खेत-खलिहान का सुंदर चित्रण नये बिम्ब व प्रतीकों के माध्यम से किया है। कवि चित्तरंजन कर की 'सावन' इस नवगीत में दिखाते हैं-

"मेघों ने गीत लिखे, बुंदों ने गाया।
झरझर झरनों ने मल्हार गुनगुनाया
शब्द नये पायें,
नदीयों की लहरों में, छंद नये आए।"

प्रकृति का इतना मनभावन चित्रण चित्तरजन कर जी ने किया है कि नये बिम्ब, नये प्रतीक अपने आप लयबद्ध हो रहे है।

"मोरों ने नृत्य किया, कण-कण हर्षाया
वृक्षों ने शुरू किया नये पाठ पढ़ना ।
चिड़ियों जाना अब क्ये श्लोक गढ़ना।"

सावन के पश्चात प्रकृति का मनमोहक दृश्य कवि ने अपने इस गीत में रेखांकित किया है। खेत-खलिहान, हरियाली रोम रोम से हर्षित है। लहलहाती फसलें जंगलों में नृत्य करते मोर यह एक अद्भूत नजारा अपने गीत में उतानकर चित्तरंजन ने प्रकृति का सौंदर्य शब्दबद्ध किया है- जैसे-

"खेतों ने एक नया सर्ग फिर बढ़ाया।
हरियाली की पाती बहनों ने पायी।
बाँट देखते रहती कब आए भाई। झूलों से पता चला अब सावन' आया।"

निराशा और वेदना :

नवगीतकार अपने जीवन की निराशा और वेदना को भी स्पष्टरूप से स्वीकार करता है। आधुनिक जीवन में व्यक्ति निराश और हताश है क्योंकि स्वार्थी वृत्ति और अहंभावना ने मानव जीवन को पूरी तरह से घेर लिया है। अपनापन, रिश्ते-नाते, सगे-संबंधी नाममात्र के सिने में बसे हैं। कोई किसी का नहीं रहा। डॉ माणिक विश्वकर्मा लिखते हैं, "घेरने लगे हमको रोज नये रोग मिलते है अक्कार अनचाहे लोग एक-एक करके बुरे है सभी मीत जीवन में बचा नहीं कोई संगीत।"

अहंमवादिता :

जीवन पार्थ की गीत गाता नवगीतकार जब महन् मवादित्ता की बात करता है तो जीवन की सच्चाई सामने आती है। भाज नया दौर है। अहंकार, अहंम, स्वार्थ, अपने चरमसीमा है। इसे आधुनिकता कहे या अधुनिकता के नाम मानव-मन के होसले जो सिर्फ स्वयं का विचार करता है। मानवतावाद सिर्फ नाममात्र रह रहा है। डॉ. विश्वकर्मा लिखते हैं-

"बाँटते रहे अपने हिस्से की जीत
जीवन में बचा नहीं अब कोई संगीत,
हैवानियत का आया है नया दौर.
मुँह से भी छीन लेते है लोग कौर।"

कवि आगे लिखते है, आज प्रेम नाम की कोई भावना नहीं रहीं। मानव स्वार्थ में इतना अंधा हो चुका है कि उसे प्रेम का मोलया महत्व नहीं रहा। प्रेम की जगह आज पैसे ने ली है। धोका-फरेब जैसी भावनाएँ मन में घर कर रहीं है। सच्चा प्रेम, पवित्र भावना सिर्फ नाम के रह गये हैं। कवि इसे अपने गीत में स्पष्ट करते हुए लिखता है-

"काँटे ही हाथ लगे जब बोई प्रित,
जीवन में बचा नहीं अब कोई संगीत।"

लोग एकदूसरे के विकास में बाधा बन रहे हैं। कोई किसी की प्रगति देख नहीं पा रहा है। कवि काला है यह हैवानियता का दौर है, यहाँ कोई किसी का नहीं-

"जब भी बढ़ना चाहा मंजिल की ओर,
बींच गई टाँग, किया लोगों ने शोर,
निभा नहीं पाये हम दुनिया कीरीत,
जीवन में बचा नहीं अब कोई संगीत ।"

डॉ नगेन्द्र की बात यहाँ सटीक सिद्ध होती है, वे कहते हैं- "इन गीतों में घरेलु जीवन का परिवेश है। प्रकृति के बहुत हटके अछूते बिम्ब है और आस-पास के जीवन के रंग है।"[8]

सामाजिक चेतना :

विजय राठौर नवगीत को अपने शब्दों में परिभाषितकरते हुए लिखते हैं - नवगीत वह छंदसीख रचना है जिसमें अभिजात्य स्वर, माटी की महक और पसीने की चमक, रिश्तों की गुफ्तगू और फूलों की खुशबू, जीवन की कडवाहट और समृध्दि की आहट हो, भुख की खिलखिलाहट और दुःख की अकुलाहट हो, व्यक्ति के अकेलेपन और समाज के अपनेपन के बीच स्नेह-संवाद हो। व्यष्टि का समष्टिकरण और समष्टि का व्यष्टिकरण हो। सहज, सरल और तरल भाषण में नये बिम्ब, प्रतीक, नये मुहावरें जब छंद की शिखरनी में अटखेलियाँ करने लगे। तब समझने में देर नहीं लगती कि नवगीत का प्रार्दुभाव हो चुका है। विजय राठोर के इस कथन से नवगीत में सामाजिक चेतना का पुरा स्वरूप ही उल्लिखितहुवा है। नवगीत की महत्वपूर्ण विशेशता है सामाजिक चेतना। कवि सामाजिक विसंगति से अछूता नहीं रह पाता। यह विषमताएँ उसे प्रेरित करती रहती है। नवगीतकार ने सामाजिक दायित्व का परिपूर्णता से प्रस्फुटन अपने काव्य के अंतर्गत किया है।

गोपालदास सक्सेना'नीरज'लिखते हैं-

"कि जब तूफान आया, हिलोरो ने बुलाया है,
तुम्हारी नाव क्या तट से बंधी रह जाएगी।"

घरेलू जीवन का दुःख दर्द, परिवारिक अभाव का दर्द उसके गीतो में उतरा है। छाया वाद की तरह वेदना का काव्य है नवगीत। परंतुदोनों के अर्थ में अंतर है। छायावाद व्यक्तिगत दर्द का प्रतिपादन करता है, तो नवगीत जन जन की यातना मुखरित करता है।

युगबोध –

नवगीत में युगबोध या आधुनिक युग चेतना प्रखरता से चित्रित हुई है। नवगीत की यह महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है। क्योंकि काल का चित्रण करना नवगीतकार अपना आदय कर्तव्य समझता है। सामाजिक विषमता, घरेलू दर्द, क्षणभंगुरता, राष्ट्रवाद, देशभक्ति यथार्थवाद, जीवनदर्शन इन सारी विषयवस्तु को उजागर कर नवगीत ने युग बोध को रूपायित किया है। युगबोध से तात्पर्य ही हैकि अपने समय की हर समस्या को चित्रित करना। नवगीतों में सम-कालीन समयदर्शन प्रखरता से चित्रित हुआ है।डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- "युगीन संदर्भों में मानव मन के संवेगों को क्या नया रूप प्राप्त होता है। लेकिन इन संवेगों को गाने के लिए भानव-मन में बेचैनी रहा करती है।"[9]

आधुनिक बोध :

नवगीत में अपना महत्वपूर्ण योगदान देनेवाले डॉ.शंभूनाथ सिंह आधुनिक बोध के यथार्थ पर अपनी राष्ट केद्रित कर चुके थे। उन्होने आप अपनी युगसापेक्ष सजगता के कारण उससे कदम मिलाने में कोई दिक्कत नहीं हुई समकालीन गीत ही नवगीत है। इन गीतों में नवीनता के बीज पड़े। आधुनिक काल की मौलिक उपलब्धि कहे गये यह नवगीत। यह नवीनता चेतन- अचेतन दोनों रूपों में सर्जन में परिमार्जित होती है। आधुनिक युग की जैसे परिभाषा बदल गई। मूल्य बदल गये। धर्म का, स्थान अर्थ ले गया, नैतिकता का यथार्थ नेऔरभाउकता का बौध्दिकता ने। इसप्रकारनवगीत अनास्था, क्रंदन, विद्रोह, अविश्वास और वितर्क को लेकर चला है। डॉ विजयेंद्र स्नातक लिखते हैं "आधुनिक गीत को कुछ गीतकारों ने नवगीत नाम देकर प्रचलित परंपरा से पृथक स्वतंत्र गीत- विधा की जोरदार वकालत की। उनका कहना था कि गीत को रोमानी वातावरण से निकलकर समाज से जोड़कर युग संदर्भ में

परखना चाहिए। यदि आधुनिक बोध को गीत में स्थान दिया जाए और सामाजिक संवेदनाओं से उसकी गहरी संपृक्ति रहे तो वह गीत नवगीत की श्रेणी में रखा जाएगा।"[10]

निष्कर्ष :

समकालीन गीत नवगीत कहे गये। समकालीन परिस्थितियों के अनुसार नवगीतकारों ने भी अपने विषय को वाणी दी है। नवगीतकार नेअपनी मनुभूतियों को साहित्य में व्यक्त किया है। समाज में व्याप्त विसंगतियाँ और विषमताओं को स्वर दिया है।प्रकृतिचित्रण, अधुनिकबोध, युगबोध, अहम्वादिता, निराशा और वेदना, प्रेमचित्रण आदि प्रवृत्तियों को लेकर चलने वाली यह विधा नवगीत कहलायी। नये बिम्ब, नये प्रतीक, मुहावरे, गहरी संवेदना, को नये ढाँचे में रखनेका सफल प्रयास है नवगीत।अत: कहा जा सकता है कि काव्य के शिल्प-विधान के अंतर्गत संवेदना-संप्रेषण के लिए शिल्प के सभी अंगों का उचित प्रयोग हुआ है।

संदर्भ :

1ब्रह्मस्वरूप शर्मा, 'आधुनिक हिंदी साहित्य, मनु प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2007 पृ-47-48
2 उपरिवत - पृ-48
3 उपरिवत - पृ-48
4 बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्त्री.
प्र.-1946, पृ-450
5डॉ नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल प्रका. दिल्ली, पृ-646
6 संपा. डॉ. अर्चना त्रिपाठी, 'भाषा'- नवंबर-दिसंबर (बैमासिक) 2014 अंक-2 केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, पृ.-250
7 डॉ, नगेन्द्र 'हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल प्रका. दिल्ली, पृ.646
8उपरिवत – पृ646
9उपरिवत – पृ645
10राजेंद्र गौतम, हिंदी नवगीत : उद्भव व विकास, परागप्रकाशन, दिल्ली-32 पृ. 26

*****

हिंदी-गज़ल का शिल्प विधान

डॉ. नवनाथ शिंदे
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
सांगोला महाविद्यालय, सांगोला
जिला – सोलापुर (महाराष्ट्र)
मो ९७६३६०२३०४-
navnathshinde442@ gmail.com

सारांश (Abstract):

ग़ज़ल आधुनिक हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण काव्य-विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। यद्यपि इसका उद्भव और विकास उर्दू-फारसी ग़ज़ल परंपरा से जुड़ा हुआ है, तथापि हिंदी भाषा, भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश तथा आधुनिक जीवन-बोध के प्रभाव से हिंदी ग़ज़ल ने अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हिंदी ग़ज़ल के शिल्पविधान का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इसमें शेर-संरचना, मतला, मक़्ता, काफ़िया-रदीफ़, छंद विधान, भाषा, प्रतीक, बिंब, मिथक, संगीतात्मकता, रस तथा शैली जैसे प्रमुख तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। यह शोधपत्र यह प्रतिपादित करता है कि हिंदी ग़ज़ल केवल प्रेम की अभिव्यक्ति तक सीमित न रहकर सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विसंगतियों तथा मानवीय संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम बन चुकी है। हिंदी ग़ज़ल केवल उर्दू ग़ज़ल का अनुवाद या अनुकरण न होकर उसकी स्वतंत्र कलात्मकता और सामाजिक प्रासंगिकता विद्यमान है ।

बीज शब्द (Key Words): हिंदी ग़ज़ल, शिल्पविधान, प्रतीक, बिंब, छन्द, संगीतात्मकता ।

प्रस्तावना (Introduction):

ग़ज़ल मूलतः फारसी भाषा की काव्य विधा है , जिसने अरबी और उर्दू साहित्य में विकसित होकर व्यापक लोकप्रियता अर्जित की। हिंदी साहित्य में ग़ज़ल का प्रवेश उर्दू साहित्य के संपर्क के माध्यम से हुआ। प्रारंभ में हिंदी ग़ज़ल को लेकर अनेक विवाद सामने आए। कुछ विद्वानों ने इसे हिंदी साहित्य की विधा मानने से इंकार किया, जबकि कुछ ने इसे विशुद्ध हिंदी रूप प्रदान करने का प्रयास किया । इसी क्रम में उसे 'गीतिका', 'अनुगीत', एवं 'मुक्तिका' जैसे नाम दिए गए किन्तु यह स्पष्ट है कि ग़ज़ल की पहचान उसके शिल्प और संरचना से होती है। नाम परिवर्तन से उसका मूल स्वरूप नहीं बदला जा सकता। डॉ.उर्मिलेश के अनुसार, "हिंदी ग़ज़ल से अभिप्राय उर्दू -कविता से आयातित उस काव्य विधा से है जो उर्दू ग़ज़ल की शैल्पिक काया में हिंदी की आत्मा को प्रतिष्ठित करती हुई अपनी गेयता को सुरक्षा देती हुई, आधुनिक जीवन और परिवेश की विसंगतियों को नूतन भावबोध के साथ स्थापित करती हुई आगे बढ़ रही है। जिस ग़ज़ल में हिंदी की प्रकृति और व्याकरण की सुरक्षा के साथ नवगीत, बिंबो और प्रतीको का विधान है मेरी समझ में उसे हिंदी ग़ज़ल मान लेने में कोई हर्ज नहीं हैं।"[1] हिंदी ग़ज़ल का शिल्प उर्दू-फारसी की ग़ज़ल के शिल्प से भिन्न नहीं है । हिंदी गज़ल में भी पाँच या इससे अधिक विषम संख्या में शेर होते हैं । हिंदी में शेर को कुछ लोगों ने 'द्विपदी' कहा है। गोपालदास नीरज ने शेर को 'द्विपदिका' नाम दिया है। प्रत्येक शेर में दो मिसरे होते हैं और विषय की दृष्टि से प्रत्येक शेर अपने आप में स्वतन्त्र इकाई होता है।

काफिया और रदीफ का निर्वाह भी उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार उर्दू फारसी गज़ल में किया जाता हैं । मतले और मक्ते की परंपरा भी उर्दू ग़ज़लों की भाँति हिंदी ग़ज़ल में मिलती है। मतले को कुछ हिंदी विद्वानों ने 'उदयिका', ' आरम्भिका' आदि नाम दिये हैं । ग़ज़ल का अन्तिम शेर मक्ता कहलाता है जिसमें गज़लकार का 'तखल्लुस' अर्थात् उपनाम भी अंकित होता है । हिंदी ग़ज़ल के मक्ते के संबध में हम यह कह सकते हैं कि हिंदी के कुछ ग़ज़लकारों ने अपनी गजलों में अपने उपनाम का प्रयोग नहीं किया है। अतः इन ग़ज़लकारों के अंतिम शेर मक्ते की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। परन्तु कुछ गज़लकारों ने अपनी ग़ज़लो में 'उपनाम' का प्रयोग अवश्य किया है। जैसे –

"कुअर की आँख है यह अश्क में क्योंकर न भीगेगी,
न जो भीगी कभी जल में कमल की पंखुड़ी होगी ।"[2]

हिंदी ग़ज़ल में प्रयुक्त भाषा:

हिंदी ग़ज़ल की भाषा सरल, सहज, मुहावरेदार और प्रभावपूर्ण है। इसमें संस्कृतनिष्ठ तथा उर्दू-फारसी मिश्रित शब्दावली का संतुलित प्रयोग मिलता है। प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता ग़ज़ल की भाषा को अधिक सघन बनाती है। यदि फारसी साहित्य

के इतिहास का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होगा कि रौदकी से लेकर सादी शिराजी और अन्य परवर्ती कवियों की ग़ज़लों की भाषा बड़ी जटिल है। ग़ज़ल की भाषा मुहावरेदार होनी चाहिए। मुहावरे और कहावतें ग़ज़ल में संक्षिप्तता, रोचकता एवं प्रभावोत्पदकता उत्पन्न कर देते हैं। हिंदी गजलों में भी मुहावरों और कहावतों का आवश्यकतानुसार प्रयोग हुआ है। यथा -

"रेशमी सपने बुने थे आसमाँ कदमों में था,
इस तरह के मंजरों का सिलसिला दोनों में था।"[3]

प्रस्तुत शेर में रेशमी सपने और आसमाँ कदमों में मुहावरों का प्रयोग हुआ है। ग़ज़ल की भाषा का एक अन्य महत्वपूर्ण एवं आवश्यक गुण भाषा का प्रतीकात्मक होना है। हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लो में इस विशेषता का पूरा ध्यान रखा है। जैसे -

"सूरज समझौता कर बैठा है तारों के साथ
अब दिन को भी जीना होगा अंधियारों के साथ"[4]

इस शेर की भाषा पूर्णतया प्रतीकात्मक है जिसका तात्पर्य यही है कि जब प्रकाश देने वाला ही अपने प्रकाश का सौदा कर बैठे तो सिवाय अंधेरे के और किस चीज़ की उम्मीद की जा सकती है। हिंदी ग़ज़ल में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग मिलता है- एक संस्कृतनिष्ठ भाषा और दूसरी उर्दू मिश्रित भाषा। हिंदी ग़ज़लो में यथास्थान तद्भव, देशज आदि शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

छंद-विधान:

ग़ज़ल चाहे वह हिंदी में हो या उर्दू में या अन्य किसी भाषा में, छंदबद्धता उसकी सर्वप्रथम विशेषता है। छंद, वास्तव में एक तरह के लयात्मक स्वरांश है, जिन्हें जोडकर अलग अलग बहरे बना ली जाती है। उूर्द में कल उन्नीस मूल बहरें हैं। जिनमें लगभग चालीस मिश्रित बहरे बनायी गई है। हिंदी ग़ज़लों में प्रयुक्त बहरे उर्दू-फारसी की बहरों पर ही आधारित है क्योंकि मात्र भाषा बदल जाने से ग़ज़ल की आधारभूत संरचना तो नहीं बदली जा सकती। हिंदी गज़लो में उर्दू की जो बहरे अति लोकप्रिय एवं प्रचलित है उनके नाम हैं - बहरे-रमल, बहरे-हज़ा, बहरे रजज, बहरे मुतकारिब, बहरे मजास। हिंदी ग़ज़लो में इन बहरों का विविध रूपों में प्रयोग किया गया है। कुछ ग़जलकारों ने हिंदी ग़ज़ल को विशुद्ध हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप देने की दृष्टी से उसमे संस्कृत के मात्रिक छंदो का प्रयोग किया है, जैसे- मन्दाक्रांता।

प्रतीक विधान:

ग़ज़ल शिल्प के उपकरणों में प्रतीक सबसे आवश्यक एवं सशक्त माध्यम है। प्रतीक अनुभूति को सघन बना देते हैं। हिंदी ग़ज़लो में अधिकतर उर्दू फारसी ग़ज़ल में प्रयुक्त ईरानी सभ्यता के प्रतीकों का प्रयोग किया जा रहा है जैसे पतझड़, गुलशन, चमन, आसमाँ, रात, सुबह, मयखाना आदि। परंतु आधुनिक हिंदी गज़लकार अपनी गजलों में उन्हीं प्रतीकों का प्रयोग करने का प्रयास करते है, जो भारतीय परिवेश और जनजीवन से संबंधित है। हिंदी ग़ज़ल काव्य और शिल्प की दृष्टि से अपनी अलग पहचान बना चुकी है किंतु आज भी काव्य प्रतीकों के विधान पर उर्दू-फारसी के प्रतीकों का प्रभाव देखने को मिलता है।

बिंब एवं अप्रस्तुत विधान:

वस्तु एवं भाव के प्रभावशाली संप्रेषण की दृष्टि से बिंब काव्य का अत्यंत महत्तवपूर्ण तत्व है। बिंब वस्तु या भाव को साकार रूप प्रदान कर पाठक के सामने लाकर खड़ा कर देते हैं और उसे संवेद्य बना देते है◌ं। बिंब सदैव किसी वस्तु का ही बनता है। किसी भाव या विचार को अनुभूति तक पहुँचाने के लिए हमें किसी वस्तु का मानसिक सहारा लेना पड़ता है। वह वस्तु उस भाव या विचार विशेष को हमारे समक्ष प्रत्यक्ष कर देती है। इस प्रकार बिंब एक प्रकार से किसी भाव आदि के मानसिक प्रत्यक्षीकरण का माध्यम है। हिंदी ग़ज़ल का बिंब विधान भी अत्यन्त सशक्त बन पड़ा है जो युगीन मानव के जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है। यथा -

"इस सुलगती धूप में साया भी जलता सा लगा
और फिर पहचान का सूरज भी ढलता सा लगा
एक पल रिश्तों का मौसम एक झुलसन धूप की
लौह तक विश्वास का मुझको पिघलता सा लगा।"[5]

संगीतात्मकता:

ग़ज़ल और संगीत का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है , ग़ज़ल अपने परम्परागत रूप में संगीत से गहराई से जुडी हुई है। 'ग़ज़ल गायकी' के नाम से एक गान शैली भी प्रसिद्ध है। ग़ज़ल दो रूपों में कही जाती है एक तो ग़ज़ल पढ़ी जाती है दूसरी तरन्नुम से कही

जाती है। चूँकि संगीतात्मकता ग़ज़ल का प्रमुख गुण है। इसलिए हिंदी-ग़ज़लों में भी यह गुण आना स्वाभाविक है। उर्दू-फारसी ग़ज़ल की भाँति हिंदी ग़ज़ल में भी संगीत का अत्यधिक महत्तव है। गेयता और लयात्मकता अच्छी ग़ज़ल के आवश्यक गुण है।

रस एवं अंलकारो का प्रयोग:

ग़ज़ल का प्रमुख रस श्रृंगार रहा है। ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ ही प्रेमभरी बातों का द्योतक है। हिंदी ग़ज़ल में भी श्रृंगारपरक ग़ज़लें लिखी जा रही है। परन्तु हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में एक अन्य धारा और देखने को मिलती है, जिसके अंतर्गत सामाजिक राजनीतिक विंसगितियों को चित्रित किया जाता है। हिंदी ग़ज़लों में अधिकतर परिवेशगत यथार्थ का ही चित्रांकन किया गया है ।अतः हिंदी ग़जलों में श्रृंगार के अतिरिक्त करूण आदि अन्य रसों का भी चित्रण हुआ है। इसके साथ ही हास्य व्यंगपर भी ग़ज़ल लिखी गई है। हास्य के माध्यम से व्यंग्य रूप में यथार्थ को चित्रित करने के लिए हिंदी ग़ज़लो का भी सहारा लिया गया है। जैसे -

"जुदाई में भी हमने वस्ल की तिकड़म निकाली है
तेरी लेटेस्ट फोटो अपने सीने से लगा ली है
वो संसद आज की तहजीब में संसद नहीं जिसमें
न चप्पल है, न जूता है, न थप्पड़ है न गाली है।"[6]

लाक्षणिकता एंव मिथकों का प्रयोग:

संक्षिप्तता ग़ज़ल की प्राथमिक अनिवार्यता है। ग़ज़लकारों को कम से कम शब्दों में गहन भावों, अनुभूतियों एवं वास्तविकताओं को अभिव्यक्त करना होता है। यही कारण हैं कि ग़ज़ल में प्रतीक इतने महत्तवपूर्ण हो जाते हैं। ग़ज़ल में प्रतीकों के साथ - साथ लाक्षणिक अभिव्यंजना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यथा -

"मैं नदी हूँ. पत्थरों ने रोक पाया मुझे,
पूछिए मत इस सफर में क्या बचा, क्या रह गया ?"[7]

हिंदी गज़लों में अनेक स्थानों पर मिथकों का प्रयोग भी किया गया है। जब साहित्यकार युगीन संदर्भ को स्पष्ट और सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए पौराणिक पात्रों एवं संदर्भों का प्रतीक रूप में प्रयोग करता है तो उसे मिथक कहा जाता है। हिंदी गजलों में भी कथ्य की अभिव्यक्ति को और भी अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली बनाने के लिए पौराणिक कथाओं का प्रतीक रूप में सहारा लिया गया है। युगीन मानव की पीड़ा कुंठा, भय, आंशका, घुटन आदि को व्यक्त करने के लिए हिंदी ग़ज़लकारों ने मिथकों का यथास्थान सफल प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ कुँअर बैचेन का ये शेर प्रस्तुत है-

"बात दिल की किस तरह खोलूँ तुम्हारे सामने,
मैं सुदामा की तरह हूँ बात तंदुल की तरह ।"[8]

इसी क्रम में शेर जंग गर्ग की गृज़ल का एक शेर दृष्टव्य है, जिसमें वर्तमान समय में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं नारी के प्रति बदले दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने के लिए महाभारत के द्रौपदी चीरहरण मिथक का प्रयोग किया है।

"कृष्ण के देश में दुःशासन
कब तलक यों हरेगें चीरों को ।"[9]

शैली:

हिंदी ग़ज़ल में लाक्षणिक, प्रतीकात्मक और संकेतात्मक शैली का प्रयोग मिलता है। प्रत्येक ग़ज़लकार की अपनी निजी शैली होती है, जिसे उसका 'अंदाज़-ए-बयाँ' कहा जा सकता है । ग़ज़ल में कथ्य से अधिक महत्त्व अभिव्यक्ति के ढंग का होता है। हिंदी ग़ज़लकारों ने भी अपनी व्यक्तिगत शैली के माध्यम से ग़ज़ल को विशिष्ट पहचान प्रदान की है। ग़ालिब ने ग़ज़ल में अभिव्यक्ति के अंदाज़ को सबसे ज़्यादा महत्त्व देते हुए कहा था-

"है और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि ग़ालिब का है अंदाजे बयाँ और ।"[10]

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल शिल्प और संवेदना दोनों स्तरों पर समृद्ध काव्य विधा है । हिंदी ग़ज़ल फारसी उर्दू ग़ज़ल से ही आयातित है इसलिए शिल्प की दृष्टि से हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप उर्दू फारसी ग़ज़ल के अति समीप है। हिंदी ग़ज़ल में ग़ज़ल के पाँचो अंगो को स्वीकार किया गया है शेर, मतला, मकता, रदीफ और काफिया । हिंदी ग़ज़ल का प्रत्येक शेर

अपने आप में स्वतंत्र होता है उसके प्रत्येक शेर में नवीन विचार विषय अंतर्निहित होता है। हिंदी ग़ज़ल में अधिकतर भारी भरकम शब्दों के प्रयोग से बचकर आम आदमी की दैनिक बोलचाल की प्रवाहपूर्ण भाषा का ही प्रयोग किया गया है हिंदी-ग़ज़लकारों ने अपने भाव, विचार-चिंतन की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों एवं बिंबों का सहारा लिया है, साथ ही उन्होंने अभिधा से बचते हुए लक्षणा एवं व्यंजना का आश्रय लिया है। उर्दू-फारसी ग़ज़लों की भांति अनुभूति की तीव्रता और संगीतात्मकता हिंदी-ग़ज़ल के प्राण हैं। यद्यपि हिंदी ग़ज़ल का शिल्पगत स्वरूप उर्दू फारसी ग़ज़ल के शिल्प विधान पर आधारित है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि हिंदी ग़ज़ल की उर्दू फारसी ग़ज़ल से भिन्न अपनी कोई पहचान नही है

संदर्भ :

1. हिंदी-ग़ज़ल : उद्भव और विकास, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, पृ. 142
2. हिंदी-ग़ज़ल यात्रा – भाग -1 संपा. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ. अजय जनमेजय, पृ. 50
3. हिंदी-ग़ज़ल यात्रा – भाग -1 संपा. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ. अजय जनमेजय, पृ. 73
4. . हिंदी-ग़ज़ल यात्रा – भाग -1 संपा. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ. अजय जनमेजय, पृ. 81
5. भीतर शोर बहुत है : डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ. 83
6. हिंदी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़ल संपा. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ. 42
7. सन्नाटे में गज – डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ. 22
8. महावर इतज़ारों का- डॉ.कुँवर बेचैन, पृ. 57
9. हिंदी-ग़ज़ल यात्रा – भाग -1 संपा. डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ. अजय जनमेजय, पृ.162
10. गज़ल और उसका व्याकरण, डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल , पृ. 35

*****

लोकगीत, साहित्य और संस्कृति

डॉ.अमोल पालकर
प्राध्यापक हिंदी विभाग,
बलभीम महाविद्यालय बीड
तहसील बीड,जिला बीड महाराष्ट्र ४३११२२
ईमेल :- amolpalkar00@gmail.com
दूरभाष :- 9404885185

श्री. हनुमान तुळशीराम नागणे
शोध छात्र,
बलभीम महाविद्यालय बीड
तहसील बीड,जिला बीड महाराष्ट्र ४३११२२
ईमेल :- hanumannagne99@gmail.com
दूरभाष :- 9021968864

शोध आलेख का सारांश:-

यह आलेख लोकगीतों के महत्व, स्वरूप और उनकी सांस्कृतिक भूमिका को स्पष्ट करता है। लोकगीत लोकसाहित्य की प्रमुख विधा हैं, जिनका रचनाकार अज्ञात होता है और जो मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते हैं। इनकी भाषा सरल, सहज और भावप्रधान होती है। लोकगीत समाज की संस्कृति के दर्पण हैं। इनमें सामाजिक जीवन, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, ऋतु परिवर्तन, श्रम और नारी-जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति मिलती है। ये गीत जनसामान्य की सामूहिक चेतना और जीवन-मूल्यों को अभिव्यक्त करते हैं। आलेख में लोकगीतों को संस्कार गीत, पर्व-त्योहार गीत, ऋतु गीत, श्रम गीत और भक्ति गीत जैसे वर्गों में विभाजित किया गया है। साथ ही यह बताया गया है कि लोकगीत आधुनिक साहित्य को भी प्रभावित करते हैं और साहित्य को जनजीवन से जोड़ते हैं।

बीज शब्द :- लोकगीत, सभ्यता, लोकसाहित्य, चेतना, संप्रेषणीय, खेत-खलिहान, पर्व-त्योहारों, अविच्छिन्न,जनसमूह, भावप्रधान, लोककथा, लोकनाट्य, लोकोक्ति, पहेलियाँ, जन्म, नामकरण, मुंडन, विवाह, खेती, कटाई, नाव खेने, कुआँ, दस्तावेज, परंपरा

प्रस्तावना :-

लोकगीत मानव सभ्यता की प्राचीनतम और सबसे सशक्त अभिव्यक्ति माने जाते हैं। जब लिखित साहित्य का विकास नहीं हुआ था, तब मानव ने अपनी अनुभूतियों, भावनाओं, आशाओं, पीड़ाओं और सामाजिक अनुभवों को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया। यही लोकगीत आगे चलकर लोकसाहित्य का आधार बने। लोकगीत न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि वे समाज की संस्कृति, परंपरा, विश्वास, जीवन-मूल्य और ऐतिहासिक चेतना के संवाहक भी हैं। साहित्य और संस्कृति के संदर्भ में लोकगीतों का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि वे जनसामान्य की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक साहित्य भारतीय संस्कृति की आत्मा है और लोकगीत उसका सबसे सजीव, संप्रेषणीय एवं प्रभावशाली रूप। लोकगीत वे गीत हैं जो जनसाधारण द्वारा रचे गए, जनसाधारण के लिए गाए गए और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा के माध्यम से सुरक्षित रहे। इनमें किसी एक व्यक्ति की लेखकीय मुहर नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना, अनुभव और संवेदना का स्वर निहित होता है। लोकगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे समाज के जीवन-दर्शन, आस्था, रीति-रिवाज, श्रम-संस्कृति, उत्सव, पीड़ा और संघर्ष के प्रामाणिक दस्तावेज हैं।लोकगीतों के बिना भारतीय संस्कृति की कल्पना अधूरी है। जन्म से मृत्यु तक, खेत-खलिहान से पर्व-त्योहारों तक, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध—सभी के जीवन में लोकगीत किसी न किसी रूप में उपस्थित रहते हैं। इसीलिए लोकगीत साहित्य और संस्कृति का घनिष्ठ, अविच्छिन्न संबंध है।

लोकगीत का अर्थ और स्वरूप –

लोकगीत शब्द 'लोक' और 'गीत' से मिलकर बना है। 'लोक' का अर्थ है—जनसमूह, समाज, सामान्य जनता तथा 'गीत' का अर्थ है—गायन, स्वरबद्ध काव्य। इस प्रकार लोकगीत वह काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो सामान्य जनता के जीवन से उत्पन्न होकर सामूहिक रूप से गाई जाती है। 'लोकगीत' दो शब्दों से मिलकर बना है—लोक और गीत। लोक का अर्थ है सामान्य जनसमुदाय तथा गीत का अर्थ है गेय रचना। इस प्रकार लोकगीत वे गीत हैं जो किसी विशेष व्यक्ति द्वारा रचित न होकर समाज द्वारा सामूहिक रूप से निर्मित, विकसित और संरक्षित होते हैं। इन गीतों का रचनाकार अज्ञात होता है और ये मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते हैं। लोकगीतों की भाषा सरल, सहज और भावप्रधान होती है। इनमें अलंकारिक चमत्कार की अपेक्षा भावात्मक सच्चाई अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। लोकगीतों का स्वरूप गेय होता है, अतः इनमें लय, ताल और छंद का विशेष ध्यान रखा जाता है।

लोकगीत और लोकसाहित्य का संबंध

लोकगीत लोकसाहित्य की एक प्रमुख विधा हैं। लोकसाहित्य में लोककथा, लोकगीत, लोकनाट्य, लोकोक्ति, पहेलियाँ आदि सम्मिलित हैं। इनमें लोकगीत सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली विधा मानी जाती है, क्योंकि गीत सीधे मन पर प्रभाव डालते हैं। जहाँ लिखित साहित्य शिक्षित वर्ग तक सीमित रहता है, वहीं लोकगीत अशिक्षित जनसमुदाय तक भी सहजता से पहुँचते हैं। इस प्रकार लोकगीत साहित्य को जनजीवन से जोड़ने का कार्य करते हैं। आधुनिक साहित्यकारों ने भी लोकगीतों से प्रेरणा लेकर अपनी रचनाओं को अधिक जीवंत बनाया है।

लोकगीत और संस्कृति –

संस्कृति किसी समाज की जीवन-पद्धति, विश्वास, आचार-विचार, परंपरा और मूल्यबोध का समग्र रूप है। लोकगीत संस्कृति के दर्पण होते हैं। उनमें समाज की धार्मिक मान्यताएँ, सामाजिक संरचना, पारिवारिक संबंध, नारी-जीवन, श्रम-संस्कृति और प्रकृति-प्रेम स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है।

उदाहरण के लिए—

- विवाह गीतों में पारिवारिक संबंधों और सामाजिक रीति-रिवाजों का चित्रण मिलता है।
- पर्व-त्योहारों से जुड़े गीतों में धार्मिक आस्था और सामूहिक उल्लास प्रकट होता है।
- श्रमगीतों में किसान, मजदूर और श्रमिक वर्ग के जीवन-संघर्ष की झलक मिलती है।

इस प्रकार लोकगीत संस्कृति को संरक्षित रखने और आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

लोकगीतों के प्रकार -

भारतीय लोकगीत अत्यंत विविध और बहुरंगी हैं। इन्हें विषय और अवसर के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. संस्कार गीत -

ये गीत जीवन के विभिन्न संस्कारों—जन्म, नामकरण, मुंडन, विवाह आदि से संबंधित होते हैं। इनमें पारिवारिक भावनाएँ और सामाजिक परंपराएँ अभिव्यक्त होती हैं।

2. पर्व और त्योहारों के गीत -

होली, दीपावली, तीज, सावन, छठ, गणगौर आदि पर्वों पर गाए जाने वाले गीत सामूहिक उल्लास और सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं।

3. ऋतु गीत -

ऋतु परिवर्तन के साथ गाए जाने वाले गीतों में प्रकृति का सौंदर्य, प्रेम और विरह की अनुभूति मिलती है। सावन के गीत विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

4. श्रम गीत -

खेती, कटाई, नाव खेने, कुआँ खोदने जैसे कार्यों के दौरान गाए जाने वाले गीत श्रम को आनंदमय बनाते हैं।

5. भक्ति और धार्मिक गीत -

इन गीतों में ईश्वर, देवी-देवताओं, संतों और लोकदेवताओं के प्रति आस्था प्रकट होती है।

लोकगीत और सामाजिक जीवन -

लोकगीत सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को सहज रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनमें जाति-व्यवस्था, स्त्री-पुरुष संबंध, गरीबी, शोषण, प्रेम, विद्रोह और करुणा जैसे विषय स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं। विशेष रूप से नारी जीवन की अभिव्यक्ति लोकगीतों में अत्यंत मार्मिक रूप में मिलती है। स्त्रियाँ अपने सुख-दुःख, आकांक्षाओं और पीड़ाओं को गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। इस प्रकार लोकगीत सामाजिक इतिहास के अनलिखे दस्तावेज बन जाते हैं।लोकगीतों में स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। अधिकांश लोकगीत स्त्रियों द्वारा रचे, गाए और संरक्षित किए गए हैं। विवाह गीतों में कन्या की विदाई की पीड़ा, सावन गीतों में विरह, श्रम गीतों में संघर्ष—ये सब स्त्री जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं।

लोकगीत और आधुनिक साहित्य -

आधुनिक हिंदी साहित्य पर लोकगीतों का गहरा प्रभाव पड़ा है। छायावादोत्तर और प्रगतिशील साहित्य में लोकजीवन और लोकसंवेदना को विशेष स्थान मिला। कवियों और कथाकारों ने लोकगीतों की भाषा, बिंब और भावधारा को अपनाकर

अपनी रचनाओं को अधिक जनसंपृक्त बनाया। निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि कवियों की रचनाओं में लोकगीतों की सहजता और लयात्मकता देखी जा सकती है।आधुनिकता और शहरीकरण के कारण लोकगीतों की मौखिक परंपरा कमजोर हुई है, किंतु रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा और डिजिटल माध्यमों ने लोकगीतों को नया मंच भी दिया है। आज लोकगीतों का पुनर्पाठ और पुनर्संरचना हो रही है।

लोकगीतों का सांस्कृतिक महत्व -

लोकगीत सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखते हैं। वे परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करते हैं। वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रभाव से लोकसंस्कृति पर संकट उत्पन्न हुआ है, फिर भी लोकगीत आज भी ग्रामीण समाज में जीवित हैं। लोकगीतों के संरक्षण और संकलन का कार्य आधुनिक विद्वानों द्वारा किया जा रहा है, जिससे यह अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रह सके।

लोकगीत और संस्कृति का संबंध -

संस्कृति किसी समाज की जीवन-पद्धति, आचार-विचार, विश्वास, परंपरा और कलात्मक अभिव्यक्ति का समग्र रूप है। लोकगीत संस्कृति के इन सभी तत्त्वों को संजोए रहते हैं। वे केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक शिक्षण के साधन भी हैं।

उपसंहार -

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोकगीत साहित्य और संस्कृति की आत्मा हैं। वे जनजीवन की सच्ची अभिव्यक्ति हैं और समाज की सामूहिक चेतना को स्वर प्रदान करते हैं। लोकगीत न केवल अतीत की स्मृति हैं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी प्रेरणास्रोत हैं। साहित्य और संस्कृति के अध्ययन में लोकगीतों की उपेक्षा संभव नहीं है। इनके संरक्षण और प्रचार से ही सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखा जा सकता है। लोकगीत साहित्य और संस्कृति की आत्मा हैं। वे परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु बनाकर सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखते हैं। लोकगीतों का संरक्षण भारतीय सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है। लोकगीत साहित्य केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की सांस्कृतिक पूँजी है। यह समाज की सामूहिक स्मृति, अनुभव और चेतना का संवाहक है। लोकगीतों के संरक्षण और अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति की संपूर्ण समझ संभव नहीं। अतः लोकगीत साहित्य और संस्कृति का अध्ययन न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अनिवार्य है।

संदर्भ सूची -

1. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी – *लोकसंस्कृति और लोकसाहित्य,* पृष्ठ 35–62
2. डॉ. रामविलास शर्मा – *लोकगीत और लोकजीवन,* पृष्ठ 41–78
3. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय – *लोकसाहित्य की भूमिका,* पृष्ठ 55–104
4. डॉ. शिवकुमार मिश्र – *भारतीय लोकसंस्कृति,* पृष्ठ 89–132
5. बच्चन सिंह – *हिंदी साहित्य का इतिहास,* पृष्ठ 215–230

*****

'गुलशन-ए-ग़ज़ल' में चित्रित विविध परिदृश्य

श्री. सुरेश आनंदा मोरे
शोधछात्र,
हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर।
संपर्क क्र. 9881424318

शोधालेख का सार :

प्रा. टी. के. जाधव 'अश्क' ने अपनी गजलों में प्यार-मोहब्बत के साथ विविध सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं के साथ मानवी मनोभावों को भी चित्रित किया है। उनकी गजलें प्रेमी के प्यार, इश्क, मोहब्बत और तनहाई के साथ सामाजिक समस्याओं, कुरीतियों तथा बदलती सामाजिक परिस्थिति पर भी प्रकाश डालती है। साथ ही विविध समस्याओं से बेहाल, दिशाहीन मनुष्य जीवन, 'आज नहीं तो कल जिंदगी बदलेगी' आशा पर मनुष्य की चल रही भागदौड़, इसमें निराशाओं का करना पड़नेवाला सामना आदि विविध बातों प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

बीज शब्द : 'गुलशन-ए-ग़ज़ल' संग्रह में चित्रित विविध परिदृश्य, प्रा. टी. के. जाधव 'अश्क' की गजलों में सामाजिक परिदृश्य।

प्रस्तावना : ग़ज़ल साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें उसका प्रत्येक शेर स्वतंत्र अर्थ देने में सक्षम होता है। यह कविता की तरह किसी एक विषय पर नहीं लिखी जाती। एक ही ग़ज़ल में अलग-अलग विषयों को समाया होता है। यह ग़ज़ल प्यार, इश्क, मोहब्बत, तनहाई के साथ सामाजिक समस्या तथा कुरीतियों की ओर भी निर्देश करती है। आज की ग़ज़ल तो प्यार, इश्क, मोहब्बत और तनहाई से बाहर आकर खुलेआम सामाजिक समस्याओं, कुरीतियों तथा बदलती सामाजिक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य कसती हुई दिखाई देती है। ग़ज़ल में आए इस परिवर्तन के संदर्भ में सरदार मुजावर लिखते हैं-"'गजल' हिंदी की अपनी चीज नहीं है। वह फारसी-उर्दू के जरिए हिंदी में आई है। ग़ज़ल प्रेम, श्रृंगार, रूपासक्ति, मिलन, विरह के भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है, लेकिन धीरे-धीरे जिंदगी के यथार्थ ने ग़ज़ल में पनाह लेना शुरु किया और आज तो वह व्यंग्य लेखन की तरह विसंतियों एवं विरोधाभासों पर चोट करने का माध्यम बनती जा रही है।"[1] प्रा. टी. के. जाधव 'अश्क' की गजलें भी इसके लिए अपवाद नहीं हैं। उनके 'गुलशन-ए-ग़ज़ल' ग़ज़ल-संग्रह में भी प्यार-मोहब्बत के साथ विविध सामाजिक परिदृश्यों को चित्रित किया है। प्रस्तुत ग़ज़ल-संग्रह का प्रथम प्रकाशन दिसंबर, 1983 में मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे द्वारा किया है। इसमें हिंदी-उर्दू ग़ज़लों के दीवाने प्रा. टी. के. जाधव ने अपनी ग़जलों में विविध विषयों के साथ मानवी मनोभावों को भी चित्रित किया है। उन्होंने 'गुलशन-ए-ग़ज़ल' ग़ज़ल-संग्रह के नामकरण के बारे में प्रस्तावना में ही बताया है कि "'गुलशन-ए-ग़ज़ल' याने ग़ज़लों की बगिया।" उनकी इस ग़ज़लों की बगिया में अलग-अलग प्रकार की गजलें दिखाई देती है।

इस संग्रह की पहली ही गजल में उन्होंने आदमी आज किस प्रकार दुख और चिंता में जीवन जी रहा है, इस पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। अपने ही लोग हम पर अन्याय करते हैं। ऐसी हालत में जीवन जीना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में आदमी का जीवन दिशाहीन बनता है। उसे क्या करें और क्या न करें? समझ में नहीं आता। आदमी ठीक से जी भी नहीं सकता है और मर भी नहीं सकता। आज के मनुष्य की द्विधा अवस्था को इस संग्रह की पहली ही गजल में गजलकार लिखते हैं-

"है रंजो-अलम बेशतर इन दिनों।
हुआ दिल मेरा गम का घर इन दिनों॥
नहीं है दुआ में असर इन दिनों।
मसीहा है बेदादगर इन दिनों
है रूठी हुअी मौत, क्या कीजिए?
है आबो-हवा गो जहर इन दिनों॥
बहोत खूबसूरत है दुनिया मगर।
हूँ बेचैन शमो-सहर इन दिनों
न रास्ता, न मंजिल, न रहबर है, 'अश्क'
न जाने है कैसा सफर इन दिनों॥"[2]

इस प्रकार प्रस्तुत गजल के माध्यम से गजलकार ने मनुष्य जीवन से संबंधित कई बातों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। दुनिया बहुत सुंदर है लेकिन आदमी बेचैन है। क्योंकि आज की विविध समस्याओं ने आदमी का जीवन बेहाल किया है। इस प्रकार मनुष्य जीवन से संबंधित अनेक बातों पर ग़ज़लकार जाधव जी ने प्रकाश डालने का प्रयास किया है। अगली ग़ज़ल में जाधव जी ने मृगजल की तरह होनेवाला प्रियतमा का प्रेम तथा युवावस्था की तुलना एक प्रलय से की है। क्योंकि आदमी इस युवावस्था में कुछ भी कर सकता है। साथ ही इसमें क्षणिक मानवी जीवन, समाज में होनेवाली रूढ़ी-परंपराएँ तथा उसे तोड़ने का भी संदेश दिया है। वे मानवी जीवन कितना क्षणभंगूर है बताते हुए एक शेर में लिखते हैं-

"हस्ती आदम की ख्वाब की-सी है।
ये कहानी हुबाब की सी है।"[3]

इसमें उन्होंने मानवी जीवन किस प्रकार क्षणभंगूर है बताया है। पुरानी रूढ़ी-परंपराओं को तोड़कर प्रगतशिल विचारों को अपनाते हुए मानवता पर बल देने की सलाह देते हुए वे कहते हैं-

"हरमो-दैर तोड़, दिल जोड़े
बात कुछ इन्कलाब की सी है।"[4]

इस प्रकार मानवता की दृष्टि से लोगों को आपस में जोड़ने का संदेश प्रस्तुत शेर के माध्यम से दिया गया है। लेकिन इस जिंदगी में बहुत विरोधाभास है। क्योंकि जिंदगी में आनेवाले संकटों तथा निराशा के कारण आदमी कई बार मरने के बारे में सोचता है लेकिन मर नहीं सकता। हरएक मनुष्य की कई बार ऐसी ही हालत होती है। इस संदर्भ में जाधव जी लिखते हैं-

"ऐ जिन्दगानी, क्या ये किये जा रहा हूँ मैं।
मरने की आरजू में जिये जा रहा हूँ मैं॥
मत पूछ, 'अश्क', पैरहने-जिंदगी का हाल।
दामन है तार-तार, सिये जा रहा हूँ।"[5]

प्रस्तुत शेर के माध्यम से ग़ज़लकार ने आम के जिंदगी के हालत को चित्रित किया है। आदमी की पूरी जिंदगी अलग-अलग समस्याओं का सामना करते-करते ही खत्म हो जाती है। मनुष्य को हमेशा लगता है 'अब मैं सुखी बनूँगी!' लेकिन यह सिर्फ उसका सपना ही रह जाता है। जिंदगी की यह दुर्दशा हमेशा चलती रहती है। इस जीवनरूपी नौका को हमेशा संकटरूपी बादलों का सामना करना पड़ता है। आदमी गरीब हो या अमीर, हरएक के जिंदगी में कुछ-न-कुछ तो कमी रहती है। दुनिया में ऐसा कोई आदमी नहीं मिलेगा कि जिसके जिंदगी में कोई कमी नहीं है। कोई भी आदमी परिपूर्ण नहीं है। इसलिए जिंदगी में कम-ज्यादा की चिंता किए बगैर जीने का संदेश देते हुए जाधव जी लिखते हैं-

"नामुरादीपर न रो, ऐ 'अश्क', तू।
कौन कामिल आया, कौन कामिल गया॥"[6]

जिंदगी में हमेशा विविध संकटों से झगड़ना पड़ता है। हरएक को जिंदगी में आनेवाले संकटरुपी तूफान का सामना करना पड़ता है लेकिन इस संकटरूपी तूफान से बाहर निकलने का रास्ता कहीं भी दिखाई नहीं देता। इस प्रकार की हालत हरएक युवा की हो गई है। इसलिए गजलकार लिखते हैं-

"लमहा लमहा है रवाँ, तूफाँन में कश्ती मेरी।
जाऊँ किस रुख पर के नजरों में कोई साहिल नहीं।"[7]

इसप्रकार आज के आम लोगों की स्थिति दिशाहीन हो गई है। प्यार-मोहब्बत के संदर्भ में कई शेर जाधव जी की गजलों में मिलते हैं। प्यार में प्रेमी इतना पागल हो जाता है कि वह उसमें कभी फायदा-नुकसान नहीं देखता। वह हमेशा अपनी प्रेमिका की यादों में खोया रहता है। एक बार आदमी प्यार में पागल हो जाता है, तब वह उसी में तड़पता रहता है। प्यार ही उनकी वेदनाओं का कारण बन जाता है और उसे पा लिया तो वही उसकी दवा होती है। इसलिए तो जाधव जी लिखते हैं-

"आज़ारे-मुहब्बत में अजब लुत्फो-मजा है।
जिसने दिया ये दर्द, वही आप दवा है॥"[8]

एक बार आदमी प्यार में पागल हो जाता है, तब उसे हर जगह अपनी प्रेमिका ही दिखाई देती है। प्यार के उन्माद में उसे कण-कण में प्रेमिका ही दिखाई देने लगती है। इसलिए ग़ज़लकार लिखते हैं-

"ऐ इश्क, ले चला है कहाँ मुझको ये जुनूँ।

उनका ही नाम सबको दिये जा रहा हूँ मैं॥"[9]

प्रेमिका के याद में प्रेमी का मन हमेशा व्याकुल हो जाता है। प्रेमिका की याद में ऑखों में आँसू आ जाते हैं। प्रेम की इस स्थिति के संदर्भ में गजलकार लिखते हैं-

"परेशाँ है दिल, आँख तर इन दिनों।
याद आये वो बेशतर इन दिनों॥"[10]

इस प्रकार प्यार में होनेवाली विविध दशाओं का चित्रण प्रस्तुत गजल में मिलता है। सच्चे प्रेमी को हमेशा निराशा का ही सामना करना पड़ता है। उसकी पुकार न प्रेमिका सुनती है, न ईश्वर। इसलिए प्रेमी को ईश्वर पर भी विश्वास नहीं। क्योंकि प्रेमी का सच्चा प्यार होने के बावजूद भगवान उसके मन के दुख को नहीं समझ रहा है। प्रेमी की इस वेदना को व्यक्त करते हुए जाधव जी लिखते हैं-

"आशिक हूँ, किस्मत में सहरा होगा।
रोऊँगा मैं और खुदा बहरा होगा॥"[11]

इस प्रकार प्रेमी को लगता है कि अगर भगवान हमारी पुकार नहीं सुनता, तो उसका क्या फायदा। बहरे के सामने कुछ भी बोले तो उसे क्या समझ में आएगा? आज धर्म, जाति के नाम पर समाज विभाजित हो रहा है। हिंदु हो, मुस्लिम हो, शीख हो या इसाई असल में हम एक ही भगवान के इन्सान हैं लेकिन आज कई लोग बिना वजह से धार्मिक विद्वेष फैलाते हुए दिखाई देते हैं। इससे समाज विभाजित हो रहा है। इससे हमारे सामाजिक सौहार्द को ठेंस पहुँच रही है। इस संदर्भ में जाधव जी लिखते हैं-

"एक है एक फकत, एक खुदा है, यारों।
दूर ही दूर मगर दैरो-हरम हो बैठे॥"[12]

इस प्रकार जाधव जी ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से इश्क-मोहब्बत में प्रेमी के दर्द को चित्रित किया है। साथ ही कई शेरों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। उनका हरएक शेर अर्थ की दृष्टि से परिपूर्ण है। हर एक शेर अर्थ की दृष्टि से परिपूर्ण होना भी ग़ज़ल की एक खासियत होती है। ग़ज़ल के शेर के संदर्भ में प्रा. डॉ. सुरेशचंद्र नाडकर्णी के किताब में लिखा है-"उसका प्रत्येक शेर स्वतंत्र होने के कारण उसे कब भी अलग कर सुभाषित की तरह कही भी इस्तेमाल कर सकते हैं।"[13] गजल का यह पहलु जाधव जी की गजलों में दिखाई देता है। उनकी गजलों का हर एक शेर परिपूर्ण और अर्थपूर्ण दिखाई देता है। ये शेर प्यार की स्थिति पर प्रकाश डालने में, मनोभवों का चित्रण करने में तथा अलग-अलग प्रकार के सामाजिक परिदृश्य पर प्रकाश डालने में सक्षम हैं।

निष्कर्ष : अंत में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रा. टी. के. जाधव की गजलें प्रेमी के प्यार, इश्क, मोहब्बत और तनहाई प्रकाश डालती है। साथ ही वह विविध सामाजिक समस्याओं, कुरीतियों तथा बदलती सामाजिक परिस्थिति पर भी प्रकाश डालती है। उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से विविध समस्याओं तथा परिस्थिति से जूझता आम आदमी, उसकी दिशाहीन जिंदगी, 'आज नहीं तो कल जिंदगी बदलेगी' इस आशा पर उसकी चल रही भागदौड़, इसमें निराशाओं का करना पड़नेवाला सामना आदि विविध बातों प्रकाश डालने का प्रयास किया है। उनकी ग़ज़लें प्रेमी की प्यार के लिए तड़फ के साथ-साथ उसके जीवन आशा-निराशा तथा विविध मनोदशाओं को भी चित्रित करती हुई दिखाई देती है।

संदर्भ :

1. डॉ. सरदार मुजावर, हिंदी की छायावादी गजल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, कवर पृष्ठ से उद्धृत।
2. प्रा. टी. के. जाधव 'अश्क', 'गुलशन-ए-ग़ज़ल', मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे, द्वितीय संस्करण अगस्त 1991, पृ. 03
3. वही, पृ. 07
4. वही, पृ. 07
5. वही, पृ. 09
6. वही, पृ.13
7. वही, पृ. 63
8. वही, पृ.15
9. वही, पृ. 09
10. वही, पृ. 81
11. वही, पृ. 77
12. वही, पृ. 65
13. प्रा. डॉ. सुरेशचंद्र नाडकर्णी, ग़ज़ल, मेहता पब्लिसिंग हाऊस, पुणे, संस्करण 2017, भूमिका से उद्धृत, पृ. 09

छ. शिवाजी महाराज पर बनी फिल्मों में गीतों का महत्व

कु. सुनीता ज्योतीराम आडसूळ
शोध छात्रा - हिंदी विभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
मो- 8055892327
ईमेल -sunita.adsul0@gmail.com

शोध आलेख सारांश-

छ.शिवाजी महाराज का आदर्श,उनकी शिक्षा आज भी हमारे लिए प्रेरणादायी है। छत्रपति शिवाजी महाराज को होकर 300 से भी ज्यादा वर्ष हो गए लेकिन आज भी उनका शौर्य युवाओं में प्रेरणा, नई उमंग, नया उत्साह भरणे का कार्य करता है। छत्रपति शिवाजी महाराज पर लिखी किताबें, उनके पोवाडे. उनके जीवन पर आधारित टि.व्ही सिरियले और उनके जीवन पर बनी फिल्में आज भी महाराष्ट्र के अबाल वृद्ध, महिलाओं और युवाओं की जीवण संघर्ष की प्रेरण देते हैं। खासकर शिवाजी महाराज पर बनी फिल्में और फिल्मों में शिवाजी महाराज के पराक्रम का वर्णन करने वले विभिन्न प्रसंगों पर चित्रित गीत लोगों की रग-रग में उत्साह भरणे का काम करते है।

बीज शब्द- छत्रपति, स्वराज्य, पराक्रम, मावळा, योद्धा,

प्रस्तावना -

महाराष्ट्र राज्य के स्वराज्य संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज को देश का बच्चा- बच्चा पूरी श्रद्धा के साथ मानता है l यही कारण है कि जब भी कोई छत्रपति शिवाजी महाराज की ... ऐसा नारा लगाता है; तो झट से हमारे मुँह में जय....का नारा निकलता है। जिनकी प्रतिमा मात्र को देखने से हमारे हाथ प्रणाम करने हेतु जुड जाते है और हमारी गर्दन विनम्र भाव से झूक जाती है और उनका नाम लेते ही हमारा शरीर उनके शौर्य और पराक्रम को याद करते हुए रोमांचित हो उठता है। छत्रपति शिवाजी महाराज की कर्मभूमि में जन्म हुआ यह हमारा सौभाग्य है। छत्रपति शिवाजी महाराज एक पराक्रमी, योद्धा तो थे ही साथ में राष्ट्रभक्त, धर्म-संस्कृति के संवाहक, कर्तव्यदक्ष राजा भी थे। उन्होंने संघर्ष मय जीवन जिते हुए देव, देश,और धर्म की रक्षा के लिए मुगल शासकों से अनेक लडाइयाँ लढ़ी।

छ.शिवाजी महाराज ने अपने शासन काल में गरीबों, किसानों, और महिलाओं के कल्याण के लिए कार्य किया। उन्होंने अपने शासन काल में महाराष्ट्र में सर्वधर्म समभाव का वातावरण निर्माण किया। उन्होंने महाराष्ट्र के युवाओं को स्वराज्य निर्माण में शामील किया। उनके साथ स्वराज्य निर्माण में जुड़ने वाले युवक अपने आप को शिवबा का 'मावळा' नाम से संबोधते थे। जिसका अर्थ 'रक्षक' या 'सहाय्यक' होता है। पूणे के पश्चिम भाग में स्थित एक पहाड़ी क्षेत्र "मावळ" (मावळ प्रांत) के निवासियों को मावळा कहा जाता था। शिवाजी महाराज के शौर्य और वीरता वर्णन में फिल्में और फिल्मी गीतों का महत्वपूर्ण योगदान है।

छत्रपति शिवाजी महाराज पर बनी महत्वपूर्ण फिल्में –

छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन पर अनेक मराठी, हिंदी अंग्रेजी फिल्में आजतक प्रदर्शित हो चुकी हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन पर बनी सबसे पहली फिल्म 1927 की मराठी फिल्म 'नेताजी पालकर' थी जो एक मूक फिल्म थी। जिसका निर्देशन व्ही.शांताराम ने किया था। उसके बाद पहली बोलती फिल्म भक्त तुकाराम 1923 यह तेलुगु फिल्म थी। उसके बाद 1932 में सिंहगढ नाम की फिल्म प्रदर्शित हुई जो पहली बोलती फिल्म थी। उसके बाद उदयकाल 1930, 'छत्रपति शिवाजी:1952, मराठा तितुका मेळवावा, 1964 वेडात मराठी वीर दौडले, 'मी शिवाजीराजे भोसले बोलतोय!' 2009 छत्रपति शिवाजी" 2011, फरजांद

2018, "पानीपत" 2019, "तानाजी: द अनसंग वॉरियर" 2020,आदि हिंदी फिल्मों शिवाजी महाराज के पराक्रम पर अनेक गीतों का समावेश किया गया है ।

छत्रपति शिवाजी महाराज पर बनी फिल्मों में गीतों का महत्व –

छत्रपति शिवाजी महाराज के फिल्मों में गीतों का महत्व बहुत है। क्योंकि गीत पराक्रम, स्वराज निर्माण की प्रेरणा और मराठा अस्मिता एवं गौरव आदि को प्रोत्साहित करते हैं l छत्रपति शिवाजी महाराज पर बनी फिल्मों के गीत ही तो है जो प्रेषक वर्ग को महाराज के युद्ध प्रसंग महाराज का जीवन महाराज के मौलिक विचार आदि से परिचित कराते हैं l शिवाजी महाराज की फिल्मों में गीतों का महत्व निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं l

1) ऐतिहासिक जानकारी –

छत्रपति शिवाजी महाराज का इतिहास इतना महान और बड़ा है कि किसी भी तीन घंटे के फिल्म में उसका वर्णन असंभव है l तो ऐसे कुछ प्रसंग होते हैं जो दिखाना आवश्यक होता ही है लेकिन समय का अभाव होने के कारण उनका वर्णन गीतों में किया जाता है l जिसमें गीत पोवाडा आदि के माध्यम से दर्शकों को पूरी ऐतिहासिक घटना समझ में आती है उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो 2009 में आई फिल्म मी शिवाजी राजे भोसले बोलतोय में शिवाजी महाराज और अफजल खान की प्रतापगढ़ के पास जो भेट हुई और वहां अफजल खान का वध किया गया इस ऐतिहासिक घटना को एक पोवाडे द्वारा दर्शाया है। जिससे प्रतापगढ़ प्रसंग छोटे-छोटे बच्चों को भी पूरी तरह से समझ में आ गया है l इसके कुछ बोल है,

"प्रतापगडाच्या पायथ्याशी खान …
आला बेगुमान नाही त्याला जाण
शिवाजी राजाच्या करामतिची
त्याशी नाही जाणीव शक्तिची
करील काय कल्पना युक्तिची हा जी जी जी …"[1]

ऐसे गीतों से पूरे पराक्रम और ऐतिहासिक प्रसंग और महाराज के इतिहास को समझने में सहायता होती है। यह प्रसंग कहानी में बताने के लिए बहुत समय लगता लेकिन एक पोवाडे से यह पूरा ऐतिहासिक प्रसंग लोगों को समझ में आने में मदद हो गई इसका श्रेय गीतों को जाता है।

2) भावनात्मक प्रभाव –

शिवाजी महाराज के जीवन पर 2019 में आई फिल्म 'पानीपत' भी बहुत चर्चित रहीं इस फिल्म में छत्रपति शिवाजी महाराज के जो योद्धा थे उनके मन में छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रति जो भाव थे भाव थे उनको शिव का महिमा वर्णन करते हुए एक गीत दिखाया है जो कुछ इस प्रकार से है ,

"तेरे मन में शिवा
मेरे मन में शिवा
साँसों में शिवा
प्राणों में शिवा
हर घड़ी में शिवा
हर दिशा में शिवा
आज गूँजा हुआ है
जय जय शिवा तेरे मन में शिवा…"[2]

संगीत गीत प्राचीन काल से एक प्रेरक शक्ति है जो हर फिल्म में आदर्श गए भाव लोगों के मानो तो पहुंचने का कार्य करते है। इसलिए फिल्मों में गीत महत्वपूर्ण होते हैं।

2) **संस्कृति और लोककला का प्रदर्शन-**

शिवाजी महाराज पर बनी फिल्मों में जो गीत है वह हमारी संस्कृति और लोक कला को प्रदर्शित करने का कार्य करती है। हमारे उत्सव त्योहार रीति रिवाज आदि को फिल्मों द्वारा दर्शाया जाता है। वास्तविक रूप में शिवाजी महाराज के जमाने में ज्यादातर महाराज का गौरव करने वाले पोवाड़े शाहिरों द्वारा गाए जाते थे। लेकिन आज के जमाने में इतिहास में बताए गए उत्सव त्यौहार आदि के ऊपर गीत दिखाए जाते हैं। जिससे हमारी संस्कृति और लोक कला का प्रदर्शन होता है। ऐसे ही 2020 में आई फिल्म 'तनाजी' 'द-अनसंग वॉरियर' फिल्म में मराठा योद्धा तानाजी मालुसरे और उसके गांव में होली के त्यौहार को दिखाया गया है जिसमें एक गीत फिल्माया गया था, जो बहुत ही चर्चित रहा गीत कुछ इस प्रकार था ,

"सर-र-र होलिका जले, शत्रु राख में मिले
हमने जब-जब शमशीरें तानी हैं, माय भवानी
सन-न-न आँधियाँ उठे, शत्रु जड़ से ही मिटे
हमने बात यही मन में ठानी है, माय भवानी
हम सब मर्द मावळे बड़े खुद्दार हैं

अब हर एक दिन स्वराज का त्यौहार है
अब ये शीश ना झुके, तेरी लाज हम रखें
तेरे चरणों की शपथ माँ जगदम्बे है,
माय भवानीहे माय भवानी"[3]

इस गीत में तानाजी मालुसरे ने अपने बेटे की शादी को बाद में रखकर पहले सिंहगड किले को मुगलों से वापस लाने के लिए अपनी जान की कुर्बानी दी थी। माँ भवानी की शपथ लेकर किस प्रकार से अपनी बहादुरी दिखाई थी इसका वर्णन मिलता है।

4) वीरता और पराक्रम का गौरव –

यशवंत पालकर द्वारा 2011 मैं दिग्दर्शित फिल्म राजमाता जिजाऊ में राजमाता का महत्व दर्शाने वाला एक गीत दिखाया गया है।

"एक उडाली ठिणगी
लाख पेटल्या मशाली
स्वराज्याच्या संकल्पची
नवी पहाट ही झाली
जय.... जय...जय...जिजाऊ
राजमाता जिजाऊ...."[4]

यहा पर स्वराज्य संस्था पक छत्रपती शिवाजी महाराज की माताजी राजमाता जिजाऊने सर्वप्रथम स्वराज्य स्थापना करणे का संकल्प किया था एक छोटीसी चिंगारी के रूप मे उन्होने अनेक शमशिरो को जलाकर राजमाता ने अपने पुत्र शिवाजी महाराज से स्वराज्य निर्मिती का सपना साकार करवाया इस लिए राजमाता जिजाऊ की जय...जय... कार की है l

5) एकता का संदेश –

शिवाजी महाराज पर बनीं फिल्म 'वेडात मराठे वीर दौडले' फिल्म में छत्रपति शिवाजी महाराज के साथी प्रताप राव गुर्जर और उनके साथ अन्य साथ साथियों के शौर्य का वर्णन करने वाला गीत है,

"ते फिरता बाजुस डोळेकिंचित ओले
सरदार सहा सरसावुनि उठले शेले
रिकिबीत टाकले पाय, झेलले भाले
उसळले धुळीचे मेघ सात, निमिषात
वेडात मराठे वीर दौडले सात !"[5]

यह गीत मराठी कवि कुसुमाग्रज द्वारा लिखित है। इस जीत की शुरुआत महाराज के पत्र से होती है और मराठों के शौर्य का गौरव गया जाता है प्रताप राव गुर्जर और साथी यह लड़ाई हार गए थे महाराज नाराज हो गए थे और महाराज के नाराज की दूर करने के लिए यह साथ वीर किस प्रकार से लड़े थे इसकी गौरव गाथा इस गीत द्वारा दिखाई गई है। यहां पर एकता का संदेश दिया गया है।

6) उत्साह और प्रेरणा-

महाराज के पराक्रम का वर्णन करने वाले गीत प्रेक्षक वर्ग को नई ऊर्जा और उत्साह प्रदान करते आए हैं। शिवाजी महाराज और उनके कार्य के प्रति अभियान की भावना जागृत करते आए हैं। कुछ गीत हमारे मन का डर संकोच आदि को भागने और मन में नया उत्साह भरने का काम करते हैं जैसे,

"शूर आम्ही सरदार आम्हाला काय कुणाची भिती,
देव देश अन् धर्मापायीं प्राण घेतलं हातीं ।
आईच्या गर्भात उमगली झुंजाराची रित,
तलवारीशीं लगीन लागलं जडली येडी प्रीत,
लाख संकटं झेलून घेईल अशी पहाडी छाती,
देव देश अन् धर्मापायीं प्राण घेतलं हातीं ।"[6]

यह गीत शूर आम्ही सरदासर नमक फिल्म में 2017 में प्रदर्शित किया गया है जिसे सुनने पर सबके मन में प्रेरणा और उत्साह भर आता है।

7) शिवकीर्ति का गुणगान-

शिवाजी महाराज पर बनी फिल्मों में गीतों का प्रयोग करते हुए ऐसे गीतों को चुना गया है, जिससे शिवाजी महाराज के शौर्य और पराक्रम का वर्णन किया है। यह पंक्तियाँ किसी फिल्म का गाना नहीं हैं, बल्कि कवि भूषण द्वारा रचित एक प्रसिद्ध कवित्त (कविता) का अंश हैं, जो छत्रपति शिवाजी महाराज के शौर्य और पराक्रम का वर्णन करती हैं, जिसमें उन्होंने स्वयं को म्लेच्छ (मुगल शासकों) के वंश पर शेर बताया है, जैसे,

इंद्र जंभ पर, राम रावण पर, और सिंह हाथियों पर शक्तिशाली होते हैं। यह 'शिवराज भूषण' नामक काव्य संग्रह का हिस्सा है। छत्रपति शिवाजी महाराज के फिल्मों में गीतों का महत्व बहुत है। क्योंकि गीत पराक्रम, स्वराज निर्माण की प्रेरणा और मराठा अस्मिता एवं गौरव आदि को प्रोत्साहित करते हैं l छत्रपति शिवाजी महाराज पर बनी फिल्मों के गीत ही तो है जो प्रेषक वर्ग को महाराज के युद्ध प्रसंग महाराज का जीवन महाराज के मौलिक विचार आदि से परिचित कराते हैं l शिवाजी महाराज की फिल्मों में गीतों का महत्व निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं l

8) कलात्मक अभिव्यक्ति

हिंदी के भूषण जैसे कवियों ने छत्रपति शिवाजी महाराज के ऊपर वीर रस पूर्ण काव्य रचनाओं की है जिनको संगीत देने के बाद और भी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

"इन्द्र जिमि जंभ पर, बाडब सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज हैं:"[7]

यह पंक्तियाँ किसी फिल्म का गाना नहीं हैं, बल्कि कवि भूषण द्वारा रचित एक प्रसिद्ध कवित्त (कविता) का अंश हैं, जो छत्रपति शिवाजी महाराज के शौर्य और पराक्रम का वर्णन करती हैं, जिसमें उन्होंने स्वयं को म्लेच्छ (मुगल शासकों) के वंश पर शेर बताया है, जैसे इंद्र जंभ पर, राम रावण पर, और सिंह हाथियों पर शक्तिशाली होते हैं। यह 'शिवराज भूषण' नामक काव्य संग्रह का हिस्सा है। यह देशभक्ति और वीरता से भरी रचना है, जिसे अक्सर ऐतिहासिक संदर्भों में और शिवाजी महाराज के गुणगान के लिए प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष-

छ.शिवाजी महाराज सबके प्रेरणा स्थान हैं। जिनके जीवन पर बनी फिल्मों के कारण उनका संघर्ष और वीरता का प्रचार प्रसार तो होता ही है,साथ में उनके जीवन उनके विचार लोगों को जीने की नाई प्रेरणा देते है । फिल्मे मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन होती है।आज कल की भगदौड भारी जिंदगी मे लोगों के पास किताबें पढ़ने का समय नहीं है। इसी लिए विभिन्न विषयों पर बनीं फिल्मों से मनुष्य जानकारी प्राप्त करता है । आजकल आनेक फिल्में प्रसिद्ध किताबों के ऊपर बनाई जा रहीं है। जिनसे लोगों को कम समय में अधिक जानकारी मिल रहीं है। छ.शिवाजी महाराज पर बनी फिल्मे और उनमें प्रदर्शित गीतों के कारण आज महाराष्ट्र का इतिहास लोगों को समझने लगा है। आज कल लोग फिल्म देखने के बाद इतिहास की किताबे पढ़ने लगे है।आने वाले काल में निचित रूप से छ. शिवाजी महाराज की वीरता और शौर्य का वर्णन करने में फिल्मी गीत एक सशक्त माध्यम साबित होंगे में कोई शंका नहीं।

संदर्भ सूची

1. https://youtu.be/2UMzuhM0nkk?si=6uAsRNvdNk673QIY
2. https://youtu.be/fuP_AFxPxuw?si=VTVYbaWhs0v2bORn
3. https://youtu.be/YETdM2gmQQQ?si=m0vonylC0xLTS3Sp
4. बाबासाहेब सौदागर,चित्ररंग,ॐ पब्लिकेशन्स,2021,पृ.136.
5. **https://youtu.be/ujX94P1bq7k?si=uAX56tc1zTHCdT_q**
6. **https://youtu.be/RK39PjU6e-8?si=BtFt4-FVO0IJJ3fw**
7. **https://youtu.be/k6ELRUYZJSY?si=B_eZ8CTxU5qceSPs**

हिंदी गीत एवं गज़ल में नारी विमर्श

समृद्धि संजय सुर्वे
प्रो.रामकृष्ण मोरे कला,वाणिज्य एवं
विज्ञान महाविद्यालय आकुर्डी, पुणे 44
मोबाईल :7420828184
samruddhisurve81@gmail.com

शोध आलेख सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख में हिंदी गीत एवं गज़ल के माध्यम से नारी विमर्श के विविध आयामों का विश्लेषण किया गया है। समाज में नारी ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों से निर्मित परिस्थिति में खड़ी है। हिंदी गीत और गजल जनमानस की सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम है। जिसमे नारी केवल प्रेमिका एवं सौंदर्य की प्रतिमा न होकर संघर्षशील, चेतनामयी और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में उभर कर आती है। पितृसत्ताक समाज का असली चेहरा गीतकारों ने गीतों के माध्यम से समाज में सामने लाने का प्रयत्न किया है। स्त्रियों के प्रति समाज की सोच को उजागर करना तथा भोगे गए यथार्थ को गीतों के माध्यम से समाज से रूबरू करवाना यही गीतों का उद्देश्य रहा है। इन गीतो में नारी के प्रति सहानुभूति नहीं,बल्कि उनकी अस्तित्व,अभिमान, आत्मरक्षा की अभिव्यक्ति सशक्त रूप से सामने आयी है। इस शोध आलेख में नारी की छवि के क्रमिक विकास को न्याय देने का प्रयास किया है। चयनित पंक्तियों के माध्यम से प्रतिपादित किया कि गीत-गज़ल में नारी केवल सौंदर्य प्रेम की वस्तु नहीं, बल्कि चेतना संघर्षशील और आत्मनिर्भर रूप में स्थापित होती है।

बीज शब्द : नारी विमर्श,हिंदी गीत गजल , स्त्री चेतना, स्त्री अस्मिता, पितृसत्ता, संवेदना

प्रस्तावना :

नारी विमर्श आधुनिक साहित्य चिंतन की एक महत्वपूर्ण धारा है, जिसका उद्देश्य स्त्री की सामाजिक सांस्कृतिक एवं मानसिक स्थिति का विश्लेषण करना है। हिंदी साहित्य, गीत, गज़लों ने नारी को देवी, जननी, प्रेयसी और त्याग की मूर्ति के रूप में चित्रित किया गया। किंतु समय के साथ यह छवि परिवर्तित होती दिखाई देती है। जो लोक जीवन के गहरे से जुड़े हुए हैं, प्रेम, विरह, शोषण, अकांक्षाओं और विद्रोह को अत्यंत संवेदनशील ढंग से अभिव्यक्त करने की कला गीतकार और गज़लकारों से है। नारी विमर्श के संदर्भ में गीत गज़ल का अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि ये विधायक भावनात्मक स्तर पर समाज को प्रभावित कर विचारों में परिवर्तन ला आती है। नारी के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव लाते हैं। स्त्री केवल सौंदर्य की वस्तु न होकर अनुभव का सजीव इकाई के रूप में उपस्थित होती है।

वर्तमान समय में नारी की दशा शोचनीय है। नारी की परिवार, समाज में अहम भूमिका होती है। परंतु आए दिन नारी पर होने वाले अत्याचारों से अखबार भरे हुए होते हैं। मुखौटे उतारे जाते हैं। ए दिन होनेवाली प्रताड़ना, अत्याचार, भ्रूण हत्या, अदि स्त्री को असुरक्षित महसूस कराते हैं। एक ओर नारी को प्रेरणादायी शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता है, तो एक और उसके सौंदर्य प्रकृति को भी दर्शाया जाता है। साहित्य के अन्य विधाओं के साथ हिंदी गीत तथा गजलों में भी नारी में सौंदर्य चित्रण के साथ उसकी पीड़ा, घुटन, दर्द भी व्यक्त किया गया इसमें समाज के खोखलेपन और पुरुष तथा के मानसिकता के विरोध में आवाज उठायी है।

हिंदी गीतों में नारी

प्रारंभिक दौर से ही समाज के परिवर्तन का जिम्मा फ़िल्म ने उठाया है, इसमें हिंदी गीतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भारतीय समाज को सिनेगीतोने बहुत सी समस्याओं का समाधान दिया है। जिसमे महत्वपूर्ण भूमिका नायिका प्रधान से सिनेमा की है। पितृसत्तक समाज में नारी विमर्श का प्रमुख मुद्दा उठाये समाज का असली चेहरा लोगों के सामने लाने का प्रयास किया है। साहिर लुधियानवी के गीतों में नारी विमर्श के विविध आयामों को स्पर्श किया गया है। नारी के प्रति समाज की धारणाओं को प्रस्तुत किया है। अस्मिता, स्वाभिमान की बातें की हैं। नारी सशक्तिकरण का बीड़ा उठाया है। नारी विमर्श में नारी पर हो रहे शोषण, अधिकारी, समानता का दर्जा, स्वतंत्रता पर बल दिया है। नारी समाज की बदलती छवि को स्थापित करने का प्रयास किया है। गीत सृजन मनुष्य की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। सिनेगीतों में साहिर लुधियानवी स्त्री विमर्श इस तरह से प्रस्तुत हो रहा है, नारी के शोषण के प्रत्यक्ष अनुभवों को गीतों में उतारा है वह लिखते हैं-

"लोग औरत को फकत जिस्म समझ लेते हैं

रूह भी होती है उसमें यह कहाँ सोचते हैं
लोग औरत की हर एक चीख को नग्मा समझे
वो कबीलों का ज़माना हो कि शहरों का रिवाज।"1

साहिर लुधियानवी ने अपना अनुभव और बचपन की कठिनाइयों को माँ के संघर्ष को अपने गीतों में बिताते हुए संपूर्ण समाज की नारी शोषण अत्याचार पुरुष सत्ता का मानसिकता को उजागर किया है वह लिखते हैं-

"ताकि तू देख सके
कितने पांव मेरी ममता के कलेजे पर पड़े
कितने खंजर मेरी आंखो, मेरे कानों में गड़े
मैं तुझे रहम के साये में न पलने दूंगी
ज़िंदगानी की कड़ी धूप में जलने दूंगी
ताकि तप तप के तू फौलाद बनें
माँ की औलाद बने"2

समाज में फैली वेश्यावृत्ति जैसे कलंकित जीवन को अपना न अपनाते हुए एक सम्मान पूर्वक जीवन जीने का संदेश देने वाला गीत उन्होंने साधना फ़िल्म के लिए लिखा है। जिसमें समाज के व्याभिचारी लोगों पर करारा व्यंग कसा है। गीतकार साहिर लिखते हैं-

"जिन सीनों ने इनको दूध दिया
उन सीनों का व्यापार किया
जिस कोख में इनका जिस्म ढला
उस कोख का कारोबार किया"3

साहिर ने इश्क और विद्रोह दोनों के गीत लिखे है। नारी के लिए एक संपूर्ण पुरुष वही है जो नारी के साथ बराबरी का रिश्ता रखता है। सम्मान दे सके। यह कहते हुए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए-

"तू मुझे छोडके ठुकराके भी जा सकती है
तेरे हाथों में मेरे हाथ है ज़ंजीर नहीं"4

गुलजार के गीतों में भी नारी के मनोभावों की बात की गई है। बंदिनी फ़िल्म का स्त्री मन पर लिखा गीत सराहनीय है। शुरू की मन को पढ़कर उनका रहस्य समझते हैं। बदले रंग उनसे करना अर्थात था प्रेम में पड़ीं स्त्री की हड़बड़ी चित्रित की है पंक्तियाँ इस तरह से है-

"मोरा गोरा अंग लेई लें
मोहे श्याम रंग देई दे
कुछ खो दिया है पाई के
कुछ पा लिया गंवाई के
कहाँ ले चला है मनवा
मोहे बावरी बनाई के
मोरा गोरा रंग लई ले
मोहे श्याम रंग देई दे"5

स्त्री समाज के सामने हमेशा नए रूप में आती है पर। क्या समाज उसके सपनों को स्वीकार करता है प्रश्नचिन्ह उसके निर्णय का स्वागत करता है? साथ चलते हैं? ये ही सब बात है स्त्री मन में द्वंद्व निर्माण करती है। वह परिलक्षित होता है-

"तेरे बिना ज़िंदगी से कोई
शिकवा तो नहीं, शिकवा नहीं
शिकवा नहीं, शिकवा नहीं
तेरे बिना ज़िंदगी भी लेकिन
ज़िंदगी तो नहीं

ज़िंदगी नही, जिंदगी नहीं"6

'लेकिन' फ़िल्म के गीतों में नारी की मानसिकता को प्रस्तुत किया है। जीवन में सब कुछ खाली होकर भी दिया जाता है। हर रोज़ मन के अंदर टूटते-टूटते एक दिन वह शोर शांत हो जाता है। आप ऐसे ही जीवन जीना शुरू कर देते हैं- "मैं एक सदी से बैठी हूँ

इस राह से कोई गुजरा नहीं
कुछ चांद के रथ तो गुजरे थे
पर चाँद से कोई उतरा नहीं
आंखो को निचोड़ा मैंने बहुत
पर कोई आंसू उतरा नहीं" 7

गीतकार शैलेन्द्र के गीतों में भी नारी के मनोभावों को चित्रित किया है। स्त्री मुक्ति का स्वर गीतों में लिखा गया है।स्त्री को केवल प्रेमिका, पत्नी, देवी न मानते हुए मनुष्य के रूप में सम्मान देने की कोशिश की है। मुक्ति भी चाहते हैं वे लिखते हैं-

"काँटों से खींच के ये आंचल
तोड़के बंधी पायल तोड़के बंधना बांधी पायल" 8

स्त्री का प्रेम जितना सहज, सरल उतना ही उसे व्यक्त करना कठिन। उसका अन्तर्मुखी प्रेम समाज से प्रतिबद्धता में स्त्री की मज़बूती से मौजूदगी दिखाती है। वह इस गीत में स्त्री मन को प्रेम दिखाते हुए लिखते हैं-

"प्यार हुआ इकरार हुआ
प्यार से फिर क्यों डरता है दिल" 9

स्त्री के मन में बदलते रूपों को बड़ी सरलता से लिखते हुए प्रेमी के मिलन का संयोग सुख बताते हुए लिखते हैं-

"घर आया मेरा परदेशी
प्यास बुझी मेरे अखियन की" 10

इसी तरह से जयदीप साहनी द्वारा लिखे गीत में स्त्री को अपनी काबिलियत साबित करने का मौका मिलना जरूरी है। जयदीप जी स्त्री के लिए प्रेरणा आत्मविश्वास का गीत लिखते हैं-

"बादल पे पांव है
या छूटा गांव है
अब तो भई चल पड़ी
अपनी तो नाव है" 11

नारी सशक्तिकरण पर एक और पिंक, थप्पड़ जैसे फिल्मों के गीतों को देखा जा सकता है-

" तू खुद पे यकीन कर
तू हिम्मत ए जवाब है
न कोई तेरा इंसाफ है
तू अपना आफताब है" 12

यह गीत आत्मनिर्भरता साहस आत्मसम्मान के लिए नारी को जागृत करता है। पितृसत्तक समाज के खिलाफ़ खड़े रहने की हिम्मत देता है।

हिंदी गज़ल में नारी

नारी का सामान्य रूप है 'माँ'। माँ अपने बच्चों को बच्चों की खुशी के लिए हर वह बात सही लेती है। जिससे बच्चों को कोई तकलीफ हो खुद रात के सन्नाटे में अपने आंसुओं को चुपचाप बहाती हैं। का एहसास बच्चों को होता है, तब तक उन्हें हर सन्नाटा माँ की जज्बा जैसे लगने लगता है। कहते हुए गजलकार अहमद वसी लिखते हैं-

"सिसकियां भर रहा है सन्नाटा
माँ की जज्बात जैसा लगता है" 13

माँ की दुआएं हर कठिन परिस्थिति में बच्चों का हौसला देती है। दुआ में इतनी ताकत होती है कि हर चुनौती का सामना करने का धैर्य आ जाता है। कभी साथ ना हो दुआएं हमेशा साथ रहती है। माँ नारी का सर्वश्रेष्ठ रूप है। जिसे सम्मान के साथ साथ अपनेपन,

प्रेम की चाहत होती है। वह अपना पूरा जीवन बच्चों के खातिर जीती है। सारे सपने, आशाएं, इच्छा हैं उन्हीं पर निशा वार करती है। कभी कभी माँ को दुख का सामना करने पड़े फिर भी वह उसके हृदय से सिर्फ दुआ ही निकलती है। गज़लकार मुनव्वर राणा लिखते हैं-

"दुआएँ माँ की, पहुंचाने को मीलों मिल जाती है
की जब परदेश जाने के लिए बेटा निकलता है" 14

माँ अपनी कर्तव्य हमेशा निभाती रहती है। कह वह कभी उसका जिक्र भी नहींकरती ना ही किसी से कोई उम्मीद रखती है।कर्तव्यों त्याग का कोई
मोल नहीं कर सकता यही भावना को अंजुम बाराबंकवी लिखते हैं-

"आपसे माँ ने कभी दूध की कीमत मांगी
आप किस जोम ये कर्ज चुकाने आए" 15

जिस तरह से एक दीपक भगवान के सामने जलता है, पूरे घर को उजाला देता है। उसी तरह माँ अपने घर के लिए पूर्ण जीवन समर्पित करती है। घर परिवार सुखी रहता है। के प्रति जो भाव होते हैं, वही भावना गज़ल के शेर में पिरोते हुए कुंवर 'बेचैन' लिखते हैं-

" बदन से माँ के आती है मुझे अक्सर वही
खुशबू जो एक पूजा को दीपक में घी से आती है" 16

नारी का एक रूप 'बेटी' जिसे घर के लक्ष्मी में कहा जाता है। परंतु उसे जन्म के बाद आए दिन परेशानियों का सामना करना पड़ता है। जन्म लेने से पूर्व ही उसपर अत्याचार शुरू हो जाता है। भ्रूण हत्या यह समाज की वह मानसिकता है जो बेटियों को जन्म देने से पहले ही लाचार बना रही है। ऐसे ही कूड़ेदान में फेंक दिया जाता है। इस पर मुनव्वर राणा लिखते हैं-

"फिर किसी ने लक्ष्मी देवी को ठोकर मार दी
आज कूड़ेदान में फिर एक बच्ची मिल गई" 17

पत्नी के रूप में नारी का सम्मान करना पुरुष का कर्तव्य है। परंतु पुरुषसत्ताक समाज में नारी की अवहेलना ही होती आ रही है। उसे हर तरीकों से विवश किया जाता है, ऐसे काम करने के लिए जो उसकी आत्मा को झकझोर दे। आकांक्षा को पूरा करने के लिए पुरुष अपनी ही पत्नी को विवश करता है। यही विवशता का चित्रण गजलकार ज़हीर कुरैशी ने अपने शेर में किया है-

"महत्वाकांक्षी पति के इशारे पर
थी कल भी वो साहब के बिस्तर तक" 18

सदियों से पुरुष नारी को दोयम दर्जा देता आ रहा है। बचपन से ही गृहकार्य, संस्कार, शर्मा, लग जा के नाम पर उसे चार दीवारी में कैद करने की व्यवस्था की गई है। उससे जैसे चाहे वैसा व्यवहार करने की अनुमति समाज ने ही दी है। 21 वीं सदी में भी इस मानसिकता की शिकार नारी ही है। गजलकार अदम गोंडवी लिखते हैं-

"औरत तुम्हारे पांव की जूती की तरह है
जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो" 19

वर्तमान समय में सामाजिक वातावरण इतना खराब हो चुका है । मोहल्ले में, सड़क पर, हर जगह लोगों की गंदी नीयत का सामना बेटियों को करना पड़ता है। जवान बेटी की चिंता हमेशा एक बाप को खाते रहती है। वह अपनी जवान बेटी को बचाएं चलता रहता है। गज़लकार जफर मिर्जापुरी शेर में ऐसी ही मजबूर बाप की व्यथा को लिखा है-

" ये कैसा रहा है बेटी के आबरू के लिए
गरीब बाप की टोपी सलाम करती है" 20

समाज में दहेज प्रथा यह एक विडंबना है। शिक्षित समाज के लोग भी दहेज के लालच में एक ऐसी बेटी को ब्याह लाते हैं, जो सभी अत्याचार सहन कर सके। दहेज के लोभी लोगों ने कई बार बहुओं को जलाने की घटनाएं सामने आती है। समाज की ऐसी स्थिति पर भाषण करते हुए गजलकार रामदरश मिश्र लिखते हैं-

"उत्सव में गूंजकर रोती है फिर लपटों के साथ
बेटियां जलती रही शहनाइयां बजती रही" 21

इसी प्रथा को समाप्त करना आवश्यक है। परंतु उसके लिए समाज में जागृति की आवश्यकता है । नारी ने स्वयं आत्मनिर्भर होना, दो ही होकर कुप्रथाओं के खिलाफ़ आवाज उठाने का साहस करना चाहिए। तभी ऐसे कुप्रथाओं का अंतहोगा होगा। परन्तु समाज ऐसी नारी या उसके परिवार को अपमानित करते रहते हैं, उस पर गजलकार लिखते हैं-

"दहेज के लिए जब लौटकर बारात जाती है
तो सारे शहर में एक बाप की औकात जाती है" 22

गजलकार अदम गोंडवी समाज को सच्चाइयों का विद्रोही रूप में सामने लाते है। स्त्री की विवशता का चित्रण करते हुए शोषण के खिलाफ़ आवाज उठाते हुए लिखते हैं-

"जब हुई नीलाम कोठे पर किसी की आबरू
फिर अहिल्या का सरापा जिस्म पत्थर हो गया " 23

महिलाओं का शोषण तब खत्म होगा जब वह खुद अपने ऊपर होने वाले अत्याचार के खिलाफ़ आवाज उठाएगी। पीड़ित, कमजोर नारी को खुद अपने लिए संघर्ष करना होगा, ना होगा। वर्तमान परिस्थिति में किसी राम या कृष्ण का आह्वान करने के बजाय उसे खुद दामिनी बनकर लड़ना होगा, यह बताते हुए गजलकार बल्ली सिंह चीमा लिखते हैं-

"न जाने कब कहा कोई बन जाए दामिनी
सीता लड़ेगी रावणों से राम के बगैर" 24

निष्कर्ष: हिंदी गीतकार गज़लकारों ने नारी की परिस्थिति पर भाष्य तो किया ही है, साथ-साथ उसे संघर्षशील बनाने का प्रयास भी किया है। पुरुषसत्ताक समाज के खोखलेपन और स्वार्थी मानसिकता विरुद्ध आवाज उठायी है। नारी की हर दशा का चित्रण करते हुए उन्हें माँ, बेटी, पत्नी आदि के रूप में प्रस्तुत किया। उसकी संवेदना ,पीड़ा,दर्द को नई आवाज दी है। इन गीतों –गजलों में भ्रूणहत्या, दहेज, नारी शोषण, नारी विवशता आदि विषयों के साथ साथ अत्याचार एवं शोषण संघर्षशील नारी का यथार्थ चित्रण किया है। वर्तमान युग में नारी को सशक्त करना बनाना यही इन गीतों गज़लकारों का उद्देश्य है। उन्हें समाज में समान अवसर और अधिकार देने का प्रयास किया है। गीत-गज़लकारोने नारी को सक्षम बनाने का संदेश दिया है।

संदर्भ

1. प्रकाश पंडित ,साहिर लुधियानवी ,सरस्वती विहार,दिल्ली,1981 ,पृष्ठ161
2. गीतकार साहिर लुधियानवी,फिल्म त्रिशूल, 1978
3. प्रकाश पंडित ,साहिर लुधियानवी ,सरस्वती विहार,दिल्ली,1981 ,पृष्ठ161
4. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान संपादक,नयापथ पत्रिका,2021,पृष्ठ 132
5. गीतकार गुलजार,फिल्म बंदिनी,निर्देशक विमल रॉय ,1963
6. विनोद खेतान,उम्र की लम्बी सड़कों पर:गुलजार,पृष्ठ 162
7. 'लेकिन'गुलजार,राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ58
8. फिल्म गाईड, शैलेन्द्र,1965
9. फिल्म श्री 420, शैलेन्द्र,1955
10. फिल्म आवारा , शैलेन्द्र,1951
11. फिल्म 'चक दे इंडिया', जयदीप साहनी,2007
12. फिल्म पिंक,2016
13. नया ज्ञानोदय,गजल महाविशेषांक,मासिक पत्रिका,2023 पृष्ठ110
14. वहीं पृष्ठ 51
15. वहीं पृष्ठ 103
16. वहीं पृष्ठ 159
17. माँ,मुन्नवर राणा,वाणी प्रकाशन,दिल्ली,2002,पृष्ठ 90
18. डॉ.सरदार मुजावर,हिंदी गजल की भाषिक संरचना,वाणी प्रकाशन,दिल्ली, 2010 पृष्ठ 47
19. 'समय से मुठभेड़',अदम गोडवी,वाणी प्रकाशन,दिल्ली,2020,पृष्ठ 56
20. वही,डॉ.दरवेश भारती,जनवरी 2009,पृष्ठ 29
21. 'गजलद्युशंत के बाद'दीक्षित दनकौरी,वाणी प्रकाशन,दिल्ली,2029,पृष्ठ39
22. वहीं पृष्ठ 186
23. हिंदी की बेहतरीन गजलें,रविन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन ,दिल्ली,2016,पृष्ठ 41
24. हादसा क्या चीज है,बल्ली सिंह,चीमा,समय साक्ष्य प्रकाशन देहरादून,2017,पृष्ठ 56

हिंदी फिल्मों में गीत और गजल का महत्व

श्रीकांत जयसिंग देसाई
शोधार्थी,हिंदी विभाग
शिवाजी विश्वविद्यालय,कोल्हापुर
दूरभाष नंबर - 9921990072
shrikantdesai72@gmail.com

सारांश-

हिंदी सिनेमा में गीत और ग़ज़ल का विशेष रूप से माना गया है |हिंदी सिनेमा में गीत और ग़ज़ल ने न केवल फिल्म-कथाओं को संवारा है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भावनात्मक परतों को भी गहराई प्रदान की है।यह शोध पेपर हिंदी फिल्मों में गीत-गायन और ग़ज़ल के उत्कर्ष, उनके ऐतिहासिक विकास,शैलियों का अंतर्संबंध, तथा दर्शकों पर पड़ने वाले प्रभाव का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। पेपर में साहित्यिक तथा संगीतात्मक स्रोतों का अध्ययन, कुछ चयनित फिल्मों और ग़ज़लों का विश्लेषण, और निष्कर्ष व सिफारिशें **दी गई हैं।**

बीज शब्द –हिंदी सिनेमा,फिल्मी गीत, ग़ज़ल, संगीत निर्देशक, गीतकार, सांस्कृतिक पहचान

प्रस्तावना –

हिंदी फिल्म-संगीत का इतिहास उस देश की सामाजिक-राजनीतिक और भाषिक विविधताओं के साथ जुड़ा हुआ है। गीत और ग़ज़ल ने फिल्मों में कहानियों को मानवी भावनात्मक ऊँचाइयाँ प्रदान करने का काम किया हैं जैसे कि कभी इश्क का इजहार,कभी विरह की पीड़ा,प्रकृति का वर्णन या कभी सामाजिक-राजनीतिक संदेश देना। हिंदी सिनेमा केवल दृश्य और संवादों का माध्यम नहीं है, बल्कि वह एक ऐसा समग्र कला का रूप है जिसके अंतर्गत साहित्य, संगीत, नृत्य और नाट्य तत्व एक-दूसरे के साथ समन्वित होकर दर्शक के मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल इस सभी समन्वय के सबसे सशक्त माध्यम रहे हैं। प्रारंभ से ही भारतीय दर्शक सिनेमा को केवल कहानी देखने के लिए नहीं, बल्कि गीत-संगीत के भावनात्मक अनुभव के लिए भी अपनाते रहे हैं। इसी कारण से ही हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल को अनिवार्य अंग माना गया है।हिंदी सिनेमा के प्रारंभिक दौर से लेकर स्वर्ण-युग तक गीत और ग़ज़ल ने कथानक को आगे बढ़ाने, पात्रों की मनोदशा स्पष्ट करने तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को उभारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कई बार गीत स्वयं संवाद का कार्य करते हैं और शब्दों से अधिक प्रभाव छोड़ते हैं। गीत और ग़ज़ल दोनों भी सभी भावों को सरल, प्रभावी और स्मरणीय बनाते हैं।इसके अतिरिक्त, हिंदी फिल्मों के गीत और ग़ज़ल जन-संस्कृति के निर्माण में भी सहायक रहे हैं। इन्होंने भाषा को लोकप्रिय बनाया, साहित्यिक शब्दावली को आम जनता तक पहुँचाया और संवेदनशीलता को सामाजिक चेतना से जोड़ा है। अनेक गीत और ग़ज़ल आज भी सामाजिक स्मृति का हिस्सा हैं, जिन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाया और सुना जाता है। इस प्रकार फिल्मी गीत और ग़ज़ल केवल मनोरंजन का साधन न होकर सांस्कृतिक दस्तावेज़ के रूप में भी कार्य करते हैं।वर्तमान वैश्वीकरण और तकनीकी परिवर्तन के युग में हिंदी फिल्म-संगीत की शैली भले ही बदली हो, किंतु गीत और ग़ज़ल का मूल महत्व आज भी बना हुआ है। आधुनिक फिल्मों में इनके रूपांतरण, फ्यूज़न और नई प्रस्तुति-शैलियाँ देखने को मिलती हैं, जो परंपरा और आधुनिकता के संवाद को दर्शाती हैं।अतः यह शोध-पत्र हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल के महत्व का अध्ययन करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार इन दोनों ने न केवल सिनेमा की सौंदर्यात्मक गुणवत्ता को समृद्ध किया है, बल्कि भारतीय समाज की भावनात्मक, भाषिक और सांस्कृतिक चेतना को भी आकार दिया है।

शोध आलेख का विश्लेषण –

'सिनेमा के शुरूआती दौर में गीतसंगीत पर शास्त्रीय संगीत, नाट्य शैली तथा पारसी रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है|'1 इस कथन के द्वारा पारसी रंगमंच का हमारे भारतीय काव्य और संगीत पर प्रभाव स्पष्ट होता है |

भारतीय काव्य और संगीत परंपरा अत्यंत प्राचीन एवं समृद्ध रही है। भक्ति-काव्य, सूफी परंपरा, शास्त्रीय राग-रागिनियाँ तथा लोकधुनों ने मिलकर हिंदी फिल्म-संगीत को एक विशिष्ट पहचान दी। ग़ज़ल, एक साहित्यिक-काव्य विधा के रूप में, विशेषतः

सूक्ष्म भावनात्मक अभिव्यक्ति और शब्दचित्र के लिए जानी जाती है। ग़ज़ल, जो मूलतः उर्दू साहित्य की एक सशक्त काव्य विधा है, प्रेम, विरह, पीड़ा, आत्मसंघर्ष और दार्शनिक चिंतन को अत्यंत सूक्ष्मता से व्यक्त करती है। जब ग़ज़ल हिंदी फिल्मों में प्रवेश करती है, तब वह केवल एक गीत नहीं रह जाती, बल्कि पात्रों की अंतरात्मा की आवाज़ बन जाती है।

'हिंदी फिल्मों में गीतसंगीत के इस सुनहरे दौर की शुरुआत हुई पहली सवाक् फिल्म आलमआरा के साथ जिसका निर्माण सन् 1931 में हुआ था। हालांकि मूक फिल्मों के समय भी संगीत चलायमान समूह के द्वारा स्थान, परिवेश आदि के आधार पर प्रदर्शित किया जाता था|2 हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल के महत्व का विश्लेषण करते समय यह स्पष्ट होता है कि ये केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि फिल्म की आत्मा के रूप में कार्य करते हैं।

'भावों को व्यक्त करने की चेष्टा प्राणी मात्र का स्वभाव है।'[3] गीत और ग़ज़ल फिल्म की कथावस्तु, पात्रों के मानसिक द्वंद्व, सामाजिक परिवेश तथा सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से इस शोध आलेख का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है

1.कथानक और गीतों का अंतर्संबंध-

फिल्मी गीत कथानक का हिस्सा अवश्य होते हैं किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखते।[4]
हिंदीफिल्मों में गीत कथानक को आगे बढ़ाने का कार्य करते हैं। अनेक बार गीतों के माध्यम से समय-परिवर्तन, पात्रों के आपसी संबंधों की गहराई तथा कहानी के मोड़ को दर्शाया जाता है।संवाद जहाँ सीमित शब्दों में भाव व्यक्त करते हैं, वहीं गीत उन भावों को विस्तार और संवेदनशीलता प्रदान करते हैं। विशेषतः प्रेम-कथाओं में गीत कथानक की रीढ़ बन जाते हैं।
प्रत्येक गीत फिल्म का हिस्सा होने के बावजूद भी अपनी स्वतंत्र पहचान रखता है।फिल्मी गीत सिनेमा के साथ-साथ रेडियो, कैसेट्स, सीडी और अभी इंटरनेट पर भी सुने जाते है| कभी-कभार फिल्म से ज्यादा गाने का महत्व हो जाता है | कुछ फिल्मे तो गाने के नाम से भी जानी जाती है |

2.पात्रों की मनोदशा का चित्रण -

महर्षि भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में 8 स्थायी भावों से संबंधित 8 रसों का विस्तृत विवेचन किया है। रति नामक भाव से श्रृंगार रस, हास नामक भाव से हास्य रस, शोक से करुण रस, क्रोध से रौद्र रस, उत्साह से वीर रस, भय से भयानक रस, जुगुप्सा से विभत्स रस तथा विस्मय से अद्भुत रस उत्पन्न होता है।[5] इन सारे रसों के माध्यम से ही गीतों का निर्माण होता है |
गीत और ग़ज़ल पात्रों की आंतरिक भावनाओं को उजागर करने का सबसे सशक्त माध्यम हैं। नायक-नायिका के प्रेम, विरह, आशा, निराशा या संघर्ष को गीतों के माध्यम से गहराई से प्रस्तुत किया जाता है। ग़ज़लें विशेष रूप से आत्मसंघर्ष, पीड़ा और सूक्ष्म भावनात्मक स्थितियों को व्यक्त करती हैं, जो संवादों द्वारा संभव नहीं हो पाता। इस दृष्टि से ग़ज़ल पात्रों की मनोवैज्ञानिक परतों को खोलने का कार्य करती हैं।

3.साहित्यिक सौंदर्य और भाषा की भूमिका -

फिल्मी गीतों और ग़ज़लों ने हिंदी और उर्दू साहित्य को जनसामान्य तक पहुँचाया है। शेर, उपमा, रूपक, प्रतीक और अलंकारों का प्रयोग गीतों को साहित्यिक ऊँचाई प्रदान करता है। अनेक गीतकारों ने साहित्यिक परंपराओं को बनाए रखते हुए सरल भाषा में गहन भाव व्यक्त किए, जिससे आम दर्शक भी साहित्यिक सौंदर्य से परिचित हुआ। यह प्रक्रिया भाषा के संवर्धन और संरक्षण में सहायक सिद्ध हुई।

4.सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव -

हिंदी फिल्मों के गीत और ग़ज़ल समाज के सांस्कृतिक मूल्य, परंपराएँ और सामाजिक यथार्थ को प्रतिबिंबित करते हैं। देशभक्ति, सामाजिक समानता, स्त्री-विमर्श, वर्ग-संघर्ष जैसे विषय गीतों के माध्यम से प्रभावी रूप में सामने आए हैं। कई गीत सामाजिक परिवर्तन के वाहक बने और जनता की चेतना को जागृत करने में सफल रहे। इस प्रकार गीत और ग़ज़ल सिनेमा को सामाजिक संवाद का मंच बनाते हैं।

5.संगीतात्मक संरचना और रागात्मक आधार -

आचार्य बृहस्पति के अनुसार भाव मनुष्य के हृदय में सुप्त अवस्था में विद्यमान रहते हैं तथा अनुकूल परिस्थिति में जागृत हो जाते हैं।[6] फिल्मी गीतों और ग़ज़लों में शास्त्रीय संगीत, राग-रागिनियों और लोकधुनों का समावेश देखने को मिलता है। रागों के प्रयोग से गीतों में भावनात्मक गहराई आती है और वे अधिक प्रभावशाली बनते हैं। ग़ज़ल गायन में सुर, लय और ठहराव का विशेष महत्व होता है, जो श्रोता को आत्मिक अनुभूति प्रदान करता है। यह संगीतात्मक संरचना गीतों को कालजयी बनाती है।

6.ऐतिहासिक परिवर्तन और आधुनिक प्रवृत्तियाँ -

प्रथम बोलती फिल्म आलम आरा 1931 में बनी थी। सिनेमा के इस शुरुआती दौर में मुख्यतः धार्मिक फिल्में ही बनाई गई।7 **आगे जाकर** समय के साथ हिंदी फिल्मों में गीतों और ग़ज़लों की प्रस्तुति में परिवर्तन आया है। स्वर्ण-युग में जहाँ साहित्यिक और शास्त्रीय प्रभाव प्रबल था, वहीं आधुनिक दौर में तकनीक, फ्यूज़न और वैश्विक संगीत का प्रभाव दिखाई देता है। इसके बावजूद ग़ज़ल और भावप्रधान गीत आज भी चयनित फिल्मों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। यह परिवर्तन परंपरा और आधुनिकता के संतुलन को दर्शाता है।

7.दर्शक-स्वीकार्यता और भावनात्मक जुड़ाव -

गीत और ग़ज़ल दर्शकों के साथ गहरा भावनात्मक संबंध स्थापित करते हैं। कई गीत दर्शकों के निजी जीवन के अनुभवों से जुड़ जाते हैं और स्मृतियों का हिस्सा बन जाते हैं। यही कारण है कि फिल्में समाप्त होने के बाद भी उनके गीत लंबे समय तक समाज में जीवित रहते हैं। यह भावनात्मक जुड़ाव हिंदी सिनेमा की लोकप्रियता का एक प्रमुख आधार है।

इन प्रमुख मद्दो के साथ-साथ हम हिंदी साहित्य में गीत और गजल का महत्व कुछ उदाहरण भी देख सकते है,प्रथम सवाक फिल्म 'आलम आरा के 'दे दे खुदा के नाम पे प्यारे' गीत को फिल्म इतिहास का पहला गीत कहलाने का और इस गीत को गानेवाले वजीर मोहम्मद खान को फिल्म जगत के पहले गायक होने का गौरव प्राप्त हुआ|'8 आज के जमाने में इक्कीसवी सदी में बने फिल्मों में युवा पीढ़ी को ध्यान में रखकर किया जाने लगा है | सिर्फ गाने के शब्द और संगीत में बदलाव् आया है लेकिन गीत और गजल का महत्व आज भी बरकरार है |उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल बहुआयामी भूमिका निभाते हैं। वे न केवल फिल्म की सौंदर्यात्मक गुणवत्ता को बढ़ाते हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष –

हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व बहु आयामी है। गीत कथानक को आगे बढ़ाते हैं तो ग़ज़ल सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक अर्थों को चित्रित करने में सक्षम है। दोनों का सांस्कृतिक, भाषिक और सामाजिक प्रभाव गहरा रहा है| आधुनिक समय में शैलियों के रूपांतरण के बावजूद, ग़ज़ल और गीत की परंपरा नए रूपों में जीवित है और भविष्य में भी रचनात्मक पुनराविष्कार की सम्भावना रखती है | हिंदी फिल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सिनेमा की आत्मा और उसकी संवेदनात्मक शक्ति का मूल आधार भी रहा है। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि फिल्मी गीतों ने हिंदी सिनेमा को जनमानस से जोड़ने, भावनाओं को संप्रेषित करने और सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करने में केन्द्रीय भूमिका निभाई है। गीतों के बिना हिंदी सिनेमा की कल्पना अधूरी प्रतीत होती है, क्योंकि गीत कथा, चरित्र और वातावरण—तीनों को एक साथ जोड़ते हैं।हिंदी फिल्मों के गीतों ने कथानक को आगे बढ़ाने, पात्रों की मानसिक स्थिति को स्पष्ट करने तथा दृश्य प्रभाव को सघन बनाने का कार्य किया है। कई बार गीत संवादों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं, क्योंकि संगीत के माध्यम से भावनाएँ सीधे दर्शक के हृदय तक पहुँचती हैं। प्रेम, विरह, करुणा, आशा, विद्रोह और सामाजिक संघर्ष जैसे भाव गीतों में जिस सहजता से व्यक्त होते हैं, वह सिनेमा को व्यापक जनस्वीकृति प्रदान करती है।

संदर्भ सूची –

1.विजय वर्मा :हिंदी फिल्म संगीत मील के पत्थर, अंतरा इन्फो मीडिया प्राइवेट लिमिटेड जयपुर **2022**, पृ.सं.**25**
2.राजीव श्रीवास्तव :सात सुरों का मेला,प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली,2020,पृ.सं.10
3.कैलाश चंद्र देव बृहस्पति :भरत का संगीत सिद्धांत,उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान,लखनऊ,द्वितीय संस्करण,1991,पृ सं 255
4.अशरफ़ अज़ीज़ :हिन्दुस्तानी सिनेमा और संगीत,जवरीमल्ल पारख (अनुवाद एवं संपादन),ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली , **2022**, पृ सं **19**
5.संपादक- श्रीबाबूलाल शुक्ल : नाट्यशास्त्र, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, **2020**, पृ.सं.**299**
6.कैलाश चंद्र देव बृहस्पति : भरत का संगीत सिद्धांत, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, **1991**, पृ सं **257**
7.राजीव श्रीवास्तव : सात सुरों का मेला,प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली , **2020**, पृ सं **12**
8.पंकज राग : धुनों की यात्रा ,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली ,चौथा संस्करण, **2017**, पृ सं **11**

*****

हिंदी गजल : सामाजिक चेतना

सुश्री. टेकाळे रागिनी पुरुषोत्तम
शोध छात्रा, हिंदी अनुसंधान केंद्र,
न्यू आर्ट्स, कॉमर्स अँड सायन्स कॉलेज,
अहिल्यानगर जिला -अहिल्यानगर
मो. 8380894700
e-mail - raginitekale19@gmail.com

डॉ. भाऊसाहेब एन. नवले
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, सात्रळ,
तहसील-राहुरी,
जिला-अहिल्यानगर
e-mail -drbhausahebnavale@gmail.com

शोधसार – गजल विधा साहित्य की सबसे कलापूर्ण और खूबसूरत विधा मानी जाती है। हिंदी कवियों ने इसमें समाज की वास्तविकता को अभिव्यक्त कर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। उनकी गजलें समकालीन समाज की मूल प्रवृत्तियों को रुपाकार देती दृष्टिगत होती हैं। इस प्रकार हिंदी गजलों के साथ समकालीन सामाजिक परिदृश्य का सहज संबंध प्रस्थापित होता है। हिंदी गजलों ने सामाजिक यथार्थ को प्रभावपूर्ण शैली में आम जन-जीवन के विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। देश और समाज के सामने उपस्थित अनगिनत समस्याओं को हिंदी गजलकारों ने बड़ी सूक्ष्मता और सरलता के साथ पाठकों के सामने रखा है। समाज में व्याप्त गरीबी, बदहाली, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी, महँगाई, आम जनता की भूख और चीख, अन्याय तथा अत्याचार जैसी समस्याओं को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य हिंदी गजल करती हुई परिलक्षित होती है।

कुंजी शब्द : सामाजिक विसंगतियाँ, जनता की पीड़ा, घुटन, विवशता, प्राथमिक आवश्यकताएँ, मूलभूत सुविधाएँ, उन्नति, समृद्धि, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, महँगाई, असुविधा, अव्यवस्था...

प्रस्तावना -

हिंदी गजल साहित्य को जन-संवेदना की सशक्त अभिव्यक्ति बनाने वाले कवि दुष्यंत कुमार माने जाते हैं। वे हिंदी गजल विधा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपनी गजलों के माध्यम से समकालीन सामाजिक विसंगतियों, जनता की पीड़ा और संघर्ष की अभिव्यक्ति कर गजल विधा की पारंपरिक प्रेम-विरह केंद्रित सीमाओं को तोड़ दिया और उसको जन सामान्य की संवेदनाओं से जोड़ दिया। यही कारण है कि उनकी गझलों में यत्र-तत्र आम आदमी की पीड़ा और दु:ख-दर्द अभिव्यक्त हुए है। उनकी गजलों में स्वतंत्रता-पश्चात देश का सामाजिक परिदृश्य तीव्रता से उजागर होता है। उनके समकालीन गजलकार भी उनका अनुसरण करते हुए सामाजिक यथार्थ को अपनी गजलों में अभिव्यक्त करते परिलक्षित होते हैं। उनकी गजलें आम आदमी की संवेदना से अंकुरित और पल्लवित हुई नजर आती हैं। देश की आम जनता की संवेदनाओं के प्रति देशवासियों को जागृत करना उनका आद्य-कर्तव्य परलक्षित होता है।

विश्लेषण –

हिंदी गजलें समकालीन यथार्थ को बेबाकी से प्रस्तुत करती हैं। स्वतंत्रतापूर्व और स्वतंत्रता-पश्चात आम आदमी की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। उसकी पीड़ा, घुटन तथा विवशता वैसी ही बनी रही जैसे ब्रिटिश शासन काल में थी। आम जनता की इन सभी संवेदनाओं को हिंदी गजलकारों ने अपनी गजलों का केंद्रीय विषय बनाया। गरीबी, बढ़ती महँगाई, जनता की मजबूरी तथा बेरोजगारी जैसी समस्याओं को उन्होंने गजलों के माध्यम से दर्शाया है। हिंदी गजलों का मूल उद्देश्य न केवल जन सामान्य की संवेदनाओं तथा विवशताओं को उजागर करना है बल्कि समाज की वास्तविकता को दर्शाते हुए उनको संघर्ष तथा परिवर्तन के लिए प्रेरित करना है। दुष्यंत कुमार की विकसित गजल की नई परंपरा को समकालीन गजलकारों ने भी अनुसरण किया है। उसमें अदम गोंडवी, जहीर कुरेशी, ज्ञानप्रकाश विवेक, निदा फाजली तथा माधव कौशिक आदि के नाम उल्लेखनीय है। हिंदी गजलकारों ने समकालीन परिस्थितियाँ, समाज की पीड़ा और विवशताओं को अभिव्यक्त किया है। समाज की बदहाली के लिए राजनीतिक व्यवस्था तथा सामाजिक जड़ताओं को जिम्मेदार माना है।

समकालीन समाज में गरीबी अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई है। आम जन-जीवन अपनी फटेहाल स्थिति से उबरना तथा खुशहाल जीवन की उम्मीद में हैं। लेकिन जनता का यह सपना सपना ही बनकर रह गया है। देश की गरीबी से निजात पाने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई गई, लेकिन उनका वास्तविक लाभ समाज के आखिरी स्तर तक नहीं पहुँचा। धनिक तथा पूँजीपतियों ने ही इन योजनाओं का लाभ उठाया, आम जनता तक योजनाएँ पहुँचने से पूर्व ही बंद हो गई। इसी वजह जरूरतमंद इससे वंचित रह गए। इन योजनाओं की वास्तविकता को बेनकाब करते हुए दुष्यंत कुमार कहते हैं-

"यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।"[xix]

सरकारी योजनाओं की असफलता के कारण ही आज जनता अभावों में जीवनयापन कर रही है। आजादी के 75 वर्ष के बाद भी जनता भूखी है। इसी गरीबी की तस्वीर दुष्यंत कुमार खींचते हैं। कभी सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारत देश में व्याप्त गरीबी को हिंदी गजलों में उद्घाटित किया गया है। आम जनता अपनी गरीबी के कारण प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थता यहाँ दृष्टिगत हुई है।

जनता की गरीबी और अव्यवस्था के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देश की प्रतिमा मलिन हो रही है। जिसका वर्णन दुष्यंत कुमार इन शब्दों में करते हैं-

"कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।"[xx]

द्रष्टव्य पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि जनता की फटेहाल जिंदगी देश के उज्ज्वल प्रतिमा को मलिन करने के साथ ही देश के विकास में बाधक बनी हुई है।

आजादी के बाद गरीब जनता ने प्राथमिक आवश्यकताओं, मूलभूत सुविधाओं, उन्नति एवं समृद्धि की आशा की थी। जिससे आर्थिक समानता के साथ सामाजिक समता भी प्रस्तापित होने की उम्मीद थी। लेकिन आजादी के बाद भी अमीरी और गरीबी की खाई निरंतर गहरी होती गई। जिससे आज भी देश में प्रचुर मात्रा में आर्थिक विषमता परिलक्षित होती है। अदम गोंडवी कहते हैं -

"लगी है होड-सी देखो अमीरी और गरीबी में
ये गांधीवाद के ढाँचे की बुनियादी खराबी है"[xxi]

स्पष्ट है कि दिन-प्रतिदिन देश का अमीर वर्ग अत्यधिक अमीर और निर्धन अत्यधिक गरीब होता जा रहा है। पूँजीपतियों के धनसंचयन पर सरकारद्वारा कोई रोक नहीं लगाई जा रही है और नहीं गरीबों के आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए भरकस प्रयास किए जा रहे है। देश की इसी दयनीय आर्थिक स्थिति को उजागर करते हुए महेश कटारे 'सुगम' कहते हैं-

"किसी की आय पर लगती कोई लगाम नहीं,
किसी के पास में रोटी का इंतजाम नहीं।"[xxii]

स्पष्ट है कि आर्थिक विषमता देश के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। जिससे समाज दो हिस्सों में विभाजित हुआ है। एक ओर भोग-विलासपूर्ण जीवन है तो दूसरी ओर अभाव-दरिद्रता है। जिसका सूक्ष्मता से अंकन गझलों में मिलता है।

प्रत्येक नागरिक को अपनी योग्यता के अनुसार नौकरी के समान अवसर मिलने चाहिए, लेकिन जनसंख्या वृद्धि और बढ़ते भ्रष्टाचार के कारण उच्च शिक्षित युवा भी बेरोजगार बैठे हैं। अशिक्षित ही नहीं पढे-लिखे बेरोजगारों की संख्या में भी निरंतर बढ़ौतरी हो रही है। इस संदर्भ में जहीर कुरेशी कहते हैं-

"डिग्रियों के कोख से जन्मी
बुद्धिमत्ताएं सड़क पर है।"[xxiii]

यही शिक्षित युवा जीवनयापन और धनप्राप्ति के लिए आपराधिक गतिविधियों में सम्मिलित होते हैं। निराशा में नशे के आदी हो जाते हैं। देश का भविष्य कहे जाने वाले युवा बेकार और निराश है। यह बात देश के उन्नति के लिए अहितकारी सिद्ध होती है। यही कारण हैं कि बेरोजगारी एक विकराल समस्या का रूप धारण किए है।

आजादी के लिए देशभक्त तथा क्रांतिकारियों ने अपना बलिदान दिया परंतु आज उसी समाज के लोग समस्याओं, असुविधाओं तथा विद्रूपताओं को झेल रहे हैं। समाज में फैले असंतोष, अन्याय एवं अव्यवस्था को जनता चुपचाप सहन कर रही है। उसकी मजबूरी को देखकर दुष्यंत कुमार के मन में प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यही वे लोग है, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में संघर्ष और आंदोलन किए है। जिसको उद्घाटित करते हुए वे कहते हैं-

"यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।"[xxiv]

समाज अन्याय को खामोशी से बर्दाश्त कार रहा है। समाज अपने अधिकार और और पुरुषार्थ को भूल बैठ है। अपनी समस्याओं के प्रति लोग गूँगे और बहरे हो गए हैं। अपनी असुविधा के विरुद्ध वे चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे हैं। किसी का दु:ख-दर्द उन्हें न तो

आंदोलित करता है न ही संघर्ष के लिए प्रेरणा देता है। असुविधाओं में भी जीवनयापन करने की आदत लोगों को लग गई है। इसलिए दुष्यंत कुमार कहते हैं-

"न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब है, इस सफर के लिए।"[xxv]

भारतीय समाज में बढ़ती महँगाई एक बहुत बड़ी समस्या का रूप धारण किए हुए है। भले ही चुनावों के समय यह मुद्दा महत्त्वपूर्ण बन जाता हो लेकिन बाद में यह दुर्लक्षित ही रह जाता है। बढ़ती महँगाई निम्न तथा मध्य वर्ग की कमर तोड़ देती है। महँगाई के करण आम जनता को दो वक्त की रोटी के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इस समस्या को रेखांकित करते हुए महेश कटारे 'सुगम' कहते हैं-

"महँगाई अभी सुरसा के मुँह जैसी
अब भी पसरी घर-घर में कंगाली है।"[xxvi]

समाज में स्थित अन्याय-अत्याचार के प्रति जो आक्रोश होना आवश्यक है वह कही पर भी नजर नहीं आता है। जनता की सबकुछ शांति से सहन करने की आदत से दुष्यंत कुमार क्रोधित होते हैं। समाज को गूँगा और बहरा मानते हैं, जो वास्तविकता को देख-सुन नहीं पा रहे है इसलिए चुप है।

वर्तमान समय में समाज में ऐसी परिस्थितियाँ निर्माण हुई है कि मनुष्य संवेदनाहीन और स्वार्थी बन गया है। केवल शहर में ही नहीं गाँव में भी लोग आत्मकेंद्री बन गए हैं। जिसका वर्णन करते हुए दुष्यंत कुमार कहते हैं-

"इस शहर में हो कोई बारात या वारदात,
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ।"[xxvii]

स्पष्ट होता है कि दुष्यंत कुमार ने यहाँ लोगों की स्वार्थी मनोवृत्ति पर तीव्र प्रहार किया है। आज मनुष्य इतना आत्मकेंद्री बन गया है कि किसी के सुख-दु:ख का उस पर कोई असर नहीं होता है। सभी अपनी दुनिया में व्यस्त और मस्त नजर आते हैं।

आम जनता की विवशता से दुष्यंत कुमार संवेद हो उठते हैं। जनता की मजबूरी का वर्णन वे बड़ी मार्मिकता से करते हैं। समाज अभाव में जी रहा है, उसकी अव्यवस्था दुष्यंत कुमार के मन-मस्तिष्क को झकझोर देती है। उनके दर्द की अनुभूति की अभिव्यक्ति वे इयान शब्दों में करते हैं-

"सिर से सिने में कभी, पेट से पाँवों में कभी,
एक जगह हो तो कहें दर्द इधर होता है।"[xxviii]

दुष्यंत कुमार कहना चाहते हैं कि समाज पूर्णत: असुविधा और अव्यवस्था में जीवनयापन कर रहा है। उनकी असुविधाओं की गिनती करना भी असंभव प्रतीत होता है अर्थात जनता के रोटी, कपड़ा, मकान तथा शिक्षा जैसी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं हुई है।

स्पष्ट है कि आम जनता की गरीबी, देश में स्थित आर्थिक असमानता, युवाओं की बेरोजगारी, समाज की मूल्यहीनता तथा बढ़ती महँगाई जैसी समस्याएँ देश को अंदर से खोखला बना रही है। इन समस्याओं के उचित समाधान के बिना देश विकास की राह पर आगे नहीं बढ़ सकता है। इसी सच्चाई की ओर हिंदी गजल संकेत करती दृष्टिगत होती हैं।

निष्कर्ष :

संक्षेप में कहना सही होगा कि हिंदी गजलों में तत्कालीन सामाजिक संवेदनाओ की मार्मिक अभिव्यक्ति है। गजलकारों की पीड़ा निजी न होकर सामाजिक है। इस प्रकार यह गजलें और उनके रचनाकार सामाजिक प्रतिबद्धता के परिचायक है। उल्लेखनीय है कि अब हिंदी गजल साहित्य का केंद्रीय भाव आशिक और आशिकी तक सीमित न रहकर उसमें विषय वैविध्य के साथ जन सामान्य के जीवन-अनुभूति का साक्षात्कार है। समकालीन गजलकार जन सामान्य की संवेदनाओं को वाणी देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए नजर आते हैं। देश की दशा और बढ़ते भ्रष्टाचार के प्रति क्षोभ का भाव रचनकार व्यक्त करते हैं। समकालीन गजलों में आम जनता के शोषण, अन्याय तथा अत्याचार का विरोध करते हुए समाज में क्रांति लाने के स्वर भी परिलक्षित होते हैं। देश में स्थित समस्याओं में अपेक्षित सुधार लाने की प्रेरणा भी गझलकार देते नजर आते हैं। समाज के सभी वर्गों को सामाजिक तथा आर्थिक स्तर पर एकसूत्रता में बाँधकर देश के संपूर्ण विकास की कामना हिंदी गजलकारों ने की हैं।

अत: कहा जा सकता हैं कि हिंदी गजलें करोड़ों देशवासियों की संवेदना से युक्त है। यह गजलें भूखी-प्यासी, निर्वासित, नंगी आम-जन का दस्तावेज है। यह गजलें हिंदी गजल साहित्य की अमूल्य धरोहर है। समकालीन समाज के सामाजिक परिदृश्य को अभिव्यक्त करने में उन्होंने मिल के पत्थर का काम किया है।

संदर्भ:

1. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 72 वाँ संस्करण, पृ. 15
2. वही, पृ. 57
3. सं. प्रो. डॉ. सदानंद भोसले, साहित्य संचयन,नयी किताब प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2025, पृ. 54
4. महेश कटारे 'सुगम', प्यार के साये, नोशन प्रेस, इंडिया, 2022 पृ. 60
5. जहीर कुरेशी, एक टुकड़ा धूप, विद्या प्रकाशन, कानपुर, द्वि. संस्करण, 2016, पृ. 17
6. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 72 वाँ संस्करण, पृ. 15
7. वही पृ. 13
8. महेश कटारे 'सुगम', प्यार के साये। नोशन प्रेस, इंडिया, 2022 पृ.30
9. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, 72 वाँ संस्करण, पृ. 21
10. वही, पृ. 47

*****

कवि गोपालदास सक्सेना 'नीरज' के गीतों में श्रृंगारिकता का चित्रण

प्रो. डॉ. मनोहर जमदाडे
प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
साहेबराव शंकरराव ढमढेरे कला एवं
वाणिज्य महाविद्यालय, तलेगांव ढमढेरे,
तहसील - शिरूर, जिला - पुणे
Email - mjamdade@ymail.com
दूरभाष - 9922070963

सारांश (Abstract) :

मनुष्य जीवन में गीतों का विशेष महत्त्व रहा है। हमारी भावनाओं को प्रकट करने के लिए गीतों की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हमारी संस्कृति को जीवित रखने का और प्रचार-प्रसार करने में गीतों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। गीत हमारे तनाव को मुक्त कर मन को शांति देते हैं। मन की थकान दूर कर उत्साह और स्फूर्ति भरने का काम करते हैं। गीत मनुष्य को जीवन में प्रेरणा देने का काम करते हैं। ग्रामीण तथा शहरी परिदृश्यों को प्रकट करते हैं। कभी गीतकार गाँव का वातावरण खेत-खलिहानों के गीत लिखता है, तो कभी प्रकृति के गीत लिखकर हृदय में सौंदर्य भर देता है। श्रृंगारिक गीतों में गीतकार चाँद-तारों को तोड़ने की बात करता है और जीवन की क्षणभंगुराता को लेकर पल में सौ जनम जीने की बात भी करता है। कवी की इसी सूक्ष्म दृष्टी के कारण कहा जाता है -'जो न देखे रवि, ते देखे कवी।' गीतकार अपने गीतों के माध्यम से आनंद, दुःख, प्रेम, क्रोध जैसे मनोभावों को व्यक्त करता है। गीत केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है, वे हमारी भावनाओं के साथ-साथ जीवन की सुंदरता और वास्तविकता का भी चित्रण करते हैं।

बीज शब्द (Key Words) : गीत, भावना, गीतकार, मनोदशा, जीवन, मनोरंजन।

प्रस्तावना :

डॉ. हरदेव बाहरी के अनुसार गीत - 'छोटी पद्यात्मक रचना है।'[1] गीत लेखन की यह परंपरा मनुष्य की सभ्यता के साथ धीरे-धीरे विकसित हुई है। वैदिक युग में सामवेद में गीतों का उल्लेख देखने को मिलता है। भारतीय संगीत में शिव और सरस्वती को संगीत के आदि प्रेरक माना गया है। संगीत के माध्यम से मनुष्य को सुखांत और दुखांत भाव की अनुभूति की जाती है। गीतों की यह परंपरा बहुत पुरानी है। आधुनिक काल में गीतों का बहुत बड़ा प्रभाव मनुष्य जीवन पर दिखाई देता है। कई गीतकारों ने इस परंपरा में अपना योगदान दिया है जिसमें गोपालदास सक्सेना 'नीरज का नाम विशेष है। उनकी कविताओं ने हिंदी कविता को एक नया मोड़ दिया है। उन्होंने हरिवंशराय बच्चन के बाद नई पीढ़ी को सर्वाधिक प्रभावित किया है। नीरज जब मंच पर झूमकर कविता का पाठ करते तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते थे। कई फिल्मों में भी उनके गीत बहुत प्रसिद्ध हुए और आज भी लोग उनके गीत गुणगुणाते हैं। इसी कारण राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर ने उन्हें हिंदी की वीणा का नाम दिया था। नीरज के श्रृंगारिक गीत कई दशकों बाद भी जनमानस के हृदय में आज भी जीवित है।

कवि 'नीरज ने 'लिखे जो खत तुझे, वो तेरी याद में' यह गीत सन 1968 में लिखा है। यह गीत श्रृंगार रस प्रधान है। इस गीत में खासकर संयोग श्रृंगार का चित्रण हुआ है। नायक का मन नायिका से मिलने के लिए लालायित है। ऐसी स्थिति में नायक को सारा माहौल खुशनुमा महसूस हो रहा है। प्रियतम जब अपनी प्रेमिका की याद में पत्र लिखने लगता है तो उसके सामने मानों हज़ारों रंग के नज़ारे बन जाते हैं। नायक प्रेमिका के सामने उन स्थितियों का वर्णन करता है जब वह उसके साथ नहीं है पर उसे उसके होने का आभास होता है। प्रेयसी के साथ बिताए हुए क्षणों की वह यादें उसे सुबह हो जाने पर फूल-सी सुंदर और रात हो जाने पर सितारों जैसी झिलमिलाती एवं रोमांचकारी लगती है।

प्रेयसी की रंगीन यादों में नायक को अनेक प्रकार के आभास होते हैं। कहीं पर किसी की सुरीली आवाज सुनकर नायक के दिल को लगता है कि उसकी प्रेमिका का ही आगमन हुआ है। वह चौंक कर प्रेमिका को इधर-उधर ढूंढने का प्रयास करता है-

"कोई नगमा कही गूँजा, कहा दिल ने ये तू आई
कहीं चटकी कली कोई, मैं ये समझा तू शरमाई
कोई खुशबू कहीं बिख़री, लगा ये ज़ुल्फ़ लहराई...
लिखे जो ख़त तुझे..."[2]

किसी सुंदर-सी कली को देख कर नायक को उसकी प्रियतमा के शरमाने का आभास होता है। कहीं पर बिखरी हुई खुशबू महसूस होने पर नायक को लगता है, यह गंध तो प्रियतमा के ज़ुल्फ़ों-सी है। अर्थात् उसे सर्वत्र प्रियतमा की उपस्थिति का आभास होता रहता है।

नायिका के बिना नायक अपने आप को अधूरा समझता है। जहां-जहां वह जाता है नायक उसके साथ रहना चाहता है। नायक उसे अपने दिल की धड़कन मानता है-

"जहाँ तू हैं वहाँ मैं हूँ, मेरे दिल की तू धड़कन है
मुसाफ़िर मैं तू मंज़िल है, मैं प्यासा हूँ, तू सावन है
मेरी दुनिया ये नज़रें हैं, मेरी जन्नत ये दामन है
लिखे जो ख़त तुझे..."[3]

जिस प्रकार मुसाफ़िर की कोई एक मंजिल होती है, उसी तरह नायक के लिए उसकी प्रेमिका जीवन साध्य बन गयी है। नायक प्रेम का प्यासा है, वह नायिका रूपी सावन से अपनी प्यास बुझाना चाहता है। नायक की दुनिया नायिका की नज़रों में बसी हुई है, तात्पर्य नायक उसकी कृपा दृष्टि चाहता है। नायिका का आंचल ही उसके लिए जन्नत है।

कवि 'नीरज ने 'फूलों के रंग से, दिल की कलम से यह गीत 1970 में प्रदर्शित 'प्रेम पुजारी' इस फ़िल्म के लिए लिखा था। यह गीत प्रेमिका की याद में प्रेमी ने गाया है। प्रेमी देश सेवा के लिए अपना कर्तव्य निभाने के लिए दूसरे देश गया है। गाँव में उसकी प्रेमिका है। गाँव से जाने से पहले वह प्रेमिका को प्रतिदिन खत लिखने का वादा करता है। पर अपने काम से उसे फुर्सत ही नहीं मिलती। प्रेम में जितनी भी दूरियाँ बढ़ती है उतना लगाव भी बढ़ जाता है; मिलन की आस बढ़ जाती है। प्रेमिका को वह प्रत्यक्ष न सही कल्पना के माध्यम से हररोज चिट्ठी लिख रहा है वह भी फूलों की रंग से दिल की कलम से। नायक कहता है -

''फूलों की रंग से दिल की कलम से
तुझको लिखी रोज पाती
कैसे बताऊँ, किस-किस तरह से
पल-पल मुझे तू सताती"[4]

प्रेमी के अनुसार बादल, बिजली और चंदन पानी जैसा उनका प्यार है। जो बहुत मदिर और मधुर भी है। उसे निभाने के लिए उन्हें बार - बार जनम लेना होगा।

''हाँ, बादल बिजली चंदन पानी जैसा अपना प्यार
लेना होगा जनम हमें, कई-कई बार
हाँ, इतना मदिर, इतना मधुर तेरा मेरा प्यार
लेना होगा जनम हमें, कई-कई बार।"[5]

प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए अद्वितीय उपमाएँ देता है। प्रेमी के लिए प्रेमिका साँसों की सरगम है; धड़कन की वीना है; सपनों की गीतांजली है। प्रेमी के मन की गली में हरदम महकने वाली जूही की कली भी है। प्रेमिका के अभाव में प्रेमी खुदको अकेला महसूस करता है। छोटा-बड़ा सफर हो, सूनी डगर हो, या मेला लगा हो हर जगह प्रेमी को प्रेमिका की याद आती है, भीड़ के बीच होकर भी प्रेमी का मन अकेलापन महसूस करता है।

कवि 'नीरज ने 'खिलते हैं गुल यहाँ, खिलके बिखरने को यह गीत 1971 में प्रदर्शित 'शर्मीली' इस फ़िल्म के लिए लिखा था। मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। समय किसी के लिए भी कभी रूकता नहीं है। समय के साथ हर कहीं परिवर्तन होता है। चाहे वह मानवीय जीवन हो, पशु-पक्षियों का हो, पेड-पौधों का हो; गुजरे पल फिर नहीं आते। हमारा बचपन हो या जवानी बीत जाने पर केवल यादे रहती हैं। इसी कारण उन क्षणों का आनंद उठाना चाहिए। यौवन के दिन गौरव के दिन होते हैं। यौवन का समय अधिक पल्लवीत, पुलकीत और रोमांचित होता है। गीतकार को इन हसिन पलों को प्यार में व्यतित करने में ही जीवन की सार्थकता लगती है।

प्रस्तुत गीत 'खिलते हैं गुल यहाँ, खिलके बिखरने को के माध्यम से प्रेमी अपनी प्रेमिका को कई उदाहरण देकर इन पलों को प्यार में गुजारने की बात करता है। जिस प्रकार फूल खिलते हैं और खिलकर बिखरते हैं। उसी प्रकार दिल मिलते हैं और मिलकर एक दिन बिछड़ जाते हैं। इसलिए इन क्षणों का आनंद उठाने की बात करते हुए प्रेमी कहता है -

"खिलते है गुल यहाँ, खिलके बिखरने को-

मिलते है दिल यहाँ, मिलके बिछड़ने को"[6]

प्रेमी कहता है प्यार का भी एक मौसम होता है। वह कल रहेगा या न रहेगा कुछ पता नहीं है। प्रकृति सजी धजी है, उसमें बहार आयी है। यह बहार कल तक रुकेगी या न रुकेगी यह नहीं बता सकते। इसलिए आज जो चार पल मिले हैं उन्हें प्यार में गुजार देना चाहिए। नहीं तो ये पल भी हमारे हाथ से छुट जाएंगे। इस संदर्भ में प्रेमी कहता है -

"कल रहे ना रहे, मौसम ये प्यार का
कल रुके ना रुके, डोला बहार का-
चार पल मिले जो आज, प्यार में गुजार दे"[7]

नीरज द्वारा लिखित 'जैसे राधा ने माला जपी श्याम की...' यह गीत सन 1971 में लिखित सुंदर व श्रृंगारिक गीत है। इस गीत को सृजित करते समय कवि ने राधा-कृष्ण के अमर प्रेम को आधार बनाया है। भारतीय समाज में राधा-कृष्ण के प्रेम की पवित्रता का प्रमाण देने की जरूरत नहीं पड़ती। उनके प्रेम में आकर्षण है पर वासना कहीं भी नहीं। प्रेम में समर्पण का होना जितना आवश्यक होता है, उतना ही त्याग का होना। ऐसा ही प्रेम सफल होता है जिसमें त्याग और समर्पण हो। प्रस्तुत गीत में भी प्रेमिका के उदात्त प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमी को पाने के लिए प्रेमिका की छटपटाहट देखने को मिलती है। यहाँ पवित्र प्रेम की झलक दिखाई देती है। इसमें कहीं भी स्वार्थ नहीं है, न ही शारीरिक आकर्षण। प्रेम का आधार निःस्वार्थ भावना है। इसी कारण जिस प्रकार राधा ने श्याम के लिए माला जपी थी उसी प्रकार प्रेमिका भी प्रेमी के लिए उसके नाम की चुनरिया ओढ़ लेती है। इस बारे में वह कहती हैं -

''जैसे राधा ने माला जपी श्याम की -
मैंने ओढ़ी चुनरिया तेरे नाम की।"[8]

प्रेम दिखाने की चीज नहीं है, प्रेम में अनुभूति महत्वपूर्ण होती है। प्रेम में दो हृदयों का मिलन होता है। प्रेमिका को भी प्रेम होता है और प्रेम की डोर में बँधी जाती है। उसे उम्रभर के लिए नया रिश्ता मिलता है। प्रेम के लिए किसी भी प्रकार की कोशिश करने की आवश्यकता उसे नहीं पड़ती। प्रेम बाजार में मिलनेवाली वस्तु नहीं है, न ही प्रेम में तोल मोल होता है। सच्चा प्रेम कभी बिकाऊ नहीं होता। इसलिए प्रेमिका कहती है -

''प्रीत क्या जुड़ी
प्रीत क्या जुड़ी, डोर क्या बँधी
बिना जतन बिना यतन हो गई मैं नई
बिना मोल की मैं बिकी, बिना दाम की"[9]

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवी नीरज ने अपने गीतों के माध्यम से संयोग और वियोग श्रृंगार का सुंदर समन्वय किया है। प्रेमी-प्रेमिका के बिछुड़न और प्यार को, प्यार की पवित्रता को, दूर जाने पर मिलन की आस को, प्रेमी हृदय को बहुत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। प्रस्तुत गीतों के माध्यम से गीतकार ने सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति की है। कोई भी व्यक्ति प्रेम को खरीद नहीं सकता, वह कोई बाजारू चीज नहीं है। प्रेम अमर होता है, दुनिया में उसे कोई भी मिटा नहीं सकता। अपने गीतों के माध्यम से कवी नीरज ने श्रृंगारिकता को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करने में सफलता पायी है।

संदर्भ सूची :

1. हिंदी शब्दकोश - डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ. 215
2. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 पृ.105
3. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली- 110002 पृ. 105
4. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 पृ. 99

5. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 पृ. 99
6. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 पृ.101
7. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 पृ.101
8. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 पृ.98
9. हिंदी भाषा शिक्षण - संपादक, प्रो. सदानंद भोसले, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली - 110002 पृ. 98

*****

हिंदी फ़िल्मों में गीत और ग़ज़ल का महत्व

मानसी प्रभू भट गावकर,
गोवा विश्वविद्यालय,
9373640254,
manasiprabhubhat@gmail.com

शोध सारांश-

सिनेमा एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है। भारत में नाटकों की एक लंबी परंपरा रही है। इनमें गीत-संगीत का प्रयोग बड़े पैमाने पर होता था। यहीं परंपरा सिनेमा में भी स्वीकार की गयी है। गीतों के भी कई रूप होते हैं। जैसे शास्त्रीय गीत-संगीत पर आधारित, ग़ज़लों, कव्वालियों, लोकगीतों पर आधारित आदि। इनका मुख्य काम मनोरंजन होता है पर सिनेमा में प्रयुक्त गीत-ग़ज़ल हमेशा एक संदेश प्रसारित करने का काम करती है। एक सफल गीतकार या ग़ज़लकार वहीं है जो अपने शब्दों से, लोगों को उलझाए बिना एक अच्छी रचना लिखता है।हिंदी सिनेमा में उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में लिखनेवाले गीतकार थे और उन्होंने कभी भी किसी दूसरी भाषा की उपेक्षा नहीं की। हिंदी उर्दू के विवाद में न पड़कर उन्होंने दोनों को समान रूप में अपनाया इसी कारण फ़िल्मी गीतों में दोनों भाषाओं की सजीवता एवं सुंदरता दिखाई देती है।

बीज शब्द – सिनेगीतकार, ग़ज़ल, स्वर्णकाल, प्रेम, सामाजिक यथार्थ

प्रस्तावना –

मनुष्य के जीवन में गीत-संगीत का अत्याधिक महत्व है। मनुष्य अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए इनका सहारा लेता है। गीतों का भारतीय संस्कृति से भी गहरा नाता है। सामान्य मनुष्य अपनी सुविधानुसार कई गीत गढ़ता है जिन्हें लोकगीतों की संज्ञा दी जाती है। सिनेमा में प्रयुक्त गीत सिनेगीत कहलाते हैं। सिनेमा जैसी विधा का भारत में लोकप्रिय होने के कारण सिनेमाई गीत भी मनुष्य पर अपनी छाप छोड़ने में सफल होते हैं। विद्वान लेखक नलिन रंजन सिंह फ़िल्मी गीतों के संबंध में अपने लेख 'फ़िल्मी गीतों का सफर और हिंदी' में लिखते हैं, "दुःख के गहनतम क्षणों में तमाम फ़िल्मी गीत दर्द का कैथारसिस करते हैं। कई गीत तो मनोचिकित्सा पर भी भारी पडेंगे।"[1] उनकी इस बात का सीधा अर्थ यह है एक कि जब इनसान इन गानों को सुनता है तब अपने भावनाओं को मुक्त रूप से व्यक्त कर पाता है।चूँकि सिनेमा एक लोकप्रिय माध्यम है, सिनेगीतों का प्रभाव लोगों पर अत्याधिक पड़ता है। इसीकारण जब भी कोई मनुष्य दुःखी हो और वह कोई प्रेरणादायी गाना सुने तो उसे अपने दुःख से उभरने की हिम्मत मिलती है।

विश्लेषण –

हिंदी सिनेमा ने अपने आगमन काल से ही कई लोगों को अपना दीवाना बना दिया है। भारत में सिनेमा का आगमन लोगों के लिए एक चमत्कारी घटना थी। प्रारंभ में सिनेमा मूक था फिर भी लोगों को आकृष्ट करने में सफल रहा। जब उसने बोलना प्रारंभ किया तो उसकी ख्याति दूर-दूर तक पहुँचने में देर न लगी। संवाद और अभिनय के साथ इसकी प्रसिध्दी का एक अन्य कारण गीतों का प्रयोग भी था। सिनेमा ने बोलना प्रारंभ किया और गीत भी तब से उससे अभिन्न रूप से जुड़ते गए।वैसे भी भारतीय संस्कृति और गीतों का गहरा नाता रहा है। शादी के समय गाए जाने वाले गीत, फसल की कटाई के वक़्त गाएँ जाने वाले गीत, भक्तिगीत ,इसप्रकार कई ऐसे प्रसंग हैं जहाँ गीत-संगीत के बिना हमारे कार्य अधूरे रह जाते हैं। इसिलिए जब फ़िल्मों में जनमानस के जीवन से संबंधित गीत लिखे गए तो वे झट् से मनुष्य के जीवन का अंग बन गए। उदा. के तौर पर 'बाबुल की दुआएँ लेती जा' यह गाना आज भी विदाई के समय गाया जाने वाला सबसे लोकप्रिय गीत है। इस प्रकार इन गीतों का कालजयी होना उनकी श्रेष्ठता का प्रमाण देता है। ये गीत हमारी भारतीय संस्कृति को नई व्याख्या के साथ प्रस्तुत करते हैं।

यदि फ़िल्मी गीतों के प्रारंभिक रूप को विश्लेषित करें तो किसी कविता के तरह उनके बोल जान पड़ेंगे। 'कित गए हो खेवनहार' जैसा गीत सुनने पर यहीं लगता है कि कोई बाल कविता ही सुन रहे हो। सन् 1931 में आई पहली बोलती फ़िल्म 'आलमआरा' से गीतों का सफर सिनेमा में शुरु हुआ।तब से लेकर 21 वी सदी में कई वर्ष बीत गए परंतु गीतों की लोकप्रियता आज भी बरकरार है। सिनेगीतों को लोकप्रिय बनाने का श्रेय उसके गीतकारों, गायकों और संगीतकारों को जाता है। परंतु सदा ही गीतकारों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। इसीकारण 30 के दशक में गीत लेखन में सक्रिय रखे गीतकारों की सूचि मिलना कठिन कार्य है।

गीतकार सजीव सारथी अपने लेख 'ज़िंदगी, रिश्ते और समाज की कहानियाँ दुहराते फ़िल्मों के गीतकार' में लिखते हैं, "आरंभिक दौर में जब फ़िल्म के अभिनेता, आभिनेत्री खुद ही अपना गायन करते थे, और पार्श्वगागन की शुरुआत नहीं हुई थी, उस

दौर के गीतकारों का अलग से नाम नहीं दिया जाता था। संभवतः फ़िल्म के संवाद लेखक या फिर खुद अभिनेता गीतों को लिख दिया करते थे।"[2] उनकी यह बात पूर्ण सत्य है या नहीं यह तो नहीं पता पर आंशिक रूप से यह सही सिद्ध हो सकती है।1930 के दशक में जिन चंद गीतकारों के नाम आते हैं उनमें केदार शर्मा, जे.एस.कश्यप, दीनानाथ माधोक,प्रदीप ये नाम प्रमुख हैं। इन गीतकारों ने अपने अथह परिश्रम से गीतों को मशहूर बना दिया ।

परंतु हिंदी सिनेगीतों का स्वर्णकाल सन् 1950 से 1970 तक के दशक को माना गया है। इसके पीछे कारण यह है कि सन् 1950 में गीत-लेखन के क्षेत्र में कई प्रयोग हुए। 1947 में विभाजन ने देश का मानचित्र ही बदल दिया। गीत-संगीत के क्षेत्र से जुड़े कई कलाकार पाकिस्तान चले गए परंतु कई हुनरमंद गीतकार – संगीतकार भारत में भी आ गए।इन महानुभावों में ओंकार प्रसाद नय्यर, साहिर लुधियानवी, मोहम्मद रफ़ी जैसे कई बड़े नाम हैं। सिनेमा का यह दौर अधिक प्रौढ़ फ़िल्मों, निर्देशन, गीत-संगीत एवं अभिनय का रहा है। कई संगीतकारों, गायकों, गीतकारों ने गानों को एक नई ऊँचाई पर पहुँचाया। संगीतकारों में सी. रामचंद्र, नौशाद, अनिल विश्वास, सचिन देव बर्मन, खेमचंद प्रकाश, शंकर-जयकिशन, मदन मोहन, रोशन जैसे कई दिग्गजों का नाम आता है तो वहीं गायकों में गीता दत्त, सुरैया, लता मंगेशकर, आशा भोसले, तलत महमूद, मोहम्मद रफ़ी, किशोर कुमार, मन्ना डे, मुकेश जैसे संगीतसम्राट विख्यात रहे हैं। परंतु दुर्भाग्य कि बात यह है कि इन कलाकारों के समान हम सिनेगीतकारों से उतना परिचित नहीं है।

संगीतकारों और गायकों के समान किसी गीत को यादगार बनाने का श्रेय उसके गीतकारों को भी जाता है। पर उनकी भूमिका हमेशा नजरअंदाज़ की जाती है। सिनेमा के लिए गीत लिखना एक कठिन कार्य है। कवि के पास यह स्वतंत्रता होती है कि वह अपने मन के अनुसार शब्दों का चुनाव करें पर गीतकार के पास यह आज़ादी नहीं होती। आचार्य सारथी अपने लेख 'चौकाते तो है लेकिन' में लिखते हैं, "जनरुचि के दृष्टिगत फ़िल्मों गीतों की भाषा आमफहम में सहज संप्रेषित होती है, इसके बावजूद कई समर्थ कवि शायर काव्य भाषा और रचनात्मकता के स्तर पर अपने फ़िल्मी लेखन में भी उत्कृष्टता बनाए रखते है।"[3] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सिनेगीतकार के पास लोगों को आकृष्ट करने वाली भाषा, फ़िल्म के सिचुएशन के अनुसार गीत लिखना जैसे गुण होने चाहिए। संगीतकारों, निर्देशकों के तमाम दबावों के बावजूद सिनेमा जगत में ऐसे गीतकार हुए जिन्होंने अपने शब्दों के अनमोल मोती बिखेरकर कई गीतों को यादगार बना दिया है। गीतकारों में शैलेंद्र, प्रदीप, प्रेम धवन, भरत व्यास,नरेंद्र शर्मा तो ग़ज़लकारों में साहिर लुधियानवी,मजरुह सुल्तानपुरी,शकील बदायूँनी,शहरयार जैसे कई नाम सम्मिलित हैं।

सन् 1950 के दशक में सिनेगीतों में विविधता नज़र आती है। इस दौर में फ़िल्मी ग़ज़लों का सिनेगीतों के क्षेत्र में आगमन हुआ । फ़िल्मी ग़ज़लों को सिनेमा में विख्यात कराने का श्रेय संगीतकार मदन मोहन को जाता है। इन्हीं के साथ-साथ नौशाद, रोशन जैसे संगीतकारों ने भी ग़ज़लों को प्रसिध्दी दिलाई है। गीतकारों में मज़रूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी, शकील बदायूँनी जैसे शायरों का महत्व है।साहिर लुधियानवी की तो कई साहित्यिक ग़ज़लें जैसे-'तंग आ चुके हैं कश्मकशे-ज़िन्दगी से हम', फ़िल्मों के लिए स्वीकारी गई है । इन गीतों ग़ज़लों का महत्व केवल मनोरंजन करना ही नहीं था बल्कि फ़िल्मों के प्रति लोगों की रुचि बढ़ाने में भी ये महत्वपूर्ण रही हैं।

लेखक विष्णु खरे अपने लेख 'गीत और संगीत की भूमिका' में लिखते हैं, "फ़िल्मों में गीत संगीत का प्रवेश डायरेक्टर को एक हजार फीट शूट करने से बचा देते हैं, जैसे हीरो-हिरोईन के बीच एक गाना बतलाकर वो बहुत सारा संदेश देता है,इस तरह वह स्थिति को भी मार्मिक ढंग से समझा देता है।"[4] उनका आशय बस इतना है कि इन गीतों से फ़िल्मों में अनावश्यक संवाद डालने से बचा जा सकता है और फ़िल्मी गीत की अवधि छोटी होने के कारण कम से कम शब्दों में बहुत बड़ी बातें कही जा सकती है।

दरअसल यह सब शब्दों की जादूगरी पर निर्भर करता है। गीतकारों की यह जिम्मेदारी होती है कि वे ऐसे शब्दों का प्रयोग करें कि एक ही बात दर्शकों के सामने अलग-अलग तरह से प्रस्तुत करें। जैसे हिंदी सिनेमा में प्रेम की भावना पर कई गीत लिखे गए। पर हर गीत का अपना अलग सौंदर्य है। इन गीतों की खासियत यह है इन्हें जितनी बार सुना जाएँ हर बार कुछ नया अर्थ देते हैं। 1950 के दशक में लिखित 'आहा-रिम-झिम के ए प्यारे गीत लिए','नैन मिले चैन कहाँ','ओ सजना'जैसे कई गीत लोकप्रिय हैं।सिनेमाई ग़ज़लों ने भी इस प्रेम की अभिव्यक्ति को एक मुखर स्वर दिया है।'दिल खुश है आज उनसे मुलाक़ात हो गई', 'नग़मा ओ शेर की सौगात' आदि कई ग़ज़लों में प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है ।

हिंदी फ़िल्मी गीतों और ग़ज़लों में जीवन दर्शन और समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है।यह सच है कि आज समय बदल गया है और आज यदि हिंदी फ़िल्मी सिनेगीतों की बात करें तो इनका स्तर काफी गिर गया है।परंतु सिनेमा के स्वर्णकाल में इन्होंने सामाजिक परिवर्तन का काम किया।जैसे गीतकार शैलेंद्र, द्वारा लिखित गीत 'मुड़-मुड़ के ना देख' जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। ऐसे लाखों गीत और ग़ज़लें हैं जिन्होंने सिनेगीतों के माध्यम से तत्कालीन यथार्थ को

उजागर करने का कार्य किया है। उदा. के तौर पर 1943 में आयी फ़िल्म किस्मत वैसे तो एक चोर की कहानी पर आधारित है परंतु उसमें कवि प्रदीप द्वारा लिखित गीत दूर हटो ओ दुनियावालों अंग्रेजों को खुली चुनौती देने वाला गीत था। कवि प्रदीप ने बड़ी ही चतुराई से उस गाने में अंग्रेजों को इस देश से दूर जाने की चेतावनी दी थी ।गीत के बोल कुछ इसप्रकार थे-

"तुम न किसी के आगे झुकना,जर्मन हो या जापानी
आज सभी के लिए हमारा यहीं कौमी नारा है।"[5]

इन बोलों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय के निर्देशकों, गीतकारों की सोच क्या थी। अपनी राष्ट्रप्रेम की भावना जन-कण तक पहुँचाने का कार्य सिनेगीतों में हुआ है।

ग़ज़लों गीतों के माध्यम से फ़िल्मों ने हिंदी-उर्दू- समन्वय का अद्भुत प्रयास किया है। ग़ज़लों की भाषा उर्दू रही और गीतों की हिंदी, पर फ़िल्म में इन दोनों प्रकार के गीति विधाओं को रखा जाता था। 1957 में आयी फ़िल्म 'प्यासा'में हिंदी गीतों के साथ उर्दू ग़ज़ले भी शामिल थी और इन्हें लिखनेवाले गीतकार साहिर लुधियानवी थे। फ़िल्म की एक ग़ज़ल थी-

"तंग आ चुके हैं कश्मकशे-ज़िन्दगी से हम
ठुकरा न दें जहाँ को कहीं बेदिली से हम"[6]

इस ग़ज़ल में एक इनसान की समाज से ठुकराई जाने की पीड़ा है। यह फ़िल्म एक ऐसे शायर की बात करती है जो समाज द्वारा प्रताडित उपेक्षित है। ऐसे में साहिर की यह ग़ज़ल उन तमाम बातों को कह देती है जो निर्देशक को संवादों के माध्यम से कह पाना कठिन थी।

निष्कर्ष- इन गीतों और ग़ज़लों की खासियत यह है कि उनका प्रयोग बड़ी ही कुशलता से किया जाता है।'उमराव जान' जैसी फ़िल्में गानों के लिए मशहूर हो जाती है।यदि बिना गानों और ग़ज़लों की फ़िल्में बनाई गई तो फ़िल्म की आत्मा को उससे दूर करने के समान होगा।आज गीतों के प्रयोजन को समझे बगैर गानों को ठूँस दिया जाता है जिससे वे कहानी को आगे बढ़ाने के बजाय उसकी गति को अवरुद्ध कर देते हैं।ग़ज़लें तो आज कल कहीं खो सी गई है।एक विचारधारा को लेकर आगे बढ़नेवाले,समाज को बदलने की इच्छा रखने वाले निर्देशकों, गीतकारों की कमी है ऐसे में गीतों ग़ज़लों का महत्व आज की फ़िल्मों के लिए प्रश्नचिन्ह के घेरे में खड़ा है।

संदर्भ सूचि-

1.सिंह,नलिन रंजन.'फ़िल्मी गीतों का सफर और हिंदी','हिन्दी सिनेमा की यात्रा',सं. पंकज शर्मा, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली 2015,पृ. क्र. 125
2.सारथी,सजीव.'ज़िदगी, रिश्ते और समाज की कहानियाँ दुहराते फ़िल्मों के गीतकार', 'हिंदी सिनेमा:बिंब प्रतिबिंब', सं.महेंद्र प्रजापति,अनिरुद्ध प्रकाशन,जनवरी 2021,पृ.क्र.288
3.सारथी,आचार्य. 'चौकाते तो है लेकिन','सिनेमा के सौ बरस',सं.मृत्युंजय, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली 2003,पृ.क्र.343
4. खरे,विष्णु. 'गीत और संगीत की भूमिका','सिनेमा के सौ बरस',सं.मृत्युंजय, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली 2003,पृ.क्र 326
5. https://hosturl.link/SAF3J0 ,आज हिमालय की चोटी से, site visited on 22 Dec 2025
6.पंडित,प्रकाश.लोकप्रिय शायर और उनकी शायरी साहिर लुधियानवी,राजपाल प्रकाशन दिल्ली 2016,पृ.क्र.105

*****